दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला–१२

श्रीमञ्जुश्रीयशोविरचितस्य परमादिबुद्धोद्धृतस्य

श्रीलघुकालचक्रतन्त्रराजस्य

कल्किना श्रीपुण्डरीकेण विरचिता टीका

विमलप्रभा

[द्वितीयो भागः]

प्रधानसम्पादकः

सम्‌दोङ् रिन्‌पोछे

सम्पादकौ

व्रजवल्लभ द्विवेदी

एस० एस० बहुलकर

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

[illegible]

RARE BUDDHIST TEXTS SERIES-12

VIMALAPRABHĀṬĪKĀ

OF

KALKIN ŚRĪPUṆḌARĪKA

ON

ŚRĪLAGHUKĀLACAKRATANTRARĀJA

by

ŚRĪMAÑJUŚRĪYAŚAS

[Vol. II]

Chief Editor
Samdhong Rinpoche

Editors

VRAJAVALLABH DWIVEDI S. S. BAHULKAR

RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH PROJECT
Central Institute of Higher Tibetan Studies
SARNATH, VARANASI

B. E. 2537 C. E. 1994

Co-Editors

Janardan Pandey
Banarsi Lal
Thinlay Ram Shashni

Thakur Sain Negi
Tashi Samphel
Vijay Raj Vajracharya

First Edition : 550 copies, 1994

Price : HB. Rs. 110.00
PB. Rs. 75·00

Published by :
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi-221 007

Printed by :
Shivam Printers
C. 27/273, Indian Press Colony
Maldahiya, Varanasi-221 002

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला–१२

श्रीमञ्जुश्रीयशोविरचितस्य परमादिबुद्धोद्धृतस्य
श्रीलघुकालचक्रतन्त्रराजस्य
कल्किना श्रीपुण्डरीकेण विरचिता टीका

विमलप्रभा

[द्वितीयो भागः]

प्रधानसम्पादकः
सम्‌दोङ् रिन्‌पोछे

सम्पादकौ

व्रजवल्लभ द्विवेदी
एस० एस० बहुलकर

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द—२५३७
ख्रीस्ताब्द—१९९४

सहायक मण्डल

जनार्दन पाण्डेय
बनारसी लाल
ठिनलेराम शाशनी

ठाकुरसेन नेगी
टशी सम्फेल
विजयराज वज्राचार्य

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियां, १९९४

मूल्य : सजिल्द : रु० ११०.००
अजिल्द : रु० ७५.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी–२२१ ००७

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी० २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी–२२१ ००२

प्रकाशकीय

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी के द्वारा प्रकाशित हो रही कालचक्र तन्त्र की विमलप्रभा टीका के द्वितीय भाग को बौद्ध तन्त्रों के अनुरागी विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस टीका के प्रथम भाग का समालोचनात्मक सम्पादन स्वर्गीय प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी ने किया था। उन्होंने बौद्ध तन्त्र-ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन करने की महत्त्वपूर्ण योजना का संकल्प लिया था। नेहरु फैलोशिप मिलने के साथ ही उन्होंने अपने इस पवित्र संकल्प को मूर्त रूप देना प्रारंभ कर दिया और फैलोशिप में मिलने वाली अधिकांश धनराशि का सदुपयोग उन्होंने बौद्ध तन्त्र-ग्रन्थों के हस्तलेखों को जुटाने में किया। इसके साथ ही उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में तथा केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के पुस्तकालय में भी विविध रूपों में पाण्डुलिपियों के संग्रह में महनीय सहयोग किया। इसी के परिणाम स्वरूप दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना को अन्ततः केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति मिली और इस योजना का प्रारंभ प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के सजग निदेशकत्व में १९८५ में हुआ।

दुर्भाग्य से विमलप्रभा के प्रथम भाग का और 'धीः' पत्रिका के प्रथम विशिष्ट अंक का प्रकाशन होने के कुछ ही दिनों बाद प्रो० उपाध्याय जी का असामयिक देहावसान हो गया। उनके इस आकस्मिक निधन से दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना की प्रगति पर दारुण आघात हुआ। इस स्थिति में उनके सहयोगी और योजना के उपनिदेशक प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी और अन्य सदस्यों ने इस योजना का कार्य बड़ी दृढ़ता से चलाया और गत सात वर्षों में बौद्ध तन्त्रों के कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। 'धीः' पत्रिका के भी निरन्तर निश्चित समय पर प्रतिवर्ष दो अंक निकलते रहे। इतना सब होते हुए भी विमलप्रभा के शेष भाग के सम्पादन में काफी समय लग गया। विज्ञ पाठक जानते ही हैं कि ग्रन्थ के प्रथम भाग में प्रथम और द्वितीय पटल का प्रकाशन हुआ था। अब इस द्वितीय भाग में तृतीय और चतुर्थ पटल को विमलप्रभा के साथ उसी पद्धति से सुधी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कालचक्र तन्त्र और उसकी विमलप्रभा टीका का यह संस्करण छः हस्तलेखों और भोट अनुवाद की सहायता से तैयार किया गया है। इन सबका परिचय प्रथम भाग की अंग्रेजी प्रस्तावना में दिया जा चुका है। सन् १९८५ में मूल कालचक्र तन्त्र का डॉ० विश्वनाथ बनर्जी के द्वारा सम्पादित संस्करण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। मूल श्लोकों के परिष्कार के लिये इससे भी सहायता ली गई है। हम उन सभी

संस्थाओं और व्यक्तियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनका इनकी उपलब्धि में स्मरणीय सहयोग रहा है।

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के सभी सदस्य, जिन्होंने इस जटिल ग्रन्थ का संशोधित संस्करण महती रुचि लेकर बड़ी लगन के साथ तैयार किया, हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। इस प्रसंग में इस योजना के पूर्व उपनिदेशक प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, योजना परामर्शक पण्डित श्रीजनार्दन शास्त्री पाण्डेय एवं वरिष्ठ अनुसन्धान अधिकारी डॉ० बनारसी लाल विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने स्व० प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के द्वारा प्रथम भाग में अपनाई गई पद्धति का अनुसरण कर इस भाग को प्रस्तुत करने में विशेष सहयोग दिया है। इस ग्रन्थ के दक्षतापूर्ण मुद्रण के लिये हम 'शिवम् प्रिन्टर्स' के श्री हरिप्रसाद निगम के भी आभारी हैं।

हमें आशा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का बौद्ध तन्त्र के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ के तृतीय भाग का, जिसमें कालचक्र तन्त्र एवं विमलप्रभा टीका के शेष पंचम पटल के साथ विभिन्न परिशिष्टों का समावेश होगा, प्रकाशन शीघ्र हो सके, इसके लिये हम विद्वानों की शुभ कामनाओं के अभिलाषी हैं।

मार्च, सन् १९९४

एस. रिन्पोछे
निदेशक

དཔར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

ཝཱ་ཎ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་ནས་དཔར་སྐྲུན······ ཞུས་བཞིན་པའི་དུས་འཁོར་རྒྱུད་ཀྱི་འགྲེལ་ཆེན་དྲི་མེད་འོད་དེབ་གཉིས་པ་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ལ་ཐུགས་སེམས་ཅན་གྱི་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་ལམ་དུ······ འབུལ་ལམ་ཞུས་ཐུབ་པར་དགའ་སྤྲོབས་ཆེན་པོ་བྱུང་། འགྲེལ་བ་འདིའི་དེབ་དང་པོ་ཞིང་ག་ཤེགས་མཁས་དབང་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་ (པྲོ་ ཛེསརཛགནྣཱཐ ཨུཔཱདྷྱཱཡ) མཆོག་ནས་ཞིབ་དཔྱོད་དང་བཅས་དཔར་སྐྲུན་མཛད་ཡོད། ཁོང་གིས་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ཁག་ཞུ་སྒྲིགས་དང་དཔར་སྐྲུན་གནང་རྒྱུའི་ཐུགས······ འདུན་གཏིང་ཟབ་ཞིག་སྔ་མོ་ནས་ཡོད་པ་བཞིན་ནེཤྣལཕེལོཤིཔ་ཞེས་པའི········ གཟེངས་བསྟོད་སློབ་ཡོན་ཐོབ་པ་དང་དུས་མཉམ་དུ་ཁོང་གིས་རང་གི་དགོངས་བཞེད་བཟང་པོ་དེ་ལག་ལེན་དུ་བསྟར་རྒྱུར་དབུ་བརྩམས་དེ་སློབ་ཡོན་དུ་ཐོབ······ པའི་ཕྱག་དངུལ་མང་ཆེ་བ་ནང་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་གཞུང་ལག་བྲིས་མ་དག་གསོག······ སྒྲུག་བྱ་ཐབས་ལ་བེད་སྤྱོད་མཛད་ཡོད། དེ་དང་མཚུངས་པར་ཁོང་གིས་དགའ་བ་རབ་རྫོགས་ལེགས་སྦྱར་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་ (སམྤཱུརྞཱནནྡ་སཾསྐྲིཏ་བིཤྭ་བིདྱཱལཡ) གི་དབྱངས་ཅན་ཕོ་བྲང་ (སརསྭཏཱི་བྷཝན) དཔེ་མཛོད་ཁང་དང་། དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ཞི་འཚོ་དཔེ་མཛོད་དུའང······ སྔོ་དུ་མ་ནས་ལག་བྲིས་མ་དཔེ་ཁག་བསྡུ་གསོག་བྱ་རྒྱུར་ཕན་གྲོགས་ཆེན་པོ······ གནང་བའི་འབྲས་བུར་མཐར་ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཆར་གཞིར་དབུས་གཞུང་ནས་མཐུན་རྐྱེན་སྦྱར་རྒྱུའི་གནང་བ་ཐོབ་སྟེ་འཆར······

གཞི་འདིའི་ལས་འགོ་མཁས་དབང་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་ཉིད་ཀྱིས་རྣམ་དཔྱོད····
ལྡན་པའི་ངེས་སྟོན་པའི་འོག་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༨༤ ལོར་དབུ་ཚུགས།

འགྲེལ་ཆེན་དྲི་མེད་འོད་རིབ་དང་པོ་དང་སྣྲེ༔ དུས་རིབ་ཁྱད་པར་བ་ཐོན····
དང་པོ་དཔར་དུ་ཐོན་ནས་མི་རིང་བར་མཁས་དབང་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་མཆོག
སྐྱེ་འགྲོ་འི་བསོད་ནམས་ཀྱིས་མ་ཆུན་པར་དུས་མིན་ལ་དགོངས་པ་རྫོགས། དམ་
པ་དེ་ཉིད་བློ་ཐུར་དུ་སྐུ་ཚེ་མ་ཟིན་པའི་ཡིད་སྐྱོ་འི་གནས་ཚུལ་ལ་བརྟེན་ནང་པའི་
ཆོས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཆར་གཞིའི་ལས་དོན་ལ་ཉམས་ཉེས··
ཚབས་ཆེ་བྱུང་ཡང་ཁྲོང་གི་ཕྱག་རོགས་འཆར་གཞིའི་ངེས་སྟོན་པ་གཞོན་པ···
མཁས་དབང་བྲཛབལླབྷདྭིབེདཱི་དང་ཕྱག་རོགས་གཞན་པ་རྣམས་ཀྱིས་འཆར··
གཞི་འདིའི་ལས་དོན་ཁག་ཐུགས་ཁུར་ཆེན་པོས་རྒྱུན་སྐྱོང་མཛད་པར་བརྟེན·····
འདས་པའི་ལོ་ངོ་བདུན་ནང་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་གལ་ཆེ་འགའ་ཞིག་དཔར་དུ་
བཏོན་ཡོད་ཅིང་སྣྲེ༔ དུས་རིབ་ཀུང་ཆད་མེད་གཏན་འབེབས་དུས་ཐོག་ཏུ་ལོ་རེའི་
ནང་ཐོན་གཉིས་རེ་འདོན་ཐུབ་པ་བྱུང་ཡོད། དེ་ལྟ་ནའང་དུས་རྒྱུད་དང་འགྲེལ་
ཆེན་དྲི་མེད་འོད་འཕྲོས་ལྷག་གི་ཞུ་སྒྲིགས་བྱ་རྒྱུར་དུས་ཡུན་རིང་པོར་འགོར····
འགྱང་སོང་། ཀློག་པ་པོའི་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱིས་དགོངས་ཆུབ་ལྟར་གཞུང་
འདིའི་རིབ་དང་པོར་ལེའུ་དང་པོ་དང་གཉིས་པ་དཔར་དུ་ཐོན་ཡོད་པ་དེ་བཞིན···
རིབ་གཉིས་པ་འདིའི་ནང་ལེའུ་གསུམ་པ་དང་བཞི་པ་འགྲེལ་ཆེན་དྲི་མེད་འོད····
དང་བཅས་རིབ་དང་པོ་དང་མཚུངས་པར་ཞུས་སྒྲིག་དཔར་སྐྲུན་ཞུས་ཡོད།

དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་འི་རྒྱུད་དང་དེའི་འགྲེལ་ཆེན་དྲི་མེད་འོད་ཀྱི་དཔར·····
ཐེངས་འདི་བཞིན་ལག་བྲིས་མ་དཔེ་དྲུག་དང་བོད་འགྱུར་བཅས་ལ་བརྟེན་ནས···

ཞུ་སྒྲིགས་བྱས་ཡོད་པ་འདི་དག་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ངོ་སྤྲོད་རིབ་དང་པོའི་དབྱིན·····
སྐད་གླེང་བརྗོད་ནང་ཞུས་ཡོད། འདིར་ཙ་ཚིག་ཁག་གི་དག་ཞུས་ཆེད་ཕྱི་ལོ་
༡༩༨༤ ལོར་མཁས་དབང་ཊོཀཊརབྲིཤྭནཐབནརྫཱི་ཡིས་ཀལཀཏྟ་ནས་ཞུ········
སྒྲིགས་ཀྱིས་དཔར་སྐྲུན་མཛད་པའི་དུས་འཁོར་རྩ་རྒྱུད་ལས་ཀྱང་ཕན་ཆ་བླངས··
ཡོད།། མ་དཔེ་འདི་དག་རྙེད་ཐབས་སུ་སྤྱི་སྐོར་ཁག་མང་པོ་ཞིག་ནས་རོགས་
ཕན་གནང་ཡོད་པ་དག་ལའང་བཀའ་དྲིན་སྙིང་བཅངས་ཞུ།

ནང་པའི་ཆོས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཆར་གཞིའི་ལས་བྱེད་
ཐམས་ཅད་ནས་དཀའ་གནད་ཅན་གྱི་གསུང་རབ་འདི་གྲུས་རྡག་གི་བརྩོན་འགྲུས་
དང་ཐུགས་འདུན་ཆེན་པོས་ཞུ་སྒྲིགས་ཀྱིས་དཔར་སྐྲུན་མཛད་པ་བསྟོད་བསྔགས་
ཀྱི་འོས་སུ་འགྱུར་ཞིང་། ཁྱད་པར་དུ་འཆར་གཞི་འདིའི་ངེས་སྟོན་པ་སྐུ་གཞོན་
ཟུར་པ་མཁས་དབང་བྲཛབལླབྷདྭིབེདཱི་དང་འཆར་གཞིའི་སློབ་སྟོན་པ་མཁས··
དབང་ཛནརྡནཔཎྜེཡཤཱསྟྲི་དང་ཉམས་ཞིབ་པ་སྐུ་བགྲེས་མཁས་དབང········
བནརསཱིལཱལ་བཅས་ནས་ཞིང་གཤེགས་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་མཆོག་གིས་རིབ··
དང་པོའི་ནང་ཕྱག་ལེན་དུ་བསྟར་བའི་ཐབས་ལམ་ཇི་བཞིན་དཔར་ཐེངས་འདི···
ཐུགས་སྣང་ཆེན་པོས་ཞུ་སྒྲིགས་མཛད་པར་དམིགས་གསལ་གྱི་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ··
འོས་ཅན་ཡིན། གསུང་རབ་འདི་སྤུས་ཚད་ལྡན་པར་དཔར་སྐྲུན་གནང་བར་
ཤེལླམ་དཔར་ཁང་གི་སྐུ་ཞབས་ཏྲིབྷུསནདྲིགམ་ལགས་སྤྲང་ལེགས་སོ་ཡོད།

གསུང་རབ་འདིས་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ལ་ཐོས་བསམ་བྱེད་པར་ཕན·····
གྲོགས་ཆེན་པོ་ཡོང་རེ་དང་། གཞུང་འདིའི་རིབ་གསུམ་པའི་ཚུལ་དུ་དུས་ཀྱི་
འཁོར་ལོ་འི་རྒྱུད་དང་འགྲེལ་ཆེན་དྲི་མེད་འོད་ཀྱི་འཕྲོས་ལེའུ་ལྔ་པ་ཁ་སྐོང·····

ལྷན་ཐབས་སྣ་ཚོགས་ཀྱིས་བརྒྱན་ཏེ་འདོན་རྒྱུར་མགྱོགས་པོ་ཐོན་ཐབས་ལ……

དམིགས་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱིས་ཐུགས་སྨོན་རྒྱབ་གཉེར་ཡོང་བའི་རེ་འདུན……

བཅས་བླ་ཆ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ……

ཟམ་གདོང་བློ་བཟང་བསྟན་འཛིན་གྱིས་བྲིས།

PUBLISHER'S NOTE

We feel extremely delighted to present to the world of scholars, taking genuine interest in the study of Buddhist Tantras, the second volume of the *Vimalaprabhā*, a commentary on the *Kālacakra Tantra*, being published by Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi. The first volume of this commentary was critically edited by the late Prof. Jagannath Upadhyaya. It was Prof. Upadhyaya who first conceived such an important research-project of editing and publishing the Buddhist Tantric texts. He began to give a concrete shape to his holy resolution, as soon as he was awarded the prestigious Nehru Fellowship and spent a major portion of the amount of that fellowship towards collecting the manuscripts of Buddhist Tantras. At the same time, he extended his invaluable help to the Saraswati Bhavan Library of Sampurnanand Sanskrit University and Central Institute of Higher Tibetan Studies, in acquisition of the manuscripts procured in various forms. His endeavour gained desired fruits, as the Central Government finally conveyed its willingness to provide adequate financial support for the Rare Buddhist Texts Research Project and the work of the Project began in 1985, under the able directorship of Prof. Upadhyaya.

It was our great misfortune indeed that Prof. Upadhyaya left this world, quite prematurely, soon after the publication of the first volume of the *Vimalaprabhā* and the first Special Issue of the biannual journal *Dhīḥ*. His sudden demise gave a mighty blow to the progress of the project. However, his devoted colleagues, Prof. Vrajavallabh Dwivedi, the then Deputy Director of the project and other members of the staff continued to work rigorously and brought out critical editions

of a number of important works on the Buddhist Tantras during the last seven years. The biannual publication of the project, i. e., the research journal *Dhīḥ*, was also released quite regularly. In spite of all this steady progress, the work of preparing a critical edition of the remaining portion of the *Vimalaprabhā* took much longer time than expected. Our readers are aware that the first volume comprised the first and the second *Paṭala*s of the *Kālacakra Tantra* and the *Vimalaprabhā*. The present volume, consisting of the third and the fourth *Paṭala*s, is now being presented in the same manner as before.

The second volume of the *Kālacakra Tantra* with the *Vimalaprabhā* has been prepared on the basis of six Sanskrit manuscripts and the Tibetan Translation of the same, the details of which have been given in the Preface to the present volume. In 1985, a critical edition of the *Kālacakra Tantra* prepared by Dr. Biswanath Banerjee was published from Calcutta. This edition has also been used for critically editing the original verses of the *Kālacakra Tantra*. We express our indebtedness to all those institutions and individuals who offered their unforgetable assistance in procuring the manuscript material required for this edition.

The members of the staff of the Rare Buddhist Texts Research Project deserve our full admiration for their keen interest and great perseverance in preparing a critical edition of such an abstruse text as the present one. Special thanks are due to Prof. Vrajavallabh Dwivedi, the erstwhile Deputy Director of the project, Pt. Shri Janardanshastri Pandey, the Consultant of the project and Dr. Banarsi Lal, the Senior Research Officer who extended great help in editing this volume, following the same methodology that had been adopted by the late Prof. Jagannath Upadhyaya in the preparation of

the first volume. We are thankful to Shri Hari Prasad Nigam of Shivam Printers for the neat printing of this book.

We sincerely hope that the present volume will prove to be a significant contribution to the Buddhist Tantric Studies. The third volume of this work will include a critical edition of the fifth and the last *Paṭala* of the *Kālacakra Tantra* with the *Vimalaprabhā* and various Indexes to all the three volumes. We pray that the readers will encourage us by their well wishes for a rapid and successful completion of this work.

March 1994

S. Rinpoche
Director

पुरोवाक्

विमलप्रभाया द्वितीयखण्डस्य संस्करणमिदं कालचक्रतन्त्रस्याभिषेक-साधनाख्य[1]-तृतीय-चतुर्थ-पटलावधिकृत्य प्रणीतां टीकामन्तर्निधत्ते। कृत्स्नं हि कालचक्रतन्त्रं स्रग्धरावृत्तनिबद्ध-सप्तचत्वारिंशदधिक-सहस्र-श्लोकयुतेषु[2] पञ्चसु पटलेषु संविभक्तम्।

तन्त्रस्यास्य भोटभाषानुवादगतमभिधानं यथा—परमादिबुद्धोद्धृत-श्रीकालचक्र-नाम-तन्त्रराज इति (देर्गे–तो० क्र० ३६२, १३४६)। रघुवीर-लोकेशचन्द्राभ्यां सम्पादितयोः संस्कृत-भोट-पाठयोर्ग्रन्थाभिधानमपि समानमेव। ताभ्यां विश्वनाथ-बॅनर्जीमहोदयेन च सम्पादितयोः संस्कृतपाठयोः पुष्पिके एवं स्तः—

१. इति श्रीमदादिबुद्धोद्धृते श्रीकालचक्रे (प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पटलान्ते)।

[पाठभेदः—तृतीय-चतुर्थपटलान्ते– रघुवीर-लोकेशचन्द्र-संस्करणम् : कालचक्रे; बॅनर्जीसंस्करणम् : श्रीमहाकालचक्रे]।

२. इति द्वादशसाहस्रादिबुद्धोद्धृते श्रीमति कालचक्रे (पञ्चमपटलान्ते)।

[पाठभेदः—बॅनर्जीसंस्करणम् : द्वादशसाहस्त्रिकादि; श्रीमहाकालचक्रे]।

इदमस्माभिर्विमलप्रभातोऽवगम्यते यत् पुराकाले कालचक्रस्यास्य किमपि मूलतन्त्र-मासीत् परमादिबुद्धनामधेयं यद् अनुष्टुप्छन्दोबद्धैर्द्वादशसहस्रमितैः श्लोकैर्युक्तमासीत्। (द्र०-वि०प्र०, खण्डः १, पृ०, १८, पङ्क्ती १, २) कृत्स्नं हि तत्तन्त्रं भोटभाषया,

---

१. रघुवीर-लोकेशचन्द्रसम्पादिते (इण्टरनॅशनल अकादेमी ऑफ इण्डियन कल्चर, न्यू दिल्ली, १९६६) विश्वनाथ-बॅनर्जीसम्पादिते (दि एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९८५) च संस्कृतपाठसंस्करणे 'साधन' इत्यभिधानं दृश्यते। बॅनर्जी-संस्करणे चतुर्थपटलस्य पुष्पिकायां 'साधना' इति पाठभेदो दृश्यते। विमलप्रभायां तन्त्रदेशनामहोद्देशे पञ्च पटलानि परिगणितानि सन्ति, यत्र चतुर्थं पटलं साधनपदेन व्यपदिष्टमस्ति (वि० प्र०, खण्डः १, पृ० १२, पङ्क्तिः १२)। अपि च पञ्चपटल-अभिधेयनिरूपणावसरे विमलप्रभा तत् पटलं साधनापदेन निर्दिशति (वि० प्र०, पृ० १४, पङ्क्ती, ७, १३ च)। संस्करणेऽस्मिन् प्रदत्तं साधनापटलमित्यभिधानं तत्पटलटीकायाः (पृ० १४९, पङ्क्तिः १८), महोद्देशानां पुष्पिकाणां चाधारेण प्रदत्तमस्ति। तत्र महोद्देशानां पुष्पिकाणामधिकतमासु पुष्पिकासु साधनापटलमिति पदं लक्ष्यते।

२. श्रीतन्त्रं (लघुतन्त्रं) स्रग्धरावृत्तनिबद्धैः १०३० श्लोकैरुपनिबद्धमिति विमलप्रभाया-मुक्तम् (वि० प्र०, पृ० २५, पङ्क्तिः ६)। द्र०–बॅनर्जी, उपरिनिर्दिष्टम्, भूमिका, पृ० ३।

चीनभाषया मङ्गोलभाषया वानूदितं नैवासीत्। मूलं च संस्कृतं विलुप्तमस्ति। मूलतन्त्रस्यास्य कांश्चनांशान् वयमुपलभामहे, येष्वन्यतमः सेकोद्देशः[1] सम्भाव्यते। अपरे चांशा मूलतन्त्र-आदिबुद्ध-परमादिबुद्धनामभिर्[2] उद्धृतवचनरूपेण विविधेषु ग्रन्थेषूपलभ्यन्ते। ते च ग्रन्था यथा—विमलप्रभा, नडपादविरचिता सेकोद्देश-टीका, चर्यागीतिकोषव्याख्या, दोहाकोशव्याख्या, तत्त्वज्ञानसंसिद्धिटीकेत्यादयः। लघुतन्त्रं–यदस्माभिरित ऊर्ध्वं कालचक्रतन्त्रनाम्ना व्यपदिश्येत–सम्भवतो मूलतन्त्र-गतामेव पटलानुपूर्वीमनुसरति।

कालचक्रस्य पञ्चानां पटलानामनुक्रमे कश्चित् प्रयोजनविशेषो लक्ष्यते। प्रथम-द्वितीयपटलौ भाजनलोक-सत्त्वलोकौ वर्णयतः। तृतीयं पटलं सत्त्वशोधनप्रयोजन-परमभिषेकं विवृणोति। चतुर्थे साधनाख्ये पटले साधकं लौकिकसिद्धिं प्रापयन्ती मण्डल-भावनोपवर्णितास्ति। पञ्चमं च पटलं परमाक्षरज्ञानरूपं परमं लक्ष्यमुपदिशति[3]।

---

१. सेकोद्देश-मूलतन्त्र-सम्बन्धविषये द्र०–जॉन न्यूमन, "दि परमादिबुद्ध (दि कालचक्र मूलतन्त्र) ॲण्ड इट्स रिलेशन टु दि अर्ली कालचक्र लिटरेचर", इण्डो-इरानियन-जर्नल, ३० (२), १९८७, पृ० ९३–१०२)। सेकोद्देशस्य संस्कृतग्रन्थस्यास्तित्वं स सूचयति (पृ० १०२), परं तस्य हस्तलेखस्य विषये विस्तरेण किमपि न कथयति। ए कॅटलॉग ऑफ पाम-लीफ ॲण्ड सिलेक्टेड पेपर मॅन्युस्क्रिप्ट्स इन दि दरबार लायब्ररी, नेपाल, कलकत्ता, १९१५, इत्यस्मिन् हस्तलेखसूचीपत्रे म. म हरप्रसाद-शास्त्रिणः कस्यचिद् अज्ञातग्रन्थस्य पत्राद् एकस्मात् कञ्चन पद्यांशमुद्धरन्ति। तत् पत्रं योगरत्नमालाया हस्तलेखस्य प्रथमपत्रत्वेन स्थापितमासीत्, यस्मिन् सेकविधेर्विवरणमुपलभ्यते। इदं तु निःशङ्कतया कथयितुं शक्यते यत् पद्यांशोऽसौ सेकोद्देशस्यैवांशः। तत्र पाठो भ्रष्टः, परं स नडपादविरचितसेकोद्देशटीकासाहाय्येन सुलभतया संशोधयितुं शक्यते। संशोधितपाठार्थं द्र०–एस० एस० बहुलकर, "फ्रॅगमेण्ट्स ऑफ दि सेकोद्देश", 'धीः', १७ (१९९४), पृ० १४९–१५४।

२. एतद्-ग्रन्थोद्धृतवचनार्थं द्र०–व्रजवल्लभद्विवेदि-बनारसीलालसंदृब्धो लुप्त-बौद्धवचन-संग्रहः, भागः १, दुर्लभ-बौद्ध-ग्रन्थमाला, क्र० ६, केन्द्रीय-उच्च-भोट-विद्या-संस्थानम्, सारनाथ, वाराणसी, १९९०। पं० राहुल-सांकृत्यायन-महोदयः स्वीये "सेकण्ड सर्च ऑफ संस्कृत पाम-लीफ मॅन्युस्क्रिप्ट्स इन टिबेट" इति निबन्धे (जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी, खण्डः XXIII (1), १९३७) शलुविहारेऽवलोकितानां हस्तलेखानां सूचीं प्रयच्छति, यस्याम् 'आदिबुद्ध इ०' इत्येवं ग्रन्थाभिधानं लक्ष्यते (क्र० २७०, पृ० ४०)। हस्तलेखोऽयं पञ्चपत्रयुतोऽसम्पूर्णश्च। अयं च विलुप्तसेकोद्देशग्रन्थस्यांशः सम्भाव्यते।

३. तु०–ए० वेमन, "दि अपोक्रिफल कालचक्रतन्त्र", इन्दोगाकु-मिक्योगाकु-केङ्क्यू (स्टडीज इन इण्डॉलॉजी ॲण्ड तान्त्रिक बुद्धिज्म), प्रो० वाय्०मियासाका-अभिनन्दन-ग्रन्थः, क्योतो, जापान, १९९३।

पञ्चसु पटलेषु वर्णिता विषया द्वात्रिंशत्संग्रहे–यत्र प्रथमे अष्ट संग्रहा उद्देशपदेनाव-शिष्टाश्च महोद्देशपदेन व्यपदिश्यन्ते-एकाशीतिस्थाने संविभक्ताः। इमे विषया भगवतः स्वभावतयाऽवस्थिता इति विमलप्रभा (द्र०-वि० प्र०, खण्डः १, पृ० १२-१४)[1]।

पञ्चपटलगतानां संग्रह-स्थान-श्लोकानां संविभागो यथा—

पटलम्	संग्रहाः	स्थानानि	श्लोकाः
१. लोकधातुपटलम्	१०	२४	१६९
२. अध्यात्मपटलम्	७	१८	१८०
३. अभिषेकपटलम्	६	१२	२०३
४. साधनापटलम्	५	७	२३४
५. ज्ञानपटलम्	४	२०	२६१
	३२	८१	१०४७

प्रस्तुतखण्डगत-तृतीय-चतुर्थपटलयोर्विषयविस्तरो यथा—

तृतीयं पटलम्—

१. मण्डलदेशनार्थं सुचन्द्रस्याध्येषणा भगवतश्च प्रतिवचनम्; उत्तमाधमगुरुपरीक्षा; उत्तम-मध्यमाधमशिष्यपरीक्षा; अभिषेकार्थं भूमिपरीक्षा; शान्तिकादिविध्यर्थं दिग्विभागः; शान्तिकादिविध्यर्थं कुण्डानां लक्षणानि; शत्रुकीलनार्थं कीलकाः; घटानां लक्षणानि; शान्तिकादिविध्यर्थं क्रूरवेला; आचार्यासनदिग्विभागः; रजोविधिनियमाः; देवता-सूत्र-अक्षसूत्रलक्षणानि; यन्त्रलेखनविधिः।

२. आचार्यरक्षाविधिः; रक्षाचक्रे क्रोधदेवतागणस्फारणम्; भूमिशुद्धिनिमित्तं पृथिव्या-वाहनम्; भूमिशोधनार्थं दिनम्; शिष्यादिरक्षाविधिः।

---

१. विमलप्रभायां प्रायः श्लोकानामनुक्रममनुसृत्य कालचक्रतन्त्रस्याभिधेयं संक्षेपेण वर्णितमस्ति। बुस्तोनमहोदयस्तन्त्रस्यास्य विषयान् पञ्चविंशतिसंग्रहे विभजति। सत्यत्वेन तदीयसूच्यनु-सारं संग्रहसंख्याहृत्य षड्विंशतिः। (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ बुस्तोन्, खण्डः १५, सम्पा० लोकेशचन्द्रः, इण्टरनॅशनल अकादेमी ऑफ इण्डियन कल्चर, न्यू दिल्ली, १९६६, पृ० ४७५–४८२)। भोटदेशीय आचार्यः कोण्टुलमहोदयो निवेदयति यत् कालचक्रतन्त्रस्याभिधेयं द्वात्रिंशत्संग्रहेऽशीतिस्थाने च संविभक्तमस्ति। तत्र द्वात्रिंशल्लक्षणाशीत्यनुव्यञ्जनशोधनं प्रयोजनम्। (द्र०–शेस्-ज्य कुन्-ख्यब् म्जोद्, मि रिग्स् द्पे स्क्रुन् खङ्, भोटदेशः, १९८२, पृ० ४९६–४९७), कालचक्रस्य विषयाणां संक्षिप्तवर्णनार्थं द्र०–ए० वेमन्, उपरिनिर्दिष्टम्, पृ० २८६–२८९; वि० बॅनर्जी, उपरिनिर्दिष्टम्, भूमिका, पृ० xvii–xx; वङ्छुक् दोर्जे नेगी, अद्वयतन्त्र की विषयवस्तु एवं साधना (हिन्दी), 'धीः' xv, १९९३, पृ० १३९–१४०।

३. मण्डलवर्तनम्; होमविधिः।

४. कुण्डलक्षणम्; होमविधिः; तदुत्तरविधिश्च; मण्डलप्रवेशः; लौकिकाभिषेकः।

५. देवताप्रतिष्ठाविधिः; उत्तराभिषेकः; देवतागणचक्रपूजाविधिः; योगचर्या।

६. षट्त्रिंशद्देवतानां मुद्राबन्धाः, दृष्टिसङ्केताः; योगियोगिनीनां परस्परगुह्यसंज्ञापनार्थं गुह्यसंकेताः (छोमकाः); मण्डलविसर्जनम्; दानम्; मण्डलरजसः शुद्धनद्यां वाहनम्; भिक्षु-भिक्षुणी-प्रभृतीनां भोजनम्।

चतुर्थं पटलम्—

१. वज्रिणः साधनविषये सुचन्द्रस्याध्येषणा भगवतश्च प्रतिवचनम्; साधनार्थं स्थानानि; वक्त्रशुद्धयादिविधिः; पापदेशना; पुण्यानुमोदना; शून्यतालक्षणम्।

२. उत्पत्तिक्रमेण कायनिष्पत्तिः।

३. प्राणदेवतोत्पादः।

४. उत्पन्नक्रमः; षडङ्गयोगः; मण्डलराजाग्री-कर्मराजाग्री-बिन्दुयोग-सूक्ष्मयोगाख्यं चतुर्विधं साधनम्।

५. नानासाधनानि; अष्टमहासिद्धिसाधनम्; वैदिकयज्ञवेदान्तदर्शननिर्देशः; गुह्यतत्त्व-ज्ञानम्; षडङ्गयोगः; दानादिपुण्यसम्भारः; प्रत्यक्षपरोक्षचित्तभावना।

संस्करण उपयोजिता हस्तलेखाः

विमलप्रभायाः प्रथमखण्डस्य संस्करणे ये षड् हस्तलेखा उपयोजिता आसन्, त एवैतत्संस्करण उपयोजिताः सन्ति। ततोऽधिकमेको हस्तलेखो बडोदरास्थित-ओरिएण्टल-इन्स्टिटयूटतः पश्चात् समासादितः (क्र० १३२१८)। सोऽस्मिन् संस्करणे 'छ' इत्यक्षरसंकेतेन निर्दिष्टोऽस्ति। भोटीय-तञ्जुर-विभागस्य देर्गेसंस्करणमपि परिशोलितमस्ति (खण्डः ४०, ग्रन्थसङ्ख्या १३४७, धर्म पब्लिशर्स, यु.एस.ए., १९८१)। तस्य परिचयविस्तरो विमलप्रभायाः प्रथमे खण्डे द्रष्टव्यः (पृ० xxxi)।

प्रस्तुतसंस्करणार्थं वयं नैकाभ्यो ग्रन्थशालाभ्यः परिसंस्थाभ्यश्च हस्तलेख-सम्भारान् प्राप्नुवाम। वयं तैर्ग्रन्थशालाध्यक्षैः परिसंस्थाधिकारिभिश्च नितरा-मनुगृहीताः स्मः। अस्य संस्थानस्य भोट-संस्कृत-कोश-प्रकल्पस्य प्रमुखः कोशसम्पादकश्च श्री-जितासेन-नेगी-महोदयः स्वीये नेपालयात्राप्रसङ्गे हस्तलेखस्यैकस्य प्रतिलिपिं कृत्वा कारुणिकतयाऽस्मभ्यं प्रदत्तवान्। स हस्तलेखः 'क' इत्यक्षरसङ्केतेन निर्दिष्टोऽस्ति। ग्रन्थस्यास्य भोटानुवादगतपाठसंकलनार्थं श्री-पेम्पा-दोर्जेमहोदयः साहाय्यमकरोत्। एतदर्थमुभावपि तावस्मद्धन्यवादानर्हतः।

संस्करणमेतद् विदुषामभिमतं स्यादित्याशास्महे, तेषां चाभिप्रायान् सूचनाश्च प्रतीक्षामहे।

सम्पादकाः

PREFACE

The present edition of the second volume of the *Vimalaprabhā* (VP) comprises the commentary on the third and the fourth *Paṭala*s of the *Kālacakra Tantra* (KT), namely, the *Abhiṣekapaṭala* and the *Sādhanāpaṭala*[1]. The entire text of the KT is divided into five *Paṭala*s containing 1047 verses[2] in the *Sragdharā* metre.

The full title of the text, as found in its Tibetan Translation is: *Paramādibuddhoddhṛta-śrī-kālacakra-nāma-tantrarāja* (sDe dGe, Toh. Nos. 362, 1346). The Tibetan and the Sanskrit texts edited by Raghu Vira and Lokesh Chandra have the same titles. The Sanskrit texts edited by Raghu Vira-Lokesh Chandra and B. Banerjee have the following colophons :

1. *iti śrīmadādibuddhoddhṛte śrīkālacakre* (at the end of *Paṭala*s I-IV) (Variants : at the end of *Paṭala*s III and IV : the edition of Raghu Vira-Lokesh Chandra-*kālacakre*; Banerjee's edition–*śrīmahākālacakre*).
2. *iti dvādaśasāhasrādibuddhoddhṛte śrīmati kālacakre* (at the end of *Paṭala* V).

(Variants : Banerjee's edition—*dvādaśasāhasrikādi*; *śrīmahākālacakre*).

The VP informs us that there existed the original tantra (*Mūlatantra*), entitled *Paramādibuddha*, which had 12,000 verses in the *anuṣṭubh* metre (VP,

---

1. The edition of the Sanskrit text prepared by (i) Raghu Vira and Lokesh Chandra (International Academy of Indian Culture, New Delhi, 1966) and (ii) Biswanath Banerjee (The Asiatic Society, Calcutta, 1985) have the name *Sādhana*. The colophon at the end of *Paṭala* IV in Banerjee's edition has a variant *Sādhanā*. The VP, in the section on the "instructions into the Tantra" (*tantradeśanoddeśa*) enumerates the five *Paṭala*s, where it mentions the fourth *Paṭala* as *Sādhana* (VP, Vol. I, p. 12, line 12). While giving the contents of the five *Paṭala*s, it designates it as *Sādhanā* (Vol. I, p. 14, lines 7 and 13). The title *Sādhanāpaṭala* is given in the present edition on the basis of the commentary on that *Paṭala* (p. 149, line 18) and the colophons at the end of the *Mahoddeśa*s, most of which have the reading *Sādhanā*.

2. The VP informs that the *Śrītantra* (i. e., the *Laghutantra*) consists of 1030 verses in the *Sragdharā* metre (see VP, Vol. I, p. 25, line 6). Cf. also Banerjee, op. cit., Intro., p. iii.

Vol. I, p. 18, lines 1 and 2). The entire work was never translated into Tibetan, Chinese or Mongolian and the Sanskrit original has been lost. We have some fragments of the *Mūlatantra*, one of which is presumably the *Sekoddeśa*[1], and the others being the quotations found in various works, e. g., *Vimalaprabhā*, Naḍapāda's *Sekoddeśaṭīkā*, *Caryāgītikoṣavyākhya*, *Dohākoṣavyākhyā*, *Tattvajñānasaṁsiddhiṭīkā* etc., under the titles—*Mūlatantra*, *Ādibuddha* or *Paramādibuddha*[2]. The *Laghutantra*, which we shall hereafter refer to as the *Kālacakra Tantra*, probably follows the same order of *Paṭala*s as existed in the *Mūlatantra*.

The five *Paṭala*s of the KT seem to have been arranged with a specific purpose. The first two *Paṭala*s describe the two realms, namely, the 'receptacle realm' (*bhājanaloka*) and the 'sentient realm' (*sattvaloka*) respectively. The third *Paṭala* describes initiation (*abhiṣeka*) which aims at the purification of the sentient (*sattvaśodhana*). The fourth one describes the practice (*sādhanā*) which includes, among other rites, the meditation upon the *maṇḍala* and leads the aspirant to the accomplishment

---

1. For the discussion on the relation of the *Sekoddeśa* to the *Mūlatantra*, see, John Newman, "The *Paramādibuddha* (The *Kālacakra Mūlatantra*) and its relation to the early *Kālacakra* Literature", *Indo-Iranian Journal* 30(2), 1987, pp. 93–102. He indicates the existence of a Sanskrit text (on p. 102) but unfortunately does not give the details of the same. H. P. Shastri, in his *Catalogue of Palm leaf and Selected Paper MSs in the Durbar Library, Nepal.*, Vol. II, Calcutta, 1915, quotes a metrical portion from a page of an unknown work, put in as the first page of *Yogaratnamālā* which treats of *Seka* (pp. 44–45). This portion is undoubtedly the beginning of the *Sekoddeśa*. The text is corrupt, but could easily be emended with the help of Naḍapāda's *Sekoddeśaṭīkā* and the Tibetan translations. For a corrected text and detailed discussion, see, S. S. Bahulkar. "Fragments of the *Sekoddeśa*", *Dhīḥ* XVII (1994), pp. 149–154.

2. For the quotations from this work, see, V. V. Dwivedi and Banarsi Lal (ed.), *Lupta Bauddha Vacana Saṁgraha* Part-I, Rare Buddhist Texts Series No. 6, Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, 1990. In his article, "Second Search of Sanskrit Palm-leaf MSs in Tibet" (*JBORS* Vol. XXIII (1), 1937), Rahul Sankrityayan gives a list of MSs which he noticed in the Sha Lu monastery, in which is found a title *Ādibuddha* etc. (No. 270, p. 40). The MS. has 5 leaves and is incomplete. This may be a portion from the lost *Mūlatantra*.

of the mundane *siddhis*. The fifth *Paṭala* describes the supreme imperishable knowledge (*paramākṣarajñāna*)[1].

The contents of the five *Paṭalas* have been divided into 32 sections (*saṁgrahas*, the first 8 being called *uddeśa* and the rest, *mahoddeśa*) and 81 topics (*sthāna*) which, according to the VP, stand as the nature of the Lord (VP, Vol. I, pp. 12-14).[2]

The arrangement of the sections, topics and verses in the five *Paṭalas* is as follows :

Paṭala	*Saṁgrahas*	*Sthānas*	*Ślokas*
1. *Lokadhātupaṭala*	10	24	169
2. *Adhyātmapaṭala*	7	18	180
3. *Abhiṣekapaṭala*	6	12	203
4. *Sādhanāpaṭala*	5	7	234
5. *Jñānapaṭala*	4	20	261
	32	81	1047

The contents of the third and the fourth *Paṭalas*, contained in the present Volume, may be presented below :

Paṭala III

1. Sucandra's request to give instructions into the *maṇḍala* and the reply of the Lord; examination of the good and bad teacher; examination of the best, the middle and the low disciple; characteristics of the site for the performance of initiation; the directions to which the *śāntika* and other rites are to be performed; the characteristics of the hearths (*kuṇḍa*) for the *śāntika* and other rites; nails (*kīlaka*) for 'nailing' the evil spirits to the ground; characteristics of the flasks (*ghaṭa*); inauspicious time for *śāntika* and *pauṣṭika* rites; directions to which the master's seat is to be arranged; rules for spreading the coloured powder (*rajovidhi*); characteristics of the deity, the string (*sūtra*) and the chaplet (*akṣasūtra*); drawing the diagram (*yantra*).
2. Rites for the protection of the master; generation of the *Krodha* deities in the protective circle (*rakṣācakra*); invocation to the earth for purifying the site; auspicious days for purifying the site; protection of the disciples and others.
3. The procedure of drawing the *maṇḍala*; the ritual of burnt offerings (*homa*).
4. Characteristics of the hearths (*kuṇḍa*); the ritual of burnt offerings (*homa*) and subsequent rites; entering the *maṇḍala*; mundane initiations (*laukikābhiṣeka*).
5. Consecration of deities (*pratiṣṭhā*); the further initiations (*uttarābhiṣeka*); worship of the troupe of deities (*gaṇacakra*); rules of the conduct for the Yogin.
6. Various hand-gestures symbolizing the thirty-six deities; the eye-signs representing various intentions and feelings (*dṛṣṭisaṁketa*); the secret signs (*chomaka*) to be used by the Yogins and Yoginīs for secret communication; concluding rites of the *maṇḍala*; gifts; putting the powder used for drawing the *maṇḍala* into the river; feeding the *Bhikṣus*, *Bhikṣuṇīs* and others.

Paṭala IV

1. Sucandra's request to give instructions into the meditation of the Lord and the reply of the Lord; places for meditation; purification of the mouth etc; confession of sin; admiration of merit; characteristics of *śūnyatā*.
2. Generation of the body in the stage of generation (*utpattikrama*).
3. Generation of the life and the deity.
4. Stage of Completion (*utpannakrama*); the six-fold Yoga (*ṣaḍaṅgayoga*); four types of meditation, namely, *maṇḍalarājāgrī*, *karmarājāgrī*, *binduyoga* and *sūkṣmayoga*.

---

1. Cf. A. Wayman, "The Apocryphal Kālacakratantra," *Indogaku-Mikkyogaku-Kenkyu* (Studies in Indology and Tantric Buddhism). *Prof. Y. Miyasaka Felicitation Volume*, Kyoto, Japan, 1993.
2. The VP presents an outline of the subject-matter (*abhidheya*) of the KT, following in general the order of the verses. Bu-sTon divides the contents into 25 sub-titles (*saṁgraha*); in fact the total number according to his list comes to 26. (*Collected Works of Bu-sTon*, Vol. 15, ed. Lokesh Chandra, International Academy of Indian Culture, New Delhi, 1966, pp. 475-482). Koṅ sPrul, a Tibetan master, says that the subject-matter of the KT has been divided into 32 *Saṁgrahas* and 80 *sthānas*, with a view to purifying the thirty-two characteristics (*lakṣaṇa*) and the eighty minors marks (*anuvyañjana*) and gives further details (Śes-Bya Kun-Khyab mDsod, Mi Rigs dPe sKrun Khaṅ, Tibet, 1982, pp. 496-497). For the summary of the contents of the KT, See, A. Wayman, op. cit., pp. 286-289; B. Banerjee, op. cit., Intro., p. xvii-xx; Wangchuk Dorjee Negi, *Advayatantra Kī Viṣayavastu Evaṁ Sādhanāvidhi* (Hindi) "Advaya Tantras : their Subject-matter and Practices", *Dhīḥ* XV (1993), pp. 139-140.

5. Various *sādhanas*; the *sādhana* for the eight great *siddhis*; reference to the Vedic sacrifice and the *Vedānta* philosophy; the secret doctrine; the six-fold Yoga (*ṣaḍaṅga-yoga*); accumulation of merit through the gift etc; meditation characterised as the direct and indirect perception.

The MSs used for the edition

The same six MSs which had been used for the edition of the VP, Vol. I, have been used for the present edition. In addition to them, one more MS. designated in this edition as *Cha* was subsequently obtained from the Oriental Institute, Baroda (Acc. No. 13218). As regards the Tibetan translation of the VP, the sDe dGe edition of the Tibetan bStan ḥGyur (Vol. 40, text No. 1347, Dharma Publishers, U. S. A., 1981) has been used, the details of which can be seen in the edition of the VP, Vol. I (p. xxxi).

We are thankful to the authorities of the libraries and institutions from which we have obtained the MS-material for the present edition. Thanks are also due to Shri Jitasen Negi, In-charge and Editor of the Tibetan-Sanskrit Dictionary of this Institute, who made a hand-written copy of the MS- *Ka* during his visit to Nepal and kindly made it available to us; and to Shri Panpa Dorje for offering assistance in the work of collation of the Tibetan version of the text.

We sincerely hope that the present volume will be appreciated by the community of scholars and look forward to their comments and suggestions.

Editors

विषय-सूची

कालचक्रतन्त्रटीका विमलप्रभा द्वितीय भाग में प्रयुक्त संकेताक्षर

ऋ०	=	ऋग्वेद
का० च०	=	कालचक्र
का० त०	=	कालचक्रतन्त्र
गु० त०	=	गुह्यसमाजतन्त्र
गु० प०	=	गुरुपञ्चाशिका
ना० स०	=	नामसङ्गीति
म० त०	=	महामायातन्त्रम्
म० शा०	=	मध्यमकशास्त्र
वि० प्र०	=	विमलप्रभा

•

श्रीमञ्जुश्रीयशोविरचितः परमादिबुद्धोद्धृतः

श्रीलघुकालचक्रतन्त्रराजः

तस्य

वज्रकुलाभिषेकेण सर्ववर्णैककल्ककरणसमर्थेन

कल्किना श्रीपुण्डरीकेण कृता

विमलप्रभा टीका

३. अभिषेकोनाम तृतीयः पटलः

(१) वज्राचार्यादिसर्वकर्मप्रसरसाधनालक्षणमहोद्देशः

॥ नमः श्रीकालचक्राय ॥

दत्तं येन हयादिकं दशविधं दानं च दानार्थिने
पुण्यज्ञानबलेन तेन महता मारादयो ध्वंसिताः।
सिक्त्वा श्रीमति धर्मधातुविमले वागीश्वरे मण्डले
विश्वं व्याकृतमेकशास्तृविषये बुद्धाय तस्मै नमः ॥

प्रणम्यैवं त्रिकायाग्रं कालचक्रं महासुखम्।
त्रिमण्डलत्रिवज्राग्रं घोषवज्रमनक्षरम् ॥

टीकाऽभिषेकपटले मूलतन्त्रावबोधतः[1]।
लिख्यतेऽत्र मया तन्त्रे पुण्यज्ञानफलाप्तये ॥

इह श्रीमति कलापग्रामदक्षिणे[2] मलयोद्याने[2] कालचक्रमण्डलगृहपूर्वद्वारावसाने[2] महामणिरत्नमण्डपे महामणिर[3]त्नसिंहासनस्थेन यशोराज्ञा निर्मितकायेन मञ्जुश्रिया सूर्यरथाध्येषितेन तथागतव्याकृतेन परमादिबुद्धात् सुचन्द्राध्येषणार्थप्रतिपादकं लघुतन्त्रेऽभिषेकपटले प्रथमवृत्तं देशितम्। तदेव मया लोकेश्वरेण निर्मितकायेन पुण्डरीकेण तथागतव्याकृतेन मञ्जुश्रिया चोदितेन महोद्देश[4]टीकया वितन्यते देहे विश्वस्य मानमित्यादिना—

देहे विश्वस्य मानं दिननिशिसमयो माससंक्रान्तिभेदा °त्
नाडीनां सूक्ष्मसंख्या प्रकृतिषु पुरुषस्तीर्थिकानां मतं च।
वेदः(दे) कर्ता(र्त्रा)दिभेदः श्रुतमिति हि मया;मण्डलं देशनीयं !
श्रुत्वा सौचन्द्रवाक्यं प्रवदति सुगतो मण्डलं कालचक्रम् ॥१॥

इह **देहे विश्वस्य मानमि**त्यादिना **मण्डलं देशनीय**मिति पर्यन्तं सुचन्द्राध्येषणम्। ततः **श्रुत्वा सौचन्द्रवाक्यं प्रवदति सुगतो मण्डलं कालचक्रमि**त्यादि समस्ताभिषेकपटलवृत्तेषु तथागतप्रति[5]वचनं पुनरध्येषणाऽभावः पटलान्तं यावदिति। अत्र सुचन्द्र आह—इह **देहे** भगवन्! यद् भगवतोक्तमध्यात्मपटले—'**विश्वस्य मानं दिननिशिसमयं माससंक्रान्तिभेदात्**' [इत्या]दि '**वेदे**[6] **कर्त्रादिभेदः**' इति पर्यन्तं **श्रुतं मया**, सर्वं ज्ञातमित्यर्थः। तदिदानीं सत्त्वानां पुण्यज्ञानलाभाय भगवता **मण्डलं देशनीयम्** [162a] शिष्याणां सेकदानाय प्रतिमादीनां प्रतिष्ठाकरणाय दशतत्त्वसंयुक्तलौकिकसिद्धिसाध-

---

१. क. ख. छ. बोधकः। २. क. ख. छ. दक्षिण....द्यान....अवसान। ३. छ. मणिसिंहा।
४. ग. महोद्दे... [illegible]

नायाकनिष्ठभुवनपर्यन्तं लौकिक[1]सत्येनेति। परमार्थसत्येन रजोमण्डलालेखनं नास्ति, भगवतः प्रतिषेधात्। तथाह भगवान् **आदिबुद्धे**—

पातनं वज्रसूत्राणां रजसोऽपि निपातनम्।
न कुर्यान्मन्त्रतत्त्वेन कुर्वतो बोधि दुर्लभः॥ इति।

इह यदि मन्त्रतत्त्वेन, मन्त्रमिति ज्ञानम्, मनस्त्राणभूतत्वात्, तेन मन्त्रतत्त्वेन यदि महामुद्रासिद्ध्यर्थं सूत्रपातनादिकं करोति वज्राचार्यः, तदा तस्य कुर्वतो बोधि(धिः) दुर्लभा भवतीति तथागतनियमः। तेन कारणेनेदं सुचन्द्राध्येषणं लौकिकसिद्धिसाधनार्थं पुण्यसम्भारार्थम्[2], न महामुद्रासिद्धिसाधनार्थं ज्ञानसम्भारार्थमिति।

अत्र ज्ञानसाधनायापरं मण्डलत्रयं भगवतोक्तम्। तद्यथा—

कायेन्द्रियं भगश्चित्तं मण्डलं त्रिविधं भवेत्।
कायवाक्चित्तवज्राणां ना[3]परं पञ्चरङ्गिकम्[4]॥ इति।

T 367

अतो महासुखसाधनाय रजोमण्डलं न भवति, उत्तराभिषेकदानाय चेति सुचन्द्राध्येषणम्। तदेवाध्येषणावचनं **सौचन्द्रवाक्यं श्रुत्वा प्रकर्षेण वदति सुगतो मण्डलं कालचक्रं** सर्वं देशयतीत्यर्थः। सर्वं वक्ष्यमाणक्रमत इति देशकाध्येषक[5]वचनसंग्रहः॥१॥

× × ×

इदानीं वज्राचार्यपरीक्षां गुर्वाराधनाय द्वितीयवृत्तेनाह आदावित्यादिना—

आदौ संसेवनीयो गुरुरपि समयी वज्रयानाधिरूढ-
स्तत्त्वध्यायी त्वलुब्धो व्यपगतकलुषः क्षान्तिशीलोऽध्ववर्ती।
शिष्याणां मार्गदाता नरकभयहरस्तत्त्वतो ब्रह्मचारी
माराणां वज्रदण्डः स च धरणितले वज्रसत्त्वः प्रसिद्धः॥ २॥

इह मन्त्रनये प्रथमं लौकिकलोकोत्तरसिद्धिकाङ्क्षिभिः शिष्यैर्**गुरुः सेवनीयः**, तं च सम्यक् परीक्षयित्वा वज्राचार्यपरीक्षोक्तविधिना। अन्यथा परीक्षालक्षणरहितस्य गुरोराराधनेन शिष्याणां धर्मविपर्यासो भवतीति, धर्मविपर्यासान्नरकगमनं भवति। [162b]

अत आह—**आदौ संसेवनीयो गुरुरपि समयी**ति। इह समयो द्विविधो बाह्य आध्यात्मिको नेयनीतार्थेनावगन्तव्यो वक्ष्यमाणे(णः), समयोऽस्यास्तीति समयी गुरुरादौ सम्यक् प्रकारेण सेवनीयः, पुत्रकलत्रादिभिराराधनीय इत्यर्थः।

१. ग. सत्यत्वेन। २. ग. संसारार्थं। ३. क. ख. 'ना' नास्ति। ४. ख. रङ्गिकं।
५. क. ख. छ. प्रतिवचन।

वज्रयाना[1]धिरूढ इति। इह वज्रयानं सम्यक्संबुद्धयानम्, तीर्थिकश्रावकप्रत्येकबुद्धयानानामभेद्यत्वात्। वज्रं मोक्षो यायतेऽनेनेति वज्रयानम्, तस्मिन्नधिरूढो वज्रयानाधिरूढ इति। **तत्त्वध्यायी**। इह तत्त्वं द्विधा—लौकिकसिद्धिसाधकं[2] सम्यक्संबुद्धत्वसाधक[3]मिति वक्ष्यमाणे वक्तव्यं परमाक्षरज्ञानसिद्धौ पञ्चमे [4]ज्ञानपटले। तदेव तत्त्वं ध्यातुं शीलमस्येत्यर्थः। **अलुब्ध** इति सर्वपुत्रकलत्रादिस्वशरीरनिरपेक्ष इति। **व्यपगतकलुष** इति। रागद्वेषमोहमानेर्ष्यामात्सर्यसमूहः कलुषम्, तदेव विविधप्रकारेणापगतं यस्य स व्यपगतकलुष इति। **क्षान्तिशील** इति। क्षान्तौ फलनिरपेक्षा स्वाभाविकी प्रवृत्तिरस्य। **अध्ववर्ती**[5], अध्वा[6] सम्यक्सम्बुद्धमार्गः, तत्र [7]वर्तत इति। असौ गुरुराराधितः सन् **शिष्याणां मार्गदाता नरकभयहरो** भवति। **तत्त्वतो ब्रह्मचारी** यः परमाक्षरसुखप्राप्तो **माराणां** स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रमाराणां चतुर्णां **वज्रदण्ड** इव वज्रदण्डः। **स च धरणितले वज्रसत्त्वः प्रसिद्धो** निर्मितकायेनेति वज्राचार्यसेवानियमः॥ २॥

इदानीं दुष्टाचार्यदोषपरीक्षार्थमिह तृतीयवृत्तेनैवाह मानीत्यादिना—

मानी क्रोधाभिभूतः समयविरहितो द्रव्यलुब्धोऽश्रुतश्च
शिष्याणां वञ्चनार्थी परमसुखपदे नष्टचित्तो न सिक्तः।
भोगासक्तः प्रमत्तः सकटुकवचनः कामुकश्चेन्द्रियार्थं
शिष्यैः सम्बोधिहेतोर्नरकमिव बुधैर्वर्जनीयः स एव॥ ३॥

इह मन्त्रनये मानादिदोषसहितो गुरुर्यः स गुरुः शिष्यै**र्वर्जनीयः**, कृतोऽपि गुरुः सम्यक्**सम्बोधिहेतोर्नरकमिव बुधैः** पण्डितैरिति। मानोऽस्यास्तीति **मानी**। मानोऽप्यनेकधा—पण्डिताभिमानः, द्रव्यैश्वर्याभिमानः, दशतत्त्वपरिज्ञानमार्गरूपाद्यभिमानः, स यस्यास्ति [163a] स वर्जनीयः। अधोऽधः[8] सत्त्वान् पश्यन्निति मानी, उत्तमोत्तमसत्त्वान् पश्यन् मानरहितो भवति सम्यक्मार्गवेत्तेति, तेन मानी करुणारहितो वर्जनीयः, तथा **क्रोधेनाभिभूतः**। **समयविरहित** इति लोकजुगुप्सितैर्गुह्य[9]समयैः प्रकटेना[10]चरितैः समयविरहितो भवति, सोऽपि वर्जनीयः। **द्रव्यलुब्धोऽपि** सांघिकस्तौपिकादिगुरुद्रव्योपभोक्ता द्रव्यलुब्धः, तथा संसारभोगार्थं द्रव्यसञ्चयकारक इति। **अश्रुतश्च** इति मूर्खः सन्मार्गोपदेशरहित इति। तथा स**च्छिष्याणां वञ्चनार्थी**[11] मिथ्यावादीति वर्जनीयः। **परमसुखपदे नष्टचित्तो न सिक्त** इति। अभिषेकं विना तन्त्रदेशक इति वर्जनीयः। **भोगासक्तो** बाह्यसांसारिकभोगेषु आ समन्तात् प्रकारेण संसक्त इति। **प्रमत्तो** मद्य-

१. क. ख. छ. भिरूढः। २-३. क. ख. छ. साधनम्। ४. ग. 'ज्ञान' नास्ति।
५. भो. Ses Pa (इति)। ६. क. ख. छ. अब्व। ७. ग. वर्तनशील।
८. क. ख. अबोधः। ९. ग. गुंस। १०. ग. नापि। ११. ग. वचनार्थी।

पानेन, वर्जनीयोऽसमाहित इत्यर्थः। **कामुकश्चेन्द्रियार्थ**मिति द्वीन्द्रियसुखार्थं कामुकश्च वर्जनीय इति तथागतनियमः।

ननु मन्त्रनये [1]तथागतेनोक्तम्। तद्यथा—

आचार्यस्य गुणा ग्राह्या दोषा नैव कदाचन।
गुणग्रहणाद्भवेत् सिद्धिर्न सिद्धि[2]र्दोषवाक्यतः॥ इति।

तथा—

अभिषेकाग्रलब्धो हि वज्राचार्यस्तथागतैः।
दशदिग्लोकधातुस्थैस्त्रैकाल्यमेत्य[3] वन्द्यते॥ (गु० प० 2) इति।

तस्मादाचार्यस्य गुणा ग्राह्याः, इहानागतेऽध्वनि यद् वक्तव्यं बालजनैः सन्मार्गनष्टैराचार्यस्य गुणा ग्राह्या इति केषाञ्चिद् मार्गनष्टानां वचनं भविष्यति, तस्मादुच्यते दोषा नैव कदाचनेति। तन्न, कुतः? यतो गुर्वाराधनायाचार्यस्य दोषगुणपरीक्षा तथागतेनोक्ता। तद्यथा—

निष्कृपं क्रोधनं क्रूरं स्तब्धं लुब्धमसंयतम्।
[4]स्वोत्कर्षणं च नो कुर्याद् गुरुं शिष्यः सुबुद्धिमान्॥ (गु० प० 7) इति।

अतो वचनात् कृतोऽपि गुरुरकार्यकारी शिष्येण मोक्षार्थिना **वर्जनीय एव**। तथा **आदिबुद्धे**—

यो गृही मठिकाभोक्ता सेवको लाङ्गली[5] वणिक्।
[6]सद्धर्मविक्रयी मूर्खो न स वज्रधरो भुवि॥ इत्यादिना।

त्रिविधो गुरु**राचार्यपरीक्षाया**मुक्तः—

दशतत्त्वपरिज्ञानात् त्रयाणां भिक्षुरुत्तमः।
मध्यमः श्रामणेराख्यो गृहस्थस्त्वधमस्तयोः॥ इति।

तथा—

न कर्तव्यो गुरू राज्ञा भूमिलाभं विना गृही।
तत्र श्रुतपरिज्ञानैर्लिङ्गी कर्तव्य एव यः॥
भूमिलाभं विनाऽऽचार्यो गृहस्थः पूज्यते यदा।
तदा बुद्धश्च धर्मश्च संघो गच्छत्यगौरवम्॥

१. भो. De bŚin gŚ-gs Pas gSuṅ Pa Ma Yin Nam (किं तथागतेन नोक्तम्?)। २. ग. न सिद्धिरित्यंशो नास्ति। ३. क. 'एव' इत्यधिकः पाठः। ४. क. सो, गु. 'स्वोत्कर्षकं च नो कुर्याद् गुरुं शिष्यं च बुद्धिमान्' इति पाठः। ५. ग. शेवलोकाङ्गली। ६. ग. स धर्मं।

तथा—

विहारादेः प्रतिष्ठाद्यं कर्तव्यं लिङ्गिना सदा।
सत्सु त्रिष्वेकदेशे च न गृहिणा श्वेतवासिना॥ इति।

एवमनेकप्रकारेणा**चार्यपरीक्षायां** भगवतोक्तो गुरुः शिष्यै[163b]राराधनीय इति पूर्वोक्तनियमो दोषयुक्तस्य वर्जनाय[1]।

तथा गुणा अप्युक्ताः[2]। तद्यथा—

धीरो विनीतो मतिमान् क्षमावानार्जवोऽशठः।
मन्त्रतन्त्रप्रयोगज्ञः कृपालुः शास्त्रकोविदः॥
दशतत्त्वपरिज्ञाता मण्डलालेख्यकर्मवित्[3]।
मन्त्रव्याख्याकृदाचार्यः प्रसन्नात्मा जितेन्द्रियः॥ (गु० प० 8-9) T 368

इत्यादिना। किञ्च, किं नापरगाथयोक्तवचनं विचार्यते। "अभिषेकाग्रलब्धो हि" (गु० प० 2) इत्यादिवचनं परमार्थसत्येन लौकिकसत्येन नीतार्थेन नेयार्थेनावगन्तव्यः (व्यं) पण्डितैरिति।

तत्र[4] नीतार्थस्तावदुच्यते—इह कलश-गुह्य-प्रज्ञाज्ञानाभिषेकाणामग्रतो महामुद्रा-प्रज्ञापारमिता-महाक्षरसुखक्षणानामन्तिमोऽभिसंबोधिलक्षणोऽच्छेद्यः[5], स येन भगवता [6]बोधिवृक्षमूले लब्धोऽसौ "अभिषेकाग्रलब्धः" "हि" यस्मात्तस्मात् कायवाक्चित्ताभेद्यत्वाद्वज्राचार्यः शाक्यमुनिस्तथागत इति। इह त्रैधातुके सत्त्वार्थं प्रति यस्य कायवाक्चित्तमभेद्यं वज्रवदाचरति, स वज्राचार्यः सर्वगः सर्वज्ञ एव। स च तथागतैः "दशदिग्लोकधातुस्थैः" (गु० प० 2) इति, इह दशसु दिक्षु ये बोधिसत्त्वास्तेषां मुकुटाः सप्तरत्नमया नीतार्थेन लोकधातव उच्यन्ते। तेषु मुकुटेषु ये तथागताः कुलमुद्रास्वरूपेणावस्थितास्ते दशदिग्लोकधातुस्थाः, ते च बोधिसत्त्वास्त्रैकाल्यमागत्य बुद्धभगवतो वन्दनां कुर्वन्ति। तैर्वन्दनां कुर्वद्भिर्मौलिस्थितैस्तथागतैः [7]पञ्चस्कन्धैरपि "वन्द्यते" तथागत इति भगवतो नीतार्थः।

तथोपचारेण नेयार्थ उच्यते—इह "यथा बाह्ये तथा देहे विश्वम्" इति वचनाद् लोकधातुशब्देन दशसु दिक्षु स्थितानां शिष्याणां शरीराण्युच्यन्ते। अधो भूमिगृहे स्थितानि, ऊर्ध्वे त्रिपुर[8]प्रासादादौ स्थितानि। तेषु पञ्चस्कन्धास्तथागता इत्युच्यन्ते। एवं लोकधातुस्थाः, ते च शिष्यास्त्रिसन्ध्यमागत्य गुरोर्वन्दनां कुर्वन्ति। तैर्वन्दनां कुर्वद्भिः पञ्चस्कन्धैरपि वन्द्यते गुरुरिति नेयार्थः।

१. ग. वर्जनीयः। २. ग. 'तथा गुणा अप्युक्ता' इत्यंशो नास्ति। ३. क. ख. छ. कर्मणि। ४. क. ख. छ. अत्र, भो. De La Re Sig (तत्र केचित्)। ५. ग. सुच्छेद्यः, छ. अच्छेदः। ६. क. ख. ग. छ. बोधिमूले। ७. भो. Phuṅ Po rNam 'पञ्च' नास्ति। ८. भो. Sum rTseg (त्रिपुट)।

इह त्रिकालं भिक्षुभिः काषायधारिभिर्वज्राचार्यो वन्द्यते, न गृही, न[1] नवकः सद्धर्म[2]व्याख्यानेन विना। तद्यथा—

सद्धर्मादीन् पुरस्कृत्य गृही वा नवकोऽपि वा।
वन्द्यो व्रतधरै[3]र्बुद्धया लोकावध्यान[4]हानये ॥
(गु० प० ४)

तथा—
"[5]आसनदानसमुत्थानमर्थक्रियादिगौरवम्।
सर्वमेतद्[6] व्रती कुर्यात् त्यक्त्वाऽस[7]त्कर्मवन्दनाम्[8] ॥ इति।
(गु० प० ५)

इह यदि गृही नवकोऽपि वा भिक्षुर्वज्राचार्येण तुल्यो भ[164a]वति, तदा किमसत्कर्मपादप्रक्षालनादिकं पञ्चाङ्गवन्दनां त्यक्त्वा स्वस्थाने गुरोरागतस्यार्थादिगौरवं कर्तव्यम्। व्याख्यानकाले सद्धर्मादीन् पुरस्कृत्य वन्दना कर्तव्या लोकावध्यानहानये। इह लोकावध्यानं यद् गृहस्थचेल्लकानां तत्कौशीद्यत्वेनोत्तरलिङ्गाग्रहणात् प्रातिमोक्षाश्रुतपरिज्ञानेन। यदि कौशीद्याभिमानो नास्ति, तदा किमर्थं प्राग् भिक्षुसंवरं ज्ञात्वा पश्चाद् महायानं ज्ञातव्यमिति **हेवज्रा**दिके भगवतो वाक्यं न कुर्वन्ति ? तस्माद् गृहस्थाचार्या भिक्षुभिर्नाराधनीया भिक्षौ वज्रधरे सति, राज्ञा पुनः सर्वप्रकारेण नाराधनीया इति। तथा **आचार्यपरीक्षायाम्**—

भिक्षया रक्तवस्त्रेण लज्जा यस्य दुरात्मनः।
वन्द्यः पूज्यः स रण्डानां बौद्धानां नष्टमार्गिणाम् ॥

[9]इति भवति सम्बन्धः। तथा[10]—

रक्ताम्बरं यदा दृष्ट्वा द्वेषं गच्छन्ति पापिनः।
म्लेच्छधर्मरता बौद्धास्तथा[11] श्वेताम्बरप्रियाः ॥ इति।

इह बौद्धदर्शनं[12] सर्वदा न शुक्लपटम्। [13]तथाहि मञ्जुश्रीविषये विहारे यदा भिक्षुश्चेल्लको वा पाराजिकमापद्यते, तदा शुक्लवस्त्रं दत्त्वा काषायं गृहीत्वा विहारान्निष्काश्यते[14]। वज्राचार्योऽपि मन्त्रिविहाराद् राज्ञो नियमेन। इह पुनरार्य[15]विषये कथं काषायधारिणां श्वेताम्बरधरो गृहस्थो गुर्विहारादिप्रतिष्ठाकर्ता ? महानयं परिभवः संघे, महती खल्वियं विवेकविकलता सौगतानाम्, यदमी अपराधदशापन्नानाराधयन्ति,

१. ग. 'न' नास्ति। २. ग. सधर्म। ३. क. व्रतधनैः। ४. गु. द्याव। ५. गु. सुखासनम्। ६. गु. मेव। ७. गु. चार्चनवन्दनम्। ८. छ. वन्दनाद्। ९. क. च. 'भवति' नास्ति। १०. क. ख. छ. 'तथा' नास्ति। ११. भो. De Tshe (तदा)। १२. भो. bsTan Pa (शासनं)। १३. क. ख. छ. तथा। १४. क. ख. छ निर्धार्यते। १५. भो. ḥPhags Paḥi Yul (आर्यदेशे)।

सत्यपि भिक्षुवज्रधरे। तस्मात् सर्वप्रकारेण परीक्षयित्वा गुरुः सेवनीयो दोषरहितः, दोषयुक्तो वर्जनीय इत्याचार्यपरीक्षा[1]प्रकथननियमः ॥ ३ ॥

इदानीं प्रज्ञा[2]ज्ञानाभिषेकार्थं सच्छिष्यलक्षणमुच्यते गम्भीर इत्यादिना—

गम्भीरोदारचित्तो गुरुनियमरतस्त्यागशीलो गुणज्ञो
मोक्षार्थी तन्त्रभक्तोऽप्यचपल[3]हृदयो लब्ध[4]तत्त्वेऽतिगुप्तः।
दुष्टानां सङ्गनष्टः सुनिपुणगुरुणा ग्राह्यशिष्यः स एव
प्रज्ञासेकादिहेतोरपर इति पुनर्मध्यमः पुण्यहेतोः ॥ ४ ॥

इह मन्त्रनये शिष्यो द्विधा—एको महामुद्रासिद्धिसाधनार्थी, द्वितीयो लौकिकसिद्धिसाधनार्थी। यो महामु[164b]द्रासिद्धिसाधनार्थी, स शून्यतामार्गभावनार्थं सेकेन[5] संग्राह्यः [6]कलशगुह्यादिकेन। योऽसौ[7] लौकिकसिद्धिसाधनार्थी, स मन्त्रमुद्रामण्डलचक्रभावनार्थं सप्ताभिषेकेण संग्राह्यो **मध्यमः**[8] **पुण्यहेतो**रिति। अधमोऽभिषेकेण[9] संग्राह्यो न भवति, स[10] उपासक[11] शिक्षया संग्राह्य इति नियमः। इह गम्भीरोदारधर्मे शून्यताकरुणात्मके चित्तं यस्य स **गम्भीरोदारचित्त** इति शिष्योत्तमः। **गुरुनियमरत**श्चतुर्दशमूलापत्तिरहितः, दशकुशलधर्मरत इति। **त्यागशील** इति सर्वसङ्गविवर्जितो द्रव्यादिनिरपेक्षक इति। **गुणज्ञ** इति रत्नत्रये श्राद्धः। **मोक्षार्थी**ति लौकिकसिद्धिनिरपेक्षक[12] इति। [13]**तन्त्रभक्त** इति तन्त्रोक्तसंवरपरिपालक इति। **अचपलहृदय** इति। लौकिकमार्गैर्हृदयं न चाल्यते [14]यस्यासावचपलहृदय इति। **लब्धतत्त्वेऽतिगुप्त** इति लब्धे तत्त्वे यावत् स्वतोऽनु[15]भवो न[16] भवति, तावद् गुप्तोऽतिगुप्त इति। **दुष्टानां सङ्गनष्ट** इति। इह धनार्थिनो ये गृहस्थाचार्याः, तथा तपस्विनोऽप्येकपुद्गलेन मठविहारोपभोगिनस्ते दुष्टाः, तेषां सङ्गो दशाकुशलपथः, स नष्टो यस्यासौ दुष्टानां सङ्गनष्ट इति। इत्थंभूतो महाशिष्यः **सुनिपुणगुरुणा** तत्त्वविदा **प्रज्ञा**[ज्ञान][17]**सेकादिहेतोः** संग्राह्यः। आदिशब्दाच्चतुर्थाभिषेकहेतोः स एव। **अपरो** मध्यमः [18]**पुनः पुण्यहेतोः** संग्राह्यो मध्यमगुणैर्युक्तः सप्ताभिषेकहेतोः। अधमः पुनः पञ्चशिक्षापदहेतोः संग्राह्यो यदि गुर्वाराधनं करोति, न विहेठयतीति भगवतो[19] नियमः। इति शिष्यपरीक्षानियमः ॥४॥

१. ग. 'प्र' नास्ति। २. भो. ज्ञानाद्यभि। ३. मु. चलित। ४. मु. तत्त्वो। ५. ग. सेवकेन। ६. क. ख. ग. छ. सकलगुह्य। ७. ग. 'असौ' नास्ति। ८. ग. मध्यमपुण्य। ९. च. षेके। १०. भो. 'स' नास्ति। ११. ग. उपासशिक्षायां। १२. ख. पेक्ष। १३. क. तत्र। १४. च. स्य सोऽच। १५. क. ख. छ. अनुभावो। १६. भो. 'न' नास्ति। १७. ग. तत्त्वविज्ञासेकादिहेतोः, क. ख. च. छ. प्रज्ञासेका। १८. च. 'पुनः' नास्ति। १९. च. वतः शिष्यपरीक्षा।

इदानीं वज्राचार्यस्य मण्डलवर्तनाया[1]भिषेकदानाय तन्त्रदेशनार्थं योगिनीनां पूजाकरणाय शुक्ल[2]पर्वनियमो भगवतोक्तो वितन्यते चैत्रान्त इत्यादिना—

चैत्रान्ते श्वेतपर्वे परहितगुरुणा मण्डलं वर्तयित्वा
देयाः सप्ताभिषेकाः कलुषमलहराः पुण्यहेतोः सुतानाम् ।
पूजा वै योगिनीनां सकलगुणनिधेर्देशनाया निमित्तं
पूजाभावेऽब्दमेकं नहि भवति गुरोर्देशना तन्त्रराजे ॥ ५ ॥

इहार्य[165a]विषये शाक्यमुनिर्भगवान् वैशाखपूर्णिमायामरुणोदयेऽभिसंबुद्धः। शुक्लप्रतिपदादिपञ्चदशकलावमाने कृष्णप्रतिपद(त्)प्रवेशे ततो धर्मचक्रं प्रवर्तयित्वा यानत्रयदेशनां कृत्वा द्वादशमे[3] मासे चैत्रपूर्णिमायां श्रीधान्यकटके धर्मधातुवागीश्वरमण्डलं षोडशकलाविभागलक्षणं तदुपरि श्रीमा(म)न्नक्षत्रमण्डलं [4]षड्विभागिकमादिवुद्धं [5]मण्डलैर्विस्फारितमि(तवानि)ति। कथं नक्षत्रमण्डल[6]मिति ज्ञायते ? उच्यते—इह चैत्यबाह्ये येना[7]ष्टाविंशन्नक्षत्रविशुद्धया अष्टा[8]विंशत्स्तम्भाश्चतुर्षु दिशासु सप्तशलाकाभेदेना[9]वरोपिताः—पूर्वे विष्णुनाऽनीताः[10], दक्षिणे कार्तिकेयेन, पश्चिमे ब्रह्मणा, उत्तरे शङ्करेणानीता[11]इति। तेन चैत्यबाह्ये नक्षत्रविभक्तेन चैत्यगर्भमण्डलं श्रीमा(म)न्नक्षत्रमण्डलमिति। एवं चतुर्विंशतिकक्षपक्षकलाभेदेनापरं पातालमण्डलं षोडशविभागिकं कायवाक्चित्तमण्डलात्मकं षोडशशून्यताकरुणाविशुद्धया। इति मण्डलस्थाननियमः।

तत्र स्थाने तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवासुरादयो बुद्धत्वे व्याकृतास्तथागतेनानागतेऽध्वनि। तेनास्यां पूर्णिमायां तथागतनियमः कालचक्रे वज्राचार्याणां बभूवेति।

चैत्रान्ते श्वेतपर्वे परहितगुरुणा मण्डलं वर्तयित्वा देयाः सप्ताभिषेकाः कलुषमलहराः पुण्यहेतोः सुताना[12]मिति । इह प्रथमं सप्ताभिषेकदानप्रवृत्त्यर्थं मन्त्रजापमण्डल[13]भावनार्थम्, तेन पुण्यसंभारः, तस्मात् पुण्यसम्भारहेतोः सप्ताभिषेका देया इति[14], अहिंसादिपञ्चविंशद्व्रतानि देयानि[15] ततो ज्ञानसम्भारार्थमुत्तराभिषेकत्रयं देयम्। स्वमांसा[16]दीष्टतरदाना[17]द्यर्थं सर्वाकारवरोपेतशून्यताभावनार्थं बोधिचित्ता-

---

१. ग. वर्तमानाय। २. ग. शुक्र। ३. ग. द्वादशे। ४. भो. Cha bCu Drug Gi rNam Par Dbye Ba (षोडशकलावि०)। ५. क. ख. ग. च. 'मण्डलैः' नास्ति। ६. ग. च. मण्डलमिदं। ७ ८. क. च. अष्टविंशत्। ९. क. वरोपेताः, ग. च. नारोपिता। १०. ११. क. छ. अतीताः। १२. क. सुगतानाम्। १३. क. ख च. छ. मण्डलचक्रस्य। १४. च. 'इति' नास्ति। १५. ग. व्रतादिनेयानि। १६. ख. दि। १७. च. नार्थं।

[1]क्षरार्थं तेन ज्ञानसम्भारः, तस्माज्ज्ञान-सम्भारहेतोरुत्तराभिषेका देयाः, ते च[2] चतुर्थाभिषेकेण सहिताः। चतुर्थ उपदेशेन वक्तव्य इति भगवतोऽभिषेक[3]नियमः। एवं चैत्रपूर्णिमां[4] मुखतः कृत्वा द्वादशपूर्णिमासु वज्राचार्येणाभिषेका देयाः, प्रतिमादीनां प्रतिष्ठा कर्तव्या, तथान्यस्मिन्नपि दिने शुभनक्षत्रयोगसहिते कर्तव्य इति सेकादिनियमः।

इदानीं कालचक्र[5]देशनार्थं योगिनीपूजानियम उच्यते। चैत्रपूर्णिमायां मण्डलं वर्तयित्वा **योगिनीनां** खानपानादिना **पूजा** कर्तव्या, मण्डलालेखनाभावेऽपि वा **सकलगुणनिधे**स्तन्त्रराजस्य देशनार्थम्। अ[165 b]थाऽसामग्रीवशात् पूजाऽभावो भवति चैत्रपूर्णिमायाम्, **तदाब्दमेकं देशनाभावस्तन्त्रराजे गुरोर्व**ज्राचार्यस्येति। अथ **पूजाऽभावे** जाते सति कश्चिद्योग्यः शिष्यः श्रुतार्थी, तदा स द्वादशपूर्णिमासु योगिनीपूजां कृत्वा शृणो[6]तीति तस्य पुण्यसम्भारेणान्येऽपि शृण्वन्ति। इह योगिनीपूजा बाह्यविघ्नोपशमनार्थं सदाष्टम्यां चतुर्दश्यां यथाविभवतः कर्तव्या, भूतादीनां[7] प्रत्यहं बलिर्दातव्यः, बुद्धपूजामण्डलादिकं कर्तव्यमिति गृहस्थानां धनिनां नियमः। अवधूतशिष्याणां पुनः पूजानियमो नास्ति, तेभ्यो देशनां प्रति गुरोरपि नियमो नास्ति। यस्मादा[8]शयग्राहका बुद्धा वज्रयोगिन्यश्च न पूजादिवस्तुग्राहका इति तन्त्रदेशना[9] पूजानियमः ॥ ५ ॥

इदानीं सेकार्थं भूम्यादिलक्षणमुच्यते—

सेकार्थं भूपरीक्षां वनपुरनिगमे ग्रामके दिग्विभागं
ज्ञात्वाचार्यः समस्तं त्वशुभशुभफले शान्तिकाद्यं प्रकुर्यात् ।
कुण्डानां लक्षणं वै सकलश(स)रजसां होमकीलादिकानां
शिष्याणां संग्रहं यत्परमजिनपतेर्मण्डलालेखनं च ॥ ६ ॥

इह वृत्ते यद् भूम्यादिकं [9]गृहीतम्, वक्ष्यमाणे वक्तव्यम्, तत् समस्तं शुभाशुभकर्मफलार्थं **शान्तिकाद्यं कुर्यादिति वज्राचार्यः शिष्याणां संग्रहं यत् मण्डलालेखनं च** ज्ञात्वा कुर्यादिति नियमः। परिज्ञानाभावात् कुर्वतो दुष्टाचार्यस्य नरकगमनं भवति, द्रव्यलोभेन परवञ्चकस्येत्याचार्यानुशासनं वृत्तम्। **सेकार्थं भूपरीक्षामित्यादि** [10]सुबोधम् ॥ ६ ॥

---

१. छ. क्षयार्थं। २. ख. च. छ. 'च' नास्ति। ३. क. छ. 'ऽभिषेक' नास्ति। ४, छ. मायां। ५. भो. Dus Kyi ḥKhor Lo rGyud (कालचक्रतन्त्र)। ६. च. शृणोति। ७. च. दीनां च। ८. छ. आत्मग्रा। ९. भो. Gaṅ sMos Pa (यदुक्तं)। १०. ग. धमिति, च. धमेव।

इदानीं भूमिलक्षणमुच्यते—

भूमेर्जातिश्चतुर्धा भवति गुणवशाच्छूद्रविड्राजविप्रा
कृष्णा पीता च रक्ता शशधरधवला वर्णतो वेदितव्या ।
पूतिक्षाराब्जगन्धा भवति वसुमतो दिव्यगन्धा क्रमेण
अम्ला क्षारा च शूद्री समधुरकटुके विड्नृपेऽन्यो द्विजातिः ॥७॥

भूमेरित्यादिना । [166a] इह लोकव्यवहारेण वस्तूनां **जातिश्चतुर्धा**, सा [1]**चतुर्वर्णतो वेदितव्या** शूद्रादिना कृष्णवर्णादिना[2] इति । अत्र लोकसंवृत्या **कृष्ण**वर्णा भूमिः शूद्री, **पीता** वैश्या, **रक्ता** क्षत्रिणी, **श्वेता** ब्राह्मणो जातिः । तथा गन्धतः **पूतिग**न्धा शूद्री, **क्षार**गन्धा वैश्या, **पद्मगन्धा** क्षत्रिणी, **दिव्यगन्धा** ब्राह्मणी जातिः **क्रमेण** । तथा रसतः **अम्लक्षारा**स्वादेन **शूद्री**, [3]**समधुरकटुके**ति मधुरास्वादेन **विड्**जातिः कटुकास्वादेन **नृप** इति क्षत्रिणी, **अन्यो** रसस्तिक्तः कषायो [4]**द्विजाति**रिति स्वादतो जातिनियमः ॥ ७ ॥

इदानीं शान्त्याद्यर्थं भूमिमाह—

श्वेता शान्तौ च पुष्टौ भवति घननिभा मारणोच्चाटने च
रक्ताकृष्टौ च वश्ये वरकनकनिभा स्तम्भने मोहने च ।
सर्वस्मिन् कर्मभागे भवति हि हरिता पञ्चमी चान्त्यजातिः
सर्वस्वादा च गन्धा सकलगुणनिधिर्योगिना वेदितव्या ॥ ८ ॥

श्वेतेत्यादि । इह शान्तिके **श्वेता** भूमिः **पुष्टौ** च, **कृष्ण**वर्णा **मारणे उच्चाटने** च, **रक्ता आकृष्टौ वश्ये च**, पीता **स्तम्भने मोहने** स्यादिति । **च**कारान्निर्विषादिकेऽपि यथाक्रमेण नियमः । इह **सर्वस्मिन् कर्मभागे हरिता** भूमिः सर्वकर्मकरी भवति । **पञ्चमी चान्त्यजातिः । सर्वस्वादा** सर्व**गन्धा सकलगुणनिधिः** साकाशधातुलक्षणा **योगिना वेदितव्ये**ति भूमिलक्षणनियमः । इह यदीदृशो भूमि[5]लक्षणनियमः शान्तिकाद्यर्थं तदा न सर्वत्र वनपुरादिदिग्विभागेष्वेभिर्लक्षणैर्युक्ता भूमिर्भवति, तेन **मूलतन्त्रे भगवतोक्तम्**—इह यत्र मण्डलादिकर्म कर्तव्यं तत्र यदि कर्मानुरूपतो भूमिर्न भवति, तदा [6]खानि खनित्वा उदकान्तं शिलान्तं वा खनेत्, ततोऽपरमृत्तिकया [7]खानि पूरयेत् कर्मानुरूपतः । अत्र [8]भूगन्धार्थं श्वेतमृत्तिकां चन्दनोदकेन भावयेत्, रक्तमृत्तिकां पद्मोदकेन रक्तचन्द[166b]नोदकेन भावयेत्, पीतमृत्तिकां खराश्वमनुष्यमूत्रेण भावयेत् । कृष्णमृत्तिकां पूतिमांस-

१. ग. च. सा च वर्णतो । २. च. 'वेदितव्या' इत्यधिकम् । ३. छ. अमधुर । ४. ग. च. द्विजजाति । ५. च. 'लक्षण' नास्ति । ६. ७. च. खानि । ८. छ. सुगन्धा ।

तोयेन भावयेत्, रसास्वादनार्थं कृष्णायां लवणाम्बु[1] क्षेपयेत्, पीतायां गुडम्, रक्तायां त्रिकटुकम्, श्वेतायां तिक्तं कषायं चेति हरितायां सर्वकर्मकरत्वान्न किञ्चित् क्षेपणीयम् । तथा भूमिगर्भे निधापनीयम् । कृष्णायां मानुषास्थि मारणे, काकपिच्छान्यु[2]-च्चाटने, विद्वेषे खरास्थीनि, पीतायां कीलने मेषशृङ्गम्, स्तम्भने हरितालम्, मोहने [3]सर्पम्, रक्तायां वश्ये गोरोचनम्, आकृष्टौ हिङ्गुलम्, स्तोभे मनःशिलाम्, श्वेतायां शान्तौ स्फटिकम्, पुष्टौ शङ्खम्, ज्वरापहरणे दाहे मुक्ता इति । हरितायां न किञ्चिदपि क्षेपणीयमिति । अथ हरितायां साधारणं सार्वकर्मि[4]के कार्यम्, तदा पञ्चरत्नानि भूमिगर्भे निधापयेत् । श्वेतरक्तायामपि सर्वकर्मणि[5] क्रूरद्रव्याणि वर्जयेत् । सर्वकर्मशब्देन शान्तिकादिवश्यादिषट्कर्माणि, न मारणादिकीलनादि[6]षडिति भूमिपरीक्षाक्रियानियमः ॥ ८ ॥

इदानीं शान्तिकाद्यर्थं दिग्विभाग उच्यते—

ऐशान्यां चोत्तरे वै भवति भुवितले शान्तिकं पौष्टिकं च
आग्नेय्यां पूर्वभागे प्रकटितनियतं मारणोच्चाटनं च ।
नैऋंत्यां दक्षिणे च स्फुटमपि सततं वश्यमाकर्षणं च
वायव्यां पश्चिमे वै परमनरपते स्तम्भनं मोहनं च ॥ ९ ॥

ऐशान्यामित्यादिना । इह सामान्यग्रामे ग्रामबाह्ये **ऐशान्यां शान्तिकं** [7]**पौष्टिकं** ज्वरापहरणं वा कुर्यादु**त्तरे**ऽपि वा । महाराजधान्यां[8] पुनरष्टदिक्षु शवदहनादिश्मशानाष्टकम्, तेन शान्तिकं पौष्टिकं न सिध्यति । तेन राजगृहस्य ऐशान्यामुत्तरेण वा शान्तिकं पौष्टिकं[9] कर्तव्यम् । शेषकर्माणि ग्रामवद् बाह्ये राजधान्यामिति शान्तिपुष्टिकर्मनियमः । **तथाग्नेय्यां मारणम्**, **पूर्वे** विद्वेषो**च्चाटनम्**, **नैऋंत्यां वश्यम्**, **दक्षिणे आकृष्टिः** स्तोभनम्[10], **वायव्यां मोहनम्**, **पश्चिमे स्तम्भनं** कीलनं चेति । ग्राममध्ये सार्वकर्मिक-मण्डलं कुण्डं होमं च कुर्यान्मन्त्रीति दिग्भागे कर्मकरणनियमः ॥ ९ ॥ (167a)

इदानीं शान्त्यादिकुण्डमुच्यते—

कुण्डं ग्रामाष्टदिक्षु प्रभवति नियतं वर्तुलं चाब्धिकोणं
अर्द्धेन्दुं पञ्चकोणं प्रकृतिगुणवशात् सप्तकोणं त्रिकोणम् ।

१. भो. sKyur Ba (अम्लं) । २. क. ख. छ. च्छोच्चा० । ३. क. ख. सर्पं । ४. च. कर्मिकं, छ. कर्णिके । ५. च. कर्माणि । ६. ग. 'कीलनादि' नास्ति । ७. छ. 'पौष्टिकं', भो. 'ज्वरापहरणं' नास्ति । ८. क. ख. छ. वान्यां । ९. च. कं वा । १०. च. 'स्तम्भनम्', ग. 'शोभनम्' इत्यधिकः पाठः ।

षट्कोणं चाष्टकोणं भवति कुलवशात् गर्भचिह्नं च तेषां
पद्मं चक्रं च कर्त्री त्वसिरिषुरिति वज्राङ्कुशः शृङ्खलाऽहिः ॥१०॥

कुण्डं प्रामाष्टदिक्षु ऐशान्यादिषु यथाक्रमेण शान्तौ **वर्तुलं** कुण्डम्, पुष्टौ चतुरस्रम्, मारणे **धनुराकारम्** विद्वेषे **पञ्चकोणम्**, वश्ये **सप्तकोणम्**[1], आकृष्टौ **त्रिकोणम्**, मोहने **षट्कोणम्**, स्तम्भने **चाष्टकोण**मिति। एषां लक्षणं च[2] वक्ष्यमाणे होमविधौ विस्तरेण वक्तव्यमिति।

इदानीं कुण्डचिह्नमुच्यते—इह वृत्तकुण्ड[3]कमलकर्णिकायां **चिह्नं पद्मम्**, चतुरस्रे चक्रम्, धनुराकारे **कर्त्री**, पञ्चकोणे **खड्गः**, [4]सप्तकोणे **बाणः**, त्रिकोणे **वज्राङ्कुशः**, षट्कोणे मोहने **सर्पः**, अष्टकोणे **शृङ्खलेति**[5]। अत्र कुण्डद्वये चिह्नविपर्यासश्छन्दोवशादिति चिह्ननियमः ॥ १० ॥

एषां प्रमाणमाह—

एकद्व्यर्द्धैकहस्तं खयुगखनयनं खाग्नि खत्वंङ्गुलं स्या-
दर्धाङ्गा षड्विभागाद्वरुणरविविभागेन खानिश्च वेदी।
ओष्ठाश्चिह्नावली स्यादुपरि कुलवशाद्वेदिकायाः समन्ता-
द्वेदीबाह्येऽब्जपत्राण्यपि कुरु नृपते शान्तिपुष्ट्योर्न चान्ये ॥ ११ ॥

एकेत्यादि। **एकहस्तं** वृत्तम्, **द्विहस्तं** चतुरस्रम्, **अर्द्धहस्तं** धनुराकारम्, वृत्तप्रमाणं पञ्चकोणम्, **चत्वारिंशदङ्गुलं** सप्तकोणम्। **विंशत्यङ्गुलं** त्रिकोणम्, षट्कोणं **त्रिंशदङ्गुलम्**, **षष्ट्यङ्गुल**मष्टकोणम्, कुण्डा**र्द्धमाना खानिः**, कुण्डे[6] **षड्विभागिका वेदिः**, कुण्डद्वादशभागिक**मोष्ठम्**, **चिह्नावली** च वेद्याः समम्, तद्बाह्येऽब्जपत्राणि **शान्तिपुष्ट्योः**, शेषक[7]र्मणि **वेदीबाह्ये**ऽन्यदन्यद्वक्ष्यते। वज्रं वा चिह्नं सर्वकर्मणि कुण्डमध्ये ज्ञातव्यम् ॥११॥ (167b)

इदानीं भूमिकीलनार्थं कीलका उच्यन्ते—

वज्रं वा सर्वकर्मस्वपि भवति महौ, कीलकं चाष्टभेदे-
न्यग्रोधाश्वत्थकास्थ्यौन्ययसखदिरजं चूतदिल्वार्कजं च।

१. भो. dBaṅ la Zur gSum Pa Daṅ dGug Pa La Zur bDun Pa (वश्ये त्रिकोणं आकृष्टौ सप्तकोणम्)। २. ख. ग. च. छ. भो. 'च' नास्ति। ३. क. ख. छ. मण्डल। ४. भो. mDaḥ Daṅ Zur bDun Pa La rDo rJe lCags Kyu Daṅ (त्रिकोणे बाणः, सप्तकोणे वज्राङ्कुशः)। ५. ग. शृङ्खलेनेति। ६. ग. च. कुण्ड। ७. क. ख. छ. कर्माणि।

एवं स्फाटिक्यकुम्भा वररजतमयाः श्रीकपालायसाश्च
ताम्राख्या हेमकुम्भाः प्रकटितनियता दारुजा मृण्मयाश्च ॥ १२ ॥

इह शान्तिके **न्यग्रोध**कीलकाः, दशदिक्कीलनार्थं पुष्टौ **अश्वत्थाः**, मारणेऽ**स्थि**मयाः, उच्चाटने **आयसाः**, वश्ये [1]**खदिरजाः**, आकृष्टौ **चूतजाः**, मोहनेऽ**र्कजाः**, स्तम्भने **बिल्वजा** इति **कीलक**[2]नियमः, सार्वकर्मिके उदुम्बरजाः।

इदानीं कलशा उच्यन्ते—शान्तिके **स्फाटिककलशाः**, पुष्टौ **रौप्याः**, मारणे [3]**मानुषकपालाः**, उच्चाटने विद्वेषे[4] **आयसाः**, वश्ये **सौवर्णाः**, आकृष्टौ **ताम्राः**, स्तम्भने **मृण्मयाः**, मोहने **दारुजा** दशकलशा इति ॥ १२ ॥

अथ शान्तिपुष्ट्यर्थं घटलक्षणमुच्यते—

वृत्ता द्व्यष्टाङ्गुलोक्ता द्विगुणितदशकेनोच्छ्रिता द्व्यङ्गुलोष्ठाः
षड्ग्रीवाष्टाङ्गुलास्याः शशधरधवलाः शान्तिपुष्ट्योर्न चान्ये।
पूर्वाह्लादष्टयामाः प्रतिदिनसमये शान्तिपुष्ट्यादिके स्यु-
रेवं तत्रार्द्धयामैर्दिननिशिसमये चाष्टकर्म प्रकुर्यात् ॥ १३ ॥

इह कलशगर्भं[5]वृत्तेन [6]**द्व्यष्टाङ्गुला उक्ताः**, षोडशाङ्गुला उक्ताः। **द्विगुणितदशकेनोच्छ्रिता** इत्यधः कलशगर्भात् मुखौष्ठान्ता विंशत्यङ्गुला उच्छ्रयेणेति। **द्व्यङ्गुलोष्ठा** इति[7] द्व्यङ्गुलावोष्ठौ लम्बमानौ येषां ते द्व्यङ्गुलोष्ठा मुखादधः **षडङ्गुलग्रीवाः अष्टाङ्गुलास्याः**। ओष्ठान्तादोष्ठान्तमुखमष्टाङ्गुलम्, अष्टाङ्गुलं भागत्रयं कृत्वा भागद्वयेन कण्ठरन्ध्रं भागैकेनौष्ठद्वयायामः, ते च **शशधरधवलाः शान्तिपुष्ट्योर्न चान्ये** घटाः स्युरिति। स्फाटि[168a]क[8]रौप्यकलशानामभावे मृण्मया अकालमूलकलशाः शालिपिष्टेन चन्दनेन वा लिप्य धवलाः कर्तव्याः। तथा **मूलतन्त्रेऽपि** भगवतोक्तम्—मारणे नरकपालानि श्मशानाङ्गारचूर्णेन नरवसया लिप्य कृष्णानि कारयेद् इति। उच्चाटने विद्वेषे दीर्घग्रीवा अष्टाङ्गुलवक्त्राः[9] कृष्णाङ्गा[10] वृत्तेन द्वादशाङ्गुलाः, उच्छ्रयेण चतुर्विंशत्यङ्गुलाः, अङ्गुलैकौष्ठाः षडङ्गुलास्या इति, वश्याकर्षणे यथा शिल्पिना घटिता लोकव्यवहारेणेति, स्तम्भने खर्वा वृत्तोच्छ्रयेण तुल्याः षोडशाङ्गुलाश्चतुरङ्गुलग्रीवाः

१. च. खादिराः। २. ग. कीलन। ३. ग. च. मनुष्य। ४. भो. Daṅ dBye Ba (विभेदे च)। ५. ख. ग. च. छ. गर्भे, च. वृते। ६. ७. ख. छ. 'द्व्यष्टाङ्गुला'''द्व्यङ्गुलोष्ठा इति' नास्ति। ८. ग. स्फाटिक्य। ९. भो. ḥKhyog Po (वक्राः), च. ला वक्राः। १०. भो. Lus Phra Ba (कृशाङ्गा)।

षडङ्गुलास्याः स्थूलोष्ठा अङ्गुष्ठ[1]द्वयेनेति कलशनियमः। सर्वकर्मणि शान्त्यादिवश्यादि-कर्मण्युक्ता ग्राह्या इति नियमः।

इदानीं शान्तिकादिवेलोच्यते—**पूर्वाह्ले**त्यादिना। इह **प्रतिदिनं पूर्वाह्लादष्टयामाः** प्रहराः, तेषु पूर्वाह्लप्रहरे[2] **शान्तिकम्**, द्वितीये **पौष्टिकम्**, तृतीये मारणम्, चतुर्थे उच्चाटनम्, पञ्चमे वश्यम्, षष्ठे आकर्षणम्, सप्तमे मोहनम्, अष्टमे स्तम्भनं **कुर्या**दिति शान्तिकादिप्रहराः स्युः। **एवं तत्रार्द्धयामै**रिति पूर्वाह्लादर्द्धप्रहरे शान्तिकम्। अपरार्द्धे पौष्टिकम्, एवं सर्वत्रापि। तथा रात्रौ पूर्वार्द्धप्रहरे शान्तिकम्, अपरार्द्धे पौष्टिकमपि कर्माणि कुर्यान्मन्त्रीति। यदि वक्ष्यमाणासनं बद्ध्वा प्रहरमेकं होमं कर्तुं न शक्नोति, तदार्द्धप्रहरमेकं होमं कृत्वा साधयेदित्युभयकथनम्। **अपरः**[3] कालविशेषेण देवी[4]पूजासाधननियमः पञ्चमपटले वक्ष्यमाणे वक्तव्य इति ॥ १३ ॥

इदानीं शान्तिपुष्ट्योः क्रूरवेलालग्नप्रतिषेध उच्यते—

मध्याह्नं चार्द्धरात्रं दिननिशिसमये शान्तिके वर्जनीयं
लग्नं क्रूरग्रहस्थं मरणभयकरं तद्वदेवं प्रसिद्धम्।
सक्षीराः शान्तिपुष्ट्योः शरशतसमिधो मारणे मानुषास्थि-
विद्वेषे काकपिच्छान्यपि च खदिरजाः किंशुकाकृष्टिवश्ये ॥ १४ ॥

इह प्रतिदिने **मध्याह्नं चार्द्धरात्रं** च[5] **शान्तिके** पुष्टिकार्येऽपि **वर्जनीयम्**। तथोदितलग्नं **क्रूरग्रहस्थं** मङ्गल[168b]शनिकालाग्निग्रहसहितं वर्जितम्, यतो **मरणभयकरम्**। अथ मारणोच्चाटने तु योजनीयं **तदेवे**ति नियमः।

इदानीं शान्तिकादिषु होमसमिध उच्यन्ते—**सक्षीरे**त्यादिना। इह शान्तौ पुष्टौ सक्षीरा समिधः, **शरशते**ति पञ्चशतसंख्याः, क्षीरवृक्षाणामिति उदुम्बराश्वत्थन्यग्रोध-पर्कटीमधुवृक्षाणामिति। **मारणे मानुषास्थीनि** घटितानि कनिष्ठाङ्गुलीसंस्थानानीति पञ्चशतानि तथा **विद्वेषो**च्चाटने **काकपिच्छानि** पञ्चशतानि, एवं वश्ये **खदिरजाः**, **आकृष्टौ पलाशजाः** ॥ १४ ॥

विल्वोन्मत्तार्धहस्ताः शरशतगणना[1] स्तम्भने मोहने च
क्षीराज्यासृग्वसास्वेदकुलिशसलिलश्लेष्ममद्यादिहोमे।

---

१. च. अङ्गुल। २. ग. रेपु। ३. ग. अपर, छ. अपरं। ४. भो. Lha mChod Pa (देवपूजा)। ५. ग. च. 'च' नास्ति।

दूर्वा शस्यं च मांसं सविषमपि तथा राजिका रक्तपुष्पं
विल्वं निर्माल्यमालासुकनककुसुमान्येव पञ्चादिकेषु ॥१५॥

मोहने उन्मत्तजाः, **स्तम्भने विल्व**जा इति, **अर्द्धहस्ताः** सर्वे द्वादशाङ्गुलाः। कनिष्ठाङ्गुलीप्रमाणेनाङ्गुष्ठं यावत्। तदु[1]परि ऊनाधिका न ग्राह्या इति समिधनियमः।

इदानीं होमद्रव्याण्युच्यन्ते—**क्षीरे**त्यादि। इह शान्तिके **गोक्षीरेण दूर्वया** होमः, पुष्टौ **घृतेन** पञ्च**शस्यैः**, मारणे **रक्तेन मांसविषाभ्यां** सह, उच्चाटने विद्वेषे **नरवसया राजिका**लवणाभ्यां सह, वश्ये **स्वेदेन रक्त**करवीरादिपुष्पैः सह, आकृष्टौ **मूत्रेण विल्व**-पत्रेण तस्य फलशस्येन वा सह, स्तम्भने **श्लेष्मणा निर्माल्यमालया** सह, मोहने **मद्येन** [2]**धुत्तूरकपुष्पैः** सह, इति शान्तिकाद्येषु होमद्रव्यनियमः ॥१५॥

इदानीमाचार्यस्यासनदिग्विभाग उच्यते—

याम्ये नैर्ऋत्यकोणे सवरुणपवने यक्षरुद्रेन्द्रवह्नौ
आचार्यस्यासनं वै भवति नरपते शान्तिकर्मादिके च।
रङ्गं कर्मद्वये स्यादपि विभुकमले श्वेतकृष्णार्कपीतं
बाह्ये बुद्धप्रभेदैः सुरयमवरुणेषूत्तरे रङ्गभूमिः ॥१६॥ [169a]

इह शान्तौ **याम्ये आसनं** कर्तव्यम्, वक्ष्यमाणम्, पुष्टौ **नैर्ऋत्यकोणे**, मारणे **वरुणे**, उच्चाटने विद्वेषे **वायव्ये**, वश्ये **यक्षे**, आकृष्टा**वीशाने**, मोहने पूर्वे, स्तम्भने **अग्नि**कोणे इति होमकुण्डासननियमः **शान्तिकर्मादिके**।

इदानीं रजोविधिरुच्यते—इह शान्तिकादौ **कर्मद्वये** कुण्डे वा मण्डले वा मध्ये रजःपातो भवति। शान्तिपुष्ट्योः **श्वेतं** रजः, मारणोच्चाटनयोः **कृष्णं** रजः, वश्याकृष्टौ **रक्तम्**, मोहनस्तम्भनयोः **पीतम्**, सर्वकर्मणि हरितं श्वेतः कृष्णो रक्तो वा पीतो वा हरितसहित इति। एवं कुण्डे वा मण्डले वा **बाह्ये पूर्वे दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे बुद्धभे**देन भूम्यां रजःपातस्तन्त्रोक्तविधिना भगवतो [3]वा वक्त्र[4]वर्णभेदेनेति रङ्ग[5]पातनियमः ॥१६॥

कुण्डे वा रङ्गभूमिर्भवति कुलवशाद् रङ्गपातश्च भूमि-
न्यासाद्यं प्रोक्षणाद्यं स्वहृदयकुलिशोत्सर्जनं देवतानाम्।

तथा वक्ष्यमाणक्रमेण **न्यासाद्यं प्रोक्षणाद्यं स्वहृदयकुलिशेनोत्सर्जनं देवतानामा**चार्येण कर्तव्यमिति नियमः। इदानीमर्घपात्रलक्षणमुच्यते—

---

१. च. तदूर्ध्वं। २. छ. भो. धतूरक। ३. क. ख. 'वा' नास्ति। ४. भो. 'वर्णं' नास्ति। ५. भो. रजः।

स्फ[ा]टिक्याद्यर्घपात्रे वसुदलकमलं द्वादशाङ्गुष्ठकं च
दण्डाग्रेऽञ्जल्यपात्रं भवति च चुलुकं चाहुती होमकार्ये ॥१७॥

इह शान्तौ स्फटिकपात्रमर्घदानार्थं शरावाकृतिः, [1]कचोलाकृतीत्यर्थः। सर्वं द्वादशाङ्गुलं सकर्णिकाष्टदलात्मकम्। एवं **स्फटिकाद्यर्घपात्रे वसुदलकमलं द्वादशाङ्गुष्ठकं चेति**। अत्र चतुरङ्गुला कर्णिका, चतुरङ्गुलान्य[2]ष्टदलानि, एवं द्वादशाङ्गुलम्। तथा पुष्ट्यादिके रौप्यकपालायससुवर्णताम्रदारुमृण्मयपात्रेषु विधिरिति। तथा [3]**आहुतौ** होमार्थं पात्री श्रुवकमुच्यते। इह **दण्डाग्रे** हस्तमात्रदण्डस्याग्रे **अञ्जल्याकारपात्रं** चतुरस्रं [4]चाङ्गुलैकोच्छ्रितम्, समतले पद्मं पद्मपत्राग्रमयम्, ओष्ठाभ्यन्तरपार्श्वं बाह्ये पञ्चशूक[5]वज्रम्,मध्यशूके च्छिद्रं घृतधाराया निर्गमार्थं मूत्रशुक्रधारानिर्गमवत्। आहुती कार्ये आहुती पात्रीति हस्तमात्रदण्डादिति **मूलतन्त्रे**। हृदयकमलाद्वज्रपर्यन्तमिति नियमः। त[169b]था **दण्डाग्रे होमकार्ये चुलुकं** भवति, ऊर्णास्थानाद् हृदयं यावत्, मुखतो वा तिर्यग् विभाग[6] इति तत्रैव षडङ्गुलं पद्मं करतल[7]मानेनेति द्रव्यहोम[8]श्रुवायां दण्डपृष्ठे वज्रचिह्नमिति होमपात्र[9]नियमः ॥१७॥

इदानीं शान्त्यादौ देवतामूर्तिरुच्यते—

शान्तः क्रूरः सरागो भवति कुलवशाद् देवता स्तब्धमूर्तिः
एवं कर्मद्वये स्यात् प्रकटितनियतो मण्डले चाधिदेवः।
पञ्चाकारो जिनेन्द्रस्त्रिविधभवगतः स्कन्धधात्वादिभेदैः
पञ्चाकारं हि तस्मादपि भवति रजोमण्डले देवतानाम् ॥१८॥

इह कुण्डे अग्निदेवतामण्डले नायकश्च शान्तिपुष्टौ **शान्तः** शुक्लवर्णो भवति, मारणोच्चाटनाद्ये **क्रूरः** कृष्णवर्णः, वश्याकृष्टौ **सरागो** रक्तवर्णः, मोहनस्तम्भनाद्ये **स्तब्धः** पीतवर्ण इति देवतावर्णः शान्तिकादौ[10]। सर्वकर्मणि हरित इतीषद्धसितरागमूर्तिरिति[11] देवतानियमः।

इदानीं रजोविशुद्धिरुच्यते—**पञ्चाकार** [12]इत्यादिना। इह **जिनेन्द्रो** वज्रसत्त्वः **पञ्चाकारो** हि यस्मात् पञ्चाकारज्ञानरश्मिस्फरणात् [13]**त्रिभवगतः स्कन्धधात्वा**यतननिरावरणभेदेन, तस्मादपि पञ्चाकारं **रजोमण्डले**[14] **देवतानां भवती**ति रजोनियमः॥१८॥

---

१. ग. कचोकृला। २. भो. 'अष्ट' नास्ति। ३. ख आहुति। ४. ग. च. 'च' नास्ति। ५. ग. वज्रमध्य। ६. च. विभागत। ७ क. ख घ. छ. मानेति। ८. च. स्रुवा। ९. ग. होमद्रव्य। १०. च. काद्ये। ११. च. 'इति' नास्ति। १२. ग. च. इत्यादि। १३. क. ख. ग. च. छ. त्रिविधभगवतः, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी। १४. क. मण्डल।

इदानीं सूत्रलक्षणमुच्यते—

सूत्रं हस्ताष्टकं स्याद् भवति करयवैकेन वृत्तं त्रिवृत्तं
आचार्याङ्गुष्ठकेन त्रिविधपथगतं सूत्रमेकं न चान्यत्।
पर्यङ्कः शान्तिकादौ क्रमपरिरचितं वज्रदैत्योत्कटं च
पर्यङ्कार्धं द्विभेदं गुदगतचरणं चासनं कर्मभेदैः ॥ १९ ॥

सूत्रं हस्ताष्टकमित्यादिना। इह कन्याकर्तितसूत्रैस्त्रिगुणात्मकैरनेकैः **सूत्रं** वर्तयित्वा ततस्**त्रिवृत्तं** कारयेद् **वज्राचार्याङ्गुष्ठयव**प्रमाणेन। तदेवा**ष्टहस्त**मिति मण्डलस्य द्विगुणं चतुर्गुणं वा षोडशहस्तं यावत्, आचार्यहस्तेन सूत्रमेकं कर्तव्यम्। न चान्यद् लक्षणं मण्डले। मण्डलं सदा स्वात्मविभागेन एकहस्त[170a]मारभ्य यावत् सहस्रहस्तं तावद्भवति, तेन सूत्रनियमो मण्डलनियमश्चाचार्यहस्तेन यत्र तत्र [1]द्विगुणं सूत्रं मण्डलादिति। तत्रा**दिबुद्धे** चित्तमण्डलं द्वादशहस्तं [2]प्रकुर्यादिति नियमाच्चतुर्विंशतिहस्तं सूत्रम्। एवं वाङ्मण्डलं षोडशहस्तम्, कायमण्डलं विंशतिहस्तमिति नियमः सूत्रद्विगुणतायाः। न पुनर्हस्तसहस्रमण्डले द्विहस्तसहस्रसूत्रेण सूत्रपातोऽभिधेयोऽत्यद्भुतत्वादिति।

ननु तन्त्रान्तरे—[3]"द्वाविंशतिभागिकं सूत्रं वृत्तेन दीर्घेण मण्डलाद् द्विगुणं कथम्? वृत्तेन यवमात्रं दीर्घत्वेनाष्टहस्तकम्" इति कस्यचिद्वचनं भविष्यति? तस्मादुच्यते—इह यदि सर्वस्मिन् मण्डले [4]द्वाविंशतिभागेन वृत्तं सूत्रम्, तदा सहस्रहस्तमण्डले चक्राष्टभागिकं द्वारं पञ्चविंशत्यधिकशतहस्तं भविष्यति। तस्य विंशतिभागेन षडङ्गुलाधिकषड्हस्तं वृत्तेन सूत्रं भवति। तेन सूत्रेण द्विसहस्रहस्तेन कोऽसावाचार्यः सूत्रपातं करिष्यति मण्डलभूम्याम्। तस्मादिदं वचनं [5]"सामान्यमण्डले हस्तमात्रादौ, न तदूर्ध्वं सूत्रवृत्त[6]नियमो भगवत इति। सामान्येन कायो नराणां चतुर्हस्तः। तेन कायाद् द्विगुणमष्टहस्तम्, **त्रिविधपथगतं** कायवाक्चित्तनाडीगतमेकलोलीभूतम्[7], तेन सहस्रहस्तपर्यन्तं[8] सूत्रयेन्मण्डलं गर्भचक्रारेभ्यः पुनः पुनः सूत्रस्थाने सूत्रपातेनेति सूत्रविधिनियमः।

इदानीं [9]शान्त्यादिकर्मसाधनार्थमा[10]सनान्युच्यन्ते—पर्यङ्क इत्यादिना। इह **शान्तिकादौ** क्रमेणासनानि भवन्ति। तत्र शान्तौ **पर्यङ्क**[11] इति। वामजानूपरि दक्षिणपादो गत उत्तानक इति पर्यङ्कः। पुष्टौ **वज्रासनम्**। [12]सव्यपादो वामोरुमूर्ध्नि

---

१. क. ख. छ. द्विगुण। २. क. ख. छ. कुर्या०। ३-४. क. ख. ग. द्वारविं०। ५. भो. 'सामान्य' नास्ति। ६. च. वृत्ति। ७. ग. च. भो. भूतं सूत्रम्। ८. क. ख. छ. र्यन्त। ९. ग. शान्तिकादि। १०. क. आसनमुच्यते। ११. च. ०ङ्कमिति। १२. क. ख. ग. सव्यपादं, च. सव्यः पादो।

[1]वामोऽपि सव्योरुमूर्ध्नि तिर्यगुत्तानेनेति वज्रासनम्। **दैत्यमिति** दैत्यासनं मारणे, अङ्कार[2]कूर्मपादवदिति दैत्यासनम्। **उत्कटं चेति** उच्चाटने विद्वेषे च [3]उत्कटं भवति। भूम्यां द्वौ पादौ समौ गुल्फौ [4]फिच्चकमूललग्नौ ऊर्ध्वं गतं जानुद्वयमूरुद्वयं चेत्युत्कटम्[5]। **पर्यङ्कार्धं द्विभेदमिति**। इह वश्ये वामपादः पर्यङ्कवद्दक्षिण [6]उत्कटवत् किञ्चिद्दक्षिणे नम्र इति। आकृष्टौ द्वितीयो भेदो दक्षिणः पर्यङ्कवद् वाम उत्कटवत् किञ्चिद्वामे नम्र इति पर्यङ्कार्धं द्विभेदम्। **गुदगतचरणमिति**। इह मोहने वामचरणं गुदगतं चरणोपरि गुदो निषण्णः, दक्षिणमुत्कटवदिति। स्तम्भने दक्षिणं गुदगतं चरणोपरि गुदो निषण्णो वाममु[170b]त्कटवत्। इत्यष्टविधासनभेदनियमः॥ १९॥

इदानीं मन्त्रजापार्थं [7]शान्त्यादीन्यक्षसूत्राण्युच्यन्ते—

स्फाटिक्यैर्मौक्तिकैर्वा नरखरदशनैर्वाऽस्थिभिः पुत्रजीवैः
पद्माख्येशाक्षरिष्टैः सुगतकुलवशान्मन्त्रजापेऽक्षसूत्रम्।
सौगन्धैः श्वेतपुष्पैः सकटुककषणैरर्चनां रक्तपीतैः
शीतो विण्मांसधूपो मधुरुधिरयुतोऽप्युग्रधूपः कषायः॥ २०॥

स्फाटिक्यैरित्यादिना। इह शान्तौ [8]**स्फाटिक्यमक्षसूत्रम्**, पुष्टौ **मुक्ताफलम्**, मारणे **नरदन्तकृतं**, [9]उच्चाटने **खरदन्तकृतं वा अस्थिभिः** कृतम्, वश्ये **पुत्रजीवाक्षसूत्रम्**। आकृष्टौ **पद्माक्षसूत्रम्**, अथ रक्तचन्दन[10]बीजैः कृतम्। मोहने **रिष्टाक्षसूत्रम्**, स्तम्भने **ईशाक्षः**, ईशाक्ष इति रुद्राक्षैरक्षसूत्रमित्यक्षसूत्रनियमः। **सुगतकुलवशादिति** वक्ष्यमाणे वक्तव्यम्।

इदानीमर्चनार्थं [11]शान्त्यादिपुष्पाण्युच्यन्ते—**सौगन्धैरित्यादिना**। इह शान्तौ पुष्टौ च **सुगन्धपुष्पैः श्वेतैर्देवता**[12]दीनामर्चनम्, मारणे उच्चाटने विद्वेषे च **सकटुकैः**[13] कृष्णैः सकण्टकैरिति। वश्ये आकृष्टौ **रक्तैः**, मोहने स्तम्भने **पीतैरिति** पुष्पार्चननियमः।

इदानीं धूपा उच्यन्ते—शीत इत्यादिना। शान्तिपुष्ट्योः **शीतो** धूपः, शीतागुरुसिह्लककर्पूरैर्धूपो मधुशर्करासहितः शीतो धूप इत्युच्यते शीतद्रव्यैः[14]। तथा मारणे उच्चाटने **विड्**[15]**मांस**[16]**धूपो मधुरुधिरयुत** इति। वश्ये आकृष्टा**वुग्रधूप** इति। गुग्गुल-

१. क. ग. 'वामो'' मूर्ध्नि' नास्ति। २. क. क्रमपात, छ. कूर्मपात। ३. भो. Tsog Pu (उत्कुटकं)। ४. च. स्फिच्चकमूला। ५-६ क. ख. छ. उत्कटा, भो. उत्कुट। ७. च. शान्तिकाद्यक्ष, ग. शान्तिकादीन्य। ८. क. ख स्फाटिक। ९. ख. 'उच्चाटने खरदन्तकृतं' इत्यंशो नास्ति। १०. च. चन्दनै। ११. च. शान्त्यादौ। १२. च. तानाम। १३. ग. कटुकैः। १४. क. शीतद्रव्ये। १५. क. ग. मांसो। १६. ग. धूपो मधुरो।

लाक्षासर्जरसकुन्दुरुश्रीवासागुडेन मोदित उग्रधूप इति। एवं मोहने स्तम्भने च **कषायधूपः**। हरीतकीचूर्णं गुडसहितं कषायधूपः। इति धूपनियमः।

एवं नैवेद्यं शान्तौ दुग्धभक्तम्, पुष्टौ दधिभक्तम्, मारणे कालजम्, उच्चाटने मांसम्, वश्ये घृतभक्तम्, आकृष्टौ तिलतैलभक्तम्, मोहने [1]व्यामिश्रमुद्गौदनम्। स्तम्भने चणकं च मत्स्योदनमिति। एवं शान्तिपुष्ट्योश्चन्दनं विलेपनम्, मारणोच्चाटने रक्ताङ्गारेण च, वश्याकृष्टौ कुङ्कुमगोरोचनेन, रक्तचन्दनेन वा। मोहने स्तम्भने हरिद्राहरितालेनेति गन्धनियमः।

तथा प्रदीपः। शान्तिपुष्ट्योर्घृतेन प्रदीपः, मारणोच्चाटनयोर्नरवसया, वश्याकृष्टौ तिलतैलेन, मोहने स्तम्भने ज्यो[171a]तिष्मतीतैलेन [2]भल्लातकतैलेनेत्यादिनेति दीपनियमः।

तथा शान्तौ पुष्टौ अक्ष[3]तं शालितण्डुलाः, मारणोच्चाटने राजिकाः[4], वश्याकृष्टौ सर्षपाः, स्तम्भने मोहने मसूरिकाः, अपरव्रीहिर्वा इति। तथा वस्त्रादीनि शान्तिपुष्ट्योः सर्वाणि पूजाद्रव्याणि श्वेतानि, मारणोच्चाटनयोः कृष्णानि, वश्याकृष्टौ रक्तानि, स्तम्भनमोहनयोः पीतानि, सर्वकर्मणि [5]सर्वाणि हरितानीति पूजाविधिनियमः॥ २०॥

इदानीं शान्त्यादिकर्मणि वक्ष्यमाणयन्त्रस्य लिखनविधिरुच्यते—

यन्त्रं न्यग्रोधपत्रे चितिमृतकपटैर्बाहुपत्रेऽर्कपत्रे
श्रीखण्डैः शालिपिष्टैश्चितिभुवनगताङ्गाररक्तैर्विषेण।
काश्मीरैः शीतपुष्पैस्त्रिफलरसकुशातालकैर्लेखनं स्याद्
दूर्वाशीतास्थिपिष्टैः कनकखदिरजा लेखनी विल्वजार्का॥२१॥

[6]इह वक्ष्यमाण**यन्त्रं** शान्तौ पुष्टौ **न्यग्रोधपत्रे** [7]शाद्वले लेखनीयम्, [8]**शालिपिष्टोदकेन दूर्वाङ्कुरेण शीतलेखन्या** पुष्टौ। तथा मारणोच्चाटने च **श्मशानकर्पटे विषरुधि**[9]**राङ्गारेण** नरास्थिलेखन्या, काकपिच्छलेखन्योच्चाटने, वश्याकृष्टौ **भूर्जपत्रे** कुङ्कुमगोरोचनेन **सुवर्ण**लेखन्या, **खदिर**लेखन्याकृष्टौ रक्तचन्दनेन[10] पिष्टेनेति, स्तम्भने मोहने **अर्कपत्रे** परिपक्वे पीतवर्णे त्रिफलारससहितेन **तालकेन** हरिद्रया च **विल्व**लेखन्या मोहने चेति नियमः।

१. भो. Sran Chuṅ Mudag Daṅ bSras Pa (मसूरिकामुद्गमिश्र)। २. ख. ग. भल्लाटक। ३. ग. अक्षत। ४. ग. राजिः। ५. भो. 'सर्वाणि' नास्ति। ६. च. 'इह' नास्ति। ७. च. सार्द्रे। ८. भो. Śri Khaṇḍa Daṅ Sālu (श्रीखण्डं शालिश्च)। ९. ग. च. ०रेणाङ्गारेण। १०. ग. नेन च।

इदानीं यन्त्रप्रतिष्ठापनविधिरुच्यते—इह शान्तिपुष्टयो[1]र्यन्त्रलिखितं [2]पत्रादिकं श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत्, यावत् पत्रं न दृश्यते। एवं कर्मविभागेन कृष्णसूत्रेण रक्तसूत्रेण पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ २१ ॥

मृन्मन्दे श्रीकपाले त्रिमधुनि रुधिरे सिक्थवेष्टेष्टमध्ये
सार्द्रस्थाने पवित्रे चितिभुवनतले चाग्नितापे धरण्याम् ।
यन्त्रस्यारोपणं स्यादशुभशुभवशान्मन्त्रिणा वेदितव्यं
चन्द्रेभे प्रेत उष्ट्रे मृगतुरगपशौ कूर्मदेहे क्रमेण ॥२२॥ (171b)

ततः शान्तिपुष्टयोः शरावसंपुटे स्थापयेत् **त्रिमधुनि** मधुघृतदुग्धसंमिश्रे, मारणोच्चाटने **कपाले रुधिरपूर्णे** स्थापयेत्, **अग्नितापे** खर्प्परसंपुटे **सिक्थके**[3] वेष्टयित्वा वश्याकृष्टौ, स्तम्भने मोहने हरितालोदकपूर्णे [4]**इष्टकमध्ये** स्थापयेत्। [5]**सार्द्रस्थाने पवित्रे** [6]शान्तिपुष्टयोः स्थापयेद् मण्डलोपरि, मारणोच्चाटने **मृतदग्धखानिकातले** निधापयेत्, वश्याकर्षणे [7]चुल्लीतले, स्तम्भने मोहने शुष्कभूम्यां निधापयेदिति **मन्त्रिणाऽशुभशुभकर्मणि** फलं **वेदितव्यमिति** नियमः।

इदानीं लिखितस्य **यन्त्रस्य** चक्रबाह्ये नियम उच्यते—इह शान्तौ चक्रं बाह्ये चन्द्रमण्डलेन वेष्टयेत्, उद्धृत्य रेखया पुष्टौ [8]**हस्तिना** वेष्टयेत्, हस्तिदेहे यथा चक्रं भवति, मारणे **प्रेत**देहे, उच्चाटने **उष्ट्र**देहे, वश्ये **मृग**देहे, आकृष्टौ **तुरग**देहे, मोहने **छागल**देहे **मेष**देहे वा, स्तम्भने **कूर्मदेहे** यथा यन्त्रचक्रं भवति तथा बाह्ये रूपं कर्तव्यम्। ततः पूर्वोक्तसूत्रेण वेष्टयेदिति। एवं विद्यायामपि नियमः। शान्ति[9]पुष्टयोः रौप्यनलिका विद्याया मध्ये स्थाप्या, मारणे मानुषास्थिनलिका, उच्चाटने काकास्थिनलिका, वश्ये सुवर्णनलिका, आकृष्टौ ताम्रनलिका, मोहने लोहनलिका, स्तम्भने रीतिकानलिका इति नियमः।

इह येनैवोच्चाटनं तेनैव विधिना विद्वेषकार्यं कर्तव्यम्, येनैव स्तम्भनं तेनैव कीलनं कर्तव्यम्, किन्तु कीलने शत्रूद्वर्तनेन पञ्चामृतसहितेन प्रतिकृतिं कृत्वा मदनकण्टकैः षट्चक्रेषु कीलयेद् हस्तपादसन्धिषु। शेषः स्तम्भादिवत्। येनैवाकृष्टिस्तेनैव ज्वरोत्पादनम्, किन्तु राजिकालवणैः पुत्तलकं लेपयित्वा अग्निना संतापयेत्। येनैव शान्तिकं तेनैव

१. क. ख. च. छ. मन्त्र। २. क. ख. ग. च. छ. यन्त्रा। ३. च. सिक्थे, ग. सिक्थकेन। ४. च. इष्ट। ५. क. सार्धस्थाने। ६. छ. क्षिति। ७. क. कुल्लीतले, ख. छ. चुल्लीतले। ८. च. हस्तिनो। ९. क. ख. ग. पुष्टौ।

दुष्टदृष्टिविषापहरणं चेति द्वादशकर्मविधिं ज्ञात्वा आचार्यो [1]वक्ष्यमाणक्रमेण यदि करोति भगवतो नियमेन, तदा निश्चितं तत्फलदं भवति। परोपकाराय, न पुनः स्वार्थतः करोति यस्तस्य न किञ्चिदत्र सिद्ध्यति, केवलं क्लेशमात्रपरिश्रमो दुष्टाचार्याणाम्। तस्मात् तन्त्रोक्तनियमेन निरपेक्षकेणाचार्येण परोपकारार्थं कर्तव्यम[2]भिज्ञालाभिनेति वक्ष्यमाणनियमो भविष्यति, तेनात्र [3]विस्तरेण नोक्तमिति ॥२२॥

इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायामभिषेकपटले
[4]वज्राचार्यादिसर्वकर्मप्रसरसाधना[172a]-
लक्षणमहोद्देशः प्रथमः ॥

(२) रक्षाचक्रपूर्वङ्गमभूम्यादिसंग्रहमहोद्देशः

त्रैलोक्यविजयं नत्वा वज्रभैरवभीकरम्।
दुर्दान्तदमकं वीरं कालचक्रं कपालिनम् ॥

स्थानरक्षाविधिं वक्ष्ये मण्डलालेखनाय च।
दुष्टनिर्घाट(त)नं चैव भूम्यादिष्वधिवासनम् ॥

यथोक्तं तन्त्रराजे च मञ्जुवज्रेण चापरे।
वितनोमि टीकया सर्वं विधिं बुद्धफलाप्तये ॥

इह प्रागुक्तविधिना सूर्यरथाध्येषितो मञ्जुश्रीर्भगवान्निर्मितकायो यशोनरेन्द्रो मण्डलालेखनाय परमादि[5]बुद्धाद् बुद्धभगवतः प्रतिवचनं रक्षाचक्रादिकमुदाजहार त्रयोविंशत्यादिकैर्वृत्तैः श्रीवज्रैः सर्वदिक्ष्वित्याद्यैर्यदुक्तं तन्त्रे, तत्सर्वं महोद्देशेन वितनोमीति [6]श्रीवज्रैरित्यादिना—

श्रीवज्रः सर्वदिक्षु स्थितमपि सकलं निर्दहेन्मारवृन्दं
पश्चाच्चक्रे दशारे दिशि विदिशि गतं भावयेत् क्रोधवृन्दम् ।
क्रोधेन्द्रश्चक्रमध्ये द्व्यधिकजिनकरो वज्रवेगो युगास्यः
तस्माद्यत्किञ्चिदिष्टं गुरुनियमयुतं साधकैः साधनीयम् ॥२३॥

१. भो. 'वक्ष्यमाणक्रमेण' नास्ति। २. च. ०मित्यभि०। ३. क. छ. विस्तरेणोक्तम्। ४. ग. 'वज्राचार्यादि' नास्ति, भो. sLob dPon La Sogs (आचार्यादि)। ५. च. मादिबुद्धभग। ६. छ. 'श्रीवज्रैरित्यादिना' नास्ति।

[1]इह प्रथमं तावद् [2]वज्राचार्येण स्वशरीरस्थानरक्षा चिन्तनीया, पश्चाच्छिष्यादीनां संग्रहो भूमिपरिग्रहादिकं च कर्तव्यमिति। अतः प्रथमं मन्त्री मण्डलाय कल्पितभूम्यां गत्वा मध्ये पूर्वाभिमुखो भूत्वा मृद्वासनोपविष्टः **श्रीवज्रै**रङ्गन्यासं करोति। ललाटे ॐकारेण शुक्लचन्द्रमण्डले न्यासम्, आःकारेण कण्ठे रक्तसूर्यमण्डले न्यासम्, हूँकारेण हृदये कृष्णराहुमण्डले न्यासम्, [3]होःकारेण नाभौ पीतवर्णकालाग्निमण्डले न्यासम्, हंक्षःकाराभ्याम् उष्णीषे गुह्ये यथासंख्यं हरितनीलाकाशज्ञानमण्डले न्यासम्।

एवं षण्मण्डलानि ध्यात्वा तेषु मण्डलेषु यथाक्रममेभिर्बीजैः परिणतानि [4]वज्राणि भावयेत्—सप्तदशशूकम्, त्रयस्त्रिंशत्शूकम्, [5]नवशूकम्, पञ्चषष्टिशूकम्, पञ्चशूकम्, त्रयस्त्रिंशत्शूकम्। एवं बाह्ये वामस्कन्धबाहुमूलसन्धौ कवर्गात्मकमेकत्रिंशत्शूकम्, एवं दक्षिणे दीर्घकव[172b]र्गात्मकम्, [6]तथा वामोपबाहुसन्धौ ह्रस्वचवर्गात्मकम्, दक्षिणे दीर्घात्मकम्, तथा वामकरसन्धौ ह्रस्वटवर्गात्मकम्, दक्षिणे दीर्घात्मकम्, वामोरुसन्धौ ह्रस्वपवर्गात्मकम्, दक्षिणे दीर्घात्मकम्, वामजानुसन्धौ ह्रस्वतवर्गात्मकम्, दक्षिणे दीर्घात्मकम्, वामपादसन्धौ ह्रस्वस(श)वर्गात्मकम्, दक्षिणे दीर्घात्मकम् इति सन्धौ वज्रन्यासः।

तथाध्यात्मपटलोक्तबीजाक्षरैः प्रत्येकाङ्गुलिपर्वसु षष्टिषु[7] सप्तशूकानि वज्राणि भावयेत्। एवं श्रोत्रयोः अआभ्यां त्रिशूकं वज्रं भावयेत्, एऐभ्यां घ्राणरन्ध्रयोः, अर्आर्भ्यां नेत्रयोः, ओऔभ्यां जिह्वालम्बिकयोः, अल्-आल्भ्यां वज्रगुह्ययोः, अंअःभ्यां मनःशुक्रनाड्यामिति। एवमुष्णीषे शिरसि च हहाभ्यां पञ्चशूकम्, ततो [8]जिह्वातालुकायां ययाभ्यां पञ्चशूकम्, हस्ततलयो रराभ्याम्, तथा पादतलयोः ववाभ्याम्, तथा पायुर्वामदक्षिणे ललाभ्यामिति। एवं वज्रकायमात्मानं [10]भावयेदिति। ततस्तद्वज्रनिर्गतैर्वज्रज्वालाभिर्दशदिक्स्थितमपि **सकलं मारवृन्दं** सत्त्वविहेठकं निर्दहेत्। ऊर्ध्वे हरितज्वालाभिः, अधो नीलज्वालाभिः, पूर्वेऽग्नौ कृष्णज्वालाभिः, दक्षिणे(ण)नैर्ऋत्ययो रक्तज्वालाभिः, उत्तरेशानयोः श्वेतज्वालाभिः, [11]पश्चिमवायव्ययोः पीतज्वालाभिरिति मारवृन्दं दग्ध्वा, ततः **पश्चात् चक्रे दशारे दिशि विदिशि गतं भावयेत् क्रोधवृन्दमिति**। इह वक्ष्यमाणक्रमेण मारविघ्नविनायकानां [12]कीलनार्थं स्थानरक्षार्थं रक्षाचक्रं भावयेन्मन्त्री। [13]इह वक्ष्यमाणश्लोके नियम उक्तः—

भूमौ दिक्षु त्रिवज्रैः प्रथममिह बलिं क्षेत्रपालाय दत्त्वा
पश्चाद् [14]वज्रैश्चतुर्भिर्दिशि विदिशि गतं निर्दहेन्मारवृन्दम् ॥ (३।२५) इति।

१. छ. 'इह प्रथमं'.... कर्तव्यमिति' नास्ति। २. च. 'वज्राचार्येण' नास्ति। ३. ग. च. होः। ४. ख. वस्त्राणि। ५. छ. 'नवसूकम्'....'एकत्रिंशत्सूकम्' नास्ति। ६. छ. 'तथा .. दीर्घात्मकम्' नास्ति। ७. क. ख. छ. 'षष्टिषु' नास्ति। ८. च. आः। ९. भो. mChu lCe (ओष्ठजिह्वा)। १०. ग. च. विभाव०। ११. क. ख. छ. पश्चिमे। १२. ग. विनाशार्थं। १३. च. 'इह' नास्ति। १४. क. छ. वर्जै रक्तैः चतुभि, ख. वर्जै रक्तै चतु।

इह चतुर्भिरिति नायकत्वाद् वचनम्, विस्तरतः सर्वैर्[1]वज्रैर्निर्दहेदिति नियमः। सर्वाङ्गे मन्त्रन्यासो वेदितव्य[2] इति। अतः प्रथमं भूमौ यः क्षेत्रपालस्तद्ग्रामनाम्ना समविषमाक्षरः, तस्य बलिमन्त्रः ॐ आः हूँ अमुकाय सपरिवाराय इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं प्रदीपाक्षतं ददामहे सपरिवारः शीघ्रमागच्छतु जः[3] हूँ वं होः[4]। इदं बलिं गृह्णन्तु(ह्णातु) खादतु पिबतु[5] सपरिवारकः सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं करोतु। इदं स्थानं त्यक्त्वा बाह्ये मण्डलभूम्यां तिष्ठतु हूँ हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। एवं प्रागुक्तविधिना बलिं दत्त्वा स्थानाधिपं विसर्ज्य ततो मारवृन्दं दग्ध्वा रक्षाचक्रं [6]चिन्तयेत्।

तत्र प्रथमं यँकारपरिणतं वायुमण्डलमध ऊर्ध्वं हूँ[173a]कारवज्रसंपुटितम्, एवं रंकारात्मकमग्नि[7]मण्डलम्, वँकारात्मकमुदकमण्डलम्, लंकारात्मकं पृथ्वीमण्डलम्। ततश्चतुर्मण्डलान्येकीकृत्य प्रातश्छायावसान इति सीमापर्यन्तम्। अथ हस्तशतद्वयं कूटागारं भावयेत्, बाह्ये दूरदृष्ट्या(ष्ट्य)वसाने यत्राकाशभूमिर्मिलिता प्रतिभासते [8]वृत्तमण्डलाकारा, तत्र प्राकारत्रयम्, तेनैव मण्डलचतुष्टयेन एकीभूतेन। ततो राष्ट्ररक्षार्थं[9] राष्ट्रसीमायां पञ्चप्राकारं भावयेत्। अधः शूलानि सर्वत्र ऊर्ध्वे शरजालं निशितं [10]मध्ये वज्रभूमिं राष्ट्रसीमान्तं भावयेत्। ततः कूटागारमध्येऽब्जं वा चक्रं वा द्वादशहस्तं भावयेद् [11]अष्टारम्, तस्य कर्णिका नेमिर्वा चतुर्हस्ता सासना सूर्यासनसहिता। आत्मानं तस्य सूर्यस्य मूर्ध्नि वक्ष्यमाण[12]क्रोधवज्रवेगरूपं षड्विंशतिभुजं चतुर्मुखं व्यपगतकलुषम्। एवं **क्रोधेन्द्रश्चक्रमध्ये द्व्यधिकजिनकरो वज्रवेगो युगास्य** इति भावनीयो मन्त्रिणा साधनपटले वक्ष्यमाण इति नियमः।

तस्मात्तं क्रोधेन्द्रं[13] **यत्किञ्चिदिष्टं गुरुनियमयुतं** बुद्धवचनयुक्तं **साधकैः साधनीयमिति**। रक्षाचक्रे क्रोधादिकं देवतागणं स्फारणीयम्, मण्डलभूमि[14]रक्षार्थं शिष्यादीनां चेति। अत्र समाधिः—प्रथमं वज्रवेगमात्मानं ध्यात्वा ततो हृदये सूर्यमण्डले हय[15]रवलान् कूटरूपान् भावयेत्, तेषु मध्ये हकारोत्पन्नं हरितवर्णं वक्ष्यमाणभुजायुधवक्त्रं वामकर्णद्वारेण निश्चार्य प्रधानमुखत ऊर्ध्वे कूटगर्भे चन्द्रमण्डले सूर्यमण्डले वा उष्णीषं स्थापयेदालीढपदमिति। इह क्रोधानां पञ्चविधो न्यासो रविकाभेदेन। इह रविका [16]एकादश रसयुग[17]शशिन इति नियमात्। तत्र शशिनो वज्रवेगः,

T 374

१. ग. च. वज्र। २. क. ख. छ. ०तव्यमिति। ३. छ. 'जः' नास्ति। ४. ग. होंः, छ. हो। ५. छ. 'पिबतु' नास्ति। ६. भो. rNam Par bSam Mo (विचिन्तयेत्)। ७. ख. 'अग्नि' नास्ति। ८. ग. प्रतिमण्डलाकारा। ९. ग. नास्ति, च. ०रक्षणार्थं। १०. क. ख छ. मध्य। ११. भो. ḥKhor Lo rTsigs brGyad Pa (अष्टारचक्रं)। १२. च. क्रोधं। १३. भो. bsGoms Nas (ध्यात्वा) इत्यधिकम्। १४. ग. रक्षणार्थं। १५. छ. बर। १६. च. 'एकादश' नास्ति। १७. ग. च. शशिना।

युगैर्यमान्तकादयश्चत्वारः, रसैरुष्णीषादयः षडिति। अतः सूर्यस्य ऋणधनभेदेन सूर्यस्थाः सर्वे, वा तथा तिथौ धनऋणभेदेन सर्वे चन्द्रस्थाः। एवं कायभेदेन दिक्षु चन्द्रस्थाः, विदिक्षु सूर्यस्थाः, तथा भावभेदेन विदिक्षु चन्द्रस्थाः, दिक्षु सूर्यस्थाः, तथा पश्चिमे दक्षिणे सूर्यासनस्थाः, उत्तरे पूर्वे चन्द्रासनस्था इति रविकाभेदेन नियमः। तेन यथाभिरुचिना मन्त्री क्रोधवृन्दं स्थापयेदिति नियमः।

एवं दीर्घहा[1]कारनिष्पन्नं सुम्भराजं नीलवर्णं वज्रभूमितले सूर्ये स्थापयेद् दक्षिणकर्णद्वारेण निश्चार्य इति। [173 b] एवं यिकारनिष्पन्नं विघ्नान्तकं वामनासाद्वारेण निश्चार्य कृष्णवर्णं पूर्वारे चन्द्रमण्डले स्थापयेदिति सूर्ये वा। तथा यीकारनिष्पन्नं नीलदण्डं[2] कृष्णं दक्षिणनासाद्वारेण निश्चार्याग्नेयारे सूर्ये स्थापयेच्चन्द्रे वा, ऋकारनिष्पन्नं प्रज्ञान्तकं रक्तं वामचक्षुद्वारेण निश्चार्य दक्षिणारे चन्द्रमण्डले स्थापयेत् सूर्ये[3] वा, तथा ॠकारनिष्पन्नं [4]टक्किराजं रक्तं दक्षिणचक्षुद्वारेण निश्चार्य नैर्ऋत्यारे सूर्ये स्थापयेच्चन्द्रे[5] वा। तथा वुकारनिष्पन्नं पद्मान्तकं शुक्लं जिह्वामुखेन निश्चार्य उत्तरे चन्द्रे स्थापयेत् सूर्ये वा। तथा वूकारनिष्पन्नम् [6]अचलं शुक्लं मूत्रद्वारेण निश्चार्य [7]ईशानारे [8]सूर्ये चन्द्रे वा स्थापयेत्। तथा ऌकाराक्षरनिष्पन्नं यमान्तकं पीतं पायुद्वारेण निश्चार्य पश्चिमारे चन्द्रे सूर्ये वा स्थापयेत्। तथा ॡकाराक्षरनिष्पन्नं महाबलं पीतं वज्रोष्णीषद्वारेण निश्चार्य वायव्यारे सूर्ये चन्द्रे वा स्थापयेदिति। अथ सर्वे सूर्यमण्डले स्थापनीया मन्त्रिणा **लघुतन्त्रा**नुमतेनेति। एवं गर्भचक्रन्यासः। ततः कूटबाह्ये ब्रह्मकायिकादीन् पृथ्वीकृत्स्ना[9]दीन् स्फारयेदिति।

अत्र प्रत्याहारपाठेन हयरवला इत्युक्ताः, ङञणमना[10] उच्यन्ते—[11]तत्र हृदये सूर्यमण्डले ङञणमननः(नान्), कूटरूपेण ध्यात्वा [12]तेष्वाकाशकृत्स्नौ पूर्वोक्तद्वाराभ्यां[13] निश्चार्य ङङाक्षरोत्पन्नौ कूटोर्ध्वं सुम्भाधः शून्यमण्डलस्थौ भावयेदिति। एवं वायुकृत्स्नौ ञिञीनिष्पन्नौ पूर्वाग्नेययोर्वायुमण्डले भाव्यौ, एवं तथा तेजःकृत्स्नौ णृणॄनिष्पन्नौ दक्षिणनैर्ऋत्ययोरग्निमण्डले भाव्यौ, एवं मुमूनिष्पन्नौ[14] तोयकृत्स्नौ उत्तरेशानयोस्तोयमण्डले भाव्यौ, तथा न्ऌन्ॡनिष्पन्नौ पृथ्वीकृत्स्नौ पश्चिमवायव्ययोः पृथ्वीमण्डले भाव्याविति। ततो घझढभधवः [15]कूटाकारान् [16]विभाव्य तेषु पुनर्दशदिक्पालान् स्फारयेदिति। घघाभ्यां निष्पन्नौ हरितनीलौ ब्रह्मा विष्णुश्च प्राकार-

१. क. ख. छ. हाकारं। २. क ख. छ. 'कृष्णं' नास्ति। ३. भो. Ñi Maḥi gDan La (सूर्यासने)। ४. ख. टक्किराजं। ५ भो. Zla Baḥi gDan La (चन्द्रासने)। ६. छ. 'अचलं' नास्ति। ७. ग. ईशाने। ८. च. सूर्ये स्थापयेत् चन्द्रे वा। ९. क. कृष्णा। १०. ख. ग. छ 'न' अधिकम्। ११. भो. De bŚin Du ḥDir (तथा अत्र)। १२. च. 'तेषु '' तोयकृत्स्नौ उत्तरे' नास्ति। १३. ग. द्वारा। १४. ख. 'निष्पन्नौ' नास्ति। १५. ग. कूटरूपां, छ. कूटागारां। १६. भो. bsGom Par Bya Śiṅ (भाव्य)।

विष्कम्भमानेनोर्ध्वे ब्रह्माऽधो विष्णुरिति हंसगरुडस्थौ भाव्यौ। तथा झिझीनिष्पन्नौ नैर्ऋत्यवायू पूर्वाग्नेययोः कृष्णवर्णौ प्रेतमृगासनस्थौ। एवं दक्षिणे नैर्ऋत्ये ढृढॄनिष्पन्नौ यमवैश्वानरौ महिषमेषस्थौ। उत्तरेशा[174 a]ने भुभूनिष्पन्नौ समुद्रशङ्करौ मकर[1]वृषस्थौ। पश्चिमे वायव्ये इन्द्रयक्षौ ध्ऌध्ॡनिष्पन्नौ हस्तिविमानस्थाविति। एवं दिक्पालान् प्राकारादौ [2]भावयेत्।

ततो ग्रहचक्रं स्फारयेत् प्राकाररक्षार्थम्, पूर्वोक्तसूर्यमण्डले गजडबददो ध्यात्वा तेषु गगानिष्पन्नौ राहुकालाग्नित्रि[3]प्राकाराणां विष्कम्भमानेनोर्ध्वाधः शून्यमण्डलारूढौ भाव्यौ। तथा जिजीनिष्पन्नौ चन्द्रसूर्यौ वायुमण्डलस्थौ पूर्वाग्नेययोः। डृडॄनिष्पन्नौ बुधमङ्गलौ अग्निमण्डलस्थौ दक्षिणे नैर्ऋत्ये। बुबूनिष्पन्नौ शुक्रबृहस्पती उत्तरेशाने। तोयमण्डल[4]स्थौ दऌदॡनिष्पन्नौ केतुशनिश्चरौ पश्चिमवायव्ययोः पृथ्वीमण्डले[5] भाव्यौ। इति प्राकारबाह्ये रक्षपालग्रहाः।

ततः पञ्चप्राकाररक्षार्थं नागराजानं [6]भावयेदिति। तत्र सूर्यमण्डले खछठफथधो भाव्याः। तेषु खखानिष्पन्नौ जयविजयौ पञ्चप्राकाराभ्यन्तरविष्कम्भमानेनो[7]र्ध्वाधः शून्यमण्डलस्थौ भाव्यौ। एवं छिछीनिष्पन्नौ [8]कर्कोटकपद्मौ वायुमण्डलस्थौ पूर्वाग्न्योः तथा ठृठॄनिष्पन्नौ वासुकिशङ्खपालौ अग्निमण्डलस्थौ दक्षिणनैर्ऋत्ये तथा फुफूनिष्पन्नौ अनन्तकुलिकौ तोयमण्डलस्थौ उत्तरेशानयोः, थऌथॡनिष्पन्नौ महापद्मतक्षकौ पश्चिमे वायव्ये पृथ्वीमण्डलस्थौ भाव्यौ।

ततः पञ्चप्राकारबाह्ये रक्षार्थं भूतासुरान् भावयेदिति। तत्र सूर्यमण्डले कचटपततो ध्यात्वा कूटागारान्[9] तेषु बाह्यप्राकारविष्कम्भमानेनोर्ध्वे वेताडोऽधः [10]कुम्भाण्ड एतौ ककानिष्पन्नौ शून्यमण्डलस्थौ भाव्यौ। पूर्वे किन्नरो वायुस्थः[11] श्वानमुखः चिनिष्पन्नः। अग्नौ किम्पुरुषः काकमुखः चीनिष्पन्नः[12] तथा टृटॄनिष्पन्नो गन्धर्वः शूकरमुखः [13]भूतो गृध्रमुखो दक्षिणे नैर्ऋत्ये अग्निस्थः। उत्तरेशाने तोयस्थो राक्षसो व्याघ्रमुखः प्रेत उलूकमुखः पुपूनिष्पन्नः। पश्चिमे वायव्ये भूमिस्थः [14]तऌतॡनिष्पन्नोऽपस्मारो जम्बूकमुखः [174b] गरुडो गरुड एवेति रक्षाचक्रम्।

१. ख. ग. छ. वृषभ, भो. Khyu mChog। २. भो. Naṅ La (अन्तः) इत्यधिकः पाठः। ३. क. ख. ग. छ. प्रकारा०। ४. क. ख. ग. च. छ. 'मण्डल' नास्ति। ५. भो. dKyil ḥKhor La gNas Paḥo (मण्डलस्थौ)। ६. भो. sPro Bar Byaḥo (स्फारयेत्)। ७. क. ख. छ. र्ध्वेऽधः। ८. च. कर्कोट। ९. ग. च. कूटाकारान्, भो. brTsegs Pa (कूटान्)। १०. ख. ग. छ. कुष्माण्ड। ११. भो. 'वायुस्थः' नास्ति। १२. भो. rLuṅ La gNas (वायुस्थः) इत्यधिकः पाठः। १३. क. ख. छ. ततो। १४. ग. त्ऌ त्ॡ।

कायवाक्चित्तधर्मविशुद्धानां कूटागारत्रि[1]प्राकारपञ्चप्राकाराणां ज्ञानाकाशवायु-तेजउदकपृथ्वीषड्धातुजनिताः क्रोधराजरूपा[2] रूपदशदिक्पालग्रहनागभूताः षड्वर्गात्मका रक्षापाला अभ्यन्तरबाह्यतः संपुटयोगेन देयाः। पृथ्वीतोयोद्भूताः कायधातुरक्षकाः, अग्निवायुधातूद्भूता वाग्धातुरक्षकाः, शून्यज्ञानधातूद्भूताः सर्वत्र चित्तधातुरक्षकाः। अतो भगवतो नियमः। **तस्माद् यत्किञ्चिदिष्टं गुरुनियमयुतं साधकैः साधनीयमिति** नियमः ॥ २३ ॥

त्रिप्राकारांस्त्रिवज्रैर्महिवलयगतान् दूरदृष्ट्यावसाने
प्रातश्छायावसाने क्षितितलनिलयादम्बरे वज्रकूटम् ।
मध्येऽब्जं सूर्यहस्तं भवति युगकरा कर्णिका सासना च
आत्मानं तस्य मूर्ध्नि व्यपगतकलुषं योगिना भावनीयम् ॥२४॥

इदानीमेषां क्रोधादीनां प्रत्येकं बलिमन्त्रपदानि भवन्ति। तद्यथा–ॐ आः हूँ होः[3] उष्णीषसुम्भनिसुम्भविघ्नान्तकनीलदण्ड[4]प्रज्ञान्तकटक्किराजपद्मान्तकअचलयमान्तक–महाबलेभ्यः सपरिवारेभ्य इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे, ते चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं बलिं गृह्णन्तु खादन्तु[5] पिबन्तु जः हूँ वं होः संतृप्ताः सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं [175a] कुर्वन्तु हुं हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा इति[6] सर्वक्रोधबलिमन्त्रः। तथा आकाशादिकृत्स्नसिद्धानां बलिमन्त्रपदानि—ॐ आः हूँ होः आकाशवायुतेजउदकपृथ्वीसाधितेभ्यः सपरिवारेभ्यः[7] इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे। ते[8] चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं बलिं गृह्णन्तु खादन्तु पिबन्तु जः हूँ वं होः संतृप्ताः सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं कुर्वन्तु हुं हूं फट्[9] वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। ततो दिक्पालानां बलिमन्त्रपदानि—ॐ आः हूँ होः ब्रह्मविष्णु-नैर्ऋत्यवायुयमाग्निसमुद्रेश्वरेन्द्रयक्षेभ्यः सपरिवारेभ्य इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे, ते चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं बलिं गृह्णन्तु [10]खादन्तु पिबन्तु जः हूँ वं होः संतृप्ताः सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं कुर्वन्तु हुं हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। ततो ग्रहबलिमन्त्रपदानि—ॐ आः हूँ हो राहुकालाग्निचन्द्रसूर्यबुधमङ्गलशुक्र-बृहस्पतिकेतुशनिभ्यः सपरिवारेभ्य इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे, ते चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं बलिं गृह्णन्तु खादन्तु पिबन्तु जः हूँ वँ होः संतृप्ताः सर्व-सत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं कुर्वन्तु हुँ हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। ततो नागबलिमन्त्रपदानि—ॐ आः हूँ होः जयविजयपद्मकर्कोटकवासुकिशङ्खपालकुलि-

१. ग. प्रकार । २. क. ख. छ. रूपरूप । ३. क. ख. छ. हो । ४. ख. 'दण्ड' नास्ति । ५. क. 'खादन्तु' नास्ति, छ. 'पिबन्तु' नास्ति । ६. क. 'इति सर्वक्रोधबलि-मन्त्र''''वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा' नास्ति । ७. छ. नास्ति । ८. छ. नास्ति । ९. छ. फट् फट् । १०. क. 'खादन्तु' नास्ति ।

कानन्ततक्षकमहापद्मेभ्यः सपरिवारेभ्य इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे, ते चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं बलिं गृह्णन्तु खादन्तु पिबन्तु जः हूँ वँ होः संतृप्ताः सर्व-सत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं कुर्वन्तु हुँ हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। ततो भूतबलिमन्त्रपदानि–ॐ आः हूँ होः वेताडविकृतमुखश्वकाकशूकरगृध्रव्याघ्रोलूक-जम्बूकगरुडमुखेभ्यः सपरिवारेभ्य इदं बलिं गन्धं पुष्पं धूपं दीपम् अक्षतं ददामहे, ते चागत्य सपरिवाराः शीघ्रमिदं गृह्णन्तु खादन्तु पिबन्तु जः हूँ वँ होः संतृप्ताः सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं रक्षावरणगुप्तिं कुर्वन्तु हुँ हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। इति भूतबलिमन्त्रः।

एवं प्रत्येकबलिं वक्ष्यमाणक्रमेण शोधयित्वा [1]बोधयित्वा प्रदीपयित्वा[2] अमृती-कृत्वा(त्य) क्रोधादी[175b]नां मन्त्री ददाति। एवं सर्वत्र मण्डलविधौ चतुःसन्ध्याबलिं दत्त्वा आचार्यस्ततो विसर्जनं करोति। विसर्जनकाले गुह्यचक्रे [3]हांकारे क्रोधचक्रं [4]प्रवेशयेत्। उष्णीषे [5]अंकारे शून्यकृत्स्नादिचक्रम्, ललाटे [6]इकारे दिक्पालचक्रम्, कण्ठे [7]ऋकारे ग्रहचक्रम्, हृदये [8]उकारे नागचक्रम्, नाभौ [9]ऌकारे भूतचक्रं प्रवेशयेदिति विसर्जनविधिं निर्वर्त्य ततो भूमिपरिग्रहं करोति मन्त्री वक्ष्यमाणक्रमेणेति नियमः ॥२४॥

इदानीं पृथिव्यावाहनं वक्ष्यमाणसमाधिना भूमिशुद्धिनिमित्तमुच्यते—

भूमौ दिक्षु त्रिवज्रैः प्रथममपि बलिं क्षेत्रपालाय दत्त्वा
पश्चाद्वज्रैश्चतुर्भिर्दिशि विदिशि गतं निर्दहेन्मारवृन्दम् ।
भूमिं चावाहयित्वा ससलिलकुसुमैरर्घमस्यै प्रदाय
पश्चाच्छुद्धिं यथेष्टां कुरु भुविनिलये प्रार्थयित्वा तु तां वै ॥२५॥

इह पृथ्वीसमाधिना **भूमिं चावाहयित्वा** जः हूँ वँ होः एभिर्मन्त्रपदैः पूर्वोक्तार्घपात्रे **ससलिलकुसुमैरर्घ**गन्धादिसहितैरर्घ**मस्यै प्रदाय पश्चाच्छुद्धिं यथेष्टां कुरु भुवि निलये प्रार्थयित्वा तु तां वै** [10]इत्यनुप्रार्थना ॥ २५ ॥

देवि त्वं साक्षिभूता सुरपतिसहिते मारभङ्गे जिनस्य
तस्मात्त्वं पूजनीया सुरवरनमिते गृह्ण गृह्णार्घकं मे ।
भग्नं मारस्य सैन्यं प्रबलमपि यथा बोधिहेतोर्जिनेन
शिष्याणां सेकहेतोरहमपि च तथा मारनाशं करोमि ॥२६॥

१. क. ख. 'बोधयित्वा' नास्ति, भो. rGyas Pa (वर्धयित्वा) । २. छ. नास्ति । ३. ग. हॉंकारे, च हॉंकारेण । ४. ग. विसर्जयेत्, च. प्रवेशयति । ५. च. अंकारेण । ६. च. इकारेण । ७. च. उकारेण । ८. च. ऋकारेण । ९. भो. ऌ । १०. ग. इत्यत्र ।

देवि त्वं साक्षिभूता सुरपतिसहिते मारभङ्गे जिनस्य तस्मात्त्वं पूजनीया सुरवरनमिते गृह्ण गृह्णार्घकं मे इति स्तुत्वा प्रार्थयेत् ताम्। **भग्नं मारस्य सैन्यं प्रबलमपि यथा बोधिहेतोर्जिनेन, शिष्याणां सेकहेतोरहमपि च तथा मारनाशं करोमि** त्वया साक्षिभूतया इति। ततो बुद्धादीनां वक्ष्यमाणपूजां कृत्वा अर्घादिकं दत्त्वा प्रार्थयेत् ॥ २६ ॥

अत्र प्रार्थना [176a]—

ये बुद्धाः सर्वदिक्षु व्यपगतकलुषा बोधिसत्त्वाः सभार्या-
स्ते मां वै पालयन्तु परमकरुणया मण्डले सेकहेतोः।
तानेवाध्येष्य सर्वान् दृढखदिरमयैः कीलकैः कीलयेत् क्ष्मां
दिक्क्रोधान् दिग्विभागे प्रहरणसहितान् विन्यसेद्रक्षणार्थम् ॥२७॥

ये बुद्धाः सर्वदिक्षु व्यपगतकलुषा बोधिसत्त्वा सभार्यास्ते मां वै पालयन्तु परमकरुणया मण्डले सेकहेतोः। [1]तानेवाध्येष्य सर्वान् दृढखदिरमयैः कीलकैः कीलयेत् क्ष्माम्, वक्ष्यमाणक्रमेणेत्यध्येषणानियमः। तथा उक्त**क्रोधान् दशदिग्विभागे विन्यसेत् प्रहरणसहितान्** भूमिकीलन**रक्षणार्थमि**ति नियमः ॥ २७ ॥

इदानी भूमिखानि[2] निमित्तमुच्यते—

शल्यं साङ्गारशृङ्गं मरणभयकरं भूमिगर्भे निविष्टं
तस्मिन् स्थाने विनाशो भवति गुणवशाच्छोधनीयं हि तस्मात्।
रत्नं शङ्खश्च काचो [3]विषयसुखकरो मण्डलार्थं हि भूमौ
प्रासादार्थं गृहार्थं प्रकटितनियतश्चात्र यागादिहेतोः ॥२८॥

इह **भूमिगर्भे शल्या**दिकं **निविष्टं** शुभकर्मणि विघ्नकरं भवति। **तस्माच्छोधनीयं** शल्यं मनुष्यास्थि [4]**साङ्गार**मङ्गारं वा **शृङ्ग**साधारणं **मरणभयकरं** शुभकर्मणि **तस्मिन् स्थाने विनाशो भवति गुणवशात् शोधनीयं हि तस्मात्।** अथ **रत्नं** वा **शङ्खश्च काचो** वा दृश्यते, तदा **सुखकरो** भवति **मण्डलार्थं हि भूमौ।** तथा **प्रासादार्थं गृहार्थं प्रकटितनियतश्चात्र यागादिहेतो**रिति स्थानशुद्धिनियमः ॥ २८ ॥ [176b]

---

१. भो. De Dag Kun La gSol Ba bTab Nas (तानध्येष्य)। २. च. भो. खनन, Sa brKo Baḥi। ३. मु. विजय। ४. ग. साङ्गारं वा शृङ्गं वा, च. साङ्गारं शृङ्गं।

इदानीं भूमिशोधनार्थं दिनमुच्यते—

पूर्णायां भूमिशुद्धिर्ग्रहणमपि तथा संग्रहः पुत्रकाणां
द्वादश्यां सूत्रपातो मदनमनुदिने श्रीरजःपात एव।
सेकाद्यं पूर्णिमायां ददति वरगुरुर्मारभङ्गे दिने च
तस्मिन् रात्रौ प्रतिष्ठा भवति जिनकुले नान्यरात्रौ प्रतिष्ठा ॥२९॥

पूर्णायामित्यादि। इह प्रतिमासे षट् पूर्णाः, तद्यथा–पञ्चम्यौ द्वे, दशम्यौ द्वे, पञ्चदशम्यौ द्वे। मण्डलालेखनाय कालावधिं ज्ञात्वा [1]शुभाशुभकर्म ज्ञात्वा इह शुभकर्मणि शुक्लपञ्चम्यां [2]दशम्यां पञ्चदश्यां विष्टिं वर्जयित्वा भूमिं शोधयेत्। ततः पूर्वोक्तमृत्तिकया पूरयेदिति। अशुभकर्मणि कृष्णपञ्चम्यां दशम्यां अमाव[3]स्यायां नष्टचन्द्रे भूमिं शोधयेत्, पूर्वोक्तमृत्तिकया पूरयेदिति। ततो [4]ग्रहणमपि पूर्णायामर्चनादिकम्। **पुत्रकाणां** शिष्याणां **संग्रहः** पूर्णिमायाम्। ततो मण्डलालेखनकालं ज्ञात्वा **द्वादश्यां सूत्रपातः** कर्तव्यः। **मदनमनुदिने** त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां **श्रीरजःपातः।** **सेकाद्यं** वक्ष्यमाणं **पूर्णिमायां ददतो**त्यागमपाठः। **वरगुरुर्मारभङ्गे दिने च।** [5]चकारादपरायां पूर्णिमायां ददातीति नियमः। एवं प्रतिमादीनां **तस्मिन्नेव** पूर्णिमा**रात्रौ प्रतिष्ठा भवति। जिनकुले नान्यरात्रौ प्रतिष्ठा** इति [6]तिथिनियमः ॥ २९ ॥

अन्ये नक्तं प्रतिष्ठा भवति नरपते शुद्धलग्नैर्ग्रहाद्यै-
र्जीवे शुक्रेऽस्तमेते नहि भवति तदा वै विवाहः प्रतिष्ठा।
ज्ञात्वाऽऽचार्यः समस्तं क्षितितलनिलये लोकलोकोत्तरं च
यद्यत्कार्यं करोति प्रभवति हि शुभं तत्तदेवं समस्तम् ॥३०॥

[177 a] अथा**न्ये नक्तं प्रतिष्ठा भवति नरपते शुद्धलग्नैर्ग्रहाद्यैः।** इह **जीवे** बृहस्पतौ **शुक्रे अस्तङ्गते** सति सूर्यमण्डले प्रविष्टे। **नहि भवति तदा** तस्मिन् मासे वै एकान्तं **विवाहः प्रतिष्ठा**[7]। एवं पुष्ये चैत्रे बृहस्पतिक्षेत्रे सूर्ये प्रविष्टे पूर्णिमायां पुनर्भवति राज्ञा [8]पुष्याभिषेकत इति, चैत्रे बुद्धाभिषेकत इति नियमः। एवं **ज्ञात्वा आचार्यः समस्तं क्षितितलनिलये लोकलोकोत्तरं च** [9]**यद्यत्कार्यं करोति** शान्त्यादिकं **प्रभवति** फलदं **तत्तदेवं समस्तमि**ति तिथिनियमः। एवं क्रूरकर्माशुभदिननियमः ॥ ३० ॥

---

१. छ. 'शुभा' नास्ति, च. शुभा शुभं। २. क. 'दशम्यां' नास्ति। ३. ख. ग. च. वास्या। ४. भो. Sa gZuṅ (भूमिग्रहण)। ५. भो. Yaṁ Yig (यंकार)। ६. भो. तिथि नास्ति। ७. ग. ०ह्प्रतिष्ठे। ८. ख. पुष्पाभिषेक। ९. क. ख. छ. यत्कार्यं।

इदानीं शिष्यरक्षाविधिरुच्यते—

कृत्वा शिष्यस्य रक्षां शिरसि हृदि तथोष्णीषनाभौ च कण्ठे
श्रीगुह्याब्जे जिनाद्यैरुभयकुलगतैः कायवाक्चित्तवज्रैः ।
एवं लेपा(खा)दिकानां प्रकटितनियतैः श्रीस्वरैः पुस्तकानां
सत्त्वानां मोक्षहेतोरमुकमपि विभो मण्डलं लेखयामि ॥३१॥

इह प्रथमं **शिष्यादे रक्षां कृत्वा** पश्चात् संग्रहेच्छिष्यादिकम् । अत्र **जिनाद्यै**-[1]र्देवतीभिरु**भयकुलगतै रक्षां शिरसि** ऊकारम्, **हृदये** ईकारम्, **उष्णीषे** आकारम्, **नाभौ** लृकारम्, **कण्ठे** ऋकारम्, **गुह्ये** आःकारमिति । उभयकुलगतैः **कायवाक्चित्त**-**भिन्नै**रिति । एवं [2]**लेपा(खा)दिकानां प्रकटितनियतैः** । [3]पञ्चस्वरैः **श्रीस्वरै**रिति । अइऋउऌ इति । [4]**पुस्तकानां** रक्षां कृत्वा, ततो बुद्धानध्येषयेत् **सत्त्वानां मोक्षहेतोरमुक**-**मपि** कालचक्र**भगवतो मण्डलं लेखयामि** । तस्माद् बुद्धबोधिसत्त्वाधिष्ठानं [5]शिष्यादीनां कुर्वन्त्वित्यध्येषणानियमो रक्षानियमः ॥ ३१ ॥ [177b]

इदानीं [6]संक्षेपत उच्यते—

शुद्धे स्थाने सुपूर्णे सुसमविरचिते कूर्मपृष्ठोन्नते च
एकादौ हस्तमाने वसुनृपयुगसाहस्रमेव प्रमाणे ।
सूत्रं वज्रं रजो वै सुरयमवरुणे चोत्तरे वज्रघण्टां
दत्त्वा लब्धे निमित्ते प्रथमपरदिनं मण्डलं सूत्रणीयम् ॥३२॥

येन वक्ष्यमाणे[7] विस्तरेण वक्तव्यं सूत्राद्यधिवासनादिकमिति[8] । **शुद्धे स्थाने सुपूर्णे सुसमविरचिते** चतुरस्रे किञ्चित्**कूर्मपृष्ठोन्नते च** । **एकादौ हस्तमाने युगवसुनृप** इति । चतुर्हस्तेऽष्टहस्ते षोडशहस्ते, एवं **सहस्र**हस्तं यावत् **प्रमाणे** स्थाने पूर्णे । तत्र **सूत्रं सुरे, वज्रं यमे, रजो** भाण्डानि **वरुणे, उत्तरे वज्रघण्टाम्**, मध्ये विजयकलशं **दत्त्वा** ततो वक्ष्यमाणक्रमेण सुप्तो यदाचार्यो निमित्तं लभते शिष्यो वा, तदा **लब्धे निमित्ते प्रथमं** पूर्वदिशम्, **अपरं** पश्चिमदिशं **मण्डलं सूत्रणीयं** गुरुशिष्याभ्यामिति नियमः ॥३२॥

---

१. च. र्देवीभिः । २. भो. sKu gZugs Sogs Daṅ gLegs Bam (देहादि-पुस्तकानां) । ३. च. श्रीस्वरैः पञ्चस्वरैरिति, भो. पुस्तकानां । ४. भो. पञ्चस्वरैः । ५. ग. च. शिष्याणां । ६. ग. संक्षेप । ७. च. माणेन । ८. च. 'इति' नास्ति ।

इदानीं दुर्निमित्तलक्षणमुच्यते—

छिन्ने सूत्रे गुरोश्च क्षतिरपि परिघालङ्घने पुत्रकाणां
वातोद्धूतं रजश्चेत् प्रकटयति भयं राज्यभङ्गश्च राष्ट्रे ।
तद्दृष्ट्वा दुर्निमित्तं पुनरपि च विभोर्मन्त्रजापं प्रकुर्याद्
भूयो लब्धे निमित्ते समविषमपदैः सूत्रपातो विधेयः ॥३३॥

इह **छिन्ने सूत्रे** सति **गुरोः क्षति**र्भवति । **अपि च, परिघालङ्घने पुत्रकाणां** क्षतिः । **वातोद्धूतं रजश्चेत्** । इह मण्डलिकावातेनोद्धूतं रजो यदा भवति, तदा गुर्वादीनां [1]**भयं प्रकटयति, राज**[2]**भङ्गं च राष्ट्रे** प्रकटयतीति नियमः[3] । **तद्दृष्ट्वा** [178a] **दुर्निमित्तं पुनरपि च विभोर्मन्त्रजापं प्रकुर्याद्** आचार्यः । यावन्निमित्तं पुनर्भवति । ततो **भूयो लब्धे निमित्ते समविषमपदैः सूत्रपातो विधेयः** । इहाचार्यस्य वामे पर्यङ्कं दक्षिण[4]पादतलं भूमिनिषण्णं समपदेन । एवं व्यतिक्रमेण विषमपदेन सूत्रपातो विधेय इति नियमः ॥ ३३ ॥

इदानीं परिघ उच्यते—

प्रज्ञोपायाङ्गमध्ये भवति सपरिघो मण्डले वर्जनीयो
भूमौ संग्रामकाले शिखिपवनगतः सैन्यमध्ये फणीव ।
संग्रामे सैन्यनाशो भवति भुवितले त्वङ्गयुद्धे प्रहारः
तस्माद्युद्धे च सेके त्वतिबलपरिघो मन्त्रिणा वेदितव्यः ॥ ३४ ॥

इह **प्रज्ञोपायाङ्गमध्ये प्रभवति परिघो मण्डले वर्जनीय** इति । इह प्रज्ञाङ्गं दक्षिणपश्चिमम्, उपायाङ्गं पूर्वोत्तरम् । अनयोर्मध्ये परिघो मण्डले वर्जनीयः । एवं **भूमौ संग्रामकाले शिखिपवनगत** इति । आग्नेय्यां वायव्यां दिशि यावद्गतयोर्द्वयोः **सैन्ययोर्मध्ये** फणीव दण्डाकारः । **संग्रामे सैन्यनाशो भवति, भुवितले** परिघलङ्घनात् ।[5] **अङ्गयुद्धे प्रहारो** भवति मण्डले कलहविग्रहो भवति । **तस्माद्युद्धे च सेके त्वतिबलपरिघो मन्त्रिणा वेदितव्य** इति नियमः ॥ ३४ ॥

इदानीमिष्टदेवतालम्बनमुच्यते संक्षेपतः—

आद्यैः काद्यैः सवज्रैः स्वहृदयकमले चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि
ध्यात्वा श्रीकालचक्रं शशधरमदनाक्रान्तमालीढपादम् ।

---

१. च. भयकरं । २. ख. च. छ. भङ्गश्च । ३. भो. 'नियमः' नास्ति । ४. च. दक्षिणे ।
५. क. ख. छ. अङ्क ।

प्रज्ञाभर्त्रोर्हृदब्जे सरविशशिपुटे स्वस्ववज्राङ्कुशेन
बुद्धानाकृष्य देवी रजसि समरसा न्यस्तसूत्रे च भाव्याः ॥ ३५ ॥

आद्यैरिति (178b) आकाराद्यैः स्वरैः, **काद्यैरिति** ककाराद्यैर्व्यञ्जनैश्चन्द्रसूर्यात्मकैः । **सवज्रैरिति** हूँकारसहितैः । **स्वहृदयकमले चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि** वक्ष्यमाणक्रमेण **ध्यात्वा श्रीकालचक्रं शशधरमदनाक्रान्तमालीढपादं प्रज्ञाभर्त्रोर्हृदब्जे सरविशशिपुटे स्वस्व वज्राङ्कुशेन बुद्धानाकृष्य देवीरिति । रजसि समरसा** बुद्धा भाव्या रजआकारेण, **न्यस्तसूत्रे च** देव्यो **भाव्याः** सूत्राकारेणेति नियमः ।

इदानीं पूर्वभूम्यावाहनाद्यमारभ्य इदं समाधिं यावन्मन्त्रविधिरुच्यते । देवतासमाधिर्मारनि[1]ग्रहं मन्त्रं कालचक्रभगवतोऽङ्गन्यासः कायवाक्चित्तशोधनं चोच्यते ।

इह प्रथमं साधनापटले वक्ष्यमाणक्रमेण मुखविशुद्धिं तथागतानां पूजां पापदेशनां पुण्यानुमोदनां त्रिशरणगमनमात्मभावनिर्यातनं बोधिचित्तोत्पादनं मार्गाश्रयणं [2]कृत्वा ततः शून्यतालम्बनं कृत्वा देवतानिष्पादनं प्रति कायवाक्चित्तज्ञानविशोधकानि मन्त्रपदानि भवन्ति । ॐ आः हूं हो हं क्षः प्रज्ञोपायात्मककायवाक्चित्तज्ञानाधिपते मम कायवाक्चित्तज्ञानवज्रं वज्रामृतस्वभावं कुरु कुरु स्कन्धधात्वायतनं निःस्वभावं स्वाहेति । इदं मन्त्रमुच्चार्य उष्णीषोपरि वंकारपरिणतं वज्रचन्द्रमण्डलं षोडशकलापूर्णं ध्यायान्मन्त्री । ततस्तेनोष्णीषमारभ्य पादनखान्तं यावत् स्वशरीरं सर्पकञ्चुकवत् त्यजेत् त्रीन् वारान् । ततः शशाङ्कवपुरात्मानं ध्यायात्, शान्तौ पुष्टौ च वश्याकृष्टौ सूर्यमण्डलेन रक्तवर्णं ध्यायात्, एवं [3]रेफपरिणतेन । मारणोच्चाटने यंकारपरिणतेन [4]कृष्णराहुमण्डलेन । स्तम्भनमोहने लंकारपरिणतेन पीतपुच्छराहुमण्डलेन पीतेनेति । प्रत्युज्जीवने हंकारपरिणतेनाकाशमण्डलेन विश्ववर्णेन हरितेन हरितवर्णेनात्मानं ध्यायान्मन्त्रीति । ततो मन्त्रमिदमुच्चा[179a]रयेत् । ॐ स्वभावशुद्धाः सर्वधर्माः स्वभावशुद्धोऽहमित्युच्चार्य ततो ललाटे ॐ शुक्लममिताभम्, कण्ठे आः रक्तं रत्नसंभवम्, हृदये हूं कृष्णममोघसिद्धिम्, नाभौ होः पीतं वैरोचनम्, उष्णीषे हं श्याममक्षोभ्यम्, गुह्ये क्षः नीलं वज्रसत्त्वं न्यसेद् वक्ष्यमाणभुजवर्णायुधधरमिति वज्रवक्त्रशुद्धिः षट्कुलन्यासविधिनियमः ।

इदानीं करशुद्धिन्यासमन्त्रमुच्यते । [5]ॐ ह्लः [6]सर्वास्त्रराज मारक्लेशान्त[7]कर वज्रतीक्ष्ण दुःखच्छेद मम करं विशोधय स्वाहा । अनेन मन्त्रेण परस्परं करेण करं

१. ग. च. निग्रह । २. ग. च. 'कृत्वा' नास्ति । ३. भो. Raṁ Yig (रंकार) । ४. भो. sGra gCan Gyi dKyil ḥKhor Gyis bDag Po (राहुमण्डलाधिपेन) । ५. क. वं ह्लः । ६. क. सर्वास्तु, ग. च. सर्वासु । ७. भो. ०शान्तक ।

मर्दयेत् । इति करप्रक्षालनमन्त्रः । ततः पूर्वोक्तक्रमेण अकारादिलकारान्ताः पञ्चदश स्वराः—अ इ ऋ उ ऌ । अ ए अर् ओ अल् । ह य र व ल[1] इति वामकराङ्गुलीपर्वसन्धिषु न्यस्तव्याः कनिष्ठामूलपर्वादिषु । दक्षिणकरे वृद्धाङ्गुष्ठोर्ध्वपर्वादारभ्य कनिष्ठाधस्तृतीयं पर्व यावद् लाकारादयो देयाः—ला वा रा या हा । आल् औ आर् ऐ आ ॡ ऊ ॠ ई आ इति पृथिव्यादिक्रमेण । ततो हस्तसंपुटे [2]हूंकारं नीलवर्णं चन्द्रार्कयोर्मध्ये ध्यात्वा [3]ततस्तैश्चन्द्रार्कराहुबीजैः पञ्चशूकवज्रमुद्रां बन्धयेद् वक्ष्यमाणाम् । [4]तया उष्णीषादारभ्य [5]पादाङ्गुलीनखपर्यन्तमात्मानं संस्पर्शयेत् । तत इदं मन्त्रमुच्चारयेत्—ॐ आः हूं हो[6] हं क्षः कायवाक्चित्तज्ञानाधिपते वज्रकाय मम कायवाक्चित्तज्ञानवज्रं वज्रकायस्वभावं कुरु कुरु स्वाहा । [7]ततोऽहङ्कारं ॐ सर्वतथागतवज्रकायस्वभावात्मकोऽहमिति कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्धिः ।

ततः षट्कुलन्यासं कृत्वा पश्चात् षडङ्गन्यासं करोति । कराभ्यां संपुटं कृत्वा अङ्गुष्ठयुग्मेन हृदये ॐ ह्ॡं हृदयाय नमः । शिरसि ॐ [8]ह्लं शिरसे स्वाहा । शिखायां ॐ [9]हॄ शिखायै वौषट् । सर्वाङ्गे ॐ ह्रीं कवचाय हुं । उभयहस्ताभ्यां सर्वाङ्गं [10]संस्पर्शयेत् । ॐ ह्रां नेत्राय वषट् नेत्रे । ॐ ह्राः [179b] अस्त्राय फट् । सर्वदिक्षु तर्जन्यङ्गुष्ठछोटिकया शुभे वामया अशुभे दक्षिणया न्यसेदस्त्रम् । [11]ततः ॐ सर्वतथागतहृदयशिरःशिखाकवचनेत्रास्त्रवज्रषडङ्गस्वभावात्मकोऽहमिति षडङ्गन्यासविधिः ।

असौ षडङ्गः पृथिव्यादिना येन पुनः संध्याभाषान्तरेण हृदयं नाभिः, एवं हृदयकण्ठललाटोष्णीषाद्यं शिर आदिना गृह्यते । ततः पूर्वोक्तरक्षाचक्रं करोत्यनेन मन्त्रेण ॐ आः हूँ [12]रः वज्रचन्द्रसूर्यराहुकालाग्नयः कायवाक्चित्तज्ञानवज्रप्राकारान् कुरु कुरु स्वाहा, इति प्राकारमन्त्रः । ॐ [13]हूँ विश्वकाय[14]वज्र वज्रकूटागारं कुरु कुरु स्वाहा, इति कूटागारमन्त्रः । ॐ हाँ याँ राँ वाँ लाँ वज्राकाशवायुतेजउदकपृथिवीवज्रस्वभावपञ्चधातवो वज्रमण्डलानि कुरु कुरु स्वाहेति[15], अधोमण्डलन्यासमन्त्रः । उपायतन्त्रे एभिरेव कूटागारादिकं करोति । अत्र मेरुमूर्ध्नि मण्डलं न भवति । ॐ [16]पं विश्ववज्रपद्म[17]कुरु कुरु स्वाहा, इति पद्ममन्त्रः । ॐ रः वज्रसूर्य वज्रसूर्यासनं कुरु कुरु स्वाहा, इति सूर्यासनमन्त्रः ।

ततस्तदुपरि तन्त्राधिमुक्त्याऽऽत्मानं क्रोधेन्द्रं ध्यायात् । ॐ हूँ क्रोधेन्द्रोऽहं क्रोधानामाज्ञादायकः स्वाहा । ततः क्रोधानाज्ञापयेत् स्वस्वमन्त्रपदैः । ॐ हँ वज्रक्रोधराज महोष्णीषोर्ध्वदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा । ॐ यँ वज्रक्रोधराजातिबल सर्वविघ्नान्तक पूर्वदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा । ॐ रँ वज्रक्रोधराज जम्भक[18] दुष्टप्रज्ञान्तक दक्षिणदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा । ॐ वँ वज्रक्रोधराज

१. भो. ल । २. क. ख छ. हूँ । ३. च. ततश्च तै । ४. क. तथा । ५. क. ख. ग. छ. पादान्तमङ्गुली । ६. छ. हो । ७. भो. De lTar (तथा) । ८. क. ख. क्लूं । ९. क. ख. ऋं । १०. ग. च. भो. 'सं' नास्ति । ११. क. ख छ. 'ततः' नास्ति । १२-१३. भो. हुँ । १४. छ कायेवज्रकूटा । १५. क. ख. छ. स्वाहा । १६. 'पं' नास्ति कुत्रापि, गृ. भो. । १७. भो. Padme (पद्मे) । १८. छ. जम्भुक ।

मानकविरागपश्चान्तक उत्तरदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ लँ वज्रक्रोधराज [1]स्तम्भक यमान्तक पश्चिमदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ततो भाववशाद्[2] विदिक्षु दीर्घवर्णा ग्राह्याः संहारक्रमेणेति। [180 a] ॐ लाः वज्रक्रोधराज महाबल वायव्यां दिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ वाः वज्रक्रोधराजाचल ईशानदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ राः वज्रक्रोधराज टक्कि नैर्ऋत्यां दिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ याः वज्रक्रोधराज नीलदण्डाग्नेय्यां दिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ हाः वज्रक्रोधराज [3]सुम्भाधोदिशि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। एवमेभिर्मन्त्रपदैस्तन्त्रोक्तसाधनविधिना क्रोधराजान् ध्यायान्मन्त्री। ततः सर्वतथागतरक्षाचक्रस्वभावात्मकोऽहमित्युच्चार्या-हङ्कारमुद्वहेदिति रक्षाचक्रनियमः।

ततः स्वहृदये [4] पंकारपरिणतं विश्वपद्मं तदुपरि कर्णिकायां अँकारपरिणतं चन्द्रमण्डलं तदुपरि देवताधिमुक्तिवशाद् ज्ञानबीजं तस्माद्वज्रादित्यवत् सर्वतथागत-प्रबोधमानान् रश्मीन् गगनधातौ स्फारयेत्। ततस्तान् परावृत्य स्वहृदि ज्ञानबीजे प्रवेश्य आकाशधातौ मण्डलाकारस्फारितानां बुद्धानां [5]पूजार्थं गन्धमालाद्यान् स्फारयेदिति स्वस्वज्ञानबीजादिति। ॐ च् छ् ज् झ् ञ [6]वज्रगन्धे गन्धार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ च् छ् ज् झ् ञा वज्रमाले वज्रमालार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ट् ठ् ड् ढ् ण [7]वज्रधूपे धूपार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ट् ठ् ड् ढ् णा वज्र[8]प्रदीपे प्रदीपार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ प् फ् ब् भ् म वज्रामृते[9]नैवेद्ये पूजार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ प् फ् ब् भ् मा [10]वज्रामृते अक्षत-फलार्चनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ त् थ् द् ध् न वज्रलास्ये वस्त्राभरणपूजां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ त् थ् द् ध् ना वज्रहास्ये घण्टादर्शपूजां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ क् ख् ग् घ् ङ वज्रवाद्ये[11] वाद्यपूजां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ क् ख् ग् घ् ङा वज्रनृत्ये[12] [13]नृत्यपूजां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ स्‿प् ष् श्‿क वज्रगीते गीतपूजां कुरु कुरु स्वाहा। ॐ स‿प ष श‿का वज्र-कामे सर्वबुद्धबोधिसत्त्वानां क्रोधादीनां वज्र[14]मयीं सुरतपूजां कुरु कुरु स्वाहा। इत्येभि-र्देवीमन्त्रपदैर्मनोमयीं पूजां कृत्वा बुद्धादीनामेवं वन्दना पूजनेति। ततस्तन्त्रोक्तविधिना पापदेशनां पुण्यानुमोदनां रत्नत्रयशरण[180b]गमनमात्मभावनिर्यातनं बोधिचित्तोत्पादनं कुर्यादिति सप्तविधपूजाविधिः।

T 378

ततः शून्यतालम्बनं मण्डलराजाग्री कर्मराजाग्री बिन्दुयोगः सूक्ष्मयोगो [15]मन्त्रिणा कर्तव्य इति। ततस्तन्त्राधिमुक्तिवशादिष्टदेवताहङ्कारं कारयेत्। ॐ सर्वतथागताधिपति-वज्रसत्त्वोऽहं दुर्दान्तदमक[16] हूँ[17] हूं फट् स्वाहा। अनेनात्मानमधितिष्ठेत्[18], इति देवता-

१. ग. सुम्भक। २. ग. 'वशाद्…ग्राह्याः' नास्ति। ३. क ख. ग. च. छ. स्तम्भाधो। ४. छ. हृदयं। ५. ग. पूजनार्थं। ६ क. ख. छ. गन्धवज्रे। ७. ग. च. भो. 'वज्र' नास्ति। ८. ग. दीपे। ९. ग. नैवेद्य, च. भो. वज्रनैवेद्यार्चनं। १०. ग. च. भो. वज्राक्षतेऽक्षत। ११. च. वज्रवाद्य। १२. क. ख छ. नृत्यं। १३. ग. वज्रनृत्य। १४. क. ख. छ. 'मयीं' नास्ति। १५. ग. च. भो. कर्तव्यो मन्त्रिणेति। १६. ग. च. कः। १७. भो हुँ हूँ। १८. भो. Byin Gyis brLab Par Bya sTe (अधिष्ठयेत्)।

हङ्कारनियमः। इति देवताहङ्कारमुत्पाद्य ततो भूमिपरिग्रहं शिष्यसंग्रहं कुर्यादिति। पूर्वं देशग्राम[1]क्षेत्राधिपतेर्बलिं दद्याद् विशोधयित्वा मन्त्रपदैरेभिः–ॐ ॐ वज्रचन्द्र सर्व[2]धर्मसुविशुद्धस्वभाव सर्वधर्मं विशोधय स्वाहा, ॐ आः वज्रसूर्यसर्वधर्मप्रबोधक सर्व-धर्मान् प्रबोधय स्वाहा, ॐ हूँ[3] वज्रानल सर्वधर्मप्रदीपक सर्वधर्मान् प्रदीपय स्वाहा, ॐ [4]हो सर्वधर्मवज्रामृतकर सर्वधर्मान् वज्रामृतं कुरु कुरु स्वाहा। एभिर्मन्त्रपदैर्यथा-क्रमेण वामहस्तेन शोधयेत्। दक्षिणहस्तेन [5]बोधयेत्। संस्पृश्या[6]ऽञ्जल्या पिहित्वा प्रदीपयेत्।

वज्रगरुडमुद्रया वज्रामृतं कृत्वा त्रैलोक्यविजयमुद्रया [7]देशाधिपस्यावाहनं कुर्यात्। श्वानमुद्रया ग्रामस्थानाधिपानाम्, क्रोधराजानां पञ्चशूकमुद्रया, कृत्स्नानां कर्तृ-मुद्रया, देवतानां खड्गमुद्रया, ग्रहाणां रत्नमुद्रया, नागानां पद्ममुद्रया, प्रेतानां चक्रमुद्रया आवाहनं कृत्वा [8]तत ओं आः हूं अमुक आगच्छ आगच्छ शीघ्रमिदं बलिं गृह्ण गृह्ण भुक्त्वा पीत्वा तृप्तिं कृत्वा सर्वसत्त्वानां शान्तिचित्तं कृत्वाऽपरस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा। भूमिपरिग्रहकाले, अपरकाले स्वस्थानं गच्छेति वक्तव्यम्। एवं सर्वेषां प्रत्येकबलिं दिग्विभागे पूर्वोक्तविधिना संप्रेषयेदिति बलिविधिः।

ततः स्व[9]हृदयचन्द्रमण्डले लांकारपरिणतं पीतचक्रं ध्यायात्। [10]तत्परिणतां पृथ्वीं त्रिमुखां षड्भुजां [181a] दक्षिणे चक्रदण्डवज्रधराम्, वामे शङ्खश्रृङ्खलावज्रघण्टाधरां पीतवर्णां पीतवस्त्रां पीतरत्नाभरणां ध्यायात्। ततः समयसत्त्वं ज्ञानसत्त्वेनैकीकृत्य वक्ष्य-माणक्रमेण ततो बाह्यपृथिवीदेवतामावाहयेदनेन मन्त्रपदेन—ॐ लाँ आः[11] वसुन्धरि सर्वबुद्धजननि सर्वसत्त्वोपकारिणि वज्रसत्त्व आज्ञापयति शीघ्रमागच्छ आगच्छ इदं गन्धं[12] पुष्पं धूपं दीपं नैवेद्यं फलाक्षतं ददामि तव त्वमेव गृह्ण गृह्णमण्डलार्थं मम स्थानं दद सर्वसत्त्वानां शान्तिं पुष्टिं कृत्वा शुभचित्तेन इदं स्थानं त्यक्त्वाऽ[13]परं स्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा। इति पृथिवीविसर्जनविधिः।

ततो मारनिर्घाटन(तनं) कुर्यात् पूर्वोक्तविधिना[14] एभिर्मन्त्रपदैः—ॐ आः हूँ[15] होः[16] हं क्षः ह्वाः ह्वाः ह्लाः ह्लाः र र र र वज्रानलसर्वावरणधर्मप्रलयस्वभाव सर्व-मारकायिकविघ्नविनायकादीनां दशदिग्गतानां कायवाक्चित्तानि दह दह पच पच भस्मीकुरु भस्मीकुरु [17]हूँ हूँ फट्[18]। इति मारनिर्घाटन(र्घातन)विधिः।

१. च. भो. ग्रामाधि। २. भो. धर्मान्। ३. भो. हुंः। ४. क. 'हो' नास्ति, ग. च. होः। ५. भो. rGyas Par Byaho (वर्धयेत्)। ६. ग. श्याऽघोऽ। ७. भो. Yul Gyi bDag Po (देशाधिपत्या)। ८. ग. च. भो. ततः। ९. च. हृदये। १०. ग. च. ततः। ११. छ. हूं, भो. हुँ इत्यधिकम्। १२. च. अर्घं इत्यधिकम्। १३. च. पर। १४. ग. च. भो. समाधिना। १५. भो. हुँ। १६. छ. हो। १७. भो. हुँ हूँ। १८. ग. फट् फट्।

[1]ततोऽपरविघ्नविनायकादीन् वज्राङ्कुशेनाकृष्य वज्रपाशेन बन्धयित्वा वज्र-कीलक्रोधराजं नाभेरधः शूलाकारं दशस्थानेषु दुष्टोपरि निमग्नं भावयेत् पञ्चवर्णंत एभिर्मन्त्रपदैः—ॐ आः [2]हूँ होः हं क्षः हूँ हूँ हूँ [3]फट् फट् फट् वज्रकीलक[4] कायवाक्चित्त-ज्ञानाधिपते षण्मुख षड्भुज षट्चरण सर्वविघ्नविनायकादिदुष्टानां कायवाक्चित्तज्ञानानि[5] कीलय कीलय [6]हूँ हूँ फट् फट्। ततो वज्रमुद्गरमन्त्रः—ॐ ल्लः[7] वज्रमुद्गर मारादीनां शिरसि कण्ठे हृदये नाभौ गुह्येऽन्ते वज्रकीलकानाकोटय आकोटय क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षृं क्षॄं क्षुं क्षूं क्ष्लृं क्ष्लॄं हूँ हूँ हूँ फट् फट् फट्। इति कीलनविधिः। ततः कीलकानां [8]रक्षार्थं दशक्रोधराजान् पूर्वोक्तविधिना न्यसेदिति।

ततो वामदक्षिणपाद[9]तले [10]हूँ हूँ विन्यस्य पञ्चशूकवज्रमुद्रया पादतलं (181b) समंस्पृश्य वज्रपदैर्मण्डलमध्ये भूम्यां चङ्क्रमेत् कालचक्रमूर्त्या आलीढप्रत्यालीढपदैः सम-पदैश्च। पूर्वे यं याः पादतले[11] दत्त्वा खड्गमुद्रया स्पृष्ट्वा मण्डलपदैः चङ्क्रमेत्। दक्षिणे रं राः दत्त्वा रत्नमुद्रया स्पृष्ट्वा ललितपदैश्चङ्क्रमेत्। पश्चिमे लं लाः दत्त्वा चक्रमुद्रया स्पृष्ट्वा वज्रासनेनाधि[12]तिष्ठेत् विशाखपदैर्वा[13]। उत्तरे वं वाः दत्त्वा पद्ममुद्रया स्पृष्ट्वा पद्मासनेनाधिष्ठाय ताण्डवपदैश्चङ्क्रमे[14]दिति। ततो वज्रगन्धादिभिर्मन्त्रपदैर्गन्धादि-द्रव्यैर्मण्डलभूमिमर्चयित्वा वज्रभूमिमावाहयेत् पूर्वोक्तविधिना। अत्र मन्त्रपदानि—ॐ लां [15]आ हूँ वज्रभूमि तिष्ठ मा चल [16]हूँ हूँ फट् वज्रधर आज्ञापयति स्वाहा। ततो भूयोऽर्घादिकं कारयेन्मन्त्री। इति [17]भूम्यधिवासनविधिः।

ततो वज्रकलशानधिवासयेत्। [18]तत्र मन्त्रपदानि—ॐ हं हां हिं हीं हृं हॄं हुं हूँ ह्लृं ह्लॄं वज्रपद्मामृतघट सुविशुद्धधर्मधातुस्वभाव सर्वधर्मान् सुविशुद्धधर्मधातुस्वभावान् कुरु कुरु स्वाहा। मण्डलमध्ये विजयकलशं स्थापयेद् गन्धादिकं दत्त्वेति घटादिवासनम्[19]।

ततो वज्रसूत्राधिवासनं कुर्यात्। [20]तत्र मन्त्रपदानि—ॐ आं ईं[21] ॠं [22]ॡं वज्र-सूत्र सर्वधर्मैकस्वभाव सर्वधर्मान् एकाकारस्वभावान् कुरु कुरु स्वाहा। गन्धादीन् दत्त्वा पूर्वभूम्यां निवेशयेत्। सूत्राधिवासनविधिः। ततो वज्ररजोऽधिवासनं करोति। अत्र[23] मन्त्रपदानि—ॐ अं इं ऋं उं लृं सुविशुद्ध[24]पञ्चस्कन्धस्वभाव पञ्चस्कन्धान् सुविशुद्धधर्मान्

---

१. ग. अतो। २. भो. हुँ। ३. क. 'फट्' नास्ति। ४. भो. कील। ५. भो. ज्ञानानं। ६. भो. हुँ हूँ। ७. ग. ल्हृ, छ., ल्हृ, भो. ल्लृ.। ८. ग. च. रक्षणार्थं। ९. च. तलेन। १०. ग. च. भो. हुँ हूं। ११. च. तलं खड्ग। १२. क. ख. छ. तिष्ठयेद्। १३. भो. bCag Par Bya (चङ्क्रमेत्)। १४. भो. मेद् वा। १५. ग. च. भो. आः, ख. आं। १६. भो. हुँ हूँ। १७. क. ख. छ. भूम्या। १८. क. ख. तन्त्र, भो. ḥDir (अत्र)। १९. भो. Lhag Par gNas Pahi Cho Gaḥo (०धिवासनविधिः)। २०. च. ततः। २१. सार्व० ॠं। २२. सार्व० ॡं। २३. भो. De La (तत्र)। २४. क. ग. च. छ. 'पञ्चस्कन्धस्वभाव' नास्ति।

कुरु कुरु स्वाहा। गन्धादिकं दत्त्वा रजोभाण्डानि पश्चिमभूम्यां निवेशयेदिति रजोऽधिवासनविधिः।

ततो वज्राधिवासनम्। तत्र मन्त्रपदानि—ॐ हूँ [1] क्रोधवज्र सर्वसत्त्वकरुणात्मक सर्वधर्मैकसुखस्वभाव सर्वधर्मान् वज्रसुखस्वभावान् कुरु कुरु स्वाहा। गन्धादिकं दत्त्वा दक्षिणे निवेशयेदिति [2]वज्राधिवासना(न)विधिः।

ततो वज्रघण्टाधिवासनां(नं) करोति। तत्र मन्त्रपदानि-ॐ [3]हो व[182a]ज्रघण्टे सर्वधर्मैकप्रज्ञाध्वनिस्वभावे सर्वाकार[4]सर्वधर्मप्रबोधनि सर्वधर्मान्निःस्वभावान्[5] प्रबोधय प्रबोधय स्वाहा। गन्धादिकं दत्त्वा उत्तरभूम्यां निवेशयेदिति वज्रघण्टाधिवासन[6]विधिः। इति भूम्यादिसंग्रहविधिः।

ततः शिष्याधिवासनम्। आदौ मण्डलाध्येषणकाले, मध्ये भूम्यादिसंग्रहे, अन्ते मण्डलप्रवेशकाले च[7] सर्वत्र मण्डलं कृत्वा दन्तकाष्ठं दत्त्वा ततो रक्षां करोति। तत्रैष विधिः—स्नातस्य धौतवस्त्रस्य शान्त्यादिकर्मानुरूपेण तस्यामेव भूम्यां मण्डलं कृत्वा उदुम्बरं दन्तकाष्ठं द्वादशाङ्गुलमन्यक्षीरवृक्षजं वा शिरसि पुष्पमालाबन्धं गन्धादिभि-रर्चयित्वा पूर्वाभिमुखस्य देयमनेन मन्त्रेण—ॐ आः हूँ[8] [9]होः हं क्षः वज्रदन्तकाष्ठ चतुर्विमोक्ष [10]मुखविशुद्धस्वभाव कायवाक्चित्तज्ञानमुख[11]दन्तादिमलं विशोधय विशोधय स्वाहा। इति दन्तकाष्ठं दत्त्वा [12]अन्त्याधिवासने ऊर्ध्वतः प्रक्षिप्तं मण्डले पतितं दन्तकाष्ठं लक्षयेत्। यत्र पतति [13]येन शिरसा तत्रस्थं कर्मप्रसरादिकं तस्य सिद्धयति। T 379
इति दन्तकाष्ठविधिः।

ततो मण्डलभूम्यां[14] शिष्यं प्रवेश्य शिरसि कण्ठे हृदि नाभौ उष्णीषे गुह्ये ॐ आः [15]हूँ होः[16] हं क्षः षट्कुलैर्न्यासं कृत्वा वज्रसत्त्वं प्रचोदयेद् एभिर्मन्त्रपदैः—ॐ अ आ अं अः वज्रसत्त्व महासुखवज्र कालचक्र शिष्यस्याभिमुखो भव सन्तुष्टो भव वरदो भव कायवाक्चित्ताधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा। इति शिष्याधि[17]वासनविधिः। ततः शिष्यं विसर्जयित्वा मण्डलमध्ये विजयकलशम्, पूर्वे वज्रसूत्रम्, पश्चिमे वज्ररजोभाण्डानि, दक्षिणे वज्रम्, उत्तरे घण्टां, द्वारविभागं ज्ञात्वा[18] ददात्याचार्यः। ततस्तान् [19]पञ्चस्थानेषु दत्त्वा दक्षिणे शुभाशुभनिमित्तार्थं शय्याधिवासनं[20] करोत्यनेन मन्त्रेण—ॐ [21]होः वज्रकमलदलगर्भे शय्ये वज्रसुखमहानिद्रां करोमि यथा तथागतेन कृ[182b]ता हः हः स्वाहा। इति शय्याधिवासनम्। तत आचार्यः पश्चिमशिरःपूर्वपादः शयनं करोति।

---

१. भो. हुं। २ क. ख. वज्रासनविधिः। ३. ग. च. भो. होः। ४. च. भो. सर्वाकारे। ५. क. ख. च. छ. वेन। ६. च. वासना। ७. च. 'च' नास्ति। ८. भो. हुं। ९. क. ख. छ. हो। १०-११. क. सुख। १२. च. अग्न्या। १३. ग. तेन। १४. ग. च. भूमौ। १५. ख. ग. च. भो. हुं। १६. क. ख. छ. हो। १७. ग. च. वासना। १८. भो. 'ज्ञात्वा' नास्ति। १९. ग. च. पञ्चसु। २०. च. वासनां। २१. क. ख. छ. हो।

तत्र निमित्तं पश्यति। भावनाबलेन वा स्वप्नेन वा यदि पश्येद् बुद्धबोधिसत्त्वदेवीगणान् वीणादिचिह्नहस्तान्, तदा शोभनम्। अथ वज्र[1]डाकिनीः[2]कर्तिकपाल[3]हस्ताः क्रोधेन्द्रान् वा[4] मारविघ्नविनायकादीनां विनाशं कुर्वतो [5]रक्षाचक्रान्तं यावत्तथापि शोभनम्। अथ किञ्चिन्न पश्यति तदा मध्यमम्। अथ मारकायिकान् क्षुत्पिपासार्तरूक्षशुष्ककायान् [6]कर्तिकपालहस्तान् साधुजनापकाररतान् पश्येदाचार्यः शिष्यो वा, तदा दुर्निमित्तं भवति। तं दृष्ट्वा वज्राचार्यः शय्यां विहाय मण्डलपूर्वभूम्यां पूर्वोक्तरक्षाचक्रं ध्यात्वा पुनस्तेभ्यो महोदारबलिं दद्यात् पूर्वोक्तविधिना। पुनरपरशोधनमन्त्रः—ॐ फ्रें वज्रडाकिनि[7] वज्रधात्वीश्वरि[8] गगनस्वभावसर्वद्रव्यविशोधनि सर्वद्रव्याणि विशोधय [9]हूँ फ्रें फट्। इति बलि[10]विशोधनमन्त्रः। विघ्नोपशमने ततो बुद्धानावाहयेत्—

आयान्तु बुद्धाः पितरः समातरः सपुत्रभृत्यैः सह मित्रबान्धवैः।
वृताः समग्राः सुरदेवता[11]गणैः संतोष्यमाणा वरवज्रसत्त्वम्॥

इत्यनया गाथया तथागतादीन् स्वकाये स्वस्वधातौ विन्यसेदिति बुद्धावाहनविधिः।

ततो वज्रडाकिनीमाकर्षयेत्। तत्र मन्त्रपदानि—ॐ ह हा हि ही वज्रभैरव आकर्षय आकर्षय प्रवेशय प्रवेशय बन्धय बन्धय तोषय तोषय जः हूँ वँ होः[12] वज्रडाकिनीनां हृदयं हुँ हूँ फ्रँ फ्रँ[13] फट्, इत्याकर्षणमन्त्रः। ततो वज्रमुद्रया वज्रडाकिनीनां बलिं गन्धपुष्पधूपप्रदीपाक्षत[14]सहितां पूर्वोक्तविधिना दत्त्वा बाह्यश्मशानभूमौ खानपानं कुर्वतीश्चिन्तयेदिति डाकिन्याकर्षणमन्त्रः। ततो मारविघ्नोपद्रवशमनाय रक्षाचक्रपूर्वकं वज्रभैरवयोगमालम्ब्य साधनविधिना षडङ्गादिमन्त्रन्यासं कृत्वा ज्ञानसत्त्वमेकीकृत्य समय[183a]सत्त्वेन सह साधनोक्तविधिना वक्ष्यमाणं षड्विंशतिभुजं द्वादशलोचनं षट्स्कन्धं चतुर्मुखं त्रिग्रीवं द्विचरणं वक्ष्यमाणायुधधरं विचिन्त्य पूर्वोक्तानि बीजाक्षराणि स्वशरीरे विन्यस्य ततोऽभिषेकं प्रार्थयेदिति। तत्र मन्त्रपदानि—ॐ हँ हाँ हिँ हीँ हृँ हॄँ हुँ हूँ हॢँ हॣँ आ ई ॠ ऊ ॣ वज्रडाकिन्यो[15] वज्रामृतघटैरभिषिञ्चन्तु मां स्वाहा। ॐ अँ इँ ॠँ उँ ॡँ सर्वबुद्धा[16] वज्रमुकुटं[17] मम पञ्चबुद्धात्मकं बन्धयन्तु हुँ हूँ फट्। ॐ अ आ अँ अः ह हा हं हः फ्रँ होः सर्वपारमिता मम वज्रपट्टं बन्धयन्तु हुँ हूँ फट्। ॐ [18]हूँ होः[19] विज्ञानज्ञानस्वभावे करुणाप्रज्ञात्मके वज्रवज्रघण्टे सव्येतरकरयोर्मम वज्रसत्त्वः सप्रज्ञो ददातु हुँ हूँ फट्। ॐ अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् अं अः सर्वबोधिसत्त्वाः सभार्याः सर्वदा

---

१. क. ख छ. डाकिनी। २. ग. च. भो. कर्तिका। ३. क. ख. छ. भो. हस्तां। ४ ग. 'वा' नास्ति। ५ छ. रक्षान्तं। ६. ग. च. कपालकर्तिका। ७. क. ख. ग. डाकिनी. छ. डाकि। ८. क. ०श्वरी, ग. ०श्वर। ९. भो. हुं, छ. हूँ फट। १०. ग. भो. ख. छ. प्रें। ११. भो. Lha Mo (देवती)। १२. क. ख. छ. हो। १३. क. १४. भो. ḥBras Bu (फल) इत्यधिकम्। १५. क. ख. छ. डाकिन्या। १६. भो. बुद्ध। १७. [illegible] १८. भो. हुं। १९. क. ख. छ. हो।

सर्वकामोपभोगं[1] वज्रव्रतं मम ददन्तु स्वाहा। ॐ ह हा य या र रा व वा ल ला सर्वक्रोधराजाः सभार्या मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासर्वसमतास्वभावं[2] वज्र[3]पूर्वङ्गमं नाम मे ददन्तु हुँ हूँ फट्। ॐ [4]वं एवं पद्मवज्रचिह्नौ प्रज्ञोपायौ मण्डलाधिपती वज्र[5]सुखज्ञानाङ्गं मम ददतां हं हः हूँ फट्। इत्यध्येषणां कृत्वा ततोऽभिषिक्तं सप्ताभिषेकैरात्मानं भावयेदिति। ततः सप्ताभिषेकलब्धोऽहङ्कारमावहेत्। ॐ सर्वतथागतसप्ताभिषेकसप्तभूमिप्राप्तोऽहमिति सप्ताभिषेकानुज्ञाविधिः।

ततो मन्त्री कलशादिकमुत्तराभिषेकं प्रार्थयेदेभिर्मन्त्रपदैः—ॐ ॐ प्रज्ञोपायौ कलशाभिषेकं मे ददतां हुँ हूँ फट्। ॐ आः प्रज्ञोपायौ गुह्याभिषेकं मे ददतां हुँ हूं फट्। ॐ हुं प्रज्ञोपायौ वज्रसत्त्वविश्वमातरौ प्रज्ञाज्ञानाभिषेकं मे ददतां हुं हूं फट्। इत्यध्येष्य तत आत्मानं वक्ष्यमाणविधिनाभिषिक्तं भावयेत्। ततोऽहङ्कारमावहेत्। ॐ ॐ वज्रसत्त्वेन वज्रकलशाभिषेकेणाभिषिक्तो वज्रसत्त्वपुत्रोऽचलाभूमिलब्धोऽहमिति। ॐ आः व[183b]ज्रसत्त्वेन गुह्याभिषेकेऽभिषिक्तो वज्रसत्त्वयुवराजो नवभूमिलब्धोऽहम्। ॐ हुं[6] वज्रसत्त्वेन प्रज्ञा[7]ज्ञानेनाभिषिक्तो द्वितीयवज्रधरो[8]ऽहं धर्ममेघाभूमिलब्धोऽहमित्यहङ्कारं कुर्यादित्युत्तराभिषेकविधिः। तत उत्तरादुत्तरं चतुर्थाभिषेकमुपदेशतः प्रार्थयेदनेन मन्त्रेण-ॐ हो[9] प्रज्ञोपायात्मक वज्रसत्त्व महा[10]मुद्राज्ञानाभिषेकं मे प्रयच्छ ॐ आः [11]हूं हो[12] फट्। [13]अतोऽध्येष्यात्मानं वैमल्येनाभिषिक्तं भावयेत्। ततो वज्रसत्त्वाहङ्कार[14]मुद्वहेत्। ॐ [15]होः धर्मधात्वक्षरचतुर्थाभिषेके[16]णाऽभिषिक्तो वज्रसत्त्वेनात्मनाहं द्वितीयो द्वादशभूमिलब्धो वज्रसत्त्वो [17]महार्थः परमाक्षरस्त्रैलोक्यविजयः कालचक्रो भगवान् [18]एवंकारः। इत्युत्तरोत्तराभिषेकविधिः॥

इदानीं षण्मुद्रामन्त्रपदानि-ॐ हं हः वामदक्षिणकर्णयोः वज्रकुण्डले हुं हूं फट्[19]। ॐ अं अः कट्यां कण्ठे वज्रमेखला वज्रकण्ठिके हुं हूं फट। ॐ अ आ वाम दक्षिणकरयोर्वज्ररुचकौ हुँ हूँ फट्। ॐ ह हा वामदक्षिणपादयोः वज्रनूपुरे हुँ हूँ फट्। ॐ हँ वँ पञ्चाक्षर[20] [21]महाशून्यस्वभाव महावज्रशिरोमणि शिरसि सर्वाङ्गे भस्म हुँ हूँ फट्। ॐ अँ अर्धनारीश्वर वज्रार्धचन्द्रवज्रपट्टोर्ध्वे हुँ हूँ फट्। ॐ अ अः अँ [22]वज्रस्वरैकत्रिस्वरस्वभाव वज्रयज्ञोपवीतस्कन्धे हुँ हूँ फट्। इति षण्मुद्राविधिः।

---

१. ग. च. भोग। २. क. छ. स्वभाव। ३. ग. छ. पूर्वं, च. पूर्वाङ्ग। ४. क ख. छ. 'वं' नास्ति। ५. छ. मुख। ६. छ. 'हुं' नास्ति। ७. च. ज्ञाना। ८. च. 'अहं' नास्ति। ९, ग. च. होः। १०. छ. महामहा। ११. भो. हुं। १२. ग. च. होः। १३. ग. च. भो. ततो। १४ ग. च. भो. मावहेत्। १५. छ. भो. हो। १६. क. ख. छ. ०केऽभिषिक्तो। १७. च. महासत्त्वः। १८. ग. च. एवाहङ्कार। १९. ग. च. भो. फट् फट्। २०. ग. च. भो. पञ्चाकार। २१. च. 'महा' नास्ति। २२. भो. [illegible]

ततो वक्ष्यमाणगजचर्ममुद्रया सहापरचतुर्मुद्रामन्त्रपदानि । ॐ क्षः दुर्दान्ताभिमाने[1]क्षयंकरव्याघ्रचर्म कटौ हुँ हूँ फट् क्षः त्रिंशत्स्वरसप्ततिह्रस्वदीर्घ[2]व्यञ्जनस्वभावदैत्यकुलशतशिरोभिर्मुण्ड[3]मालावलम्बिनीं स्कन्धे हुँ हूँ फट् । ॐ ह हि हृ हु ह्ऌ पञ्चस्कन्धविशुद्ध[4]स्वभावे शिरसि कपालमाले हुँ हूँ फट् । इति चतुर्मुद्राविधिः । एवं दशमुद्रादशपारमिताभेदेन षोडशस्थानभेदेन [184a] षोडशशून्यता इति मुद्रान्यासविधिः ।

ततो [5]दक्षिणवामकरेष्वस्त्राणि भावयेत् । तत्र मन्त्रपदानि [6]अस्त्रबीजेनोच्चारयेत् । ॐ क्ष्रः क्रोधवज्र हूँ[7] फट् । ॐ क्ष्रः वज्रखड्ग हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रत्रिशूल हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रकर्त्ति[8] हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रबाण हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्राङ्कुश हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रडमरुक हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रमुद्गर हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रचक्र हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रकुन्त हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रदण्ड हूँ फट् । ॐ क्ष्रः वज्रपर्शु हूँ फट् । इति दक्षिणायुधन्यासः । ततो वामे मन्त्रपदानि ॐ [9]ह्लांकारादिनोच्चारयेत् । ॐ ह्लां वज्रघण्टे[10] होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रखेटक होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रखट्वाङ्ग होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रकपाल होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रचाप होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रपाश होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्ररत्न होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रपद्म होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रशंख होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रादर्श होः फें फट् । ॐ ह्लां वज्रश्रृङ्खले होः फें फट् । ॐ हां [11]वज्रचतुर्वेदमुखस्वभावब्रह्मशिरः होः फें फट् । इति वामकरेषु [12]विन्यासविधिः ।

ततो गजचर्ममन्त्रपदानि—ॐ क्ष क्षा क्षि क्षी क्षृ क्षॄ क्षु क्षू क्ष्ऌ क्ष्ॡ क्षं क्षः ह हा हि ही हृ हॄ हु हू ह्ऌ ह्ॡ हं हः सर्वविघ्नविदारितगजचर्म[13]पेटार्द्ररक्तस्रवत् [14]हुँ फें सव्यवामकरमुष्टिभ्यां सतर्जनीभ्यां दक्षिणे शिरोऽग्रपृष्ठपादद्वयं लम्बमानं पादद्वयमुद्धृतं[15] चिन्तयेदिति चर्मोद्धरणविधिः ।

ततो दशनागराजान् विन्यसेत् । तत्र मन्त्रपदानि—ॐ हूँ[16] वज्रजय[17]नागेन्द्र वज्रजटा[18]मुकुटबन्धे तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ [19]फट् । ॐ [20]क्ष्रूँ वज्रविजयनागेन्द्र वज्रपट्टबन्धे तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ फट्[21] । ॐ ह्यँ ह्या वज्रकर्कोटकवज्रपद्म वामदक्षिणकुण्डलयोस्तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ फट् । ॐ ह्लँ ह्ला वज्रवासुकिशङ्खपालौ वामदक्षिणरुचकयोः तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ

१. छ. मानै, भो. मान । २. भो. व्यञ्जनं । ३ ग. च. भो. माले स्कन्धावलम्बिनि, ख. छ. ०लम्बिनी । ४. छ. भो. स्वभाव । ५. च. वामदक्षिण । ६. ग. अत्र । ७. भो 'हुं' सर्वत्र ह्रस्व एव । ८. भो. कर्तरि । ९. ग. ह्ला । १०. क. छ. हो फे, ग. ह्लें-सर्वत्र, भो. हो फें-सर्वत्र । ११. ग. च. भो. 'वज्र' नास्ति, च. चतुर्मुखवेदमुख । १२. ग. च. भो. 'चिह्न' इत्यधिकम् । १३. सर्वत्र पटार्द्व, भो. । १४. छ. हूं । १५. क. मुद्धतं । १६. भो. हुं । १७ ग. 'जय' नास्ति । १८. क. ख ग. मकुट । १९. फट् वारद्वयं सर्वत्र, गृ. भो. । २०. छ. क्षूं । २१. ग. 'फट्' वारद्वयम् ।

[1]फट् । [184b] ॐ ह्वँ ह्वा [2]वज्रानन्तकुलिकौ मेखलाकण्ठिकयोः तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ फट् । ॐ ह्लँ ह्ला वज्रतक्षकमहापद्मौ वामदक्षिणपादनूपुरयोः तिष्ठ तिष्ठ हुँ हूँ फट् ।

एवं सर्वमन्त्रमुद्रा[3]विन्यासं कृत्वा ततः षोडशपदिकं डाकिनीजालसहितं[4] दुष्टनिग्रहमन्त्रं मारादिनिग्रहार्थं कालचक्रभगवत आवर्तयेन्मन्त्रीति नियमः । तत्र मन्त्रपदानि । तद्यथा—ॐ नमो वज्रसत्त्वाय । नमो बुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः । नमो वज्रक्रोधेन्द्रराजेभ्यः । नमो विश्वमात्रे । नमो बुद्धबोधिसत्त्वदेवीभ्यः । नमो वज्रडाकिनीभ्यः । [5]ॐ नमो भगवते कालचक्राय, वज्रभैरवभीकराय, महेन्द्रनीलवर्णशरीराय, मारक्लेशहृदयाक्रान्तसितरक्तचरणाय कृष्णरक्तसितकण्ठाय, नीलसितपीतरक्तदंष्ट्राकरालोग्रभीषणमुखाय, कृष्णरक्तसितसव्येतरस्कन्धाय, द्वादशभुजाय, षड्विंशतिकराय, वज्रखड्गत्रिशूलकर्तिकाबाणाङ्कुशडमरुकमुद्गरचक्रकुन्तदण्ड[6]पर्शुवज्रघण्टाखेटखट्वाङ्गकपालचापपाशरत्नकमलशङ्खादर्शश्रृङ्खलाब्रह्मशिरोगजचर्मधृतकराय, व्याघ्रचर्मनिवसनाय, स्कन्धे मुण्डमालावलम्बिने, शिरसि [7]वज्रपट्टमुकुटे वज्रकपाल[8]मालार्द्धचन्द्रधराय, कुण्डलरुचककण्ठिकामेखलानूपुरभस्मयज्ञोपवीतशिरोमणि[9]महामुद्रानागेन्द्रविभूषणाय, वज्रडाकिनीसंतोषितहृदयाय, इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणवायुकुबेरेशानब्रह्मविष्णुविनायककार्तिकेयनन्दिमहाकालग्रहनक्षत्रक्षेत्रपालसुरेन्द्रासुरेन्द्रफणीन्द्रभूतेन्द्रनरेन्द्र[10]संस्तुतचरणाय इति षोडशपदिकं मन्त्रं भगवतः । अस्य कोटिजापेन सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति । सर्वाष्टमहासिद्धयो दशलक्षहोमेनेति पूर्वसेवानियमः । ततः पठित[185a]मात्रेण सर्वं करोति ।

इदानीं मारशतकुलमुण्डमालाबीजानि । डाकिनी[11]जालस्यापि तान्येव । ह हा क्ष क्षा [12]ङ ङा [13]क का न ना म मा ण णा ञ ञा हुं हूं फें फें [14]फट् फट् श्मशाने । क्ऌ क्ॡ खु खू गृ गॄ घि घी ह हा हुं हूं फट्[15] इत्याकाशचक्रे । च्ऌ च्ॡ छु छू[16] जृ जॄ झि झी य या हुं हूं [17]फट् इति वायुचक्रे । ट्ऌ ट्ॡ ठु ठू डृ डॄ ढि ढी र रा हुं हूं फट्[18] इत्यग्निचक्रे । प्ऌ प्ॡ फु फू बृ बॄ भि भी व वा हुं हूं फट् इत्युदकचक्रे । त्ऌ त्ॡ थु थू दृ दॄ धि धी ल ला हुं हूं फट् इति पृथिवीचक्रे । स्ऌ स्ॡ [19]यु यू पृ पॄ शि शी हं हः हुं हूं फट् इति ज्ञानचक्रे । एषु यथासंख्यं वज्रखड्गरत्नपद्मचक्रकर्तिकावलयो हकारादिभिर्द्वादशबीजैश्चक्रदिङ्नायिका इति । ह हा हि ही हृ हॄ[20] हु हू ह्ऌ ह्ॡ [21]हं हः इति प्रज्ञोपाययो-

१. छ. फट् फट् । २. भो. वज्रे अनन्त । ३. भो. dGod Par Byaḥo (विन्यसेत्) । ४. च. जालसंवरं, भो. Tshogs Daṅ bCas Pa (गणसहितं) । ५. च. 'ॐ' नास्ति । ६. च. परशु । ७. छ. वज्रपङ्क । ८. च. ०लोर्ध्व । ९. ग. 'महा' नास्ति । १०. छ. 'नरेन्द्र' नास्ति । ११. भो. Tshogs (गणस्य) । १२. भो. द दा । १३. भो. छ. ᳵक ᳵका । १४. क. ख. छ. फट् । १५. भो. छ. फट् फट् । १६. ग. च. जु जू, क. ख. हृ हॄ, छ. नास्ति । १७. छ. भो. फट् फट् । १८. भो. फट् फट् सर्वत्र । १९. भो. न्यु न्यू । २०. क. छ. 'हु हू' नास्ति । २१. सर्वत्र 'हं हः' नास्ति, गृ. भो. ।

हंस्तद्वये। शेषाष्टकपालानि देवीनाम[1]न्तरान्तरे अ आः अं अः ह हा हं हः फे[1] होः इति दशपारमिताः। इति डाकिनीजालमन्त्रपदानि। पञ्चमपटले इदं मन्त्रं वक्तव्यं रौद्रकर्मणीति नियमः।

इदानीं भगवतो मालामन्त्रं[2] प्रत्यङ्गमुच्यते। ॐ आः हूँ हो[3] हं क्षः ह् क्ष् म् ल् व् र् य कालचक्र, दुर्दान्तदमकजातिजरामरणान्तक, त्रैलोक्यविजय, महावीरेश्वर, वज्रभैरव, वज्रकाय, वज्रगात्र, वज्रनेत्र, वज्रश्रोत्र, वज्रघ्राण, वज्रजिह्व[4], वज्रदन्त, वज्रनख, वज्रकेश, वज्रलोम, वज्राभरण, वज्रहास, वज्रगीत, वज्रनृत्य, वज्रायुधकर, वज्रडाकिनीजालपरिवृत, शीघ्रमागच्छा[6]गच्छ, वज्रवज्र[5]क्रोधाधिपते, वज्रडाक, सर्वमारविघ्नविनायककिंनरकिंपुरुषगरुडगन्धर्वयक्षराक्षसभूतमहाप्रेतसत्त्वाज्ञया[7] ये सर्वज्वरसर्वव्याधिक्षुद्रोप[8]कूष्माण्डापस्मारक्षेत्रपालवेताड(ल)पूतनदुष्टनागग्रहादयो द्रवकारिणः सर्वसत्त्वानां सर्वापकाररतास्तान् [9]सर्वान् जः शीघ्रं वज्राङ्कुशेनाकृष्याकृष्य, ऊर्ध्वदिशि गतानाकृष्याकृष्य, पूर्वदिशि गतानाकृष्या[185b]कृष्य, दक्षिणदिशि गतानाकृष्याकृष्य, उत्तरदिशि गतानाकृष्याकृष्य, पश्चिमदिशि गतानाकृष्याकृष्य, वायव्यदिशि गतानाकृष्याकृष्य, ईशानदिशि गतानाकृष्याकृष्य, नैर्ऋत्यदिशि गतानाकृष्याकृष्य, आग्नेयदिशि गतानाकृष्याकृष्य, अधोदिशि गतानाकृष्याकृष्य, आकाशमण्डलगतानाकृष्याकृष्य, वायुमण्डलगतानाकृष्याकृष्य, तेजोमण्डलगतानाकृष्याकृष्य, तोयमण्डलगतानाकृष्याकृष्य, पृथिवीमण्डलगतानाकृष्याकृष्य, कामधातुगतानाकृष्याकृष्य, रूपधातुगतानाकृष्याकृष्य, अरूपधातुगतानाकृष्याकृष्य, कायधातुगतानाकृष्याकृष्य, वाग्धातुगतानाकृष्याकृष्य, चित्तधातुगतानाकृष्याकृष्य, पञ्चस्कन्धगतानाकृष्याकृष्य, पञ्चधातुगतानाकृष्याकृष्य पञ्चेन्द्रियगतानाकृष्याकृष्य, पञ्चविषयगतानाकृष्याकृष्य, पञ्चकर्मेन्द्रियगतानाकृष्याकृष्य, [10]पञ्चकर्मेन्द्रियविषयगतानाकृष्याकृष्य, सर्वतो यत्र कुत्रचिद्गतानाकृष्याकृष्य, महाश्मशाने वज्राग्निज्वलितभूम्यां निपातय निपातय, वज्रपाशेन सर्वभुजेषु बन्धय बन्धय, वज्रशृङ्खलया सर्वपादेषु निरोधय निरोधय, [11]सर्वसत्त्व[12]कायवाक्चित्तोपद्रवकार[13]रतान् तान्[14] महाक्रोधवज्रेण चूर्णय चूर्णय, वज्र[15]खड्गेन निकृन्तय निकृन्तय, वज्रत्रिशूलेन भेदय भेदय, वज्रकर्तिकया हन हन, वज्रबाणेन बिन्ध बिन्ध, वज्रकीलकैः कीलय कीलय, वज्रमुद्गरेणाकोट्याकोटय, वज्रचक्रेण छेदय छेदय, वज्रकुन्तेन भिन्द भिन्द,[16] वज्रदण्डेन

१. च. ०न्तराले। २. क. ख. ग. छ. मन्त्र। ३. च. भो. होः। ४. भो. वज्रजिह्वा। ५. ग. च. भो. क्रोधराजाधिपति। ६. क. छ. मागच्छ। ७ क. ख. छ. ०ज्ञाया। ८. क. ख. ग. कुभाण्डा, भो. छ. कुम्भाण्डा। ९. 'सर्वान्' नास्ति सर्वमातृकासु, गृ. भो.। १०. क. 'पञ्च .... कृष्य' नास्ति। ११. ग. मम सर्वं। १२. भो. सत्त्वेषु। १३. च. 'कार' नास्ति। १४. ग. च. 'तान्' नास्ति। १५ छ. शृङ्गेण। १६. क. ख. भिन्द, ग. च. भिद्ध, भो. भिन्ध।

ताडय ताडय, वज्रपर्शुना छिन्न(न्द) छिन्न(न्द[1], सार्द्धत्रिकोटिखण्डं कृत्वा श्मशानभूम्यां सर्वभूतेभ्यो बलिं कुरु कुरु, वज्रडमरुकेन वज्रडाकिनीरावाह्य वज्रडाकिनीभ्यो मारकायिकानां रुधिरं निवेदय निवेदय, पञ्चामृतहारिणीभ्यः पञ्चामृतं निवे[186a]दय निवेदय सर्ववज्रडाकिनीसहितः सर्वसत्त्वानां शान्तिकं पौष्टिकं रक्षावरणगुप्तिं कुरु कुरु हुं हूं फट्—इति प्रत्यङ्गमालामन्त्रो भगवतो वज्रभैरवकालचक्रस्य सर्वमारविघ्नापराजितप्रेताद्यधिपतीनां सर्वदुष्टानां सप्तवारमावर्तितो निग्रहं करोति। अस्यापि पूर्वं कोटिजापो दशलक्षहोमः कर्तव्यः। प्रत्येककर्मणि दशलक्षजापो दशायुतहोम इति नियमः।

ततो मारनिग्रहं कृत्वा पुनः पुनः [2]शय्यासनं कुर्याद् यावत् शुभनिमित्तं लभते[3]। ततः शय्यां विहाय वज्रवज्रघण्टां गृहीत्वा पुनरेव बलिं दद्यात्। ततो मण्डलपश्चिमभूम्यां पूर्वाभिमुखो वज्रसूत्रं गन्धधूपादिभिः संपूज्य ततः श्रीखण्डशालिपिष्टरुधिरविषचित्यङ्गारकुङ्कुमरक्तचन्दनहरिद्रातालकोदकेन शान्त्यादिकर्माभिप्रायेणालोड्याचार्यो वाममुष्ट्या शिष्यो दक्षिणमुष्ट्या पश्चिमाभिमुखः सूत्रं संगृह्य पश्चिमपूर्वभूम्यां प्रसार्य [4]इमं मन्त्र[5]मुच्चारयेत्—ॐ आः [6]हूं अ कायवाक्चित्तैकभूताः सर्वधर्मा एकाकारेण वज्रसत्त्वोऽहं वज्रभूमिं सूत्रयामि [7]हूं आः फट्। ततो वज्रसूत्रेण मन्त्रमुदाहरेत्। ॐ वज्रसूत्रैकाकार[8]स्वरूपेण जः जः जः सर्वधर्मान् सूत्रय ॐ आः [9]हूं हो[10] हं क्षः फट्। वामार्द्धपर्यङ्को दक्षिणपादोऽवनौ निषण्णः शिष्यो दक्षिणपर्यङ्को वामपादो[11] भूमौ निषण्णः [12]पूर्वापरं ब्रह्मसूत्रं पातयेत्। तत आचार्यो दक्षिणभूम्यां स्थितः शिष्य उत्तरभूम्यां स्थितो दक्षिणोत्तरं ब्रह्मसूत्रं चतुर्द्वारेषु गतं पूर्वापरदक्षिणोत्तरकीलकमूर्ध्नि ततः स्वरुचिना कोणसूत्रं पातयेत्। पुनस्तेनैव पर्यङ्कादि[13]विधिना वायव्याग्नेयसूत्रं पातयेत्। नैर्ऋत्येशानम्, ततो दिशापरिघं वर्जयित्वा पूर्वापरब्रह्मसूत्रादारभ्य दक्षिणभूम्यां सूत्रं पातयेत्। तत उत्तरभूम्यां ततो दक्षि[186b]णोत्तरब्रह्मसूत्रात् पश्चिमभूम्यां ततः पूर्वभूम्याम्। ततो गन्धधूपादिकं दत्त्वा मण्डलकार्यसूत्राणि संरक्ष्य सर्वशेषाणि लोपयेत्। सर्वद्वाराणि संशोध्य पुनर्गन्धधूपादिकं बलिं दत्त्वा पूर्वोक्तविधिना मन्त्रजापं कुर्यादिति ॥३५॥

इति [14]मूलतन्त्रानुसारिण्यां [15]लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां द्वादशसाहस्रिकायां विमल[16]प्रभायां रक्षाचक्रपूर्वङ्गमभूम्यादिसंग्रहमहोद्देशोऽभिषेकपटले द्वितीयः ॥ २ ॥

१. क. ख. छ. युतो। २. च. भो. शय्याशयनं। ३. भो. Bar Duḥo (तावत्) इत्यधिकम्। ४. क. ख. ग. छ. इदं। ५. ग. च. भो. मुदाहरेत्। ६. भो. हुं काय। ७. भो. हुं। ८. ग. स्वरूपे। ९. भो. हुं। १०. ग. च. भो. होः। ११. क. छ. पादौ। १२. भो. Śar Daṅ Nub (पूर्वपश्चिम)। १३. भो. rNam Pa (द्विप्रकारेण)। १४. ग. 'श्री' इत्यधिकं। १५. ग. च. 'लघु .... टीकायां' नास्ति। १६. ग. च. प्रभाटीकायां।

३. मण्डलवर्तनं नाम महोद्देशः

प्रणिपत्य त्रिवज्राग्रं कालचक्रं महासुखम् ।
नायकं माण्डलेयानां मण्डले द्व्यष्टभागिके ॥

चन्द्रशुक्रकलाभागैर्वज्रसूत्रप्रपातिते ।
भूयो भूयः कलाभागैः कायवाक्चित्तमण्डले ॥ 5

मूलतन्त्रानुसारेण लक्षणं वितनोम्यहम् ।
लघुतन्त्रे प्रपञ्चेन यदुक्तं मञ्जुवज्रिणा ॥

अहङ्कारविनाशार्थमृषीणां जातिवादिनाम् ।
चतुर्हस्तेऽङ्गुलार्धै[1]स्तत्सूत्रैः श्रीमण्डलत्रये ॥

10 इह परमादिबुद्धादुद्धृतं मण्डललक्षणं पञ्च[2]त्रिंशत्तमादिवृत्तैः सङ्गीतं मञ्जुश्रिया यत्तदिदानीं वितन्यते मूलतन्त्रानुसारेण—

सूत्रं वै ब्रह्मसूत्राद् रसनवतिरिदं दिग्विभागप्रदेयं
सूत्रैरर्धाङ्गुलोक्तैर्भवति वसुयुगैर्मण्डलं गर्भमध्ये ।
गर्भाद्बाह्ये समस्तै रचितमपि महामण्डलं द्वारसीम्नः
15 प्राकारांस्तोरणाद्यं शिखिचलवलयं दर्शयेद्बाह्यभूम्याम् ॥ ३६ ॥

सूत्रमित्यादिना। इह पूर्वमण्डलभूम्यां पश्चिमे वज्राचार्यः पूर्वाभिमुखः पूर्वे शिष्यः कर्मवज्री पश्चिमाभिमुखः मण्डलभूमिं चतुरस्रां मापयित्वा मध्ये ब्रह्मसूत्रं [187a] पातयेत्। तत आचार्यो दक्षिणे उत्तराभिमुखः शिष्य उत्तरे दक्षिणाभिमुखो[3]ब्रह्मसूत्रं पातयेदिति ब्रह्मसूत्रनियमः। कोणसूत्रं पातयेद्वा कोणशुद्ध्यर्थम्। ततो **ब्रह्मसूत्रात् सूत्रं रसनवतिरिदं** 20 **दिग्विभागप्रदेयमि**ति । इह मध्यब्रह्मसूत्राद् दक्षिणदिग्विभागे षण्णवतिः। उत्तरे षण्णवतिः, पूर्वे षण्णवतिः, पश्चिमे षण्णवतिरिति[4] सूत्राणि दत्त्वा प्रकर्षेण **सूत्रैरर्धाङ्गुलोक्तैर्भवति वसुयुगै**रिति। तेषु सूत्रेष्वष्टचत्वारिंशत्सूत्रैर्मण्डलगर्भमध्ये चित्तमण्डलं भवतीत्यर्थः। **गर्भाद्बाह्ये समस्तै**रिति द्वानवत्यधिकशतै **रचित**[5]मिति। **महामण्डलं द्वारसीम्न** इति। गर्भमण्डलसूत्रेभ्यो द्विगुणसूत्रैर्वाङ्मण्डलं भवति द्वारसीम्नः। वाङ्मण्डलसूत्रेभ्यो 25 द्विगुणैः कायमण्डलं भवति द्वारपर्यन्तमिति। ततः कायमण्डले पञ्च**प्राकारान् तोरणं** च पृथिव्यादिवलयचतुष्कं वज्रावलिं **दर्शयेद् बाह्यभूम्याम्**, आकाशभूम्यामित्यर्थः। इति सूत्रपातनियमो यः [6]सप्रपञ्चार्थेनोक्तः ॥ ३६ ॥

१. क. ख. ग. छ. ०ततः सूत्रैः। २. क. पञ्चविंश०, भो. Sum Cu rTsa Drug (षट्त्रिंशत्) ।३. भो. gÑis Pa (द्वितीयं) इत्यधिकम् । ४. ग. 'इति' नास्ति । ५. ग. च. ०मपि । ६. क. ग. सप्रपञ्चा० ।

चक्रं वाब्जं हि भर्तुस्त्रिगुणमपि भवेद्देवताद्यासनानां
ब्रह्मस्थानेऽर्ककोष्ठैः पुनरपि शशिना स्तम्भवज्रावली स्यात् ।
बुद्धाद्यब्जं चतुर्भिः प्रभवति शशिना बाह्यवज्रावली च
देवीबुद्धान्तराले भवति घटकपालासनं वा त्रिकोष्ठैः ॥ ३७ ॥

[1]स्वरूपतो भूयश्चतुः[2]पञ्चाशदादिवृत्तद्वयेनो[3]क्तम् । "द्व्यब्ध्येकाब्ध्येकसूर्यैः" 5 (३.५४) इत्यादिभागैर्नियमः । तस्मादेभिरर्धाङ्गुलो[4]क्तकोष्ठैर्यन्मानं तदाचार्यप्रपञ्चार्थम्। यदपरं द्व्यब्ध्यादिभागैस्तद्बालशिष्यप्रबोधाय उक्तमिति। तस्मा [187b]-द्यानि सूत्राणि लोपनीयानि तानि न [5]पातनीयानि। इत्यपरविधौ नियमः। तस्मान्मूलतन्त्रानुसारेण सूत्रपात उच्यते। निष्प्रपञ्चचन्द्रकलाशुद्ध्येति। तथा भगवानाह—

चतुरस्रं समं भूम्यां कृत्वा षोडशभागिकम्। 10
कायमण्डलकं त्यक्त्वा पुनः षोडश[6]भागिकम् ॥

वागाद्यं मण्डलं कुर्यात्ततो वाङ्मण्डलं त्यजेत्।
चित्तमण्डलकं कुर्यात् पुनः षोडशभागिकम् ॥

एवं त्रिपक्षसंशुद्धं मण्डलं त्रिगुणात्मकम्।
ततो द्व्यब्ध्यादिभागैस्तं सूत्रयेन्मण्डल[7]त्रयम् ॥ 15

इत्यादिसूत्रनियमः कायवाक्चित्तमण्डले भगवतोक्तः। तेन मूलतन्त्रोक्तविधिना वज्राचार्येण सूत्रपातः कर्तव्यो लोप्यानि सूत्राणि वर्जयित्वेति नियमः।

अत्रापि द्विगुणषण्णवति[8]विभागार्धाङ्गुला उक्ता भवन्ति चतुर्हस्तात्मके त्रिमण्डले। तत्र षोडशविभागेषु प्रत्येकविभागो द्वादशार्धाङ्गुलो भवति। एवं षोडशभागेषु द्विगुणषण्णवत्यर्धा[9]ङ्गुलानि भवन्ति। अतः प्रथमं षोडशविभागं मण्डलार्थं 20 T 382 भूमितलं कर्तव्यम्। ततो बाह्ये चतुर्दिक्षु चतुर्विभागं त्यक्त्वा उभयपार्श्वेऽष्ट[10]भाग(गा)-स्त्यक्त्वा(क्ता) भवन्ति वाङ्मण्डलार्थम्। ततो वाङ्मण्डले भागाष्टकं यत्तदेव षोडशविभागं कुर्यात्। प्रत्येकभागमध्ये सूत्रं दत्त्वा [11]तत्र षोडशविभागाः [12]षडर्धाङ्गुला भवन्ति। तेषु पुनश्चित्तमण्डलार्थं पूर्वे भागचतुष्कम् [13]अपरेऽप्येवं [14]वामदक्षिणेऽप्येवं त्यक्त्वा अपरं गर्भे भागाष्टकं षोडशविभागं कुर्यात्। प्रत्येकभागमध्ये सूत्रं दत्त्वा तत्र षोडश- 25

१. क. ग. पुरतो । २. क. ख. ग. च. छ. त्रिपञ्च० । ३. छ. ०नोक्ते। ४. क. ख. ०लोष्ठ। ५. ग. च. भो. पातितव्यानि। ६. च. ०भागकम् । ७. च. द्वयम्। ८. च. भो. 'वि' नास्ति। ९. ग. धंदशाङ्गु। १०. ग. विभा०, छ. भागं। ११. च. ततः। १२. च. षोडशार्धाङ्गुलानि। १३. भो. Nub (पश्चिमे)। १४. ग. च. वामे, भो. Byaṅ (उत्तरे)।

विभागास्त्र्यर्धाङ्गुला भवन्ति चित्तमण्डले। एवं भवति वसुयुगैरष्टचत्वारिंशद्भि-रर्धाङ्गुलैस्त्र्यर्धाङ्गुलात्मकैः षोडशविभागैरिति। तेषु ब्रह्मसूत्राद् [1]वामदक्षिणं पूर्वापरं भागद्वयं [2]चतुर्द्वारिमानार्थमुक्तं भगवता चित्तमण्डले। एवं त्र्यर्धाङ्गुलं भागचतुष्कं वाङ्मण्डलद्वारार्थमुक्तम्। तथा त्र्यर्धाङ्गुलभागाष्ट[188a]कं कायमण्डलद्वारार्थ-मुक्तमिति। एवं चित्तवाक्कायमण्डले चक्राष्टभागिकं द्वारं स्वस्वचक्रमानाद्भवति। चक्रं च प्राकारादि[3]सीम्ना वेदितव्यम्। त्रिमण्डलेप्येवम् ॥ ३७ ॥

तत्स्थानाद् रङ्गभूमिर्भवति दिनकरैश्च त्रिरेखं हि यावद्
दिक्कोणेष्वब्धिकोष्ठैः शशिरविकमलान्येव गन्धादिकानाम्।
सार्धैकेन त्रिरेखं भवति ऋतुरसैर्द्वारनिर्यूहकाश्च
तद्वत्पक्षे कपालं त्रिभिरपि च महावेदिका स्तम्भमर्धम् ॥ ३८ ॥

तस्यार्धे नष्टकालैर्भवति मणिमया पट्टिका द्वारभूमि
सस्तम्भं तोरणं स्यात्त्रिगुणितदशभिर्द्वारमूलादितश्च।
सूत्रार्धं मूर्ध्नि वर्ज्यं प्रभवति बकुली चार्धहारावसाने
षट्कोष्ठैस्तोरणाधो वसुकमलयुता पट्टिका योगिनीनाम् ॥३९॥

*ब्रह्मसूत्राद्[4] वाम[5]दक्षिणपूर्वापर[6]मङ्गुलार्धद्वयं सूत्रं पातयेत्। गर्भकमलकर्णिका नायकासनार्थं चतुर्षु दिक्षु द्वारेषु देवता पद्मासनार्थमिति। ततो वामदक्षिणपूर्वापरदिक्षु अब्धिरिति चतुरर्धाङ्गुलानि कमलदलानि भवन्ति। नायककमलं शेषाणां देवतादेवती-नामासनानां त्रिगुणम्। एवं ब्रह्मस्थाने अर्ककोष्ठैरिति द्वादशार्धाङ्गुलैर्भगवतः पद्मम्, पद्मत्रिभागिका कर्णिका चतुरर्धाङ्गुला भवतीति नियमः। दिक्षु पत्रमध्ये सूत्रं पातयित्वा शेषं [7]त्र्यर्धाङ्गुलं द्विधा कृत्वा [8]सपादा[9]द्व्यङ्गुलविभागेन गर्भमण्डले रेखात्रयं [10]भवति। अपरेण पक्षकं भवति। ततः कमलपत्रबाह्ये एकेनार्धाङ्गुलभागेन वज्रावली[11]स्था-[188b]नम्। ततश्चतुर्भिरर्धाङ्गुलैर्देवताकमलानि कमलमध्ये सूत्रं पातयित्वा [12]पूर्व-वज्रावलीभागेन सार्धं [13]त्रीण्यर्धाङ्गुलानि भवन्ति। तेषु मध्ये सूत्रं दत्त्वा [14]कपोलस्थाने

१. भो. Byaṅ Daṅ Lho Daṅ Śar Daṅ Nub (उत्तरदक्षिणं पूर्वपश्चिमं)। २. भो. sGo bŚiḥi Don Du (चतुर्द्वारार्थं)। ३. क. ख. ग. च. सीम्नो। ★ अत्र ग. मातृका खण्डिता छायाप्रतिश्च शोभना नास्ति। ४. भो. सर्वत्र 'वाम' स्थाने 'उत्तर', 'अपर' स्थाने पश्चिम इति। ५. च. दक्षिणं। ६. च. ०मर्धाङ्गु०। ७. भो. Sor Phyed (अर्धाङ्गुलं)। ८. च. सार्धार्धाङ्गुलं। ९. ख. भो. त्र्यङ्गु०। १०. छ. भवतीति। ११. क. वलि। १२. भो. sÑa Ma Ma Yin Paḥi (अपूर्वं)। १३. छ. त्रीण्यङ्गुलानि। १४. क. ख. कपाल।

प्राकारभूमितोरणस्तम्भा[1] भवन्ति सार्धसार्ध[2]विभागेनेति। ततो बुद्धासनाद्बाह्येऽङ्गुलार्धेन बाह्ये वज्रावली भवति बुद्धदेवीनां मध्ये। [3]कक्षेष्वष्टासनानि घटानां कपालानां वा भवन्ति। त्र्यर्धाङ्गुलविभागेन वामदक्षिणेन षोडशस्तम्भान्तरे। शेषं बुद्धासनमानेनेति। ततो वज्रावल्या[4]स्त्र्यर्धाङ्गुलं भागद्वयं त्यक्त्वाऽर्धाङ्गुलेन सूत्रं पातयित्वा ततश्चतुर्भि-र्गन्धादीनां देवीनां घ्राणादीनां देवतानामासनार्थं सूत्रं पातयेत्। ततोऽर्धाङ्गुलं त्यक्त्वा सार्धाङ्गुलेन प्राकारत्रयं भवति। एवं प्राकारभूमेर्द्विगुणा वेदिकाभूमिः। वेदिकार्धेन [5]रत्नपट्टिका द्विगुणा [6]हारार्धभूमिः। हारभूमेरर्धा वकुली[7]कवशीर्षकम्। एवं [8]हारतुल्यं निर्यूहं निर्यूहतुल्यं पक्षकं कपोलं च। तथा द्वारमानात् स्तम्भोपरि त्रिगुणं तोरणम्। एवं गर्भमण्डले सूत्रपातनियमः। एवं 'सूत्रं वै ब्रह्मसूत्रात्' इत्यारभ्य 'प्रभवति वकुली चार्धहारावसाने' (३।३९) इति पर्यन्तं पूर्वसूत्रपातः। पुनर्मण्डलार्थमपरो 'द्व्यब्ध्ये-काब्ध्येक'(३।५४) इत्यारभ्य 'तोरणं प्रोक्तभागैः'(३।५५) इति पर्यन्तं चित्तमण्डले उभय-सूत्रपातः प्रोक्त इति चित्तमण्डले नियमः।

इदानीं मूलतन्त्रोक्ततोरणलक्षणमुच्यते। इह तोरणं सर्वत्र द्वारमानात्त्रिगुणं भवति। तत्र चित्तमण्डलेऽर्धाङ्गुलैः षड्भिर्द्वारं ततस्त्रिगुणम् अष्टादशार्धाङ्गुलैस्तोरणं भवति। तदेव त्रिपुरं कारयेत्। [9]प्रथमं पुरमर्धाङ्गुलैः षड्भिः, द्वितीयं सार्धचतुर्भिः, तृतीयं त्रिभिः सार्धैः। ततो हर्मिद्वाभ्याम्। द्वाभ्यां कलशमि[189a]ति। एवमष्टादश-भागैस्त्रिपुरं तोरणमिति। तत्र प्रथमपुरे अर्धाङ्गुलविभागेन स्तम्भोपरि पट्टिका दीर्घत्वेन चतुर्विंशत्यङ्गुला[10]। तदुपरि अर्धाङ्गुलविभागेन मत्तवारणं दीर्घत्वेन षोडशार्धाङ्गुलम्। तदुपरि गर्भकर्णिकामानेन चतुरस्रं मध्ये पूजादेवीनां[11] स्थानम्। तस्य सव्यावसव्ये अर्धाङ्गुलेन स्तम्भं तयोः [12]सव्यावसव्ययोर्देवीस्थानम्। ततः पुनः स्तम्भं सव्यावसव्ये। तयोः सव्यावसव्यं तोरणस्तम्भोपरि आक्रान्तगजसिंहयुगलं मूर्ध्नि शिरसा दर्शयेत्। तयोः शिर उपरि अधः [13]पट्टिकार्धभागेन चतुःस्तम्भोपरि दीर्घत्वेनाष्टा-दशार्धाङ्गुला पट्टिका भवति। तदुपरि मूलमत्तवारणवद् मत्तवारणं दीर्घत्वेन द्वाद-शार्धाङ्गुलम्। तदुपरि पादोनार्धाङ्गुलविभागेन प्रत्येक[14]स्तम्भम्। स्तम्भान्तराले त्रिभिस्त्रिभिरर्धाङ्गुलैस्त्रीणि देवतास्थानानि चिह्नस्थानानि वा, बाह्यस्तम्भयोः सव्यावसव्यं [15]शालभञ्जिकां कुर्यात्। तयोः शिर उपरि चतुःस्तम्भोपरि पुनरर्धाङ्गु-लार्धभागेन पट्टिका दीर्घत्वेन पञ्चदशार्धाङ्गुला। तदुपरि मत्तवारणं पूर्ववद् अर्धाङ्गुलेन दीर्घत्वेनाष्टार्धाङ्गुलं तदुपरि अङ्गुलार्धार्धविभागेन प्रत्येकस्तम्भं कुर्यात्। स्तम्भान्तरा-

१. च. स्तम्भानि। २. च. 'वि' नास्ति। ३. च. कक्षे स्वस्वा०, भो. Le Tshe rNams La (कोष्ठेष्व०)। ४. क. ०ल्याः अर्द्धा०। ५. क. ख. च. भो. 'रत्नपट्टिका' नास्ति। ६. भो. Do Śel Daṅ Do Śel Phyed (हारार्धहार)। ७. भो. क्रम। ८. ख. च. छ. भो. द्वार। ९. च. प्रथमपुर। १०. भो. Sor Phyed (त्यर्धाङ्गुला)। ११. च. देवीस्था०। १२. च. भो सव्यं पुनर्दे। १३. च. ०कार्धं। १४. छ. हस्तम्। १५. क. ख. छ. साल०।

पुनः न्तरे मूलपुरदेवतास्थानार्धविभागेन स्थानत्रयं तत्र बाह्यस्तम्भयोः सव्यावसव्यं[1] तदुपरि भागार्धेन पट्टिका द्वादशार्धाङ्गुला। तदुपरि अष्टा-[2]शालभञ्जिकां कुर्यात्। तदुपरि द्वाभ्यां [3]कलशं सव्यावसव्यं ध्वजदण्डस्थानम्। र्धाङ्गुला दीर्घत्वेन हर्मिः। तदुपरि एवं प्रत्येकपट्टिकाग्रे चामराणि, आदर्शश्च लम्बमानो ध्वजश्चेति[189b] तोरणमान-लक्षणं **मूलतन्त्रोक्तमि**ति।

इदानीं वाङ्मण्डलमुच्यते—**षट्कोष्ठैस्तोरणाधो** [4]**वसुकमलयुता पट्टिका योगि-नीनामि**ति। इह वाङ्मण्डले ये चतुर्विभागाश्चतुर्दिक्षु षडर्धाङ्गुलात्मकाः, तेषु [5]भाग-द्वयेन गर्भमण्डलप्राकारवेदिका रत्नपट्टिका हारार्ध[6]हार[7]वकुली[8]क्रमशीर्षाणि पतितानि। शेषं भागद्वयं तिष्ठति। तयोरेकभागं त्यक्त्वा अपरभागषट्कोष्ठेषु अध ऊर्ध्वं कोष्ठमेकैकं वर्जयित्वा मध्ये चतुर्विभागैर्योगिनीनामष्टकमलपट्टिका सर्वदिक्षु कोणेषु पद्मानि। तोर-णाधो दिक्षु द्वितीयपुरे मत्तवारणं चतुरर्धाङ्गुलमात्रं भञ्जयित्वा योगिनीनां कमलं कुर्यात्। स्तम्भयुग्ममपसारयित्वाऽर्धाङ्गुलार्धमात्रम्। देवतीनामभावे पुनः पूर्वोक्त-लक्षणम्। तेनैव लक्षणेन बाह्ये वाङ्मण्डले सर्वं द्विगुणं[9] भवति द्वारादारभ्य तोरणान्त-मिति नियमः॥ ३८-३९॥

इदानीं कायमण्डलमुच्यते—

तस्मात् श्रीरङ्गभूमी रसगुणितयुगैः पञ्चरेखां हि यावत्
दिक्कोणेष्वर्कपद्मं द्विगुणमनुदलं सूर्यकोष्ठैः प्रकुर्यात्।
गर्भद्वारं द्विगुण्यं त्रिविधगुणवशाद् द्वारमप्यत्र बाह्यं
प्राकाराद्यं तथैव त्रिवलयरचनां त्र्यष्टकैश्च प्रकुर्यात्॥ ४०॥

तस्मादित्यादिना। इह कायमण्डले चतुर्दिक्षु ये चतुर्भागा द्वादशार्धाङ्गुलात्मकाः तेषु भागद्वये वाङ्मण्डलप्राकारवेदिका रत्नपट्टिका हारार्ध[10]हारवकुली[11]क्रमशीर्षाणि पतितानि। शेषं भागद्वयं तिष्ठति। **तस्माद्वाङ्मण्डलान्तात् श्रीरङ्गभूमौ रसगुणित-युगै**रिति। चतुर्विंश[12]द्भिरर्धाङ्गुलैर्भवति **पञ्चरेखां हि यावद**िति नियमः। **दिक्कोणेषु** तत्र [13]मण्डले[190a] **अर्कपद्म**मिति द्वादशपद्मानि **द्विगुणमनुदल**मिति। अष्टाविंशति[14]-दलानि। **सूर्यकोष्ठै**र्द्वादशार्धाङ्गुलभागैरिति। तानि द्वादशार्धाङ्गुलानि सप्त[15]विभागं कृत्वा मध्यभागेन कर्णिकाद्वितीयसव्यावसव्यभागेन चतु[16]र्दलम्। तृतीयसव्यावसव्ये-

१. ग. सव्ये। २. क. साल०। ३. क. ग. कलसं। ४. क. ख. छ. चमु। ५. क. ख. छ. भागे द्वयेन। ६. च. 'हार' नास्ति। ७. क. ख. छ. वहुली। ८. क. ख. च. छ. कव। ९. ग. गुणितं। १०. च. 'हार' नास्ति। ११. क. ख. च. छ. कव। १२. ग च. ०ग्रात्यर्धाङ्गु०। १३ छ. मण्डलेपु। १४. क. ख. विंशद्। १५. ग. 'वि' नास्ति। १६. क. ख. छ. ०र्दलाम्।

नाष्टदलानि। चतुर्थसव्यावसव्येन षोडशदलानि। एवमष्ट[1]विंशद्[2]दलानि कुर्यादिति। एवं **गर्भद्वारं** तमो**गुणवशात्**। तस्मान्मध्यमण्डलद्वारं रजोगुणवशाद् द्विगुणम्, तस्मात् सत्त्वगुणवशात् कायमण्डलद्वारं चतुर्गुणमिति। एवं [3]**प्राकाराद्यं** तोरणाद्यं **त्रिवलय-**रचनोदकतेजोवायुवलय[4]**रचनां** [5]**त्र्यष्टकैश्चे**ति चतुर्विंशद्भिः **प्रकुर्यात्**॥ ४०॥

तेषामाद्यन्तभागे रविशशिवलयं बाह्यवज्रावलीं च
कुर्यात् कोष्ठैस्तदर्धैर्यदनिलवलये मण्डलान्ते च चक्रम्।
स्तम्भाधो मण्डलं च प्रभवति फणिनां स्यन्दनं देवतीनां
सूर्यैश्च द्वारमध्ये नभसि भुवितले पूर्वभागेऽपरे च॥ ४१॥

तेषां त्रिवलयानाम् **आदिभागे**[6] **रविशश्युदयवलयं कुर्यात्**। [7]अर्क**कोष्ठै**र्द्वादश-भिरिति तेषा**मन्ते वज्रावलीं** कुर्याद् द्वादशभिः। चतुर्विंशद्भिर्वज्रार्चिरिति। तत्र यद् द्वारान्त**चक्रं** तद्वाय्वग्नि**वलय**मध्ये प्रत्येकमष्टारं द्वादशभिरिति। बाह्य**मण्डल-स्तम्भाधो** वेदिकायामासनं **फणिनां** वाय्वादिमण्डलं द्वादशभिः। **स्यन्दनं** द्वारमध्ये द्वादशभिः। तत्रैव वाङ्[8]मण्डले तोरणं [9]द्वादशाङ्गुलं वर्जयित्वा द्वितीये द्वारस्यार्धे स्यन्दनं कुर्यादिन्द्रादिदेवतापट्टिकातुल्यम्। पूर्वापरं[10] तोरणकलशं वर्जयित्वा आकाशपातालरथं दर्शयेत् कायमण्डले। इति [11]मण्डलसूत्रपातनियमः॥ ४१॥[190b]

इदानीं रजःपातविधिमाह—

वज्राद्यैः पञ्चरत्नैः कनकमरकतैर्विद्रुमैर्मौक्तिकाद्यैः
शस्यैर्वा पञ्चभेदैर्बहुविधमणिभिः पिष्टरङ्गैस्तथैव।
दिग्भागे रङ्गभूमौ भवति नृप रजःपातनं बुद्धभेदैः
पीतैः श्वेतारुणाद्यैः क्षितिजलवलये वह्निवाय्वोः क्रमेण॥ ४२॥

वज्राद्यैरित्यादिना। इह सूत्रपाते कृते सर्वदेवतास्थाने शोधिते ततो बलिं दत्त्वा गन्धपुष्पादिभिः पश्चाद् रङ्गपातमा[12]रभेत्। तत्र विभवानुरूपेण पञ्चरङ्गाः करणीयाः। चक्रवर्ति[13]विभवे **वज्राद्यैः पञ्चरत्नै**श्चूर्णं कारयेत्। तत्र **मरकतै**र्हरित[14]चूर्णम्, इन्द्रनीलैः कृष्णम्, पद्मरागै रक्तम्, चन्द्रकान्तैः [15]श्वेतम्, कर्केतकैः[16] पीतम्, महानीलैर्नीलमिति।

१. ग. च. ०मष्टा०। २. ग. विंशति। ३. ग. 'प्राकारा' इत्येव। ४. ग. च. रच-नासु। ५. भो. brGyad Pa gSum Gyis (त्र्यष्टकेति)। ६. च. भागेन। ७. भो. Phyed (अर्धं)। ८. ग. च. मण्डल। ९. ग. च. भो. द्वादशार्धाङ्गु। १०. ग. पर। ११. ग. 'मण्डल' नास्ति। १२. क. माहरेद्। १३. क. ख. छ. विभावे। १४. ग. वर्णम्। १५. ग. च. शुक्लम्। १६. ग. तनैः, क. ख. छ. टकैः।

तथा सामान्यचक्रवर्तिनः कनकचूर्णं पीतम्। मुक्ताचूर्णं शुक्लम्, प्रवालचूर्णं रक्तम्, राजावर्तचूर्णं कृष्णम्, हरितं चतु[1]रङ्गमिश्रमिति। **शस्यैर्वा पञ्चभेदैरिति**। मुद्गाद्यैस्तण्डुलैर्वाऽखण्डकै**र्बहुविधमणिभि**श्चूर्णरङ्गैः [2]**पिष्टरङ्गैर्वा** साधारणैः सर्वसत्त्वानामिति। यथाविभवत यथा वज्रैस्तथाऽखण्डशस्यैः। यथा मरकतादिचूर्णैस्तथा पिष्टरङ्गैः। यथाविभवत यथा वज्रैस्तथाऽखण्डशस्यैः। हे **नृप**! तदेव **बुद्धभेदैर्वक्ष्यमाणैर्मण्डले**। एभिर्दिग्वि[3]भागभूमौ रजःपातनं भवति। हे **नृप**! तदेव **बुद्धभेदैर्वक्ष्यमाणैर्मण्डले**। एभिर्दिग्विभागभूमौ रजःपातनं भवति। बाह्ये पुनः **क्षितिवलये** पीतेन, उदके श्वेतेन, वह्नौ रक्तेन, वायुवलये कृष्णेन क्रमेणेति ॥ ४२ ॥

इदानीं रजोभूमिवर्णं उच्यते—

पूर्वे श्रीकृष्णभूमिर्भवति रविनिभा दक्षिणे पश्चिमे च
हेमाभा चोत्तरेऽन्या शशधरधवला वज्रिणो वक्त्रभेदैः।
श्वेता कृष्णा च रक्ता क्रमपरिरचिता पट्टिकाहारभूमिः
पद्मानीन्द्वर्कवर्णैरमलशशिनिभा रक्तकृष्णा त्रिरेखा ॥४३॥ [19la]

पूर्व इत्यादिना। इहाधिपतिचिह्नवक्त्रवशाद् दिग्विभागो मण्डले भवति भूम्यां कृष्णवक्त्रादिना। तेन **पूर्वे** [4]**श्रीकृष्णभूमिः** चित्तविशुद्धया [5]**भवति, रविनिभा दक्षिणे** वाग्विशुद्धया, **पश्चिमे हेमाभा** पीता ज्ञानवक्त्रविशुद्धया, **उत्तरे चान्या** शुक्ला कायवक्त्रविशुद्धया। एवं **वज्रिणो वक्त्रभेदैर्दिक्षु** रजःपातनं कर्तव्यम्। तच्चैशानीं दिशमारभ्य श्वेतरङ्गादिकं कर्मानुसारेण दिक्षु पातयित्वा ततो वक्त्रभेदेन पातनीयमिति नियमः।

इदानीं वेदिकादीनां रजोवर्णमाह—श्वेतेत्यादिना। इह वेदिका **श्वेता** [6]सा च धारिणी **पट्टिका** रक्ता तदुपरि रत्नपट्टिका **भूमिस्तत्र** रत्नबन्धो विचित्रः, निर्यूहस्तम्भसन्धौ रत्नखचितम्(तः)। तथा **कृष्णा हारभूमिस्तत्र** हारार्धहारदर्पणचामराणीति। वकुलौ श्वेता स्तम्भाः पीताः। [7]क्रमशीर्षाणि शुक्लानि। देवताकमलानि चन्द्रवर्णानि सूर्यवर्णानि यथा सर्वगर्भमण्डले[8] कायवाक्चित्त[9]शुद्धया शुक्ला रक्ता कृष्णा रेखा भवति प्राकाराणामिति ॥ ४३ ॥

गर्भपद्मादिवर्णमाह—

मध्ये पद्माष्टपत्रं हरितमलिनिभा स्तम्भवज्रावली स्यात्
ईशे दैत्येऽग्निवाय्वोः शशिरविवपुषौ कृष्णपीतौ क्रमेण।

---

१. ख. च. रङ्गं। २. छ. 'पिष्टरङ्गैः' नास्ति। ३. ग. च. भागैः, छ. भागे। ४. च. 'श्री' नास्ति। ५. छ. 'भवति ··· विशुद्धया' नास्ति। ६. क. ख. छ, 'सा च ···· वकुली श्वेता' नास्ति। ७, क ख. च. कव। ८. च. मण्डल। ९. च. विशु०।

शङ्खो गण्डी मणिश्च क्रम इति च तथा श्वेतकुम्भाष्टसन्धौ
चन्द्रो रक्ताब्जमूर्ध्नि प्रभवति दिनकृच्छ्वेतपद्मस्य चोर्ध्वम् ॥४४॥

मध्य इत्यादिना। इह चित्तमण्डल**मध्ये**ऽधिपति**कमलं हरितमष्टपत्रं** शान्तिकादिषु श्वेतवर्णादिकं भवति, सामान्येन हरितम्। **अलिनिभा स्तम्भवज्रावली स्यात्**। पद्मबाह्ये षोडशस्तम्भाः। पूर्वादयः खड्गरत्नचक्रपद्मावलीयुक्ताश्चत्वारश्चत्वार एव। इह गर्भकमलस्य चतुर्षु कोणेषु यथासंख्यम् **ईशे शशिवर्णः शङ्खः, नैर्ऋत्ये रविवर्णा** धर्म**गण्डी, अग्नि**कोणे कृष्णवर्णा चिन्ता**मणिः, वायु**कोणे [1]**पीतः** कल्पवृक्ष[2] इति। एवं चतुर्दिक्षु षोडशस्तम्भान्तराले बुद्धदेवीनां च **श्वेतकुम्भाः**। अष्टदिक्षु कमलोपरि स्थिताः **कमल**मुखा[191b] इति ॥४४॥

रक्ताब्जे दैवतीनां भवति शशधरश्चासनं कर्णिकायां
श्वेताब्जे कर्णिकायां भवति दिनकरो देवतानां च दिक्षु।
बाह्ये वज्रावली स्याद्विभुकमलवशाद्वेदिका श्वेतवर्णा
पीतस्तम्भा हिमाभा प्रभवति बकुली तोरणं विश्ववर्णम् ॥४५॥

अत्र **चन्द्रासनं** रक्तपद्मोपरि **देवीनां** भवति। **देवतानां** श्वेताब्ज[3]मूर्ध्नि **सूर्यासनं** भवति। कमलत्रिभाग**कर्णिकायाम्** अष्टदलानि वर्जयित्वा चन्द्रासनमपि। देवीनां कोणेषु देवतानां **दिक्षु सर्वबाह्ये वज्रावली स्यात्। विभुकमलवर्णवशात्** कर्तव्या, **तोरणं विश्ववर्णं** कर्तव्यमिति मूलमण्डले रजःपातवर्णनियमः ॥४५॥

इदानीं वाक्कायमण्डलदेवतापट्टिकादिवर्णमाह—

श्वेताभा योगिनीनामपि वसुकमला पट्टिका सर्वदिक्षु
दिग्भागे रक्तपद्मं भवति जिनवशाच्छ्वेतपद्मं च कोणे।
चन्द्रादित्यैर्विहीनं द्विगुणमनुदलं चामराणां तथैव
खाद्या याः पञ्चरेखाः प्रकृतिगुणवशात्तास्त्रिभागान्तरस्थाः ॥४६॥

श्वेताभेति। इह वाङ्मण्डले **योगिनीनामि**च्छादीनां प्रतीच्छादीनां कायमण्डले **पट्टिका** [4]**श्वेताभा** भवति। **अपि वसुकमला** [5]अष्टकमलाऽऽधारपट्टिका **सर्वदिक्षु** विदिक्षु। तत्र **दिग्भागे रक्त**वर्णानि **पद्मानि** [6]भवन्ति। **जिनवशात्** बुद्धवशात् **श्वेतपद्मं च कोणे** पद्मानीति[7]। तानि चन्द्रार्कासनविहीनान्यष्टदलानि। **तथैवामराणां द्विगुणमनुदलं** [8]अष्टाविंशद्दलं[9] **चन्द्रसूर्यविहीनम्**। वाङ्मण्डले **खाद्या याः पञ्चरेखाः प्रकृतिगुणवशात्**।

---

१. ख. पीताः। २. क. ख. छ. वृक्षाः। ३. क. ख. ०ताङ्ग। ४. ग. श्वेता। ५. ग. 'अष्टकमला' नास्ति। ६. क. ख. छ. भवति। ७. भो. 'इति' नास्ति। ८. च. अष्ट। ९. ग. विंशतिदल।

ताख्रिभागान्तरस्था इ[192a]ति। इह वाङ्मण्डले प्रकृति[1]राकाशादिमण्डलप्रवाहः। तेन शान्त्यादिवश्यादिकर्मणि वामसंचार[2]वशेन सृष्टियोगेन आकाशवायुतेजउदकपृथ्वी(थ्व्यो) हरितकृष्णरक्तशुक्लपीतवर्णा यथानुक्रमेण गर्भादारभ्य वेदिकायां यावदिति। एवं मारणादिके स्तम्भनादिके पृथिव्यादयः कार्या इति। प्रकृतिगुणवशाद् भवन्तीति। तस्मात् प्राकारभूमिः पञ्चदश-भागमेकं त्यक्त्वा भागद्वयेन प्रत्येकरेखा भवति यतः। एवं गर्भमण्डलप्राकारभूमिर्नव[4]विभागिका। तथा काय-[3]भागिका ज्ञातव्येति। इह काये पञ्चाङ्गुलीनां कनिष्ठादीनां आकाशादिप्रकृतिः। तेन मण्डले प्रकृतिरुच्यते—शान्तिकादौ मण्डले हरितवर्णादिरेखा सृष्टिभेदेन। मारणादौ पृथ्वीभेदेन संहारक्रमेणेति प्राकाररेखानियमः ॥४६॥

इदानीं नागराजानामासनान्युच्यन्ते—

स्तम्भाधो द्वारसन्धौ प्रभवति फणिनामासनं मारुताद्यं
ऐशान्यां दैत्यकोणे क्षितिवलयगतौ चन्द्रसूर्यौ नरेन्द्र।
बाह्ये द्वारोर्ध्वभागे समृगमपि भवेद्धर्मचक्रं घनाभं
सव्ये रक्तो घटः स्यात् सधनदवरुणे दुन्दुभिर्बोधिवृक्षः ॥४७॥

स्तम्भाध इत्यादिना। इह बाह्यकायमण्डले तोरण**स्तम्भानामधो** वेदिकास्थाने **द्वारसन्धौ प्रभवति फणिनामासनं मारुताद्यं** पूर्वद्वारस्य सव्यावसव्यं [5]वृत्तमारुतमण्डलं भवति गर्भ[6]पद्ममानेन। दक्षिणे त्रिकोणं वह्निमण्डलम्। आदिशब्दात् पश्चिमे[7] [8]पृथ्वीमण्डलं चतुरस्रम्, उत्तरे [9]अर्धचन्द्राकारं उदकमण्डलम्, कृष्णं रक्तं पीतं शुक्लं यथाक्रमेण विन्दुस्वस्तिकवज्रपद्म[192b]लाञ्छनमिति। एवं कृष्णरक्त-पीतशुक्लहरितनीलद्वारादि[10]स्यन्दनाः। श्मशानचक्राणि चन्द्रार्कवर्णानि यद्वक्ष्यति—"चक्रं श्वेतं च रक्तम्"(3.48) इति। तथागतवर्णभेदेन सर्वत्र रजोभूमिरिति।

इदानीं चन्द्रादित्योदयस्थानमुच्यते। इह कायमण्डलतोरणावसाने यत् पृथ्वीवलयं द्वादशार्धाङ्गुले[11] रचितं पीतवर्णम्, तत्रै**शान्यां** रात्रिवशाच्चन्द्रोदयं दर्शयेत् [12]पूर्णिमायाम्। तथा **दैत्यकोणे** नैर्ऋत्ये सूर्यास्तमनं दर्शयेत्। एवं **क्षितिवलयगतौ चन्द्रसूर्यौ** भवतः। हे **नरेन्द्र** ! ततः कायमण्डले **बाह्ये द्वारोर्ध्वभागे** प्रथमपुरे तोरणस्य

---

१. ग. राकारादि। २. ग. क्रमेण। ३. ग. च. भो. विभागिका। ४. क. ख. ग. च. मितामिका, छ. वितामिका। ५. ग. अर्धवृत्त। ६. ग. पद्मानां। ७. क. ख. छ. 'पश्चिमे' नास्ति। ८. च. पृथिवी। [illegible] स्पन्दना। [illegible] ङ्गुली। १२. क. ख. ग. छ. पूर्णायाम्।

मध्यस्थाने षोडशार्धाङ्गुलात्मके **समृगमपि भवेद् धर्मचक्रं घनाभम्**। चित्त[1]चक्र-विशुद्धया सव्यावसव्ये चक्रस्य मृगो मृगीति। ततोऽपरस्थाने पूजादेवता यथावर्णतः। एवं **सव्ये** दक्षिणतोरणे **रक्त**वर्णो भद्र**घटो** [2]वाग्विशुद्धया तस्य सव्यावसव्ये शङ्खपद्मौ। **सधनदवरुणे** धनदे **दुन्दुभि**चक्रः[3], श्वेतौ सव्यावसव्ये दण्डमुद्गरौ। पश्चिमे **बोधिवृक्षः** पीतः, सव्यावसव्ये किन्नरकिन्नरीति नियमः ॥ ४७ ॥

घण्टादर्शाः पताकाः शशधरधवलास्तोरणा लम्बमाना
हारार्धः श्वेतवर्णो भवति कुलवशात् स्यन्दनो द्वारमध्ये।
चक्रं श्वेतं च रक्तं स्वजिनकुलवशान्मारुते द्वारबाह्ये
वज्रज्वालास्फुरद्भिर्भवति नरपते बाह्यवज्रावली च ॥४८॥

एवं **घण्टादर्शाः पताकाः शशधरधवलास्तोरणा लम्बमाना हारार्धः श्वेतवर्णो भवति कुलवशात् स्यन्दनो द्वारमध्ये। चक्रं श्वेतं च रक्तं स्वजिनकुलवशाद् मारुते द्वारबाह्ये वज्रज्वालास्फुरद्भिर्भवति नरपते बाह्यवज्रावली** चेति। इह वज्रावल्या आद्य[193a]न्तं [4]घुणकं दत्त्वा तद्बाह्ये पञ्चरश्मिमयीं ज्वालां दर्शयेत्। ततो मण्डल-निष्पत्तिः। पृथ्वीवलयक्रम[5]शीर्षयोर्मध्ये यथाशोभानि पूजावस्तूनि कारयेदिति मण्डले रजोवर्णनियमः ॥ ४८ ॥

इदानीं प्राकाररेखानां विलक्षणदोषमाह—

स्थूला व्याधिं करोति प्रकटयति कृशा द्रव्यहानिं कुरेखा
छिन्ना मृत्युं च वक्रा सनृपजनपदोच्चाटनं तद्वदेव।
चिह्ने छिन्नेऽर्कचन्द्रे भवभयमथनी मन्त्रिणां नास्ति सिद्धिः
गोत्रच्छेदो विमिश्रे रजसि जिनकुलैर्मण्डले वेदितव्यः ॥ ४९ ॥

[6]स्थूलेत्यादिना। इह शान्तौ पुष्टौ यदा रेखा विलक्षणा भवति, तदा [7]कर्म-विपर्यासो भवति। तत्र **स्थूला व्याधिं करोति** [8]दातुराचार्यस्य वा, **कृशा द्रव्यहानिं प्रकटयति**[9] **कुरेखा। छिन्ना मृत्युं च** प्रकटयति। **वक्रा सनृपजनपदस्य उच्चाटनं** करोति **तद्वदेवेति। चिह्ने छिन्ने** सति **चन्द्रार्का**सने वा छिन्ने **भवभयमथनी** या **सिद्धिर्मन्त्रिणां** सा **नास्ति**। परस्पर[10]रजोभिर्मिश्रितैः **गोत्रच्छेदो** भवति दानपतिसंताने

---

१. क. ख. च. छ. वक्त्र। २. ग. 'वाग्' नास्ति। ३. ग. च. भो. 'चक्रः' नास्ति। ४. भो. zLom sKor (वृत्तकं)। ५ क. ख. छ. कव। ६. ख. च. छ. स्थूलेत्यादि। ७. च. वाक्यविपर्यासः। ८. क. ख. छ. दान्त। ९. च. प्रकटयति यद् वक्रा सा नृपस्योच्चाटनं करोति कुरेखा। तद्वदेवेति। चिह्ने छिन्ने सति [illegible] छ. रज्जो।

आचार्यसंतानेऽपि। **जिनकुलैर्मण्डले** तेन **वेदितव्यः** सर्वरजोविधिः प्रयत्नत[1] इति नियमः।

इदानीं चिह्नविलक्षणमुच्यते—इह चक्रं द्विविधम्, एकं देवतीनां समूहम्, अपरमष्टारमाधाररूपम्। तत्राष्टा[2]रं कोणे श्वेतम्, दिक्षु रक्तम्। समूहरूपं। पुनः स्वजिनकुलवशात् स्वजिनवर्णेन देवीनां वर्ण इत्यर्थः॥ ४९॥

यन्नोक्तं तन्त्रमध्ये प्रकटमपि जिनैर्मण्डले तन्न देयं
चिह्नं शोभार्थहेतोर्जिनजनककुले मारचिह्नं तदेव।
तस्मात्तन्त्रो[193b]क्तचिह्नं भवति कुलवशान्मण्डले द्वारसीम्नो
हारार्धान्ते प्रकुर्यात् क्षितिवलयगते पद्मकुम्भादिशोभाम्॥५०॥

यन्नेति। इह मन्त्रनये [3]यस्मिन् तन्त्रे चिह्नं **नोक्तं प्रकटमपि जिनैस्तथागतैस्तच्चिह्नं मण्डले न देयं शोभार्थम्**, कुतः? यतो **मारचिह्नं** तद्भवति, विपर्यासाद् अधिकत्वादिति। **जिनजनककुले** वज्रसत्त्वकुले वज्राचार्यस्येति। **तस्मात्तन्त्रोक्तविधिचिह्नं भवति। कुलवशात् मण्डले द्वारसीम्नः। हारार्धान्ते प्रकुर्या**दिति। हारार्धोपलक्षणाद् वकुली[4]क्रमशीर्षान्ते कायमण्डलान्ते **क्षिति[5]वलयगते पद्मकुम्भादिशोभां** प्रकुर्यादिति नियमः॥ ५०॥

इदानीं रजःप्रोन्नतिरुच्यते—

कृष्णादेः पादवृद्धया भवति च रजसः प्रोन्नतिर्वै यवैकात्
प्राकाराणां त्रिगुण्या दिनकरशशिनोरब्जरेखा द्विगुण्या।
गर्भाद्बाह्ये द्विगुण्या भवति नरपते प्रोन्नतिर्मण्डलेऽस्मिन्
हारार्धान्ते यवैका क्षितिजलहुतभुग्वायुवज्रावलीषु॥५१॥

कृष्णादेरित्यादिना। इह गर्भमण्डले वाय्वादिगुणभेदेन **पादादिवृद्धया** रजःपातना भवतीति। **यवस्यैकपादः कृष्णरजःप्रोन्नतिः**। पूर्वे स्पर्शगुण[6]विशुद्धया रक्तस्य द्वौ पादौ, स्पर्शरूपगुणद्वयविशुद्धया दक्षिणे श्वेतस्य त्रिपादाः, स्पर्शरूपरसगुणविशुद्धया उत्तरे पीतस्य, स्पर्शरूपरसगन्धचतुर्गुणविशुद्धया चतुःपादा प्रोन्नतिः पश्चिमे। एवं वाङ्मण्डले द्विगुणे, कायमण्डले चतुर्गुणे प्रोन्नतिरिति नियमः। यवोऽपि स्वस्वमण्डलाष्ट[7]षष्ठ्यधिकसप्तशतांशिको वेदितव्य इति। एवं **प्राका**[194a]-

---

१. भो. bsGrub Bo (सिद्धयति) इत्यधिकम्। २. क. ख. छ. ०ष्टार। ३. ग. 'यस्मिन्' नास्ति। ४. क. ख. छ. कव। ५. भो. dKyil hKhor (मण्डल)। ६. क[illegible] वृद्धया। ७. ख. ग. षष्ठा।

राणां प्रोन्नतिस्त्रिगुण्या पीतरजःप्रोन्नतिः। अन्या रेखा सामान्या पीतरजसो द्विगुणा भवति। कमलानां पत्र**बाह्ये** कमलासनपट्टिकानामिति **दिनकरशशिनोरब्जरेखा द्विगुण्या** नियमो **गर्भाद्बाह्ये द्विगुण्या [1]मध्यमण्डले**। तद् द्विगुण्या कायमण्डलेऽस्मिन् **हारार्धान्ते [2]यवैका** [3]क्रमशीर्षान्ते बाह्ये पूजाभूमौ। एवं **क्षितिजलहुतभुग्वायुवलयेषु वज्रावलीषु** च [4]घुणकद्वये प्राकारमानेन कायमण्डलस्येति रजःप्रोन्नतिनियमो धातुगुणभेदेन। अपर[5]रजःपातः सर्वत्र त्रिगुणभेदेन समानः सर्वभूमिषु प्राकाराणां त्रिगुणस्त्रि[6]वलयप्रमाण इति रजोविशुद्धिः॥ ५१॥

इदानीं लोकधातुशुद्धया रजोमण्डल[7]शुद्धिरुच्यते—

गर्भाद् द्वारादिसीम्नो भवति वसुमती मण्डले लोकधातो-
र्द्वारेभ्यश्चर्चिकान्तं त्रिगुणफणिपुरैः क्षाररत्नालयः स्यात्।
तस्माज्जैनेन्द्रकोष्ठैरपि शिखिवलयं वायुरेवं ततः स्यात्
तद्बाह्ये तद्विशुद्धया क्षितिजलहुतभुग्मारुता दर्शनीयाः॥५२॥

गर्भादित्यादिना। इह यथा बाह्ये तथा देहे। यथा देहे तथापरे रजोमण्डले। तेन लोकधातोर्यन्मानं चतु[8]र्लक्षयोजनानाम्, तद्देहे हस्तचतुष्टयम्। एवं मण्डलेऽपि एकहस्तमारभ्य सहस्रहस्तं यावत्। सर्वमेव स्वहस्तेन चतुर्हस्तं मण्डलं षण्णवतिद्विगुणार्धाङ्गुलात्मक[9]विभागत्वादिति। अतश्चतुर्हस्तात्मकं [10]सर्वमण्डलं भवति। तेन **गर्भाद् [11]द्वारादिसीम्नो भवति वसुमती** ब्रह्मसूत्रात् सर्वदिक्षु द्वारपर्यन्तं चतुर्विंशत्यर्धाङ्गुलैर्वसुमती भवति। तत्र गर्भपद्मं द्वादशार्धाङ्गुलं पञ्चाश[194b]द्योजनसहस्रार्धमानेन तथागतपुटं सर्वदिक्षु [12]षड्द्वीपषट्समुद्रषट्पर्वतान्तमधऊर्ध्वं मेरुमानेन पञ्चाशत्सहस्रयोजनम्। ततः पृथ्वीवलयं सर्वत्र पञ्चविंशतिसहस्रयोजनम्। मण्डले रजोभूमिद्वारान्तम्। एवं गर्भमण्डलं समस्तं लक्षयोजनम्। अष्टचत्वारिंशदर्धाङ्गुलविभागिकमिति नियमः। एवं [13]गर्भाद् द्वारादिसीम्नो भवति वसुमती **मण्डले लोकधातो**रिति। एवं **द्वारेभ्य**श्चतुर्भ्यश्चतुर्दिक्षु **चर्चिकान्तं क्षाररत्नालयम्** क्षारोदकवलयं **त्रिगुणफणि[14]पुरै**श्चतुर्दिक्षु चतुर्विंशत्यर्धाङ्गुलैः। एवं वाङ्मण्डलं सर्वदिक्षु लक्षद्वयं भवति। पूर्वात् परार्धं यावदिति नियमः। तस्माद्वाङ्मण्डल[15]द्वारात् [16]त्रिगुणफणिपुरै**र्जिनेन्द्रकोष्ठैः** सर्वदिक्षु चतुर्विंशत्यर्द्धाङ्गुलैरपि **शिखिवलयं** वाङ्मण्डल[17]क्रमशीर्षान्तम्। ततः स्थानात् पूर्वापरं

---

१. च. भो. मध्यम। २. क. ख. छ. यत्वेका। ३, क. ख. छ. कव। ४. क. ख. छ. पुणक। ५. क. ख. च. छ. 'रजः' नास्ति। ६. भो. dKyil ḥKhor (मण्डल)। ७. ग. विशुद्धि०। ८. ग. लंक्षं। ९ क. ख. छ. त्रिभाग। १०. ग. सवं। ११. ग. द्वारसीम्नो। १२. क. ख. ग. च. 'षड्द्वीप' नास्ति। १३. क. ख. छ. 'गर्भाद्' नास्ति। १४. भो. Re Mig (कोष्ठैः)। १५. च. मण्डलात्। १६. भो. 'त्रिगुणफणिपुरैः' नास्ति। १७. क. ख. छ. कव।

लोकधातुर्लक्षत्रयं योजनानामिति नियमः। **वायुरेवं ततः स्यात् । तस्मात्** क्रम[1]शीर्षात् **वायु**[3]वलयं लोकधातो-[2]**जैनेन्द्रकोष्ठै**श्चतुर्विशत्यर्धाङ्गुलैः सर्वदिक्षु कायमण्डलद्वारान्तं लोकधातुमण्डलं बाह्ये षण्णवतिद्विगुणविभागिकमिति रिति[4]। एवं [5]पूर्वापरं चतुर्लक्षं कायमण्डलनियमः। पुनस्तद्बाह्ये कायमण्डलतोरणावसाने **तद्विशुद्धचा** [6]पृथिवीवलयादि-विशुद्धया मेरुं वर्जयित्वा **क्षितिवलयं** द्वादशार्धाङ्गुलैः। शेषाणि प्रत्येकं चतुर्वि-शत्यर्धाङ्गुलैर्दर्शनीयानि। ततो बाह्ये वज्रावली द्वादशभिः। सव्यावसव्ये[7] भागत्रयं कृत्वा मध्ये षड्भागैर्वज्रावली कर्तव्या। तद्बाह्ये वज्रार्चिश्चतु[8]र्विशद्भिरिति लोकधातु-विशुद्धिनियमः॥ ५२ ॥

इदानीमूर्ध्वाधोविशुद्धिरुच्यते—

उष्णीषं वक्त्रकण्ठं त्रिगुणफणिपुरैर्मण्डले शोधनीयं
तस्मान्मेरुः समस्तस्त्रिगुणफणिपुरैर्मेदिनी यावदेव ।
षट्षट्[195a]कोष्ठैः क्रमेण स्फुटमहिभुवनं सप्तपातालमेव
एवं भूम्यादि सर्वं पुनरपि च तथा शोधनीयं स्वदेहे ॥५३॥

द्वयब्ध्येकाब्ध्येकसूर्यैर्ऋतुरसशिखिनोऽग्न्यर्धकालार्धकालैः
कालैः कालप्रभिन्नैर्ऋतुभिरपि रसैर्दोषभागैः क्रमेण ।
गर्भाद्वा कर्णिका चाब्जदलमपि ततः स्तम्भवज्रावली च
पद्मं वज्रावली स्यात् क्षितिरपि च ततो द्वारनिर्यूहकाद्यम् ॥५४॥

स्तम्भाः प्राकारवेद्याः पुनरपि च ततः पट्टिका हारभूमि-
रादर्शक्ष्मा च पट्टी भवति नरपते तोरणं प्रोक्तभागैः ।
बाह्ये द्वारादि सर्वं द्विगुणमपि भवेत्तद्द्विगुण्यं च बाह्ये
बाह्ये पद्मानि चक्राण्यपि च दिनकरैः स्यन्दनं मण्डलानि ॥५५॥

उष्णीषमित्यादिना। [9]इह बाह्ये मेरौ **उष्णीषं** पञ्च[10]विंशत्सहस्रं द्वादशार्धाङ्गुल-विभागिकं मध्ये गर्भपद्मं तद्द्विभागिकम्। ततो **वक्त्रं** लक्षार्धं [11]**कण्ठं** पञ्च[12]विंशत्सहस्रम्। तेषु प्रथमे[13] भागे बुद्धचक्रम्, द्वितीये वक्त्रार्धे पञ्चविंशत्सहस्रे अपरचक्रम्। शेषभागद्वये रजोभूमिर्द्वारान्तम्। एवमूर्ध्वाधः कण्ठान्तं लक्षयोजनं लोकधातुमण्डले। हस्तमेकं

१. क. ख. छ. कव। २. क. ख. छ. जिनेन्द्र। ३. भो. dKyil ḥKhor (मण्डल) सर्वत्र। ४. ग. च. 'इति' नास्ति। ५. भो. 'पूर्वापरं' नास्ति। ६. ग. 'पृथिवी····विशुद्धया' नास्ति। ७. च. छ. सव्यं। ८. ग. च. छ. शतिभि। ९. क. ख. छ. 'इह बाह्ये मेरौ' नास्ति। १०. ग. विंशति। ११. ग. करणं। १२. ग. ०शति। १३. ग. प्रथम।

समन्तादिति गर्भमण्डलनियमः। **एवमुष्णीषं वक्त्रकण्ठं त्रिगुणफणि**[1]**पुरैर्मण्डले** सव्यावसव्ये **शोधनीय**मिति नियमः। **तस्मात्** कण्ठान्मेरुः **समस्तः**[2]। लक्षयोजनं कट्यन्तम्। ऊर्ध्वाधः त्रिगुणफणिपुरैश्चतुर्विंशत्यर्धाङ्गुलैः सव्यावसव्यं शोधनीयम्। मण्डले वाग्लक्षण इति। **मेदिनीं यावदेवाधः**। तस्मात् **षट्षट्कोष्ठैः क्रमेण** पञ्चविंशद्योजन-सहस्रात्मकैः षड्विभा[3]गिकैर्लक्षद्वयम्। अष्टविभागं कृत्वा। **अहिभुवनं**[195b] स्फुटं [4]**सप्तपातालं** नरकभुवनं प्रत्येकं शोधनीयं शरीरे। कटिमारभ्य पादतलान्तम् अष्ट-विभागं कृत्वा रजोमण्डले शोधनीयम्। कायमण्डलान्तम्। सर्वदिक्षु चतुर्द्वारपर्यन्तं ब्रह्म[5]स्थानादिति नियमः। **एवं भूम्यादिसर्वं पुनरपि च ततः शोधनीयं स्वदेहे** सर्वेषां सत्त्वानां मनुष्यादीनामिति [6]मण्डलविधिनियमः॥

तथा मूलतन्त्रोक्ता अपरा [7]शुद्धिरुच्यते। इह सर्वसत्त्वानां हृदयान्तर्गतं ज्ञानम्, तच्चानाहतध्वनिः सदा नादलक्षणः। ततस्तन्मण्डलं मध्ये कृत्वा हृदयचक्रम्। ततः कण्ठनाभ्योर्मध्येऽर्धमानं गृहीत्वा चित्तमण्डलं भगवतः सार्धद्वादशमात्रात्मकं कुर्यात्[8]। कण्ठान्नाभ्यन्तं पञ्चविंशन्मात्रात्मकं वाङ्मण्डलं कुर्यात्। ऊर्णास्थानाद् मेढ्रान्तं पञ्चा-शन्मात्रात्मकं कायमण्डलं कुर्यादिति। ततश्चतुःकायद्वाराणि विण्मूत्रशुक्रउष्णीषरन्ध्राणि, वाङ्मण्डलद्वाराणि ललनारसनाऽवधूतीशङ्खिनीति कण्ठान्नाभिसीम्नः। चित्तमण्डल-द्वाराणि जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यावस्थालक्षणानीति। एवं द्वादशद्वारात्मकं कायवाक्चित्त-मण्डलं परमादिबुद्धं षोडशचन्द्रकला[9]विभागिकम्।

यथा बाह्ये तथा देहे [10]यथा देहे तथापरे।
त्रिविधं मण्डलं ज्ञात्वा आचार्यो मण्डलं लिखेत् ॥

इति सर्वत्र नियमः। द्वयब्ध्येकादिना [11]वृत्तमुक्तम्, [12]पूर्वसूत्रपातेन सार्धमिति ॥५३-५५॥

इदानीं [13]मण्डलदेवतामन्त्र[14]चिह्नान्युच्यन्ते—

ॐकारज्ञानजाते जिनवरकमले चन्द्रसूर्यासनोर्ध्व-
माद्यैः काद्यैः सशून्यैस्त्रिभुवनजननी मातृका स्थापनीया ।
शून्येऽकारे विसर्गे स्वररहितपरे कायवाक्चित्तवज्रं
संभूतं मन्त्रयोनिं परमसुखकरं ज्ञानवज्रं चतुर्थम् ॥५६॥

१. भो. Re Mig (कोष्ठ)। २. ग. समस्तं। ३. ग. च. विभागिकं। ४. च. 'सप्त' नास्ति। ५. ग. स्थानानि निय०। ६. भो. dKyil ḥKhor Gyi sNam Pa (मण्डलाकार)। ७. ग. च. भो. विशुद्धि। ८. छ. कुर्यादिति। ९. च. विभागलक्षणम्। १०. भो. 'यथा देहे' नास्ति। ११. भो. Tshigs Su bCad Pa gÑis (वृत्तद्वयम्)। १२. क. ख. छ. पूर्वं। १३. ग. मण्डले। १४. भो. Phyag rGya (मुद्रा) इत्यधिकम्।

ॐकारेत्यादिना। इह सर्वत्र तन्त्रराजेषु रजोमण्डले ॐकारः कायवज्रः, तेन मण्डलं[196 a] निष्पादितम् ॐकारं[1] **ज्ञान**जातमित्युच्यते। तस्माद् **ॐकारजाते** मण्डले **जिनवरकमले** चतुर्विंशतिकमलेषु चन्द्रसूर्यासनानि वर्षभेदेन, द्वादशपूर्णिमाभेदेन [2]द्वादशचन्द्रासनानि, द्वादशामावास्याभेदेन [3]द्वादशसूर्यासनानि प्रज्ञोपायविशुद्धया। तेषु **चन्द्रसूर्यासनेषूर्ध्वं** कर्णिकोपरि स्थितेषु, **आद्यै**रित्याकाराद्यैः स्वरैः, **काद्यै**रिति ककाराद्यैर्व्यञ्जनैः, **सशून्यै**रिति बिन्दुविसर्गसहितैः, तैः सार्धं **त्रिभुवनजननी** शून्यता सर्वकारा नादरूपिणी बिन्दुमूर्ध्नि **मातृका** त्रैधातुकजननी, अनाहतध्वनिरिति प्रज्ञापारमिता परमार्थसत्याश्रयेण **स्थापनीया** सर्वमन्त्राणां मूर्ध्नि आकारादिककारादीनां सशून्यानाम्। तेन तैः सार्धं सा उच्यते। एवं भगवानपि महासुखरूपी [4]तत्रान्तर्गतः।

इदानीं पञ्चशून्येषु प्रत्याहारधर्मिणां कायादिमन्त्राणाम् उत्पाद[5] उच्यते—शून्य इत्यादिना। **शून्ये** प्रथमपटलोक्तमन्त्र[6]स्थाने वामाङ्के अनुस्वार इति। पूर्वापरे [7]अकारद्वये दक्षिणाङ्के **विसर्गे** बिन्दुद्वये। **स्वररहितपरे**[8] इति। अनाहते[9] हकारे अस्वरे। **कायवाक्चित्त**ज्ञान**वज्राणि** संभूतानि। तेषु प्रथमं तावत् कायोत्पादः कथ्यते। इह प्रथममनुस्वारः, ततोऽकारः, उभयोर्मध्ये विसर्गः, अनुस्वारान्ते दीर्घ आकारः। एवं दीर्घस्वरे परभूते पूर्वोऽनुस्वारो मत्वमापद्यते। [10]मकारे च परेऽकारात् परो विसर्गोऽकारः स्यात्, पश्चादकारेण गुणे सति ओकारः।

ततो निरुक्तिलक्षणे वर्णनाशोऽस्तीति मकारं विश्लिष्य [11]अन्त आकारो लोप्यः। एवं त्रिगुणात्मक ॐकारः कायवज्रः। अ उ म् इति कथ्यते स्वपरसिद्धान्ते।

इदानीं वाग्वज्र उच्यते। इह पूर्वापरमकारद्वयं दीर्घीकृत्य विसर्गोऽन्ते[12] देयः। तेन आःकारस्त्रिगुणात्मको भवति। अ आ[13] इति कथ्यते। इदानीं चित्तवज्र उच्यते। इ[196b]ह [14]पूर्वंहकारोऽस्वरः, ततो ह्रस्वोऽकारः, ततो विसर्गः, ततो बिन्दुः, ततो दीर्घ [15]आकारः। एवं पूर्ववदुकारो विसर्गस्य आद्यन्ताकारयोर्लोपः। ततो [16]हुंकारस्त्रिगुणात्मकः। [17]हू उ म् इति कथ्यते। एवं कायवाक्चित्तमन्त्र[18]संभूतं[19] मन्त्राणां योनिर्जनकमित्यर्थः।

---

१. च. कार। २-३. भो. 'द्वादश' नास्ति। ४. क. ख. तन्त्रा०। ५. क. ख छ. ०पादमुच्यते। ६. भो. sÑags kyi (मन्त्रस्य)। ७. च. आकार। ८. भो. mChog (परम्)। ९. ग. ०तेऽकारे, च. ते उकारे। १०. भो. Ma Yig Pha Rol Tu Byuṅ Bas Kyaṅ (मकारपरस्यापि)। ११. भो. 'अन्ते' नास्ति। १२. ग. विसर्गान्ते। १३. ख. ग. आः। १४. ग. पूर्वं। [illegible] ग. च. हूंका[illegible] १७. ग. भो. हू उ म। १८. च. मन्त्रं। १९. छ. ०भूतः।

इदानीं ज्ञानवज्र उच्यते। अत्र [1]पूर्वंहकारोऽस्वरः, ततो[2]ऽकारः, ततो विसर्गः, ततोऽनुस्वारः, ततो दीर्घ [3]आकारः। एवं पूर्ववद्विसर्गाद् उकारः। पूर्वस्वरेण गुणो हकारेण संयोगः। अपर [4]आकारमकारयोर्लोपः। एवं त्रिगुणात्मको [5]होकार इति। ह अ उ इत्युच्यते। एवं ज्ञानवज्रे गुणत्रयम्—अविद्या, संस्कारः, विज्ञानम्। कायवज्रे—नामरूपम्, षडायतनम्, स्पर्शः। वाग्वज्रे—वेदना, तृष्णा, उपादानम्। चित्तवज्रे—भवो जातिर्जरामरणम्। बिन्दुरूपवशादिति। एवमविद्यादीनां जनकं **परमसुखकरं** ज्ञानवज्रं चतुर्थमिति **मन्त्राणां योनिः** सर्वत्र द्वादशाकारकायवाक्चित्तज्ञानवज्रमिति भगवतो नियमः ॥ ५६ ॥

इदानीं मन्त्रचिह्न[6]न्यास उच्यते—

हुंकारो विश्ववर्णे जिनपतिकमले चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि
दिक्पत्रेष्वादिशून्यं विदिशि च दलके हादिशून्यं चतुर्वा।
ईशे नैर्ऋत्यकोणे शिखिनि च पवने कायवाक्चित्तरागं
हीकाराद्यं घटानां भवति च दशकं हं ह इत्यत्र चान्ते ॥५७॥

इह सर्वत्र रजोमण्डले त्रिविधो न्यासः, चन्द्रसूर्यासनेषु स्थूल[7]सूक्ष्मपरभेदेन। तत्र परभेदो मन्त्रबीजन्यासः, सूक्ष्मभेदो मन्त्रबीजपरिणतो वज्रादिचिह्नन्यासः, स्थूलभेदो वज्रादिचिह्नपरिणतो देवतारूपन्यासः। इत्येवं यथानुक्रमेण मन्त्रबीजन्यासे कृते सति चिह्नन्यासाद्यं वेदितव्यमिति नियमः। तेन अस्मिन् मन्त्रबीजन्यासः प्रधानत्वेनोक्त इति। [8]**हुंकारो विश्ववर्णे** हरितवर्णे[197a] **जिनपतिकमले चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि** इति। इह चन्द्रसूर्यराहूणां योगोऽमावास्यान्ते ग्रहणकाले, तदेव [9]चन्द्रसूर्याग्निसंयुक्तं मण्डलमासनम्। अध्यात्मनि ललनारसनाऽवधूतीसंयुक्तं हृत्कमलम्, तस्य कर्णिकायां चन्द्रसूर्यराहुमूर्ध्नि [10]हुंकारबीजं लिखेद् नीलरजसा। अथवा तत्परिणतं नीलवज्रं त्रिशूकं लिखेदिति। गुह्यतन्त्रे रजोमण्डले देवतारूपं न लेख्यं लोकावध्यानपरिहारायेति। अधिपतिबीजन्यासः। ततः पद्मदले दानादिपारमितान्यासः कर्तव्यः। **दिक्पत्रे**[11]**ष्वादिशून्यमिति**। पूर्वपत्रे अ, [12]दक्षिणे अः, उत्तरे अं, पश्चिमे आ इति। [13]अथ चिह्नानि—पूर्वपत्रे धूपदर्वी, दक्षिणे प्रदीपः, उत्तरे नैवेद्यम्, पश्चिमे शङ्ख इति। इह वक्ष्यमाणे "यच्चिह्नं यस्य सव्ये [14]भवति करतले सात्र मुद्राब्जहीना" इति वचनात् [15]चिह्नन्यासो वक्ष्यमाणनियमेनेति। एवं **विदिशि च दलके हादिशून्यं चतुर्वेति**।

---

१. ग. च. पूर्वं। २. भो. Thuṅ Ṅu (ह्रस्व) इत्यधिकम्। ३. भो. आः। ४. ग. च. भो. अपरमिकाराकारयोः। ५. च. होः, ग. ०कोऽका। ६. च. 'चिह्न' नास्ति। ७. ग. च. सूक्ष्मा। ८. क. ख. ग. च. हूंकारो। ९. छ. चन्द्राग्नि सं०। १०. क. ख. ग. च. हूंकार। ११. भो, A Sogs (अ आदि)। १२, ग. च. दक्षिणपत्रे। १३. भो. Yaṅ Na (अथवा)। १४, क. ख. भगवति। १५. भो. [illegible] Phyag rGya (मुद्रा)।

इहाग्नेय्यां ह, नैर्ऋत्ये हः, ईशे हं, वायव्ये हा। अथवा कृष्णरक्तशुक्लपीतचामराणि लिखेदिति। ततो [1]विदिक्पत्रे बाह्ये चतुःकोणेषु यथासंख्यम् **ईशे** कायवज्रम् ॐकारो धर्मशङ्खो वा, **नैर्ऋत्यकोणे** वाग्वज्रं आः धर्मगण्डी[2], **शिखिनि** चित्तवज्रम् हूँ[3] चिन्तामणिर्वा, **पवने** रागं ज्ञानवज्रं हो[4] कल्पवृक्षो वा लिखनीय इति गर्भकमलन्यासः।

इदानीं द्वितीयपुटे न्यास उच्यते। इह द्वितीयपुटे [5]अष्टकक्षप्रदेशेषु [6]पूर्वादिषु पूर्वदेवताकमलस्थाने वामे हि, दक्षिणे ही घटद्वयं वा दक्षिणे देवतायाः, पूर्वे हृ[7], पश्चिमे ह्ॄ[8] घटौ वा। पश्चिमदेवताया दक्षिणे ह्ऌ, उत्तरे ह्ॡ, घटौ वा। उत्तरदेवतायाः पश्चिमे हु, पूर्वे हू, घटौ वा। **हं हः** पूर्वापरद्वारनिर्गमे क्रोधस्योपरि ऊर्ध्वाधः शुद्धया [9]**हीकाराद्यं दशकं** भवतीति [10]कलशबीजन्यासः ॥५७॥

ततो देवताबीजन्यासः—

पूर्वाब्जोर्ध्वे त्विकारः शिखिकमलगतो दीर्घ ईकार एव
याम्ये दैत्ये ऋकारौ धनदहरगतौ ह्रस्वदीर्घौ ह्युकारौ।
वारुण्ये वायुको[197b]णेऽपि च कमलगतौ ह्रस्वदीर्घाव्लृकारौ
कृष्णौ रक्तौ च शुक्लौ वरकनकनिभौ वक्त्रभेदेन देयौ ॥५८॥

इह **पूर्वाब्जोर्ध्वे** सूर्यासने **इकारः** खड्गो वा संस्कारस्य। **शिखिकमलगत**श्चन्द्रमण्डलगतो **दीर्घ ईकारः** [11]खड्गो वा, **उत्पलं** वा वायुधातोः। एवं **याम्ये** ऋकारो रत्नं वा वेदनायाः। नैर्ऋत्ये ॠ तेजोधातो रक्तपद्मं वा चन्द्रे। एवं **धनदे** उकारो वा श्वेतपद्मं संज्ञायाः। **हरगतम्** ऊ श्वेतकुवलयं वा तोयधातोः। एवं [12]**वारुण्येऽपि** च ऌकारो वा [13]चक्रं रूपस्य। **वायुकोणे** ॡ पृथ्वीधातोः, चक्रं वेति स्कन्धधातुन्यासः। आकाशधातुविज्ञानयोरेकमेव [14]चिह्नवज्रं कर्णिकायाम्। **कृष्णौ** [15]पूर्वाग्न्योः **रक्तौ** दक्षिणनैर्ऋत्ये। **शुक्लौ** उत्तरेशे। पीतौ पश्चिमवायव्ये **वक्त्रभेदेन देयौ** जिनस्येति नियमः ॥५८॥

इदानीं षडिन्द्रियषड्विषयविशुद्धया देवतादेवी[16]बीजान्युच्यन्ते—

पूर्वद्वारस्य सव्ये शिखिकमलगतौ ह्रस्वदीर्घौ तथैव
तद्वच्चार्कारयुग्मं यमदनुगगतं पश्चिमेऽल्कारयुग्मम्।

१. भो. Phyogs Bral ḥDi La (विदिशि अत्र)। २. ख. ग. च. छ. भो. ०गण्डी वा। ३. भो. हुँ। ४. क. ख. भो. च. होः। ५. ग. च. भो. अष्टसु। ६. छ. नास्ति। ७. छ. हृः। ८. छ. कॄः। ९. भो. हि.। १०. ग. नास्ति। ११. ग. च. एवं खड्गो। १२. छ, वारुणे, च. 'अपि' नास्ति। १३. च. चक्रे वा। १४, ग[illegible] १५. क. ख. ग. छ. पूर्वाग्नौ। १६. ग. बीजाक्षराण्यु०।

ओ औ यक्षे च रुद्रे सुरवरुणयमद्वारवामे सयक्षे
अं अश्चाद्या क्रमेण त्वपि च यरवला द्वारपद्मे स्वरादौ ॥५९॥

तृतीयपुटे इह **पूर्वद्वारस्य सव्ये** सूर्यमण्डले कमलोपरिस्थे एकारो घ्राणस्य, **शिखिकमल**[1]**गतो**ऽग्निकोणे चन्द्रमण्डले ऐकारः स्पर्शवज्रायाः। एवं दक्षिणद्वारपश्चिमे अर्कारः चक्षुषः, नैर्ऋत्ये तद्वद् **आर्कारो** रसवज्रायाः। इति **युग्मम्**। एवं **पश्चिमे अल्कारः** कायेन्द्रियस्य, आल्कारो वायव्ये गन्धवज्राया इति। **ओ यक्षे** जिह्वायाः, **औ रुद्रे** रूपवज्रा[198a]या इति। **सुरवरुणयमद्वारवामे सयक्ष** इति। इह पूर्वद्वारोत्तरे सूर्यमूर्ध्नि **अं** मनइन्द्रियस्य, वरुणद्वारस्य दक्षिणे **अः**[2]कारो धर्मधातोः, चन्द्रो[3] यम इति दक्षिण[4]द्वारपूर्वे अकारः सूर्ये श्रोत्रेन्द्रियस्येति। सर्वत्र [5]वामे भगवतश्चतुर्मुखभेदतः। यक्षे उत्तरद्वारपश्चिमे [6]आःकारः शब्दवज्राया इति द्वादशायतनबीजन्यासः।

इदानीं द्वारपालबीजन्यास उच्यते—**क्रमेण त्वपि च**[7] **यरवला द्वारपद्मे सुरादौ**। इह पूर्वद्वारे सूर्यमण्डले चन्द्रे वा यकारो वागिन्द्रियस्य, दक्षिणे सूर्ये पाणीन्द्रियस्य रेफः[8], उत्तरे च पादेन्द्रियस्य [9]वकारः, पश्चिमे गुदेन्द्रियस्य [लकारः] इति न्यासः॥ ५९॥

इदानीं चन्द्रसूर्यासननियम उच्यते—

पूर्वद्वारेऽवसव्ये भवति शशधरश्चासनं क्रोधयोश्च
सूर्यः सव्ये परे च प्रभवति कमलेष्वासनं द्वन्द्वयोश्च।
प्रज्ञोपायप्रभेदैर्भवति हि सकलं चन्द्रसूर्यासनं च
सव्ये पृष्ठे रविः स्यात् सुरपतिधनदे चन्द्रमेवासनं स्यात् ॥६०॥

इह **पूर्वद्वारेऽवसव्य**द्वारे **भवति शशधरश्चासनं क्रोधयोश्चे**ति। चकारात् सूर्यो वा। **सूर्यः सव्येऽपरे च भवति** प्रज्ञोपायाङ्गभेदेन। [10]अथोपायासनं सूर्यः। प्रज्ञासनं चन्द्रः। स्वस्व**कमलेषु**। [11]अथ पूर्वाग्निदेवतादीनां खड्गः। [12]दक्षिणनैर्ऋ[13]त्यानां रत्नम्। उत्तरेशानानां पद्मम्। पश्चिमवायव्यानां चक्रम्। ऊर्ध्वाधोदेवतानां वज्र इति। अथवा विषयभेदेन शब्दस्य वीणा, स्पर्शस्य वस्त्रम्, रूपस्यादर्शः, रसस्य पात्रम्, गन्धस्य गन्धशङ्खः, धर्मधातोर्धर्मोदय[14]मिति। एवं वागिन्द्रियस्य खड्गः, पाणीन्द्रियस्य दण्डः,

१. गते। २. भो. आकारो, ग. च. अकारो। ३. ख. ग. चन्द्रे। ४. छ. द्वारः। ५. क. यामे। ६. भो. अः, ग. च. आ। ७. क. य व र ला। ८. भो. Ra Yig (रकारः)। ९. क. ख. छ. 'वकारः' नास्ति, ग. च. व। १०. भो. Yaṅ Na (अथवा)। ११. छ. अयवा। १२. क. ख. छ. दक्षिणे। १३. ग. च. नैर्ऋत्यां। १४. [illegible]

पादेन्द्रियस्य पद्मम्, पाय्विन्द्रियस्य मुद्गरं चेति गर्भमण्डले चिह्नन्यासः ॥ ६० ॥ (198b)

इदानीं कमलबीजान्युच्यन्ते—

बिन्द्वाकारैर्विभिन्नं खलु कमलगतं कादिवर्गाक्षरं च
कन्दे नाले दले च क्रमपरिरचितं केशरे कर्णिकायाम् ।
भूम्याद्यं चास्वरान्तं क ख ग घ ङ इति ह्रस्वदीर्घः स्वभूमौ
बिन्दुश्चन्द्रो विसर्गो भवति दिनकरश्चासनं कर्णिकोर्ध्वम् ॥६१॥

बिन्द्वाकारैरित्यादिना। इह चतुर्विंशतिकमलेषु **कादिवर्गाक्षरम्।** [1]**कन्दादिषु** बिन्द्वादिभिन्नम् अं अः अ आ—एभिर्भिन्नं देयं देवताकुलवशादिति। श्रोत्रस्य कमल**कन्दे** कं **नाले** खं **दले** गं **केशरे** घं **कर्णिकायां** ङमिति। धर्मधातोः का खा गा घा ङा इति। मन इन्द्रियस्य सं᳣पं षं शं᳣कं इति। शब्दस्य सः᳣प [2]षः शः᳣कः इति परिणतं कमलमेभिः पञ्चाक्षरैः। संस्कारस्य कमले च छ ज झ ञ इति। एवं घ्राणस्य चं छं जं झं ञम्। तथा वायुधातोः चा छा जा झा ञा इति। स्पर्शस्य[3] [4]चाः छाः जाः झाः ञाः इति। वेदनायाः ट ठ ड ढ ण इति। चक्षुषः टं ठं डं ढं णं इति। तेजोधातोः टा ठा डा ढा णा इति। रसवज्रायाः [5]टाः ठाः डाः ढाः णाः इति। संज्ञायाः प फ ब भ म इति। जिह्वायाः पं फं बं भं मं इति[6]। उदकधातोः पा फा बा भा मा इति। रूपवज्रायाः [7]पाः फाः बाः भाः माः इति। रूपस्य त थ द ध न इति। कायेन्द्रियस्य तं थं दं धं नं इति। पृथ्वीधातोः ता था दा धा ना इति। गन्धस्य [8]ताः थाः दाः धाः नाः इति। एवं च छ ज झ ञ वागिन्द्रियस्य। ट ठ ड ढ ण पाणीन्द्रियस्य। प फ ब भ म पादेन्द्रियस्य। त थ द ध न पाय्विन्द्रियस्य कमले [9]विज्ञेया इति कमलबीजन्यासो **ह्रस्वदीर्घः स्वभूमाविति** नियमः। एवं बिन्दुनाऽकारेण हकारेण वा चन्द्रासनानि, विसर्गेण रेफेण क्षकारेण वा सूर्यासनानि **कर्णिकोर्ध्वम्**[10]। [11]अधिपतिकमले सां᳣पां षां शां᳣कां कर्णिकोर्ध्वं[12] [13]अं अः अ। चन्द्रसूर्यराह्वासनानीति न्यासः ॥६१॥[199a]

इदानीं पूजादेवीनां बीजान्युच्यन्ते—

षड्वर्गा ह्रस्वदीर्घप्रकृतिगुणवशाद् वेदिकास्तम्भपार्श्वे
गन्धादीनां क्रमेण स्वकुलभुविगताः पूर्वभागात् स्वदिक्षु ।

१. ग चन्द्रादिषु, छ. कान्दादिषु। २. क. 'षः' नास्ति। ३. ग. स्पर्शस्य वा। ४. भो. चः छः जः झः ञः। ५. भो. टः ठः डः ढः णः। ६. क. ख. छ. 'इति' नास्ति। ७. भो. पः फः बः भः मः। ८. भो. तः थः दः धः नः। ९. क. ख. छ. विज्ञाया। १०. ग. ०र्ध्वे। ११. क. ख. छ. अतिपति। १२. ग. ०र्ध्वे। १३. भो. ॲं अः अ।

बाह्ये बिन्द्वादिभिन्नास्त्रिगुणितरविभिर्वेदिकायां तथैव
सर्वेच्छानां समन्तात् स्वकुलदिनगता वर्णभेदैर्जिनानाम् ॥६२॥

षड्वर्गेत्यादिना। इह चित्तमण्डले पूर्वे वेदिकायां[1] तोरणस्तम्भे [2]मूले वामे च्छ्ज्झ्ञ गन्धायाः। सव्ये चछजझञा मालायाः। एवं दक्षिणे ट्ठ्ड्ढ्ण धूपायाः। टठडढणा दीपायाः। पश्चिमे त्थ्द्ध्न लास्यायाः। तथदधना हास्यायाः। प्फ्ब्भ्म अमृतायाः। पफबभमा फलाक्षतायाः। क्ख्ग्घ्ङ् नृत्यायाः [3]पूर्वद्वारतोरणोपरि, कखगघङा वाद्यायाः पश्चिमद्वारतोरणोपरि, स् य् ष् श᳣्क गीतायां[4] उत्तरद्वारतोरणोपरि, स᳣पयषश᳣का कामाया दक्षिणद्वारतोरणोपरि। अथ[5] चिह्नानि शङ्खमालादर्वीप्रदीप[6]मकुटहारफलपात्रवस्त्र[7]पटहवज्रपद्मानीति पूर्वभागादौ नियोज्या[नि] इति नियमः।

इदानीं षट्त्रिंशदिच्छायां बीजान्युच्यन्ते—बाह्य इत्यादिना। इह **बाह्ये** वाङ्मण्डले वेदिकायां [8]पूर्वद्वारदक्षिणे वेदिकायां चः छः जः झः ञः। दक्षिणे टः ठः डः ढः णः। पश्चिमे तः थः दः धः नः। उत्तरे पः फः बः भः मः। पूर्वद्वार[9]वामे सः᳣पः षः शः᳣कः। उत्तरद्वारपश्चिमे लः वः रः यः हः। दक्षिणद्वारे[10] वेदिकायां कः खः गः घः ङः। पश्चिमद्वारदक्षिणे[11] क्षः इति वाङ्मण्डले। कायमण्डले एभिरक्षरैरनुस्वारसंयुक्तैश्चकारादिवर्णैः प्रतीच्छानां बीजानि चिह्नानि रूपाणि वा लेखनीयानि। [388] [12]गर्भ**वेदिकायाम्** अनेकाः पूजादेवत्यो धारिण्यः समस्ता लेख्या इति धारणीच्छाबीजन्यासः। एवं **सर्वेच्छानां समन्तात्** [13]**स्वकुलदिशिगता वर्णभेदैर्जिनानां** वर्णा वेदितव्याः। पञ्चवर्णरजसेति सर्वत्र नियमः ॥६२॥[199b]

इदानीं वाङ्मण्डले चर्चिकादीनां बीजान्युच्यन्ते—

ह्रस्वौ दीर्घौ हकारौ सुरघनदपरे दक्षिणे चर्चिकादे-
र्वैष्णव्यादेः क्षकारः शिखिहर(रि)पवनेष्वादिभिन्नश्च दैत्ये ।
ह्याद्याः क्षाद्यष्टसंख्याः कमलदलगताः पूर्वपृष्ठेऽष्टदिक्षु
याद्याः षड् ह्रस्वदीर्घाः सुरकमलदले वह्निपद्मे क्रमेण ॥६३॥

ह्रस्वावित्यादिना। इह वक्ष्यमाणे साधनापटले चर्चिकाकमलासनं प्रेतम्, तदुपरि कमलमष्टदलम्। तदेव [14]लिखनीयम्। रजसा रक्तवर्णं कमलमपि। ततो ह्रस्वौ दीर्घौ

१. क. ख. ग. छ. ०कायांस्तो०। २. भो. 'मूले' नास्ति। ३. क. ख. छ. पूर्वे। ४. क. ख. छ. 'द्वार' नास्ति। ५. भो. yaṅNa (अथवा)। ६. ग. च. मुकुट। ७. क. पटल। ८. ग. पूर्वं। ९. च. द्वारे। १०. च. भो. द्वारपूर्वे, ग. द्वारपूर्वं। ११. ग. च. दक्षिणायां। १२. क. गर्भे। १३. भो. Raṅ Rig (स्वविद्या)। १४. ग. लेखनीयं।

हकारो इति **सुरे** कर्णिकायां चर्चिकायां ह। **धनदे** रौद्रया वृषभोपरि [2]पद्मकर्णिकायां [1]हकारो इति **सुरे** कर्णिकायां चर्चिकायां ह। **अपरे ऐन्द्रया** गजोपरि हा इति [3]दिक्षु हं। **दक्षिणे** वाराह्या महिषोपरि हः। **अपरे ऐन्द्रया** गजोपरि हा इति [3]दिक्षु हं। **दक्षिणे** वाराह्या महिषोपरि हः। **वैष्णव्यादेः क्षकारो**[5]। एवं **शिखिकोणे**[6] गरुडोपरि कमलकर्णिकायां **चर्चिकादेः** [4]यः। **वैष्णव्यादेः क्षकारो**[5]। एवं **शिखिकोणे**[6] गरुडोपरि कमलकर्णिकायां क्ष[7]। एवं [8]हरेर्महालक्ष्म्याः क्षं सिंहोपरि। वायव्ये ब्रह्माण्या हंसोपरि क्षा। नैर्ऋत्ये क्ष[7]। एवं [8]हरेर्महालक्ष्म्याः क्षं सिंहोपरि। एषु [9]चन्द्रासनाभावः। इति चर्चिकादिभेदेन कौमार्याः क्षः मयूरकमलकर्णिकोपरि। एषु [9]चन्द्रासनाभावः। इति चर्चिकादिभेदेन **दैत्ये** इति नियमः।

इदानीं भीमादीनां चतुःषष्टियोगिनीनां बीजानि कमलदलेषूच्यन्ते—ह्याद्या इत्यादिना। इह **ह्याद्या**। **अष्ट**[10]**संख्याः** तत्र हि चर्चिकाया अग्रतः पद्मपत्रे भीमायाः, पृष्ठे ही वायुवेगायाः। स्वदिक्षु तेषु पूर्वदिशि। याद्याः षड् ह्रस्वाः। भीमादि-दक्षिणावर्तेन। तथा भीमायाः द्वितीयपत्रे य उग्रायाः। तृतीये यि [11]कालदंष्ट्रायाः। चतुर्थे यृ ज्वलदनलमुखायाः। ततो वायुवेगायाः[12] पञ्चमे पत्रे उक्ता। षष्ठे यु प्रचण्डायाः। सप्तमे य्ऌ रौद्राक्ष्याः। अष्टमे यं स्थूलनासायाः। अथवा कर्णिकादौ सर्वत्र [13]कर्णिकाचिह्नं चर्चिकादीनाम्। इति **सुरकमले** [14]पूर्वकमले न्यासः। इह **वह्निपद्मादिषु** [15]क्षाद्यष्टसंख्याः तत्र वैष्णव्या अग्रतः क्षि श्रियः। पृष्ठे क्षी परमविजयायाः। एवं याद्या मायाया या, कीर्त्या यी, लक्ष्म्या यॄ। जयायाः षष्ठे पत्रे यू। जयन्त्या य्ॡ चन्त्र्या यः अष्टमे पत्रे। [16]अथ सर्वत्र चक्रचिह्नमिति। **वह्निपद्मे क्रमेणेति** नियमः ॥६३॥[200a]

> एवं याम्ये च राद्या दनुकमलदले ह्रस्वदीर्घप्रभेदै-
> र्यक्षे रुद्रे च वाद्याः सजलधिपवने पद्मपत्रे च लाद्याः।
> पूर्वद्वारस्य सव्ये कमलदलगतो मातृभिन्नश्चवर्गो
> ह्रस्वो दैत्यस्य दीर्घो भवति च पवनस्याग्निकोणे स्थितस्य ॥६४॥

एवं याम्ये च राद्या इति। इह दक्षिणे वाराह्या अग्रतो हृ कङ्काल्याः, पृष्ठे हॄ कराल्याः। पञ्चमे पत्रे ततो **राद्याः** कालरात्र्या रः, प्रकुपितवदनाया रि। कालजिह्वाया [17]र्ऋः, काल्या रु। घोराया र्ऌ। विरूपाया रं। एवं **दनुनैर्ऋत्य**

---

१. छ. हिकारो। २. भो. PadmḥilTe Ba (पद्मनाभि)। ३. छ. 'दि' नास्ति। ४. क. 'यः वैष्णव्यादेः' नास्ति, ख. च. छ. भो. 'यः' नास्ति। ५. ख. क्षरादौ। ६. क. ख. छ. कोण। ७. ख. क्षः। ८. क. ख. ग. छ. हरे महा। ९. भो. ZLa Ba Daṅ Ñimaḥi gDan Med Pa (चन्द्रसूर्यासनाभावः)। १०. क. ख. छ. संख्याः। ११. क. ख. कमल। १२. क. ख. च. छ. वायुवेगा। १३. भो. Gri Gug GimTshan Ma (कर्तिकाचिह्नं)। १४. ग. 'पूर्वकमले' नास्ति। १५. भो. Ksi Soys (क्षि आदि)। १६. भो. yaṅ Na (अथवा)। १७. क. रू।

कमलदले कौमार्याः, [1]अग्रतः क्षृ पद्मायाः, पृष्ठे क्षॄ रत्नमालायाः। ततो यथाक्रमेण अनङ्गाया रा। कुमार्या री। मृगपतिगमनाया [2]र्ऋ। सुनेत्राया र्ऌ। क्लिन्नाया र्ॡ। भद्राया रः। इति दनुकमले। **ह्रस्वदीर्घप्रभेदैः**। **यक्षे रुद्रे च वाद्या** इति। इह यक्षे रौद्रया अग्रतो हु गौर्याः। पृष्ठे हू [3]तोतलायाः। पञ्चमे दले। ततो वाद्याः क्रमेण गङ्गाया व। नित्याया वि। परम[4]त्वरिताया वृ। लक्षणाया वु। पिङ्गलाया व्ॡ। कृष्णाया वं इति यक्षे। रुद्रे महालक्ष्म्याः अग्रतः क्षु श्रीश्वेतायाः, पृष्ठे क्षू धृत्याः। ततो वाद्याः चन्द्रलेखाया वा। शशधर-[5]धवलाया वी। हंस[6]वदनाया [7]वॄ। पद्मेशाया वू। तारनेत्राया व्ऌ। विमल-शशधराया वः। इति [8]हरे। **सजलधिपवने पद्मपत्रेषु लाद्या** इति। इह वरुणो ऐन्द्रया अग्रतः हॢ वज्राभायाः। पृष्ठे हॣ चित्रलेखायाः। ततो लाद्याः। वज्रगात्राया ल। वरकनकवत्या लि। उर्वश्या लृ। रम्भाया लु। अहल्याया[9] ल्ॡ। ताराया लं इति। पावने ब्रह्माण्या अग्रतः क्ष्ऌ सावित्र्याः। पृष्ठे क्ष्ॡ वागीश्वर्याः। ततो लाद्या दीर्घाः। इह द्वितीयपत्रे ला पद्मनेत्रायाः। ली जलजवत्याः। लॄ बुद्धयाः। लू गायत्र्याः। ल्ॡ विद्युत्प्रभायाः। लः स्मृत्याः। इति कमलदलेषु बीजन्यासः। अथवा सर्वत्र वाराह्या-दिषु दण्डचिह्नम्। कौमार्यादिषु शक्तिः। रौद्र्यादिषु त्रिशूलम्। लक्ष्म्यादिषु पद्मम्, खड्गो वा। ऐन्द्र्यादिषु वज्रम्। ब्रह्माण्यादिषु [10]शू(श्रु)चिः पात्रं वेति। वाङ्मण्डले बीजचिह्न[11]न्या[200b]सश्चर्चिकादीनां लेख्य इति भगवतो नियमः।

इदानीं कायमण्डले नैर्ऋत्यादीनां बीजान्युच्यन्ते **पूर्वद्वारस्ये**त्यादिना। इह कायमण्डले नैर्ऋत्यादीनां द्वादशदेवतानाम् अष्टाविंशतिदलकमलानि। [12]चैत्रादयः षष्ठ्युत्तरत्रिशततिथयोऽधिदेवताः। तासां पूर्णिमा-अमावास्याबीजानि कर्णिकायाम्। शेषाणि पद्मपत्रेषु। इह चैत्रवैशाखौ वसन्तौ वायुविशुद्धया। तेन **च वर्गो ह्रस्वो दैत्यस्य। दीर्घ**मात्राभिन्नः[13] **पवनस्याग्निकोणे स्थितस्य**। अत्र पूर्वद्वारदक्षिण[14]प्रथमदले ञञ वज्रायाः। एवं सर्वत्र यथा शुक्लप्रतिपत्तिथिः। ञ वज्रायाः। तथा द्वितीयदले ञिञि वज्रायाः। एवं वज्रनामान्ताः सर्वास्तिथयो वेदितव्याः। पौर्णमासी प्रज्ञा, अमावास्योपायः। एवं तृतीयदले ञृ। पुनर्यथाक्रमेण ञु ञ्ऌ ञं। झ झि झृ झु झ्ऌ झं। [15]ज जि इति चतुर्दशदले। ततः पूर्णिमाकर्णिकायाम्। जृ जॄ वज्रायाः। ततः पञ्च-

---

१. छ. 'अग्रतः······· कुमार्या' नास्ति। २. क. ख. ग. च. रु। ३. च. त्रोत। ४. क. ख. ०न्तरी, च. मनुचि, छ. मातुरि। ५. ग. च. भो. वदनाया। ६. ग. च. भो. वर्णाया। ७. छ. वॄ। ८. ग. हकारे। ९. क. ख. छ. अहल्या। १०. छ. शुचिः। ११. ग. 'चिह्न' नास्ति। १२. ख. चैता०, छ. श्या०। १३. ग. भिन्नं। १४. ग. दक्षिणे। १५. च. जृ जु ज्ऌ जं।

दशदले जु। एवं क्रमेण ज्लृ जं। छ छि छृ छु छ्लृ छं। च चि चृ चु च्लृ इत्यष्टाविंशतिमे दले। ततोऽमावास्याया[1] बीजं कर्णिकायां चं। वैशाखस्य शुक्लप्रति-पत्ति[1]थिः प्रथमे। [2]चा चा वज्रायाः। एवं सर्वासां तिथीनां वज्रान्तं नाम। तथा द्वितीयदले द्वितीयायाः ची ची वज्रायाः। एवं क्रमेण चॄ चू च्लॄ चः। छा छी छॄ छू छ्लॄ छः। जा जी इति चतुर्दशमे[3] दले। ततो वैशाखपूर्णि[4]माया बीजं कर्णिकायाम्। जॄ जॄ वज्रायाः। ततः पञ्चदशे दले कृष्णप्रतिपत्[5]। जू ज्लॄ जः। झा झी झॄ झू झ्लॄ झः। ञा ञी ञॄ ञू ञ्लॄ इति अष्टाविंशतिमे दले। [6]ततोऽमावास्यायाः [7]**पवनस्य** बीजं ञः कर्णिकायामिति दीर्घश्चवर्गः पवनस्येति नियमः ॥ ६४ ॥

एवं याम्ये टवर्गः शिखिरसमुखयोर्ह्रस्वदीर्घप्रभेदै-
र्वामे चेशे पवर्गो भवति जलनिधेर्दीर्घभेदैर्गणस्य।
शक्रस्य ब्रह्मणो वै सवरुणपवने ह्रस्वदीर्घस्तवर्गः
पूर्वद्वारस्य वामे भवति दनुरिपोः पद्मपत्रे कवर्गः ॥ ६५ ॥ [201a]

एवं याम्ये दक्षिणद्वारस्य पश्चिमे ह्रस्वः। **टवर्गो** णादिना ज्येष्ठतिथिषु [8]दृढम्। कर्णिकायां **शिखिनः, रसमुखस्येति**। षण्मुखस्य दीर्घः। आषाढतिथीनां दीर्घचवर्गवत् कर्णिकायां [9]दॄणः इति **ह्रस्वदीर्घप्रभेदैः**। एवं [10]**वामे** उत्तरे [11]**जलनिधेः**। [12]ह्रस्वः **पवर्गः**। वृ यं। श्रावण[13]पूर्णामावास्ययोः **ईशाने दीर्घभेदैः। गणस्य** विनायकस्य कर्णिकायां वृ मः। भाद्रपद[14]पूर्णिमाऽमावास्ययोः। एवं **शक्रस्य वरुणे ह्रस्वस्तवर्गः।** नादिना कर्णिकायां दृ तम्। आश्विनपूर्णिमाऽमावास्ययोः। एवं **पवने** ता। आदिना **ब्रह्मणः** कर्णिकायां दॄ नः। इति कार्तिकपूर्णिमाऽमावास्ययोः। एवं **पूर्वद्वारावसव्ये दनुरिपोर्विष्णोर्ह्रस्वः पद्मपत्रे कवर्गः**। ङादिना कर्णिकायां[15]गृ कम् इति माघपूर्णिमाऽमा-वास्ययोः ॥ ६५ ॥

ह्रस्वो दीर्घश्च सव्ये भवति नृप यमस्योत्तरे पश्चिमे च
ह्रस्वो दीर्घः सवर्गो भवति पशुपतेर्जम्भलस्यैव राजन्।

१. च. ०त्तिथेः। २. छ. वा। ३. ग. ०दशदले। ४. क. ख. ग. छ. मायां। ५. भो. Tshe (तिथिः) इत्यधिकम्। ६. ग. अतोऽ०। ७. ख. पद्मस्य। ८. भो. डृटं। ९. भो. डॄणः। १०. भो. वामं। ११. च. 'जलनिधेः' नास्ति। १२. ग. ह्रस्वः पवर्ग इत्यतः परं। १३. क. ख. पूर्णावामा०, ग. पूर्णिमा०। १४. ग. 'पद' नास्ति। १५. ग. च. गृकमिति।

दैत्यादीनां स्वबीजं भवति न च दले स्वस्ववर्गान्तमध्यं
अष्टाविंशत्सु पत्रेष्वपि दिवसवशात् स्वस्ववर्गाक्षराणि ॥ ६६ ॥

दीर्घः सव्ये सव्यद्वारस्य पूर्वे [1]**यमस्य** का आदिना कर्णिकायां गॄ ङः इति फाल्गुणपूर्णिमाऽमावास्ययोः। अथ **उत्तरे** उत्तरद्वार**पश्चिमे ह्रस्वः सवर्गः**।⁀कादिना **पशुपतेः** कर्णिकायां पृ सम्। मार्गशीर्षपूर्णिमाऽमावास्ययोरिति। एवं पश्चिमद्वारदक्षिणे [2]दीर्घः सा आदिना [3]पत्रेषु कर्णिकायां यक्षस्य। पॄ ⁀कः इति पौष[4]पूर्णिमाऽमा-वास्ययोः। एवं वसन्तग्रीष्मवर्षाशरच्छिशिरहेमन्त-ऋतुभेदेन वायुतेज-उदकपृथ्वीज्ञाना-काशधातवः। तिथिभेदेन पञ्चमण्डलानि[5] षट्षड्भेदेन कायमण्डले बीजन्यासः। अथवा नायकचिह्नभेदेन चिह्नानि सर्वदलेषु। अत्र चिह्नानि कर्णि[201b]कायां नैर्ऋत्यादीनां **क्रमेण**—खड्गः। वृक्षः। शक्तिः। कुन्तः। पाशः। पर्शुः। वज्रम्। शू(श्रु)चिः। चक्रम्। [6]दण्डम्। त्रिशूलम्। गदा चेति चिह्नन्यासनियमः। तद्यथा—**दैत्यादीनां स्वबीजं भवति न च दले स्वस्ववर्गान्तमध्यम् अष्टाविंशत्सु पत्रेष्वपि दिवस[7]वशात् स्वस्ववर्गाक्षराणीति** कायमण्डले षष्ट्युत्तरत्रिशत[8]वज्रतिथिन्यासनियमः ॥ ६६ ॥

इदानीं द्वारपालरथस्थदेवीनां बीजानि क्रोधराजानामुच्यन्ते—

या रा वा लाश्च हं हाः खलु षडपि रथेपूर्ध्वमूले स्वरादौ
द्वारात् सव्यावसव्ये प्रभवति फणिनां यादिरूढो हकारः।
षड्वर्गाः कूटरूपास्त्वपि हयरवलाक्षादियुक्ताश्च याद्या
दिक्चक्रे कादिवर्गाश्चलवलयगताश्चादयोऽन्येऽनुलोमाः ॥६७॥

[9]या रा इत्यादिना। इह पूर्वद्वारे [10]मारीच्या **लाः**। नीलदण्डस्य यं। दक्षिणद्वारे चुन्दाया **वाः**। टक्किराजस्य रं। उत्तरद्वारे भृकुट्या **राः**। अचलस्य वं। पश्चिमे वज्रश्रृङ्खलाया **याः**। महाबलस्य[11]लं। आकाशशुद्धया पूर्वद्वाराग्रतो नीलाया हः[12]। उष्णीषस्य ह[13]। पातालशुद्धया पश्चिमद्वाराग्रतो रौद्रेक्षणाया [14]**हाः**। सुम्भराजस्य **हं**[15]। अथवा चिह्नानि दण्डः। बाणः। मुषलः। गदा। [16]वज्रः। त्रिशूल इति। शूकरहयसिंहगजा[17]ऽनिला अष्टापदरथे इति नियमः।

१. ग. यम आदिना। २. क. ख. छ. दीर्घ। ३. ग. पद्मपत्रेषु। ४. क. ख. पूर्णिमाऽवा०, ग. पूर्णामा०। ५. क. ख. मण्डलि, ग. मण्डले, च. मण्डल। ६. ग. च. दण्डः। ७. क. वध्यात्। ८. ग. वज्रे। ९. छ. या ला। १०. क. ख. च. मारे०। ११. ग. च. हं। १२. भो. हाः। १३. भो. हं। १४. ग. हः। १५. च. भो. ह। १६. ग. वज्रम्। १७. क. छ. गज अनि०।

इदानीं नागबीजान्युच्यन्ते । इह [1]पूर्वदिद्वाराद्। **सव्यावसव्ये** वेदिकायां [2]**यादिरूढो हकारः । फणिनां** यथाक्रमं पद्मादीनामिति । इह पूर्वद्वारवामे कर्कोटकस्य वायुमण्डले ह्य । दक्षिणे ह्या पद्मस्य । अथवा ध्वजचिह्नम् । एवं दक्षिणद्वारे[3] पूर्व-वह्निमण्डले पश्चिमे च । [4]ह्र ह्राः स्वस्तिकं वा । वासुकिशङ्खपालयोः [5]उत्तरपूर्वापरे । पश्चिमद्वारदक्षिणोत्तरेण[6] ह्ल ह्व ह्वा । उदकमण्डले । कुलिकानन्तयोः । पद्मं वा । ह्ला[7] । पृथ्वीम[202a]ण्डले तक्षकमहापद्मयोः । वज्रं वा । इति चिह्नन्यासः ।

इदानीं श्मशानदेवीनां बीजान्युच्यन्ते—**षड्वर्गा** इत्यादिना । इह पूर्वाद्यष्टसु महाश्मशानेषु यथासंख्यम् । **दिक्चक्रे कादिवर्गा** इति । क् ख् ग् घ् ङ इति । पूर्वचक्र-मूर्ध्नि कर्त्री वा । पश्चिमे स्‿प् ष् श्‿क । उत्तरे ल् व् र् य् ह । दक्षिणे **क्षादियुक्ता** ल व र य हा इति । एते [8]**चलवह्निवलय**मध्ये चक्रमष्टारं कृत्वा तदुपरि **चादयोऽ-न्येऽनुलोमा**[9] विदिक्षु च् छ् ज् झ् ञ अग्नौ, ट् ठ् ड् ढ् ण नैर्ऋत्ये, त् थ् द् ध् न वायव्ये, प फ ब भ म ईशाने इति । ता[10] अथ सर्वत्र [11]कर्तृकाचिह्ननियमः ॥६७॥

पूर्वे याम्येऽवसव्ये वरुणहविदनौ चेशवायौ क्रमेण
अं अश्चन्द्रार्कयोर्वै चितिभुवनगता भूतवृन्दस्य मन्त्राः ।
हूँकारो धर्मचक्रस्य च भवति तथाःकारबीजं घटस्य
ॐकारो दुन्दुभेः स्यात् प्रभवति वरुणो बोधिवृक्षस्य होश्च ॥६८॥

पूर्वे याम्येऽवसव्ये वरुणहविदनौ चेशवायौ [12]**क्रमेणेति** । इह पृथ्वीवलये **अं चन्द्रस्य । अः सूर्यस्य** बीजम् । **चितिभुवनगता भूतवृन्दस्य** सार्धत्रिकोटिसंख्यागणस्य भूतवृन्दस्यानन्त[13]**मन्त्रास्तत्संख्या**[14] इति । अथवा नानाचिह्नानि वायुवलये कार्याणीति नियमः ।

इदानीं धर्मचक्रादीनां बीजानि । पूर्वतोरणे **धर्मचक्रस्य हुं**[15], दक्षिणे भद्र**घटस्य आः**, उत्तरे **दुन्दुभेर्** ॐ, पश्चिमे **बोधिवृक्षस्य हो** ॥६८॥

---

१. ग. पूर्वरि । २. क. ख. ग. च. यदि । ३. ग. द्वार । ४. च. भो. ह्रा, ग. ह्रस्वा । ५. च. भो. उत्तरद्वारपश्चिमपूर्वे । ६. ग. च. ०त्तरे । ७. भो. ह्ल ह्ला । ८. ग. वल० । ९. क. ख. छ. लोमो । १०. ख. ग. च. छ. भो. 'ता' नास्ति । ११. ग. कर्णिका । १२. भो. Zur Du (कोणे) । १३. च. ०नान्ता । १४. क. ख. संख्यां । १५. क. हैं, च. हं ।

इत्येवं मातृकाया भवति कुलवशान्मण्डले मन्त्रभेदो
मुद्राचिह्नानि वर्णो भवति हि सकलं वज्रिणो वक्त्रभेदैः ।
कुण्डे होमं च तद्वद् भवति च पुनरावाहनं तीर्थिकानां
श्रीभूम्यां प्रोक्षणं चार्घविधिरपि तथा मारनिर्घाट(त)नं च ॥६९॥[202b]

इत्येवं मातृकाया भवति कुलवशाद् मण्डले मन्त्रभेदः, मुद्राचिह्नानि वर्णो भवति हि सकलं वज्रिणो वक्त्रभेदैः । कुण्डे होमं च तद्वद् भवति च पुनरावाहनं तीर्थिकानां श्रीभूम्यां प्रोक्षणं चार्घविधिरपि तथा मारनिर्घाट(त)नं चेति वक्ष्यमाण-क्रमेण सर्वं वेदितव्यमस्मिन् वृत्ते संगृहीतमिति सर्वत्र नियमः ॥६९॥

इदानीं मण्डले द्वाररक्षणाय[1] शिष्या उच्यन्ते—

द्वाराणां रक्षणार्थं व्रतनियमयुताः शुद्धशिष्याः प्रदेया
योगिन्यः श्रीघटानां शिखिदनुपवने चेशकोणे क्रमेण ।
आचार्यः श्रीगणेशो भवति नरपते कर्मवज्री प्रकृत्य
शिष्याभावे गणेशः स्वयमपि कुरुते होमकर्मादिकं च ॥७०॥

द्वारेत्यादिना । इह पूर्वादि**द्वाराणां रक्षणार्थं व्रतनियमयुता** इति । व्रतानि पञ्चविंशतिर्वक्ष्यमाणानि, तेषु नियमो बुद्धानुज्ञा, तया युक्ता व्रतनियमयुताः **शुद्धशिष्याः**, चतुर्दशमूलापत्तिरहिताः । ते **प्रक**र्षेण **देया** इति । द्वारेषु वज्रवज्रघण्टा-हस्ता अभिषिक्ता अनुज्ञाता इति । **योगिन्यः श्रीघटानां शिखिदनुपवने चेशकोणे क्रमेण** इति । पूर्वव्रतादिपरिशुद्धा[2] देया इति । [3]तदा वज्रा**चार्यो श्री**[4]**गणेशो भवति नरपते कर्मवज्री**[5] प्रकृत्येति । इह पञ्चमः सुशिष्यः सर्वकर्मकुशलो दशतत्त्वपरिज्ञाता । तं होमादिकर्मकाण्डे कर्मवज्रीं कृत्वा मण्डले प्रतिष्ठां गुरुः **कुरुते** । इत्य[6]म्भूते **शिष्याभावे** स्वयमपि **गणेशो होमादिकं** [7]करोति **कर्मे**ति । चकारादन्यदपि वक्ष्यमाणकम् ।

[8]इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां द्वादशसाहस्रिकायां लघुकालचक्रतन्त्र-
राजटीकायां विमलप्रभायां मण्डलवर्तनं
नाम महोद्देशस्तृतीयः ॥203a॥

---

१. ग. रक्षार्थं । २. च. शुद्धया । ३. ग. च. ततो । ४. क. ख. च. छ. 'श्री' नास्ति । ५. क. ख. छ. वज्रि । ६. ग. म्भूत । ७. ग. च. कुरुते । ८. ग. इतिश्री ।

४. मण्डलाभिषेकमहोद्देशः

हुतं भुनक्ति यः सर्वं स्कन्धादिसमिधादिकम् ।
प्रणम्य ज्ञानमग्निं तं वक्ष्ये तत्कुण्डलक्षणम् ॥
कुण्डमष्टविधं प्रोक्तं शान्तिकादिप्रभेदतः ।
प्रत्येकदिग्विभागेन नवमं सार्वकर्मिकम् ॥
मूलतन्त्राद्यदुद्धृत्य देशितं मञ्जुवज्रिणा ।
संक्षिप्तं मूलतन्त्रानुसारिण्या तद् वितन्यते ॥

T 390 इह [1]एकसप्ततिवृत्ता[2]द्युक्तं सार्वकर्मिकादीनां [3]कुण्डानां लक्षणमुच्यते—

वृत्तं वा वेदकोणं भवति कुलवशाच्छान्तिपुष्टयोश्च कुण्डं
वामे वा रुद्रकोणेऽपि च धवलमहो मूलपद्मं द्विगुण्यम् ।
खानिः पद्मप्रमाणा भवति तदुदरे मूलपद्मं सचिह्नं
पद्मार्धं पद्मबाह्ये सघटमपि भवेत् खड्गरत्नादिचिह्नम् ॥७१॥

वृत्तं वेत्यादिना। इह सर्वत्र चतुर्हस्तमण्डले सार्वकर्मिकं वर्तुलं **कुण्डं शान्तौ**, मण्डलार्धं **पुष्टौ** चतु[4]रस्रं मण्डलतुल्यं च। तत्र तावत् **कुलवशाद्** ज्ञानचक्रं सर्वत्र गर्भे वज्रावलीस्तम्भान्तं [5]मण्डलादर्धभागं भवति, बाह्यचक्रार्धमानेनेति नियमात्। तदर्धेन **मूलपद्मं** तस्माद् गर्भपद्माद्[6] **द्विगुण्यम्**। पुष्टौ हस्तद्वयं चतुरस्रं वृत्तं गर्भपद्मप्रमाणं चैकहस्तम्। सर्वत्र ग्रामादिमध्ये पुण्यार्थम्। अथ कर्मानुरूपेण **वामे वा**[7] **रुद्रकोणे वापि च धवल**[8]**महो** रजोमण्डले[9]वज्रज्वालाबाह्ये हस्तद्वयान्तरेणेति। तत्र चतुरस्रं कुण्डं हस्तद्वयं [10]विष्कम्भेण बाह्यचक्रार्धमानेन। **खानिः पद्मप्रमाणे**ति। इह पुष्टिकुण्डे खानिः पद्मप्रमाणा वितस्तिद्वयं **भवति।** वृत्ते वितस्तिमात्रा भवति। **तदुदरे** गर्भपद्मम्। यथा मण्डले चतुर्हस्ते **सचिह्नं** तथा चतुरस्रे [11]कुण्डे, यथा द्विहस्तमण्डले तथा वृत्तकुण्डगर्भे भवतीति। एवं यथा मण्डले **पद्मार्धं पद्मबाह्ये सघटं खड्गादिचिह्नं** दिक्षु विदिक्षु, तथा कुण्डगर्भे शुक्ल[12]रजआदिना मृत्तिकया वा मूलपद्मादिकं कर्तव्यं सर्वकुण्डेषु। पश्चात् कर्मानुरूपेण पुष्टिमण्डले पिष्टतण्डुलादिना वर्णः कर्तव्य इति। चिह्नानि मण्डलचिह्नानि[13] यथा। एवं कुण्डतले ब्रह्मस्थानात् तिर्यग् [203b] भाग एक-

---

१. क. ख. छ. 'एक' नास्ति। २. क. ख. च. छ. वृत्तादि। ३. छ. 'कुण्डानां' नास्ति। ४. च. चतुरस्र। ५. च. मण्डलार्धं। ६. ग. पद्मद्वि०। ७. भो. Yaṅ Na (अथवा), छ. 'वा' नास्ति। ८. ग. भो. महो। ९. छ. 'वज्र' नास्ति। १०. भो. rGyar (विस्तरेण)। ११. क. ख. छ. कुण्ड। १२. क. ख. ग. छ. रजादिना। १३. ग. चिह्ननियमः।

हस्तश्चतुरस्रः[1]। अर्धभागस्तद्वत् कुण्डभित्तौ। एवं द्वौ द्वौ विभागौ पूर्वापरेऽपि। तद्वत् सव्योत्तरेऽपि। एवं चतुर्हस्तं कुण्डं प्राकारसीम्नः चक्षुरादिस्थानान्तमिति नियमः। चतुर्हस्तं चतुरस्रं तदर्धं वृत्तं द्विहस्तमण्डलमिति ॥७१॥

तस्यार्धेनापि चौष्ठं द्विगुणमपि ततो वेदिका यामभाग
ओष्ठार्धेनोच्छ्रिता वै प्रभवति नियता मूर्ध्नि वज्रावली च ।
बाह्येऽधः पद्मपत्राण्यपि कुशरचनां सर्वदिक्षु प्रकुर्यात्
तस्यान्ते पश्चिमेन प्रभवति नियतं द्वारमेकं त्रिरेखम् ॥ ७२ ॥

तस्यार्धेनापि चौष्ठमिति। तस्य पद्मार्धस्य तथागतस्थानस्यार्धेन तिर्यगुच्छ्रयेणेति। प्राकारमानेन तिर्यग्विभागेन [इति] नियमः। तेनैव मानेन [2]मण्डलवेदिकार्धं यावदिति। तदुपरि तदर्धेन निर्गमोच्छ्रयमोष्ठं [3]बाह्यपरिरेखामण्डलम्। एवं मण्डलवेदिकान्तं परिशुद्धं **द्विगुणमपि ततो वेदिका यामभाग** इति। ततो गर्भोष्ठमानाद् [4]द्विगुणा तिर्यग्विभागेन निःसृता वेदिका। एवं रत्नपट्टिकाहारार्धं[5]हारभूमि[6]र्वकुलीपर्यन्तं वेदिका सर्वत्र [7]कर्तव्या। ततो वकुली[8]क्रमशीर्षभागमात्रम् अर्धं तिर्यग्विभागेन निःसृतमिति। तत्र वेदिकायां **मूर्ध्नि** मध्यभागे वेदिका[9]पञ्चविभागं कृत्वा मध्यभागत्रयेण वेदिकोपरि **वज्रावली** सार्वकर्मिककुण्डे **ओष्ठमानार्धेन उच्छ्रिता।** यदा मृण्मयी भवति तदा मध्यशूकस्यौष्ठार्धमुच्छ्रयम्। यदा रजसा तदा नोच्छ्रयनियम इति। **बाह्ये** [10]अधोऽधोऽग्राणि **पद्मपत्राणि** भूमिपर्यन्तं वेदिकार्धमानेन कर्तव्यानीति। ततो बाह्ये **सर्वदिक्षु** भूम्यां **कुशरचनां कुर्यादि**ति। तस्य कुशप्रस्तारस्य बाह्ये **पश्चिम**[11]दिग्विभागे **प्रभवति नियतं द्वारमेकं त्रिरेख**[204a]**मि**ति। इह कुण्डबाह्ये हस्तद्वयं त्यक्त्वा बाह्ये श्वेतरक्तकृष्णरजसा प्राकारत्रयं कृत्वा ततः पश्चिमेन प्राकारदीर्घमानाष्टभागिकं द्वारं [12]त्रिरेखं मण्डलद्वारवत् सतोरणम्। एवं सर्वकुण्डेषु गुरुलघुकेषु हस्तद्वयं त्यक्त्वा प्राकार[13]त्रयनियमः ॥ ७२ ॥

आचार्यस्यासनं वै खलु भवति समं गर्भपद्माद् द्विगुण्यं
वामे चार्घासनं स्याद् भवति नरपते होमपात्रस्य सव्ये ।
सर्वेषां वज्रचिह्नं भवति जिनपतेर्वा खपद्मं हि मातु-
र्वक्त्रं गुह्यं च कुण्डं द्विविधमपि भवेद् बाह्यदेहे च राजन् ॥७३॥

---

१. ग. च. रस्रे। २. छ. मण्डले। ३. ग. बाह्यो। ४. ख. ग. च. द्विगुण। ५. च. 'हार' नास्ति। ६. क. ख. ग. छ. ०मिवकुली। ७. च. 'कर्तव्या' नास्ति। ८. ग. क्रव, क. ख. छ. कव। ९. ग. पञ्चभागं। १०. च. चाधो। ११. ग. दिग्भागे। १२. भो. 'त्रिरेखं' नास्ति। १३. ग. 'त्रय' नास्ति।

आचार्यस्यासनं खलु भवति [1]**समं** चतुरस्रे कुण्डे **गर्भपद्माद् द्विगुण्यमि**ति। हस्तद्वयं चतुरस्रम्। एवं सर्वकुण्डेषु हस्तमेकं [2]विष्कम्भम्। एवं **वामे चार्घासनं** हस्तमेकं स्यात्। तथा **सव्ये होमपात्रस्यासनं** हस्तमेकम्। पुष्टौ द्विहस्तमिति। **सर्वेषा**मासनानां मध्ये [3]पतितानि पद्मदलानि। आसनमध्ये विश्व**वज्रचिह्नं** दातव्यम्। सार्वकर्मिके **जिनपते**[4]**र्वा** वज्रसत्त्वस्य वा **खपद्मं** [5]**हि मातु**र्धर्मोदयो दातव्य इति **वक्त्रं कुण्डं** सस्यादीनां हवनार्थं [6]गुह्यकुण्डं घृताद्यमृताहुति[7]दानायेति। एवं **द्विविधमपि भवेत्** [8]पद्मं **बाह्यदेहे च। राजन्नि**ति संबोधनम्। एवं सार्वकर्मिककुण्ड-लक्षणनियमः।

इदानीं पूर्वोद्देशितानां शान्त्यादीनां लक्षणं [9]निर्दिश्यते। इह वृत्ते कुण्डे हस्तमात्रे हस्तमात्रं गर्भपद्मं [10]शुक्लं कर्णिकायां पद्मपत्रेषु [11]चक्रादिचिह्नम्। पद्मार्धेन खानिः पद्मद्वादशभागिकमोष्ठम्। तिर्य[12]ग्निःसृतम्। ऊर्ध्वेन च तदर्धेन तिर्यग्निर्गमो वेदिकोच्छ्रयः। पद्मषड्भागिका वेदिका।[13] वेदिकापञ्चभागानां भागद्वयं [14]पूर्वापरं त्यक्त्वा भागत्रयेण पद्मावली। ततो वेदिकाधो बाह्ये पद्मपत्राणि दूर्वास्तरणं [15]कुर्यात्। प्राकारत्रयं [16]द्वारतोरण[204b]मुत्तरं[17] भवति। आचार्यस्यासनम्। अर्घासनम्। होमासनम्। आचार्यस्यासनस्य वामे सव्ये कर्तव्यम्। पौष्टिके हस्तद्वयं पद्म-ओष्ठादिकं द्वादशादिविभागिकं [18]कर्णिकायां चक्रम्, दले वज्रादिचिह्नम्। कोणे लोचनादिचिह्नम्। वेदिकायां चक्रावली। शेषं पूर्वकर्मवत्। एवं धनुराकारं शान्तिककुण्डं मध्यच्छेदितम्। मध्ये कमलं द्वादशाङ्गुलं तदर्धेन खानिः। ओष्ठादिकं सर्वं पूर्ववद् द्वादशादिभागिकम्। पद्मपत्रस्थाने चिह्नं करतलाङ्गुली मालाधो बाह्ये [19]मृतककेशरचना [20]कमलकर्णिकायां [21]कर्त्री। वेदिकोपरि कर्तिकावलीति। आचार्या[22]सनं धनुराकारं [23]कर्तृकालाञ्छि-तम्। यथा शान्तौ पद्मलाञ्छितम्। पुष्टौ चक्रलाञ्छितमिति पञ्च[24]कोणशान्तिकुण्ड-प्रमाणम्। पञ्चकोणोपरि वेदिकायां खड्गावली। गर्भचिह्नं च खड्गः। बाह्येऽधः काकपिच्छमालां मृण्मयीं कुर्यात्। कृष्ण[25]वर्णा बाह्ये भूतवृक्षपत्ररचनेति। त्रिकोणं कर्णात् कर्णं हस्तमेकम्। कर्णान्मिध्यभागं विंशत्यङ्गुलं गर्भपद्मम्। तेनैव मानेन दशाङ्गुला पद्मार्धा खानिः। शेषं द्वादशभागादिना। ओष्ठादिकं पूर्ववत्। वेदिकायां

१. छ. समचतु। २. च. ०स्कम्भः। ३. भो. bKod Pa (रचिता०)। ४. ग. च. भो. 'वा' नास्ति। ५. क. ख. छ. हिमान्तर्द्ध०। ६. च. गुह्यं। ७. क. ख. ग. च. ०हुती। ८. ग. च. 'पद्मं' नास्ति, भो. कुण्डं। ९. rGyas Par bŚad Par Bya sTe (वितन्यते)। १०. छ. शुक्ल। ११. भो. rDorJe La Sogs Pa (वज्रादि)। १२. भो. Śal (वक्त्र) इत्यधिकम्। १३. क. 'वेदिका' नास्ति। १४. क. ख. छ. 'पूर्वापरं' नास्ति। १५. च. कुर्यादिति। १६. ग. द्वारं। १७. क. ०मुत्तरणं। १८. ग. च. भो. सर्वत्र कर्णि। १९. ग. च. मृतके। २०. भो. 'कमल' नास्ति। २१. ग. च. कर्त्री, छ. वन्त्री। २२. ख. ग. च. छ. ०द्यासनम्। २३. ग. च. भो. कर्तिका। २४. ग. च. छ. कोणं। २५. ख. वर्णं, ग. च. वर्णी, भो. ḥDab Ma (पत्र)।

बाणा[1]वली। अधो रक्तपद्मानि। बाह्ये रक्तपुष्परचना सप्तकोणस्य द्विगुणं वेदिकायां वज्राङ्कुशावली शेषं त्रिकोणवर्णम्। गर्भचिह्नं [2]त्रिकोणे बाणः। [3]आकृष्टौ वज्राङ्कुशः। षट्कोणं त्रिंशदङ्गुलं षट्कोणोपरि वेदिकायां नागपाशावली गर्भचिह्नं नागपाशः। पीतार्कदलानि बाह्ये पीतपुष्परचनेति। अष्टकोणं [4]पूर्ववद् द्विगुणम्। गर्भचिह्नं वज्र-शृङ्खला। वेदिकायां वज्रशृङ्खलावली। अधः षट्कोणवत् प्राकारत्रयं सर्वत्र हस्तद्वयं त्यक्त्वा आचार्यासनं सर्वत्र कुण्डाकारेण अर्घासनम् होमासनं च। कुण्डानां कर्णात् कर्णमानेनेति तिर्यग्विभागनियमः।

इदानीं कुण्डानां स्वभाव उच्यते—इह [5]शान्तिकुण्डं चन्द्रस्वभावम् आदित्य-चिह्नलाञ्छितम्। पुष्टिकुण्डं चन्द्रद्विगुणं सूर्य[6]धर्मिद्विगुणत्वात् चन्द्रचिह्न[7]लाञ्छितम्। मारणकुण्डं राहुलक्षणं कालाग्निचिह्नलाञ्छि[205a]तम्। उच्चाटनकुण्डं वायुलक्षणं तेजःस्वभावमिश्रं स्वचिह्नाङ्कि[8]तम्। त्रिकोणकुण्डं कालाग्निलक्षणं स्वचिह्नाङ्कितम्। आकृष्टि[9]कुण्डं पृथ्वीतेजोगुणात्मकम् अङ्कुशचिह्नलाञ्छितम्। षट्कोणं राहु-पृथिव्यात्मकम्, सर्पचिह्नाङ्कितम्। राहोर्मोहने स्तम्भनकुण्डम् उभयमेरु[10]पृथिवी-संपुटम् उभयचिह्नाङ्कितमिति। इति[11] कुण्डलक्षणनियमः। पूर्वोक्तासनहोमद्रव्यादि-नियमो मन्त्रिणा वेदितव्य[12] इति सर्वयोगयोगिनीतन्त्रादिके भगवतो नियमः॥ ७३॥

इदानीं होमविधिरुच्यते—

कृत्वा कुण्डस्य रक्षां दशदिशिवलये क्रोधराजैः सदेव्यैः
श्रीवज्रैः प्रोक्षणाद्यं ससलिलकुसुमैरर्घमेवानलस्य।
देयं तद्योगयुक्तैः स्वहृदयकमले भावयित्वेन्दुमूर्ध्नि
एकास्यं श्वेतवर्णं युगकरकमले कुण्डिकाब्जं हि वामे॥७४॥

सव्ये दण्डाक्षसूत्रं सुकपिलजटिलं पिङ्गनेत्रं सवस्त्रं
वह्नेर्हृच्चन्द्रमूर्ध्नि स्फुरदमलकरं भावयेद्योऽङ्कुशं वै।
तेनाकृष्टं स्वदेहे कुरु वु(च) समरसं सर्वगं ज्ञानसत्त्वं
एवं कुण्डे च सम्यग् भवति नृप तथावाहनं पावकस्य॥७५॥

१. ग. च. वलिः। २. ग. सप्तकोणे, भो. Zur gSum Pa bŚin No (त्रिकोणवत्) ३. क. ख. छ. अकृष्टौ। ४. क. ख. छ. पूर्वद्विगुण्य, ग. पूर्ववद् द्विगुण्यं। ५. ग. च. शान्तिक। ६. ग. धर्म। ७. भो. 'चिह्न' नास्ति। ८. क. ख. छ. ०ङ्कितां। ९. क. ख. छ. आकृष्टौ। १०. छ. मरु। ११. ग. च. भो. 'इति' नास्ति। १२. क. छ. व्यमिति।

कृत्वेत्यादिना। इह **कुण्डस्य** प्रथमं दशदिक्षु **रक्षां कृत्वा क्रोधराजैः सदेव्यैः** क्रोधैर्देवीभिः सार्धं पूर्वोक्तमन्त्रपदैः कीलकान्निधापयित्वा ततः **श्रीवज्रैः प्रोक्षणाद्यं** ॐ आः हूँ[1] हः फट् अनेन कुण्डस्य दश दिक्षु कुशेनार्घपात्राद् गन्धतोयं गृहीत्वा प्रोक्षयेदिति प्रथमम्। [2]ततस्तद्योगमालम्ब्य स्वहृदये कुण्डे च वैश्वानरं प्रतिष्ठाप्य ततः **ससलिल**-**कुसुमैरर्घमेवानलस्य देयम्। तद्योगयुक्तैः स्वहृदयकमले भा**[205b]**वयित्वेन्दुमूर्ध्नि** सर्व-कर्मणि। **एकास्यं श्याम(श्वेत)वर्णम्।** चतुर्हस्तद्विपादम्। अत्र सर्वकर्मणि। **सव्ये** प्रथमकरे वज्रं द्वितीयेऽक्षसूत्रम्। वामे घण्टापद्ममिति। **सुकपिलजटिलम्। पिङ्ग-नेत्रम्।** [3]पिङ्ग**वस्त्रम्।** सर्वकर्मणि। अक्षोभ्यशिरो[4]धारिणमिति। समयसत्त्वं निष्पाद्य ततस्तद्धृदये **चन्द्रमण्डलम्**, तन्मूर्ध्नि **स्फुरदमलकरं भावयेत्।** जःकारबीज-परिणतं वज्राङ्कुशं तेनाकृष्य **ज्ञानसत्त्वं सर्वगं कुरु समरसं** समयसत्त्वेन सह। **एवं कुण्डे** [5]**च सम्यक्** स्वहृदयान्निश्चार्य निःश्वासेन वक्ष्यमाणया वज्राङ्कुशमुद्रयाऽऽ**वाहनं** कृत्वा वज्रमुष्ट्या ऊर्ध्वाङ्गुष्ठया कमलकर्णिकायां स्थापयेदिति। शान्तौ शुक्लवर्णं सवस्त्रममिताभमौलिनम्। दक्षिणे पद्मस्फटिकाक्षसूत्रधरं वामे कुण्डिकाशङ्खधरम्। पौष्टिके सव्ये चक्रमुक्ताफलाक्षसूत्रधरम्। वामे पद्मकमण्डलुधरम्। मारणे कृष्णवर्णं सवस्त्रममोघसिद्धिमौलिनम्। सव्ये कर्तित्रिशूलहस्तम्। वामे कपालखट्वाङ्गहस्तम्। उच्चाटने विद्वेषणे च दक्षिणे खड्गत्रिशूलहस्तम्। वामे कपालखट्वाङ्गहस्तम्। वश्ये कुङ्कुमवर्णं सवस्त्रम्। सव्ये [6]शररत्नहस्तम्। वामे चापदर्पणहस्तम्। रत्नेशमुकुटिनम्। आकृष्टौ सव्ये वज्राङ्कुशरत्नधरम्। वामे वज्रपाशदर्पण[7]करम्। मोहने सव्ये सर्पदण्ड-धरम्। वामे चक्रमुद्गरहस्तम्। स्तम्भने कीलने च सव्ये शृङ्खलामुद्गरधारिणम्। वामे चक्रवज्रकीलकहस्तम्। पीतवर्णं सवस्त्रं वैरोचनमौलिनं भावयेदिति।

इह प्रथमं चन्दनकाष्ठैरग्निं प्रज्वाल्य सर्वकर्मणि देवगृहादानयित्वा शान्तिपुष्ट्योर्ब्राह्मणगृहात्, मारणादौ शूद्रगृहात्, वश्यादौ क्षत्रियगृहात्, स्तम्भनादौ वैश्यगृहात्, मारणे पुनश्चण्डालगृहादानयित्वा प्रज्वालयेत् कण्टककाष्ठैरिति। स्तम्भने कषायकाष्ठैः। वश्ये रक्तैः खदिरादिकाष्ठैः। शान्तौ क्षीरवृक्षकाष्ठैः। सर्वकर्मणि चन्दनागुरुदेवदार्वादिसुगन्धिकाष्ठैः क्षीरवृक्षादिभिर्वेति। त[206a]तो वैश्वानरमावाहयेद् एभिर्मन्त्रपदैः—ॐ [8]एहि एहि महाभूतदेवऋषिद्विजसत्तम गृहीत्वायुधं महारश्मि अस्मिन् सन्निहितो [9]भव वज्रधर आज्ञापयति स्वाहेत्युच्चार्य अङ्कुशमुद्रयाऽऽकर्षयेत्। वज्रमुद्रया प्रवेशयेत्। पाशमुद्रया बन्धयेत्। घण्टामुद्रया वक्ष्यमाणया तोषयेदिति। एषु प्रत्येकं बीजाक्षरं जः हूँ वँ हो[10] इत्युच्चारयेत्। ततो वज्रघण्टां वादयित्वा वशं कुर्यादिति। अत्रार्घं देयम् ॐ प्रवरसत्कारं महारश्मीन् प्रतीच्छ स्वाहा। इत्यर्घदानमन्त्रः। ततोऽर्चनम् एवं वज्रगन्धं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रधूपं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रदीपं प्रतीच्छ स्वाहा[11], वज्रनैवेद्यं

---

१ ग. हुं हूं हः, भो. हुं ह्लिः, छ. हुं ह्लः। २. क. तथा तद्यो। ३. च. पिङ्गं। ४. ख. ग. धारण। ५. च. 'च' नास्ति। ६. क. ख. छ. सर। ७. भो. धरम्। ८. छ. 'एहि' नास्ति। ९. ग. भवेति। १०. च. भो. होः। ११. भो. 'वज्र अक्षतं प्रतीच्छ स्वाहा' इत्यधिकः पाठः।

प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रलास्यं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रहास्यं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रवाद्यं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रनृत्यं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रगीतं प्रतीच्छ स्वाहा, वज्रकामं प्रतीच्छ स्वाहा। एवं पूर्वोक्तैर्द्रव्यैः कर्मानुसारेण एभिर्मन्त्रपदैरग्निपूजाविषये स्वाहान्तैरर्चनम्, मण्डले नमोन्तैरिति सर्वत्र नियमः। एवं [1]सर्वपाद्यं प्रतिपादयित्वा ततः पूर्वोक्तसमिधादिभिः पूर्वोक्तासनविधिना पूर्वोक्तहोमद्रव्यैः कर्मानुसारेण समाधिस्थो वज्राचार्यो होमं कारयेत्। समिधं दग्ध्वा हस्तेन, ततः श्रुवकेण सर्वहोमद्रव्याणि, आहुतिं [2]पात्र्या दापयेत्। तदभावे सर्वं स्वकरेण वरदेनाङ्गुष्ठेनाग्निमुखे होमं कुर्यादिति नियमः।

अत्र वैश्वानरविशुद्धिरुच्यते। इह वैश्वानरस्त्रिविधः—दक्षिणाग्निः, गार्हपत्यः, आहवनीय इति। दक्षिणाग्निरत्र विद्युत्। गार्हपत्यः सूर्यः। आहवनीयः क्रव्यादः। सत्यश्चतुर्थो ज्ञानाग्निरानन्दधर्मा। अतस्त[3]स्याधः सर्व एव होमः क्रियते। तथा वेदान्ते चाह—

> क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु [4]रिप्रवाहः।
> इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो [5]हव्यं वहतु प्रजानन्॥
>
> (ऋ० १०।१६।९)

इति वेदार्थः। अत्रापि स एवार्थः [206b] क्रव्यादाग्नेः। अनेन मन्त्रपदेन ॐ सर्वपापदहनवज्राग्नि वज्रसत्त्व सर्वपापं दह दह स्वाहेति नियमात् कामाग्ने-रावाहनम्। तथा सूर्यस्यापीह हव्यवाहनमन्त्रसमयम्। ॐ वज्रानल सर्वभूतान् ज्वालय सर्वान् भस्मीकुरु सर्वजनदुष्टान् हूँ फट् स्वाहेति नियमात् सूर्यः। स एव सप्तवाराधिपतिः सप्ततुरगरथः [6]सप्तजिह्वो वारभेदेन। शान्तौ सोमजिह्वः, पुष्टौ सूर्यजिह्वः, मारणे उच्चाटने विद्वेषणे च शनिजिह्वः, वश्ये शुक्रजिह्वः, आकृष्टौ बृहस्पतिजिह्वः, मोहने बुधजिह्वः, स्तम्भने मङ्गलजिह्वः। एवं प्रत्येकवारविशुद्ध्या प्रत्येकैककर्मणि एकमुखः। अहर्निशाविशुद्ध्या द्विचरणः। चतुःसन्ध्याविशुद्ध्या चतुर्भुज इति नियमः। शान्तिकादौ कर्मणि मारणे केतुविशुद्ध्या द्विभुजः। [7]कर्तिका-कपालहस्तः। विद्वेषे च शनिविशुद्ध्या खड्गकपालहस्त इति पक्षान्तरनियमः। शनिवारे [8]पूर्वार्धापरार्धभेदेनेति। सर्वकर्मणि राहुविशुद्ध्या कालाग्निविशुद्ध्या उत्पाद-प्रलयधर्मत्वात्। कामाग्निराहवनीयश्च देवता सर्ववारेषु व्यापकत्वात्। ज्ञानाग्निरिति पूजनीयो वज्राचार्येण पूर्वविधिनेति वैश्वानरावाहननियमः॥ ७४-७५॥

---

१. ग. छ. पाद्यं सर्वं, भो. Sil sÑan Thams Cad Rab Tu dKrol Te (सर्ववाद्यं वादयित्वा)। २. भो. Gaṅ gZar Gyis Sreg bLugs dBul Bar Bya Śiṅ (आहुतिं पात्र्यार्पयेत्)। ३. क. ख. ग. छ. ०तस्यार्थः। ४. भो. Rab ḥZin (प्रग्राहः)। ५. क. ख. प्रजादित्यः, ग. छ. प्रवहति प्रजादिभ्यः। ६. ग. सर्वं। ७. ग. कर्तिक। ८. ग. पूर्वापरार्धं।

इदानीं होममुद्रादिकमुच्यते—

अङ्गुष्ठेन प्रकुर्यादपि वरदकरे होममग्नेर्मुखे च
वज्रैरङ्गैश्च भर्तुः शरशतसमिधान् शस्यदूर्वाज्यदुग्धैः ।
पर्यङ्कस्थः प्रशान्तस्त्वचपलहृदयो मन्त्रविन्मन्त्रमूर्ति-
राचार्यः कर्मवज्री पुनरपि शिखिने चाहुतिं वै ददाति ॥ ७६ ॥

अङ्गुष्ठेनेत्यादिना। इह यदा श्रुवकाभावः, तदा वज्राचार्यः पूर्वोक्तासनस्थो वामकरमुत्तानकं कृत्वा दक्षिण**वरदकरे**णाङ्गुष्ठकेन होमद्रव्यं चालयित्वा वैश्वानरस्य स्फारितमुखस्य **मुखे** होमयेत्। स च भक्ष्यमाणश्चिन्तनीय इति। **वज्रै**रि[207a]ति। ॐ आः [1]हूँ हो हं क्षः स्वाहा। एभिः **पञ्चशतसमिधान्** तेनाष्टोत्तरशतं जुहुयात्। **ततोऽङ्गै**रिति। [2]हॢं हं ॠं ह्रीं ह्रां ह्रा स्वाहा इति। अङ्गैरष्टोत्तरशतम्। चकारात् [3]पञ्चस्कन्धैर्धातुभिः। अ आ इ ई ऋ ॠ उ ऊ ऌ ॡ अं अः स्वाहा। एभिरष्टोत्तरशतम्। एवमायतनैश्च अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् अं अः स्वाहा इति। द्वादशायतनैरष्टोत्तरशतम्। ततः कर्मेन्द्रियैः [4]सविषयैश्च ह हा य या र रा व वा ल ला हं हः [5]स्वाहा। एभिरष्टोत्तरशतम्। एवं चत्वारिंशदधिकपञ्चशतैः पञ्चशतसंज्ञा(ख्या) गृह्यन्ते। प्रत्येकमष्टोत्तरशतं मन्त्रं जपनीयम्। द्वात्रिंशल्लक्षणम्, अशीत्यनुव्यञ्जनम्, द्वादशोत्तरशतम्। तेभ्यः कायवाक्चित्तज्ञान[6]स्थानानि वर्जयित्वा शेषाण्यष्टोत्तरशतानि। अक्षसूत्रमालायां मेरौ वक्त्रचतुष्टयम्। तेन सर्वत्राष्टोत्तरशतं मानं होमे सर्वकर्मणि पुण्यसम्भारार्थम्। ततः शस्यादिकं होमद्रव्यमप्यनेनैव विधिना **शस्य[7]दूर्वाज्यदुग्धैः**। एभिरष्टोत्तरशतभेदेन वक्त्रादिभिर्होमः कार्यः। समिधः शस्यानि च घृतेनाक्तानि। दूर्वादुग्धाक्ता होतव्या। ततः पूर्णाहुतिं हृदयमन्त्रेण घृतेन पात्रीं पूरयित्वा **पर्यङ्कस्थः प्रशान्तस्त्वचपलहृदयो मन्त्रविन्मन्त्रमूर्तिराचार्यः कर्मवज्री** च **पुनरपि शिखिने वै ददाति** ॐ ह् क्ष् म् ल् व् र् यँ इत्यनेन मन्त्रेण घृताहुतिं दत्त्वा ततो भक्ततोयं गृहीत्वा स्वस्त्ययनं करोति। ॐ भूर्भुवः स्वाहा नमो देवेभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यः स्वाहा राजभ्यः स्वधा पितृभ्यः अलं भूतेभ्यः वषट् इन्द्रायेति कुर्वन् कुण्डबाह्यं विनिःसृत्य तत्तोयभक्तं बाह्ये प्रक्षिप्य तत्राचमनं कृत्वा पुनर्मण्डलगृहं प्रविश्य पावकस्यापि कुशतोयेनाचमनं कुर्यात्। ॐ आः [8]हूँ कायवाक्चित्तस्वभावशुद्ध स्वाहा। अनेन मन्त्रेण। [9]अत्र कुण्डप्रज्वालनकाले [10]न मुखवातं कर्तव्यम्। अग्निसंदीपनार्थं(पनं) व्यजनवातादिना कुर्यादिति ॥ ७६ ॥

---

१. छ. भो. हुँ। २. ख. हॢं हॢं कं ह्रीं ह्रां ह्रा, ग. हृ हृं हॢं ह्रीं ह्रां ह्रः, च. हॢं हॢं कं ह्रीं ह्रां ह्रः, भो. हॢं हॢं ह्रां ह्रीं ह्रां ह्रः। ३. भो. Phuṅ Po Drug (पट्स्कन्ध)। ४. ग. सर्वं, च. 'स' नास्ति। ५. ग. च. 'स्वाहा' नास्ति। ६. च. ज्ञानानि। ७. ग. च. भो. दूर्वाज्यदुग्धम्। ८. भो. हुँ। ९. ग. 'अत्र' नास्ति। १०. ग. मुखवातं न।

होमं कृत्वा क्रमेणाचमनमपि तथा पावकस्यात्मनश्च
दत्त्वा गन्धादिधूपं स्वहृदयकमले ज्ञानवह्निं विसर्ज्य ।
पश्चाच्छिष्यस्य सेकं सकलगुणनिधिः श्रीगुरुर्वै ददाति
आदौ पञ्चामृतं वै जिनवरकुलिशाधिष्ठितं शुद्धिहेतोः ॥७७॥

एवं **होमं कृत्वा क्रमेणाचमनमपि तथा पावकस्यात्मनश्च दत्त्वा गन्धादिधूपं** पूर्वोक्तक्रमेण पुनः **स्वहृदयकमले** उत्स्वा(च्छ्वा)सेन **ज्ञानवह्निं** विसर्जयेत्। ॐ जः गच्छ गच्छ महारश्मि स्वस्थानं संतृप्तो [1]हो पुनरागमिष्यसि देवास्य यदाह्वयामि स्वाहा। इति विसर्ज्य ज्ञानवह्निं[2] **पश्चात् शिष्यस्य सेकं ददाति गुरु**र्वक्ष्यमाणक्रमेण **सकलगुणनिधिः**। सेकार्थं प्रथमं **पञ्चामृतं जिनवरकुलिशाधिष्ठित**मिति। ॐ आः हूँ[3] हो हं क्षः इति पञ्चामृतं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा मुक्ताशुक्तिकायां स्थापयेत्। शङ्खशुक्तिकायां वा। एवं पञ्चप्रदीप[4]गुडिका। तत्रैव शुक्तिकायां **शुद्धिहेतो**रिति। प्राक्साधनीयं सप्ताभिषेकार्थमिति होमविधेः[5] सर्वतन्त्रेषु भगवतो नियमः ॥ ७७ ॥

इदानीं [6]मण्डलप्रतिष्ठायै समाधिरुच्यते—

सिद्धे होमे स्वमन्त्रै रजसि च पतिते मन्त्रचिह्ने प्रदत्ते
कोणे संस्थापनीयाः स्फटिकसितघटावेष्टिताः पञ्चसूत्रैः ।
आचार्यः पूर्ववक्त्रः कुलिशकमलजैरुद्गतैः क्रोधराजैः
आकृष्ट्वा ज्ञानचक्रं रजसि समरसं सेकहेतोः करोति ॥७८॥

सिद्ध इत्यादिना। [7]इह **होमे सिद्धे** सति **स्वमन्त्रै**रिति। क्रियायोगयोगानुविद्धयोगिनीतन्त्रेष्वनेकेषु उक्ताः स्वतन्त्रोक्ता मन्त्राः, तैः [8]स्वमन्त्रैस्तन्त्रोक्तविधिना होमे सिद्धे सति। प्रथमहोमे तत्र स्वमण्डले **रजसि पतिते** सति गर्भ[9]**चक्रे** देवतागणस्य **प्रदत्ते** सति स्वस्वतन्त्रोक्तविधिना **कोणे संस्थापनीयाः स्फटिकसितघटा वेष्टिताः पञ्चसूत्रैः** [10]शान्तैः। शेषं[11] [12]पूर्वोक्तविधिना वेष्टिताः पञ्चसूत्रैः। कण्ठे व[208a]स्त्रबद्धाः पूर्वभूम्यां मण्डलबाह्ये जयकलशं पञ्चकलशकार्येषु। तदुपरि षष्ठो विजयशङ्खः। दशकलशकार्येषु पुनरष्टसु दिक्षु [13]अष्टघटाः, जयो विजयः पूर्वापरकलशबाह्ये[14] अङ्गुलद्वयेना-

---

१. च. भो. होः। २. ग. चिह्नं। ३. छ. भो. हुँ। ४. ग. गुलिकां, च. गुलिका। ५. ग. च. विधिः। ६. भो. rDul Tshon Gyi dKyil ḥKhor (रजोमण्डल)। ७. छ. इति। ८. ग. स्वतन्त्रैः स्व, च. स्वतन्त्रैश्च। ९. ग. च. भो. चिह्ने, 'मन्त्रचिह्ने' इति मूलस्थः पाठः। १०. ग. च. शान्तौ। ११. ग. च. शेषे। १२. च. पूर्वविधिना। १३. च. 'अष्ट' नास्ति। १४. छ. बाह्य।

स्पृष्टः[1]। तत्र पूर्वजयकलशोपरि महाविजयकलशः, एकादशमः शङ्ख इति कलशनियमः। एवं शतसहस्र[2]कलशेऽपि महाविजय[3]शङ्खः। शान्तौ पुष्टौ सर्वकर्मणि च। क्रूरकर्मणि कपालम्। वश्यादौ ताम्र[4]म्, [5]सुवर्णशुक्तिः। स्तम्भने सरावम्। मोहनाद्येऽपि। तत्र स्थापयित्वा कर्मानुरूपेण सूत्रैर्वेष्टयित्वा वस्त्रकण्ठान् कृत्वा आचार्येण सपल्लवमुखाः स्थापनीयाः। [6]तत्र आचार्यः पूर्ववक्त्रस्थितो वक्ष्यमाणसाधनविधिना पापदेशनादिकं कृत्वा मण्डलराजाग्रीं कर्मराजाग्रीं बिन्दुयोगं [7]सूक्ष्मयोगं कृत्वा [8]ततः प्रज्ञोपायोद्भूतैः **कुलिशकमलजैरुद्गतैः क्रोधराजैरिति** साधनो[9]पायिकाविधिना जः हूँ[10] वँ होः, एभिर्मन्त्रपदैः जःकारेणाकृष्य [11]हूँकारेण प्रवेशयेत्, वंकारेण बन्धयेत्। होकारेण तोषयित्वा **ज्ञानचक्रं** रजोमण्डले समयमण्डलं ध्यात्वा तत्र **समरसं करोति सेकहेतोः**। ततः प्रतिष्ठापयित्वा पूर्वोक्तविधिनाऽर्घं दत्त्वा ॐ आः हूँ[12] होः त्रैधातुकेश्वर कालचक्र अर्घं प्रतीच्छ सपरिवारस्त्वं भगवन् मे वरदो भव शिष्याणां च इत्यध्येष्यार्घं मण्डलरजो बाह्ये मण्डलं कृत्वा दापयेत्। ततोऽपरमण्डलं[13] विजयकलशाग्रतः [14]कृत्वा [15]हस्तमेकम्, [16]तत्र पूर्वोक्तगन्धादिकं पाद्यं प्रदापयेत्। एवं सर्वदिक्षु विदिक्षु प्रत्येक[17] देवतानामपि नैवेद्यादिकं[18] देयम्। सर्वदिक्षु रजोमण्डलबाह्ये रजोभूम्यां पुष्पादिकं न दातव्यम्। दत्ते रजोविलोपो भवति। प्रतिष्ठापितमण्डले[19] रजोविलोपात् स्तूपभेद इति। तेन मण्डलबाह्ये पूर्वद्वारे विजयकलशोपरि पुष्पक्षेपः कर्तव्यः कुलप[20]रीक्षार्थम्। अन्यथा सहस्रहस्तमण्डले कुतः पुष्पं पतिष्यति शिष्येण [21]क्षिप्तम्। पूर्ववज्रार्चिषं त्यक्त्वा वज्रज्वालापि तत्र सपाद [22]हस्तशतं भवति। कथं तां लङ्घयि[208b]त्वा देवताधिष्ठानं[23] विना कुलदिक्षु पुष्पं पतिष्यति। तस्माद्विजयकलशे पञ्चचिह्नानि कृत्वा तत्र पुष्पक्षेपो वक्ष्यमाणः कर्तव्यः। तेन गन्धादिकं [24]मण्डलबाह्ये न रजोभूम्याम्। रजोमण्डलं भगवतः कायो वेदितव्य इति नियमः॥ ७८॥

इदानीं मन्त्रनियममाह—

सर्वेषां नाम पूर्वं प्रणव इति भवेद् देवतादेवतीनां
होमे स्वाहान्तमन्त्रो हृदयमपि तथैवार्चने वै नमोऽन्तः।
जः हूँ वँ होऽङ्कुशाद्याः क्रमपरिरचितावाहने च प्रवेशे
बन्धे तोषेऽर्घदाने भवति पुनरिदं गृह्ण गृह्णार्घकं मे ॥७९॥

---

१. च. स्पृष्टाः। २. ग. कलशोऽपि। ३. भो. Bum Pa (कलश) इत्यधिकम्। ४. ग. ताम्रसुवर्णं। ५. भो. सुवर्णपात्रम्। ६. च. तत। ७. ग. 'सूक्ष्मयोगं' नास्ति। ८. ग. 'ततः' नास्ति। ९. क. ख. ग. छ. ०पयिका। १०-११. छ. हुं। १२. छ. भो. हुं। १३. क. मण्डल। १४. ग. 'कृत्वा' नास्ति। १५. क. हेमम्। १६. क. तत। १७. ग. प्रत्येकं। १८. ग. ०दिकं च। १९. क. ख. छ. मण्डल। २०. क. परिरक्षार्थम्। २१. भो. क्षिप्तं पुष्पं। २२. ग. हस्तं। २३. ग. ०धिष्ठानेन। २४. भो. rDul Tshon (रजो) इत्यधिकम्।

सर्वेषामित्यादिना। इह **सर्वेषां** [1]मण्डले नायकानुना[2]यकानाम्। [3]**नाम** मन्त्रस्य **पूर्वं प्रणवं** भवति, ॐकार इत्यर्थः। अनुक्तमन्त्राणामपि। सर्वत्र प्रणवं प्रथममिति विज्ञेयम्। **होमे स्वाहान्तमन्त्रः**। सर्वेषां नाममन्त्रो **हृदयमु**च्यते। स एव होमकार्ये स्वाहान्तो भवति। सर्वकर्मणि **अर्चने नमोऽन्तो** भवति स एवेति नियमः। **जः** [4]**हूँ वं हो अङ्कुशाद्या** इति। इह देवताऽऽवाहने जः कारेणाङ्कुशं कुर्यात्, **प्रवेशे** [5]हूँकारेण वज्रम्, **बन्धने** वँकारेण पाशम्, **तोषणे** होकारेण वज्रघण्टामिति यथाक्रमरचिता वज्राङ्कुशाद्याः। ततो**ऽर्घदाने** भवति नाममन्त्रावसाने। अमु**केदं गृह्ण** गृह्ण **अर्घकं मे पुनरिति** नियमः॥ ७९॥

इदानीं [6]पुष्ट्यादिकर्मभेदेन मन्त्रविधिरुच्यते—

पुष्टौ स्वाहान्तमन्त्रो भवति नरपते शान्तिकेऽसौ नमोऽन्त
आकृष्टौ वौषडन्तो भवति च वषडन्तश्च वश्ये तथैव।
हूँकारान्तोऽभिचारे प्रकृतिगुणवशात् कीलनाद्ये फडन्तः
श्वेतो रक्तश्च कृष्णो वरकनकनिभः कर्मभेदैश्च मन्त्रः ॥८०॥

पुष्टा[209a]वित्यादिना। इह सर्वत्र मन्त्रजापे होमे वा **पुष्टौ** ओंकारादि**स्वाहान्तो** [7]**मन्त्रो** भवति। **नरपते** इति संबोधनम्। **शान्तिकेऽसौ** मन्त्रो **नमोऽन्तः**। स एवा**कृष्टौ वौषडन्तो भवति च**। स एव **वषडन्तो वश्ये तथैव**। **हूँकारान्तोऽभिचारे** विद्वेषोच्चाटने मारणे च। **प्रकृतिगुणवशात् कीलन**स्तम्भनमोहने **फट्**का**रान्तो** भवति। अत्र प्रकृतिः पुष्टौ सार्द्रपृथ्वी प्रकृतिस्तेन स्वाहा। शान्तौ तोयः प्रकृतिः, नमः। आकृष्टौ अग्निः [8]प्रकृतिः, वौषट्। वश्येऽग्निप्रकृतिः, वषट्। मारणोच्चाटने विद्वेषे वाय्वग्निप्रकृतिः हूँकारः। कीलनस्तम्भने मेरुपृथ्वीप्रकृतिः फट्कारः। मोहनेऽपि वायुपृथ्वीप्रकृतिरिति। अथवा सर्वत्र मारणादिषु मोहनादिषु [9]त्रिषु [10]कर्मसु हूँफट्कारान्तो मन्त्रजापः, [11]होमोऽपि, अर्चनादिकमपि कर्तव्यं मन्त्रिणेति नियमः। देवतावर्णः शान्तौ पुष्टौ **श्वेतः**। वश्यादौ **रक्तः**। मारणादौ **कृष्णः**। मोहनादौ **पीतः**। इति **कर्मभेदैश्च मन्त्रो** भवतीति नियमः॥ ८०॥

इदानीं [12]मण्डलभूमिविशुद्धिबीजान्युच्यन्ते—

पूर्वे श्रीचित्तवज्रं कषणघननिभं चोत्तरे कायवज्रं
वाग्वज्रं दक्षिणे च स्वकुलदिशि गतं पश्चिमे ज्ञानवज्रम्।

---

१. ग. मण्डलनायिकानाम्। २. क. ग. छ. नायिका०। ३. ग. 'नाम' नास्ति। ४-५. छ. हुं। ६. क. पुष्यादि। ७. छ. 'मन्त्रो' नास्ति। ८. क. ख. 'पृथ्वी' इत्यधिकम्। ९. ग. त्रिपु त्रिपु। १०. च. 'कर्मसु' नास्ति, छ. 'त्रिपु कर्मसु' नास्ति। ११. क. ग. च. होमे। १२. ख. च. मण्डले, ग. मण्डले भुवि।

श्वेतं रक्तं च पीतं भवति कुलवशाद् व्यापकं भूमिभागे
वाय्वग्न्यम्बुक्षितीनां इ ऋ उ लृ नृपते योनयो देवतानाम् ॥८१॥

इह **पूर्वे चित्तवज्रं** व्यापकं भूमिभागे कृष्णवर्णं [1]वायुविशुद्ध्या। **उत्तरे कायवज्रं** उदक[2]शुद्ध्या **श्वेतम्। वाग्वज्रं दक्षिणे**ऽग्निशुद्ध्या **रक्तम्। स्वकुल**पृथ्वीदिशिगतं **पश्चिमे ज्ञानवज्रं पीतम्।** एवं राहुचन्द्रसूर्य[3]कालाग्निशुद्ध्या चतुर्वक्त्रभेदेन **भूमिभागः।** अतो यथासंख्यं **वायोर्योनिः इ**[4]। **अग्नेर्योनिः ऋ। उदकस्य योनिः उ। क्षितेर्योनिः लृ। योनयो** वाय्वादीनां **देवतानाम्।** इकारादिस्वस्वबीजानि संस्कारवेदना[209b]-संज्ञारूपस्वभावानि। अकारोऽनुक्तोऽपि आकाशयोनिर्विज्ञानस्कन्धलक्षण इति सर्वत्र नियमः, अ इ उ ऋ लृ[5] इति प्रत्याहारपाठात्। सृष्टिक्रमेण उत्पत्तिक्रमेणेति नियमः॥ ८१॥

इदानीं मुद्राबीजान्युच्यन्ते मुद्रणार्थम्—

ॐ आः हूँ च त्रिमुद्राः स्वहपदसहिता दीर्घभेदाच्च पञ्च
ॐ आः हूँ होः स्ववक्त्राण्यपरमपि तथाऽनाहतं पञ्चमं स्यात्।
साद्यं ह्लँकारषट्कं भवति रसपदैः श्रीषडङ्गं नमाद्यैः
फ्रँकारो विश्वमातुर्भवति दशविधः कूटमन्त्रो जिनस्य॥ ८२॥

इह कायमुद्रा ललाटे ॐकारः शुक्लः। कण्ठे **आः**कारो वाङ्मुद्रा रक्तः। हृदये **हूँ**कारः कृष्णः चित्तमुद्रा इति [6]मुद्रा उपायस्य। प्रज्ञाया[7] नाभौ **स्वा।** गुह्ये **हा।** आभ्यां सह पञ्च। यतः त्रिदशशशिपदे पञ्चचन्द्रचरणे उक्ताः, सूर्ये काल इति वचनात्। [8]रविकात्रयमुक्तं **दीर्घभेदादिति।** छन्दोऽनुरोधात् मूले स्वह[9] ह्रस्वः। ॐ[10] कायवक्त्रम्। **आः** वाग्वक्त्रम्। **हूँ** चित्तवक्त्रम्। **होः** ज्ञानवक्त्रमिति। **अपरमपि तथाऽनाहतं पञ्चमं** येन नायको मुद्रितः। तदेव पञ्चाक्षरं महाशून्यमिति नियमः। तथा [11]**साद्य**मिति आद्यैः षट्स्वरैः सार्धं [12]**ह्लँकारषट्कं भवति। रसपदैः** षड्भिः सार्धं **षडङ्गं नम आद्यै**रिति। ॐ ह्लृ नमः। ॐ ह्लैं स्वाहा। ॐ [13]ह्रॄं वौषट्। ॐ ह्लीं हुँ ओं ह्लां वषट्। ॐ [14]ह्लैं फट्—इति यथासंख्यं हृदयं शिरः शिखा कवचं नेत्रमस्त्रमिति पृथिव्यप्तेजोवायुशून्यज्ञानस्वरसहितो ह्लंकारमन्त्र एव

---

१. ग. च. वायुशुद्ध्या। २. ग. विशुद्ध्या। ३. च. सूर्यपीतका०। ४. ग. इः ऋः उः लृः। ५. क. ख. ग. लृक्। ६. ग. 'मुद्रा' नास्ति। ७. ग. च. प्रज्ञायां। ८. छ. रविकाय। ९. क. ख. ग. च. छ. 'स्वह' नास्ति। १०. ग. च. भो. एवं ॐ। ११. क. साध्य। १२. ख. ग. च. हूँ। १३. क. हें। १४. ग. च. भो. ह्लः।

षडङ्गः। तथा [1]**फ्रँकारो विश्वमातुर्बीजं** मन्त्रो **जिनस्य** कालचक्रस्य सप्रज्ञस्य ह् क्ष् म् ल् व् र् यँ इति॥ ८२॥

हूँकारो ज्ञानबीजं हृदयमपि महाकूटमन्त्रः सवक्त्रः
ह्लांकाराद्यं षडङ्गं हृद्युपहृदयमिदं कायवज्रादियुक्तम्।
माला[210a]मन्त्रस्तथान्यो भवति बहुविधः कर्मभेदैरनेकै-
र्ज्ञातव्यो मण्डलेऽस्मिन् प्रकृतिगुणवशाद् देवतादेवतीनाम्॥ ८३॥

तस्यैव भगवतः पृथगुत्पादाय **हूँकारो ज्ञानबीजं** प्रज्ञोपायपृथगुत्पादाय[2] **हृदयमपि** तथा **कूटमन्त्रो** जिनस्य पूर्वोक्तः, ॐ आः [3]हूँ होः इति चतुर्वक्त्रसहितः। **ह्लांकाराद्यं षडङ्गमुपहृदयं** भगवतः। ॐकारेणादिभूतेन युक्तं जापार्थम्। [4]ॐ ह्लां ह्लीं ह्लृं ह्लैं ह्लौं ह्लः इति सृष्टिक्रमेण सर्वकर्मसाधने। क्रूरे संहारक्रमेण[5] जाप[6] इति। **मालामन्त्रस्तथान्यो भवति देवतादेवतीनाम्,** स च **बहुविधो**ऽनेकपदिको **भवति। कर्मभेदैरनेकैर्ज्ञातव्यो मण्डलेऽस्मिन्** कालचक्रे पृथिव्यादिप्र**कृतिः,** तद्**गुणवशा**दिति वक्ष्यमाणे वक्तव्यम्। एवं सर्वतन्त्रान्तरेषु नियमः॥ ८३॥

इदानीं देवतार्चनमुच्यते—

रत्नैर्हैमेन्दुपुष्पैर्बहुविविधपटैर्गन्धधूपप्रदीपै-
र्घण्टादर्शैर्वितानैर्विविधफलपताकादिभिर्नृत्यवाद्यैः।
कृत्वा पूजां विचित्रामपरदशविधां चात्मशक्त्या यथोक्ता-
माचार्यस्याङ्घ्रिमूले ददति वरसुतो दक्षिणां शुद्धिहेतोः॥८४॥

रत्नैरित्यादिना। इह पूर्वोक्तविधिना देवतालम्बनं कृत्वा ततो ज्ञानचक्रं समयचक्रेण सह एकीकृत्यार्घादिकं दत्त्वा पूर्वमन्त्रपदैः, ततोऽर्चनार्थं प्रथम गन्धं चन्दनादिकं गृहीत्वा अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बाह्ये कृतमण्डले नायकादीनर्चयेत्। सर्वेषां नामपूर्वं प्रणवं देयम्। अर्चने सर्वकर्मणि नमोऽन्ते नाम्नो भवति। प्रत्येककर्मणि पुष्ट्यादौ स्वाहान्तो वेदितव्य इति। इह सर्वकर्मण्यर्चनाय देवतानां मन्त्रपदानि। तद्यथा **मूलतन्त्रे**—ॐ बुद्धाय नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ संघाय नमः। ॐ वज्रसत्त्वाय नमः। ॐ प्रज्ञापारमितायै नमः। ॐ स्वाभाविककायाय नमः। ॐ धर्मकायाय नमः। ॐ सम्भोगकायाय नमः। ॐ निर्माणकायाय नमः। ॐ[210b] ज्ञानवज्राय नमः। ॐ चित्तवज्राय नमः। ॐ वाग्वज्राय नमः। ॐ कायवज्राय

---

१. च. ॐ ल। २. ग. च. ०दनाय। ३. भो. हुँ हो। ४. क. ख. ग. च. ॐ फ्रां फ्रीं हृं हूं हॢं हः। ५. भो. 'ह्रीं कारेण' इत्यधिकम्। ६. च. जप।

नमः।[1] ॐ चतुर्विमोक्षेभ्यो नमः। ॐ चतुर्ब्रह्मविहारेभ्यो नमः। ॐ सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मेभ्यो नमः। ॐ चतुरशीतिसहस्रधर्मस्कन्धेभ्यो नमः। ॐ सर्वधर्मदेशकेभ्यो नमः। ॐ रत्नत्रयाय नमः। ॐ शाक्यमुनये नमः। ॐ कालचक्राय नमः। ॐ दानपारमितायै नमः। ॐ शीलपारमितायै नमः। ॐ क्षान्तिपारमितायै नमः। ॐ वीर्यपारमितायै नमः। ॐ ध्यानपारमितायै नमः। ॐ प्रज्ञापारमितायै नमः। ॐ उपायपारमितायै नमः। ॐ [2]प्रणिधिपारमितायै नमः। ॐ बलपारमितायै नमः। ॐ ज्ञानपारमितायै नमः। ॐ जयघटेभ्यो नमः। ॐ विजयघटेभ्यो नमः। ॐ सर्वचिह्नेभ्यो नमः। ॐ सर्वमुद्राभ्यो नमः। ॐ चिन्तामणये नमः। ॐ धर्मगण्ड्यै नमः। ॐ धर्मशङ्खाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ अक्षोभ्याय नमः। ॐ अमोघसिद्धये नमः। ॐ रत्नसंभवाय नमः। ॐ अमिताभाय नमः। ॐ वैरोचनाय नमः। ॐ लोचनायै नमः। ॐ मामक्यै नमः। ॐ पाण्डरायै[3] नमः। ॐ तारायै नमः। ॐ वज्रधात्वीश्वर्यै नमः। ॐ वज्रपाणये नमः। ॐ खगर्भाय नमः। ॐ क्षितिगर्भाय नमः। ॐ लोकेश्वराय नमः। ॐ [4]सर्वनीवरणविष्कम्भिने नमः। ॐ समन्तभद्राय नमः। ॐ गन्धवज्रायै नमः। ॐ रूपवज्रायै नमः। ॐ रसवज्रायै नमः। ॐ स्पर्शवज्रायै नमः। ॐ शब्दवज्रायै नमः। ॐ धर्मधातुवज्रायै नमः। ॐ उष्णीषाय नमः। ॐ विघ्नान्तकाय नमः। ॐ प्रज्ञान्तकाय नमः। ॐ पद्मान्तकाय नमः। ॐ यमान्तकाय नमः। ॐ [5]स्तम्भिन्यै नमः। ॐ मानिन्यै नमः। ॐ [6]स्तोभिन्यै नमः। ॐ अतिवीर्यायै नमः। ॐ अतिनीलायै नमः। ॐ सर्व[7]धारणीभ्यो नमः। ॐ षडङ्गाय नमः। इति चित्तमण्डले अर्चनाविधिः।

ततो वाङ्मण्डले। तद्यथा—ॐ वज्रचर्चिकायै नमः। ॐ वज्रवाराह्यै नमः। ॐ वज्रमाहेश्व[211a]र्यै नमः। ॐ वज्र-ऐन्द्र्यै नमः। ॐ वज्रब्रह्माण्यै नमः। ॐ वज्रमहालक्ष्म्यै नमः। ॐ वज्रकौमार्यै नमः। ॐ वज्र-वैष्णव्यै नमः। ॐ अष्टाष्टकेन चतुःषष्टिवज्रयोगिनीभ्यो नमः। ॐ षट्त्रिंशदिच्छाभ्यो नमः। इति वाङ्मण्डले अर्चनविधिः।

ततः कायमण्डले। तद्यथा—ॐ वज्रविष्णवे नमः। ॐ वज्रनैर्ऋत्याय नमः। ॐ वज्राग्नये नमः। ॐ वज्रोदधये नमः। ॐ वज्रेन्द्राय नमः। ॐ वज्रेश्वराय नमः। ॐ वज्रब्रह्मणे नमः। ॐ वज्रविनायकाय नमः। ॐ वज्रकार्तिकेयाय नमः। ॐ वज्रवायवे नमः। ॐ वज्रयमाय नमः। ॐ वज्रयक्षेभ्यो नमः। ॐ वारुण्यै नमः। ॐ वायव्यै नमः। ॐ यामिन्यै नमः। ॐ यक्षिण्यै नमः। ॐ महाबलाय नमः। ॐ अचलाय नमः। ॐ टक्किराजाय नमः। ॐ नीलदण्डाय नमः। ॐ सुम्भराजाय नमः।

---

१. ग. इतः परम्—'ॐ द्वात्रिंशल्लक्षणेभ्यो नमः। ॐ अशीत्यनुव्यञ्जनेभ्यो नमः' इत्यधिकः पाठः। २. भो. प्रणिधान। ३. क. पाण्डरायै। ४. ग च. भो. सर्वनि०। ५. क. ख. छ. स्तम्भन्यै। ६. क. ख. छ. स्तोभन्यै। ७. ख. च. धारि०।

ॐ रौद्राक्ष्यै नमः। ॐ वज्रशृङ्खलायै नमः। ॐ चुन्दायै नमः। ॐ भृकुट्यै नमः। ॐ [1]मारीच्यै नमः। ॐ प्रत्येकमासभेदेन षष्ट्युत्तरत्रिशतवज्रतिथिदेवीभ्यो नमः। ॐ षट्त्रिंशत्प्रतीच्छाभ्यो नमः। ॐ वज्रजयाय नमः। ॐ वज्र[2]कर्कोटकाय नमः। ॐ वज्रवासुकये नमः। ॐ वज्रानन्ताय नमः। ॐ वज्रतक्षकाय नमः। ॐ वज्रमहापद्माय नमः। ॐ वज्रकुलिकाय नमः। ॐ वज्रशङ्खपालाय नमः। ॐ वज्रपद्माय नमः। ॐ वज्रविजयाय नमः। इति कायमण्डले।

ततः श्मशानेषु। तद्यथा—ॐ श्वानास्यायै नमः। ॐ शूकरास्यायै नमः। ॐ व्याघ्रास्यायै नमः। ॐ जम्बुकास्यायै नमः। ॐ गरुडास्यायै नमः। ॐ उलूकास्यायै नमः। ॐ गृध्रास्यायै नमः। ॐ काकास्यायै नमः। ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः। इत्यष्टश्मशानेषु।

ततो बाह्यलोकदेवतानाम्—ॐ वज्रचन्द्राय नमः। ॐ वज्रसूर्याय नमः। ॐ वज्रमङ्गलाय नमः। ॐ वज्रबुधाय नमः। ॐ वज्रबृहस्पतये नमः। ॐ वज्रशुक्राय नमः। ॐ वज्रशनैश्चराय नमः। ॐ वज्रकेतवे नमः। ॐ वज्रराहवे नमः। ॐ वज्रकालाग्नये नमः। ॐ वज्रध्रुवे(वाय) नमः। ॐ वज्रागस्त्याय नमः। ॐ सर्वनक्षत्रे[211b]भ्यो नमः। ॐ द्वादशराशिभ्यो नमः। ॐ षोडशकलाभ्यो नमः। ॐ दशदिग्पा[3]लेभ्यो नमः। ॐ वज्रनन्दिकेश्वराय नमः। ॐ वज्रमहाकालाय नमः। ॐ वज्रघण्टाकर्णाय नमः। ॐ वज्रभृङ्गिने नमः। ॐ सर्वक्षेत्रपालेभ्यो नमः। ॐ सर्वदूतीभ्यो नमः। ॐ हारीत्यै नमः। ॐ सर्वसिद्धिभ्यो नमः। ॐ धर्मचक्राय नमः। ॐ भद्रघटाय नमः। ॐ वज्रदुन्दुभ्यै नमः। ॐ बोधिवृक्षाय नमः। ॐ गुरुबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यो [4]नमः। इत्यर्चनविधिः।

ततो **रत्नैरिन्द्रनीलादिभिः, हेमपुष्पैर्बहुविविधपटैः** पञ्चवर्णैर्वस्त्रैर्गन्धधूप**प्रदीपैः, घण्टादर्शैर्वितानैर्विविधफलैः** पञ्चवर्णपताकाभिर्नृत्यैर्वाद्यैः **पूजां विचित्रां कृत्वाऽपि दशविधामिति** वक्ष्यमाणे वक्तव्या। एवं शिष्य **आत्मशक्त्या यथोक्तं** पूजां कृत्वा तत **आचार्यस्याङ्घ्रिमूले** मण्डलं कृत्वा **ददाति वरसुतो दक्षिणां शुद्धिहेतोः** ॥ ८४ ॥

द्रव्यात्मानं त्रिशुद्धया ससुतदुहितरं कन्यकां गोत्रजान्यां
अद्यैवाहं जिनानां शरणमधिगतो रौद्रसंसारभीतः।
युष्मत्पादाब्जयोर्वै भवभयहरयोः कायवाक्चित्तशुद्धया
इत्यध्येष्यो गुरुः स्यात् सकनककुसुमैर्मण्डलं कारयित्वा ॥८५॥

---

१. क. ख. ग. छ. मारिच्यै। २. क. ग. छ. कर्कोटाय। ३. क. दिग्लोकपालेभ्यो। ४. [illegible] नमः।

[1]**द्रव्यमात्मानं त्रिशुद्धया** कायवाक्चित्तशुद्धया **ससुतदुहितरं** ददाति, **कन्यकां गोत्रजामन्यां** यदि स्वकीया नास्ति। एवं दक्षिणां दत्त्वा ततोऽध्येषणां करोति प्रणिधानं **युष्मत्पादाब्जयोर्वै भवभयहरयोः** च। **अद्यैवाहं जिनानां शरणमधिगतो** बोधिसीम्नः। **कायवाक्चित्तशुद्धयेति, अध्येष्यो गुरुः स्यात् सकनककुसुमैर्मण्डलं कारयित्वा** ततः प्रणिधानं करोति ॥८५॥[212a]

वज्रं घण्टां च मुद्रां गुरुमपि शिरसा धारयामीष्टवज्रे
दानं दास्यामि रत्ने जिनवरसमयं पालयाम्यत्र चक्रे।
पूजां खड्गे करोमि स्फुटजलजकुले संवरं पालयामि
सत्त्वानां मोक्षहेतोर्जिनजनककुले बोधिमुत्पादयामि ॥८६॥

[2]**वज्रं घण्टां च मुद्रां गुरुमपि शिरसा धारयामीष्टवज्रे** वज्रकुले स्थितः [3]इमं समयं गृह्णामि। **दानं दास्यामि रत्न**कुले स्थितः। पुण्यसं[4]भारणाय दशविधं दानं दास्यामि—

लोहरत्नान्नगोवाजिगजकन्यावसुन्धरा ।
इष्टा भार्या स्वमांसानि दानं दशविधं मतम् ॥ इति।

चिन्तामणिं [5]साधयित्वा दानं दास्यामीति प्रणिधानम्। **जिनवरसमयं पालयाम्यत्र चक्रे** चक्रकुले स्थितः पञ्चामृताद्यं गोकुदहनं स्कन्धेन्द्रियसमूहं रक्षामीति प्रणिधानम्। **पूजां खड्गे करोमि** [6]खड्गे स्थितः [7]सन् गुरुबुद्धबोधिसत्त्वानाम्, अन्येषामपि पूजां सर्वोपकरणैः[8] करोमीति प्रणिधानम्। **स्फुटजलजकुले** पद्मकुले स्थितः, वर्णावर्णाभिगमने स्फुटं पद्मसंपर्के **संवरं** ब्रह्मचर्यं **पालयामि** शीलसंभारायेति प्रणिधानं करोमि। **सत्त्वानां मोक्षहेतोर्जिन**[9]**जनककुले,** एकशूकवज्रे स्थितः [10]सन् **बोधिमुत्पादयामि** शून्यताकरुणात्मिकां महामुद्रासिद्धिमिति प्रणिधानं करोमि ॥८६॥

स्नातो गन्धानुलिप्तो व्रतनियमयुतः पूर्वभूम्यां निवेश्य
सिद्धयर्थं दन्तकाष्ठं जिनवरकुलिशैश्चाभिमन्त्र्य प्रदेयम्।
जिह्वायां चामृतं वै जिनवरसमयैर्धूपमावेशनार्थं
मन्त्रं हूँकारमेकं त्वरलपिसहितं चोदनं क्रोधभर्तुः ॥८७॥

---

१. च. भो. द्रव्यात्मानं। २. ग. वज्र। ३. ख. ग. च. छ. इदं। ४. क. ०भाराय। ५. छ. शोधयित्वा। ६. ख. ग. च. भो. खड्गकुले। ७. भो. bLa Ma Dam Pa (सद्गुरु)। ८. क. करणे। ९. ग. कनक। १०. ग. सम्बोधिचित्त०, ख. सम्बोधि०।

इति प्रणिधाने[1] कृते सति, अभिषेकाय प्रार्थितो गुरुः, हृष्टतुष्टः सन् शिष्यं **स्नातं गन्धानुलिप्तं व्रतनियमयुतं पूर्वभूम्यां** मण्डलबाह्ये **निवेश्य सिद्धयर्थं दन्त**[212b]**काष्ठं** पूर्वोक्तविधिना **जिनवरकुलिशैरि**ति—ॐ आः हूँ[2]—एभिः सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा तत [3]उल्लालयित्वा मण्डले क्षिपेत्। येन दिग्विभागेन पतति [4]तत्कर्मप्रसरं तस्य सिद्धयति। पूर्वोक्तं[5] शान्त्यादि[6]कमष्टदिक्षु। ततो मुखे चुलुकत्रयमुदकस्य प्रक्षिप्य शुद्धिं कृत्वा [7]मण्डले काण्डपटं दत्त्वा पूर्वभूम्या[8]मानयित्वा शिष्यम्, ततस्तस्य **जिह्वायां पञ्चामृतं** दद्यात्। **जिनवरसमयैः** पञ्चामृतपञ्चप्रदीपैः। पूर्वं **धूपं** साधयित्वा तदेव धूपं देवता[9]**वेशनार्थं**। तत्र **मन्त्रं हूँकारमेकम्। अ र लपिसहितमि**ति। ॐ अ र र र र ल ल ल ल वज्रावेशय हूँ, इत्यनेन मन्त्रेण **चोदनं** कृत्वा **क्रोधभर्तुः** क्रोधावेशनमित्यर्थः। अस्य कोटिजापेन दशलक्षहोमेन [10]पूर्वसेवां कुर्यात्। ततः सिद्धयति। [11]स्मरणमात्रेण क्रोधावेशं करोति। तत्रेदं लक्षणं भवति। [12]तद्यथा [13]अष्टाशीति[त]मेन वृत्तेन उक्तम् ॥८७॥

आविष्टः क्रोधराजः प्रहरणसुकरैस्तर्जयन्मारवृन्दं
प्रत्यालीढादिपादैर्बहुविधकरणैर्नृत्यते वज्रनृत्यम्।
हास्यं हूँकारमिश्रं भयदमपि रिपोर्वज्रगीतं करोति
निर्लज्जो निर्विशङ्को भवति गुणवशाद्देवतान्या च सौम्या ॥ ८८ ॥

आविष्टः क्रोधराजः प्रहरणसुकरैस्तर्जयन् मारवृन्दमिति। [14]इति शिष्ये क्रोधराज आविष्टः सन् प्रहरणशोभितकरैः स्थावरं[15] जङ्गमं यं हन्ति[16] शतचूर्णं करोति, यं तर्जयति तर्जन्या मारवृन्दं धर्मविहेठकं तं भूम्यां पातयति, निश्चेष्टतां नयति। तथा **प्रत्यालीढादि**[17]**पादैः विविधकरणैर्नृत्यते वज्रनृत्यमि**ति। इह यः शिष्यः प्राक् किञ्चिन्नाट्यलक्षणं न जानाति, स एव क्रोधाविष्टः सन् वज्रनृत्यं करोति[18]। अन्तरिक्षे बहुविधकरणैरिति नृत्यते। अथ **हास्यं** करोति। तदा [19]**हूँकारमिश्रं भयदमपि रिपोर्मा**रिसमूहस्येति। तथा पूर्वमज्ञोऽसौ यः शिष्यः स क्रोधाविष्टो मनुष्यादीनामगम्यध्वनिना [213a] **गीतं करोति**। [20]अनेकतन्त्रान्त[21]रेषु यदुक्तमिति। अतः क्रोधराजाविष्टो **निर्लज्जो निर्विशङ्को भवति गुणवशात्** क्रोधस्वभावात्। **देवतान्या च सौम्ये**ति अथ लोचनादिदेवता

---

१. क. ख. प्रणिधान। २. भो. हुं। ३. क. ख. उल्लानयित्वा। ४. ग. 'तत्' नास्ति। ५. ग. पूर्वोक्त। ६. भो. Śi Ba La Sogs Pas Las (शान्त्यादिकर्मंमष्ट)। ७. क. ख. छ. मण्डने। ८. क. ख. मारयित्वा। ९. ग. देशना। १०. क. ख. पूर्वं। ११. ग. ततः स्म०। १२. भो. 'तद्यथा' नास्ति। १३. क. ख. ग. च. छ. सप्ता०। १४. ग. च. इह। १५. ग. ०रजं। १६. ग. च. भो. छ. तं शत०। १७. क. ख. ग. छ. [illegible]। १८. [illegible]। १९. भो. हुँ। २०. ख. ग. अनेन। २१. च. ०न्तरे।

सौम्येति क्रोध[1]राजावेशनियमः। अत्रापि विस्तरेणापरदशक्रोधानां दशप्रकृतयो मुद्राबन्धेन वेदितव्याः। येन चिह्नेन यस्योत्पादः, सा च तस्य हस्तमुद्रा भवति। स तया ज्ञातव्य इति नियमः ॥ ८८ ॥

इदानीं क्रोधराजस्य बोधिसत्त्वस्य वा कायाद्यधिष्ठानमुच्यते—

कायावेशेन योगी प्रकृतिगुणवशात् कायकृत्यं करोति
वागावेशेन वादी भवति च विजयी देवनागासुराणाम् ।
चित्तावेशेन सर्वं परहृदयगतं ज्ञायते भूतभव्यं
ज्ञानावेशेन बुद्धो भवति गुरुगुरुश्चर्द्धिमानेकशास्ता ॥ ८९ ॥

कायेत्यादिना। इह **कायावेशेन योगी** देवताकाय[2]वज्रेणाधिष्ठितः सन् **प्रकृतिगुणवशाद्** रौद्रशान्तस्वभावात् **कायकृत्यं करोति** शिष्यः। यथा क्रोधा बोधिसत्त्वाः कुर्वन्त्याकाशगमनम्, तथा शिष्यः करोति पातालगमनम्, मण्डलादिकमदृष्टं वर्तयति, पर्वतमुत्पाद(ट)यतीत्यादिकायकृत्यं करोति दिव्यदेवताकायवज्रेणाधिष्ठितः सन्निति। तथा **वागावेशेन वादी** त्रिभुवन**विजयी देवनागासुराणां** भवति। यथा मञ्जुश्रीस्तथा मूर्खोऽपि शिष्यो देवतावाग्वज्रेणाधिष्ठितो भवतीति नियमः। तथा दिव्यदेवता**चित्तावेशेन** शिष्यः [3]**सर्वं परहृदयगतं ज्ञायते**ऽतीतानागतं वर्तमानमदृष्टं सर्वमिति चित्तावेशनियमः। अथ पूर्वजन्मवासनावशेन क्वचिज्**ज्ञानावेशो** भवति तदा मण्डले सिद्ध्यति। **बुद्धो भवति गुरोरपि गुरु**रिति पञ्चाभिज्ञालाभी दशभूमीश्वरो भवति। बुद्ध इत्युपचारवचनम्। **ऋद्धिमानेकशास्ता**प्येवम्। [4]कायवाक्चित्तज्ञानाधिष्ठानलक्षणनियमः ॥ ८९ ॥ [213b]

इदानीं लोचनाद्यधिष्ठानमुच्यते—

भूम्यावेशेन योगी भवति गिरिसमोऽम्बोश्च शीतं प्रयाति
वह्न्यावेशेन दाहं व्रजति च मरुता शोषमेवं प्रयाति ।
शून्यावेशैरदृश्यो भवति भुवितले खेचरत्वं प्रयाति
एवं रूपादिसर्वं प्रकृतिगुणवशाद् वेदितव्यं क्रमेण ॥९०॥

भूमीत्यादिना। इह [5]यदा शिष्यो **भूम्यावेशेन योगी** अधिष्ठितः [6]सन् **गिरिसमो भवति**, अनेकशतमनुष्यैश्चालयितुं न शक्यत इति। **अम्बोश्च शीतं प्रयाति**। इह मामकयाधिष्ठितो योगी [7]यं दाहज्वरेणापि ग्रस्तमालिङ्गयति, तं [8]ज्वरापगतं करोतीति।

---

१. ग. च. 'राजा' नास्ति। २. ग. वज्राधि०। ३. क. ग. छ. सर्वं। ४. ग. च. इति काय०। ५. ग. यः। ६. ग. च. 'सन्' नास्ति। ७. च. 'यं' नास्ति। ८. ग. च. ज्वरमप०।

वह्न्यावेशेन दाहं व्रजति। इह यदा पाण्डराधिष्ठितो भवति, तदा यं स्पृशति तं दहतीति। [1]**मारुतावेशेना**[2]धिष्ठितः **शोषमेवं प्रयाति**। यमालिङ्गयति तमुच्चाटयत्यनेकयोजनानीति। एवं **शून्यावेशैरदृश्यो भवति**। यं स्पृशति स एवादृश्यो भवति। **भुवितले खेचरत्वं प्रयाती**ति नियमः। **एवं सर्वं प्रकृतिगुणवशाद् वेदितम्**। इह यदा दिव्यचक्षुरावेशो भवति, तदा [3]दिव्यरूपं पश्यति, अदृष्टद्रव्यं च। यदा दिव्यश्रोतावेशो भवति, तदाऽश्रुतं शब्दं यत्सत्त्वानां तच्छृणोति। यदा दिव्यमनआवेशो भवति, तदा परचित्तज्ञानं जानाति। यदा दिव्यकायेन्द्रियावेशो भवति, तदा दिव्यं स्पर्शं गृह्णाति, पूर्वावासं जानाति। यदा दिव्यजिह्वावेशो भवति, तदा दिव्यरसास्वादं भवति। तेनाकाशऋद्धिर्भवति। यदा दिव्यघ्राणावेशो भवति, तदा [4]दिव्यगन्धं गृह्णाति। तेन सर्वबुद्धाधिष्ठानं भवतीति नियमः ॥९०॥

इदानीं दिव्यावेशानामुत्पादलक्षणमुच्यते—

आवेशो मन्त्रिणां वै भवति नरपते भावनाया बलेन
सेवाभेदैः कदाचिद् बहुविधसमयैर्मन्त्रजापादिभिश्च ।
बुद्धैरास्वाद्यमानैः क्वचिदमृतवशान्मण्डले भव्यसूनो-
र्न स्वाधिष्ठानहीना बहुविविधभवैर्मन्त्रिणां सिद्धिरस्ति ॥९१॥ [214a]

आवेश [5]इत्यादिना। इह **दिव्यावेशो** यः स **मन्त्रिणा**माचार्याणां **वै** एकान्तं **भवति भावनाया बलेन** पूर्व**सेवाभेदै**[7]रिति नानाविधिभिः, **बहुविधसमयै**[6] रक्षितैर्बोधिचित्तबिन्द्वादिभिः, तथा **मन्त्रजापादिभिश्चा**वेशो भवति। अन्यथा न भवतीति। **कदाचिद्** गुरुपर्वक्रमेण विशुद्धशिष्यस्य **बुद्धैरास्वाद्यमानैः क्वचिदमृतवशाद् मण्डले भव्यसूनोर्भवति**। **नरपते** इत्यामन्त्रणम्। **न स्वाधिष्ठानहीना बहुविविधभवैर्मन्त्रिणां सिद्धिरस्ति**। अकनिष्ठभुवनपर्यन्तं यावत् तथागतैरुक्ता लौकिकीति। इहावेशो दिव्यानाम्। अन्येऽनन्तावेशा भूतराक्षसचेटकादीनाम्। तेषां लक्षणं [8]पञ्चमपटले ज्ञानसिद्धौ वक्तव्यम्, गुर्वा[9]ज्ञालक्षणमपि। अत्र मण्डलप्रवेशे [10]तेन नोक्तं तदिति भगवतो नियमः ॥९१॥

इदानीमावेशोपशमनादिकमुच्यते—

त्यक्तावेशस्य पश्चाच्छिरसि च हृदये मूर्ध्नि नाभौ च कण्ठे
गुह्ये रक्षां जिनैश्च स्वकुलभुविगतैः कारयेत् स्वत्रिवज्रैः ।
दत्ताङ्गे पीतवस्त्रस्य पिहितनयनस्यात्र शिष्यस्य वेशः
संवृत्यर्थं व्रतानि प्रवरगतिगतान्येव देयानि तानि ॥९२॥

---

१. भो. CisTe (यदि) मारु०, च. अथ मा०। २. ग. नाविष्टः। ३. च. दिव्यं। ४. ग. च. दिव्यं। ५. छ. इत्यादि। ६. च. ०यैरक्षते०। ७. ग. ०रिति। ८. छ. 'पञ्चम' नास्ति। ९. ग. ज्ञानलक्षणामिति। १०. ग. तेनोक्तं।

[1]त्यक्तेत्यादिना। इह यदा शिष्यः क्रोधदेवतादिभिरधिष्ठितः, तदाचार्येण प्रष्टव्यो यत्किञ्चित् कार्यमभिमतम्[2]। ततः ॐ आः हूँ[3] त्र्यक्षरैः पुष्पमभिमन्त्र्य शिरसि दातव्यम्। तदा आवेशं त्यजति। स्वस्थानं गच्छति। एवं [4]त्यक्तावेशो भवति। [5]**ततस्त्यक्तावेशस्य पश्चात् शिरसि रक्षां जिनैश्चे**ति वचनाद् ॐकारेण शिरसि, **हृदये** [6]हूँकारेण, **मूर्ध्नि** उष्णीषे हंकारेण, इत्युपायस्य **स्वत्रिवज्रैः** कायवाक्चित्तैरिति। एवं प्रज्ञायाः स्वत्रिवज्रैः **नाभौ** होकारेण, **कण्ठे** आःकारेण, **गुह्ये** क्षःकारेण, इति प्रज्ञायाः स्वत्रिवज्रैः कायवाक्चित्तैरिति। अत्रोभयोः कायवाक्चित्तवज्रविषये दीर्घो हूँकारो वाग्वज्रम्, ह्रस्वचि(श्चि)त्तवज्रम्। अन्य[214b]त्र यत्रास्ति ततो रक्षां कृत्वा **दत्ताङ्गे पीतवस्त्रस्य पिहितनयनस्य अत्र** मण्डले **शिष्यस्य प्रवेशो**ऽभिधेयः। प्रथमं **संवृत्यर्थं** [7]**व्रतान्या**बोधिपर्यन्तम्। संवृतिः [8]पुण्यादिसंभारः, तस्यार्थं तदर्थं तानि **प्रवरगतिगतानी**ति। प्रवरा भद्रकल्पे सप्तविपश्यादयः शाक्यमुनिपर्यन्तास्तथागताः, तेषां गतिः पुण्यशील-ज्ञानसंभारात्मिका, तस्यां गतानि प्रवरगतिगतान्येव **देयानि तानि** शिष्यायाचार्येणेति तथागतनियमः ॥ ९२ ॥

तत्र व्रतान्याबोधिपर्यन्तमाह भगवान्—

हिंसासत्यं परस्त्रीं त्यज स्वपरधनं मद्यपानं तथैव
संसारे वज्रपाशः स्वकुशलनिधनं पापमेतानि पञ्च।
यो यत्काले बभूव त्रिदशनरगुरुस्तस्य नाम्ना प्रदेया
एषाज्ञा विश्वभर्तुर्भवभयमथनी पालनीया त्वयापि ॥९३॥

हिंसाऽसत्यं परस्त्रीं [9]**त्यज स्वपरधनं मद्यपानं तथैवे**ति पञ्चव्रतानि नियम इत्यर्थः। कस्मात्? [10]**यतः संसारे वज्र**[11]**पाशः** [12]**स्वकुशलनिधनमिमानि पापकर्माणी**ति **पञ्च,** अतो न कर्तव्यानीति नियमः। कस्य **विश्वभर्तु**रिति? **यो यत्काले बभूव** तथा-गत**स्त्रिदशनरगुरुस्तस्य नाम्ना प्रदेया, एषाऽऽज्ञा विश्वभर्तुर्भवभयमथनी पालनीया त्वयाऽपि,** यथा कुलपुत्रैः कुलदुहितृभिः पालिता पुण्यसंभारायेति तथागतनियमात्। पञ्चशिक्षापदी ॥ ९३ ॥

द्यूतं सावद्यभोज्यं कुवचनपठनं भूतदैत्येन्द्रधर्मं
गोबालस्त्रीनराणां त्रिदशनरगुरोः पञ्चहत्यां न कुर्यात्।
द्रोहं मित्रप्रभूणां त्रिदशनरगुरोः संघविश्वासिनां च
आसक्तिस्त्विन्द्रियाणामिति भुवनपतेः पञ्चविंशद्व्रतानि ॥ ९४ ॥

---

१. ख. ग. च. त्यक्त्वे। २. क. ख. गतम्। ३. भो. हुँ। ४. ख. ग. त्यक्त्वा। ५. ग. तस्य। ६. भो हुँ। ७. क. ख. छ. व्रतान्यो। ८. ग. पुण्याभि०। ९. भो. sPan Bya gSan Gyi Nor (त्यज्य परधनं)। १०. ग. यत्। ११. ग. पाशं। १२. क. ग. स्वकुल।

[215a] ततो यदीच्छति तदाऽपराणि देयानि। तत्र **द्यूतं सावद्यभोज्यं** पूर्वोक्तं **कुवचनपठनं भूतधर्मं** पितृकार्यं यागकार्यं वेदोक्तम्। **दैत्यधर्मं** [1]म्लेच्छधर्मं न **कुर्या**दि-त्युपपापकानि पञ्च। तथा पूर्वापराणां दशानामादिमां[2] **पञ्चहत्यां न कुर्यात्** सर्वदा, **गो**हत्या **बाल**हत्या [3]**स्त्री**हत्या **पुरुष**हत्या। **त्रिदशनरगुरो**रिति प्रतिमास्तूपादे[4]र्वि-संवादोऽपरा हत्येति। तथा **मित्रद्रोहम्, प्रभु**द्रोहम्, बुद्धद्रोहम्, **संघ**द्रोहम्, **विश्वस्तद्रोहमि**ति पञ्च न कुर्यादिति। तथा **आसक्तिस्त्विन्द्रियाणामिति** रूपा-सक्तिः, शब्दासक्तिः, गन्धासक्तिः, रसासक्तिः, स्पर्शासक्तिरिति। **भुवनपते**र्वज्रसत्त्वस्य नियमेन **पञ्चविंशद् व्रतानि** पालनीयानि शिष्यैरिति वज्राचार्येण देयानि सेककाले शिष्यायेति व्रतदाननियमः ॥ ९४ ॥

इदानीं मण्डलप्रवेश उच्यते—

श्रीमन्त्रेणाभिमन्त्र्य करकमलपुटे पुष्पमेकं प्रदेयं
आदौ भ्राम्य त्रिवारान् करकमलपुटान्मण्डले पुष्पमोक्षः।
यस्मिन् स्थाने सुपुष्पं पतति नरपते तत्कुलं तस्य नूनं
पश्चात् सप्ताभिषेकस्त्रिविध इह यथानुत्तरः संप्रदेयः ॥९५॥

श्रीमन्त्रेणेत्यादिना। इह प्रथमं व्रतदानानन्तरम्। पीतवस्त्रेण रक्तवस्त्रेण वा सर्वकर्मणि मुखं बन्धयेत्, शान्त्यादिषु [5]वर्णेन देवतावर्णवर्णेन, सूक्ष्मवस्त्रेणानेन मन्त्रेण—ॐ द्वादशाङ्गनिरोधकारिणे [6]हूँ फट्। ततः चक्षुरादीनि निरोधयित्वा कल्याण-मित्र **आदौ भ्राम्य त्रिवारान् मण्डले**[7]। ततः पूर्वद्वारे आचार्यो नायकमूर्त्या स्थितः। यदि देवता मण्डले उत्थिता प्रत्यालीढादिपादेन, तदा आचार्य उत्थितः शिष्याय सेकं ददाति। अथ निषण्णा, तदा निषण्णो ददाति। ततः कल्याणमित्रेण समर्पितस्य शिष्यस्य शिरसि शङ्खोदकेन प्रोक्षणं कृत्वा ॐ आः [8]हूमिति त्र्यक्षरैः **पुष्पमेकं** सप्ताभि-मन्त्रि[215b]तम्, तस्य [9]**करकमलपुटे** आसमन्ताद् **देयं** पुष्पाञ्जलिविशुद्धया। ततः **करकमलपुटाद्** [10]बाह्ये मण्डलस्य जयकलशोपरि **पुष्पमोक्षः** पूर्वोक्तनियमेन नेत्रपुटं[11] यौगपद्येन छोटयेत्। अथ प्राक् पुष्प[12]मोक्षं कृत्वा पश्चात् छोटयेद् अनेन मन्त्रेण—ॐ दिव्येन्द्रियाण्युद्घाटय स्वाहा इति। नेत्रोद्घाटनं कृत्वा **यस्मिन् स्थाने सुपुष्पं** त्र्यक्षराभिमन्त्रितं **पतति,** तत्रस्था देवता **तस्य** कुलदेवता भवति। [13]तया कर्ममुद्रासिद्धि-रिति नियमः। ततस्तस्य कुलदेवतां दर्शयित्वा **पश्चात् सप्ताभिषेक** उदकादिकः, **त्रिविध इह यथा** कलशादिकः। [14]तथा कर्ममुद्रां पूजयित्वा **अनुत्तरो** वक्ष्यमाणः **संप्रदेय** इत्याचार्यस्य तथागतनियमः ॥ ९५ ॥

---

१. ग. 'म्लेच्छधर्मं' नास्ति। २. क. ०दिमा। ३. ग. 'स्त्रीहत्या' नास्ति। ४. क. देवीं। ५. ग. च. भो. 'वर्णेन' नास्ति। ६. भो. हुँ। ७. ग. 'मण्डले' नास्ति। ८. भो. हुँ। ९. क. ख. 'कर' नास्ति। १०. ग. बाह्य। ११. च. भो. पटं। १२. ग. च. भो. क्षेपं। १३. क. ख. मया। १४. च. भो. तत्र।

इदानीं सप्ताभिषेकस्य विधिरुच्यते—

नागै राजंश्चतुर्भिर्मृणिकनकघटैर्मृण्मयैर्वा सरत्नै-
रोषध्या गन्धयुक्तैर्जयविजयघटैः स्नापयेद् देवतीनाम् ।
मौलिं बुद्धप्रभेदैर्ददति वरगुरुः शक्तिभिः पट्टमेव
वज्रं घण्टार्कचन्द्राद् व्रतमपि विषयैः सेन्द्रियैर्योजनीयम् ॥९६॥

नागैरित्यादिना । इह **नागैरि**त्यष्टाभिश्**चतुर्भिर्वा** । **जयविजयघटैः**, [1]पञ्चभिर्जयघटैः, पञ्चभिर्विजयघटैरष्टघटपक्षे; त्रिभिर्जयघटैः, त्रिभिर्विजय[2]घटैश्**चतुर्घटपक्षे**, **मणिकनकघटैः**[3], तदभावे **मृण्मयैर्वा सरत्नैः** । **ओषध्या**[4] **गन्धयुक्तै**रिति । तत्रौषध्यः पूर्वोक्तगन्धकक्षपुटे नेत्रादिभागैः संग्राह्या । पञ्चविंशतीनां मध्ये यथालाभतः पञ्च ग्राह्या आचार्येण **मूलतन्त्रोक्त**विधानेन । तत्र भगवानाह—

गन्धकक्षपुटे राजन्नोषधीः पातयेत् क्रमात् ।
नेत्रेन्द्वग्न्या[5]दिभिर्भागैर्ब्राह्म्याद्याः पञ्चपञ्चकैः ॥

ब्राह्मी नारायणी रौद्री ईश्व[216a]री परमेश्वरी ।
ऐन्द्री लक्ष्मी च वाराही कौमारी चर्चिका तथा ॥

[6]पृथिवी वारुणी ज्योतिर्वायवी खेचरी तथा ।
माता च भगिनी पुत्री भागिनेया स्वजा तथा ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैश्या शूद्री डोम्बी तथा स्मृता ।
इत्यौषध्यो महासिद्धिभुक्ति-ऋद्धिप्रदा सदा ॥ इति ।

इदानीमासां प्रकटनामान्युच्यन्ते—इह ब्राह्मीति ब्रह्मदण्डी भाग २, नारायणी विष्णुक्रान्ता भाग १, रौद्रीति रुद्रजटा भाग ३, ईश्वरी प्रसिद्धा भाग ४, परमेश्वरो देवदाली भाग ५, इति प्रथमपातः ।

ततो द्वितीय[7]उच्यते—ऐन्द्रीति इन्द्रवारुणी[8]भाग ३, लक्ष्मीति[9]लक्ष्मणा भाग ४, वाराहीति वराहकर्णा भाग ५, कौमारीति[10]कर्णिका भाग २, चर्चिकेति अधोपुष्पिका भाग १, इति द्वितीयपञ्च[11]कन्यासः ।

ततस्तृतीय उच्यते—पार्थिवीति[12]मुषली भाग ५, वारुणीति[13]रुदन्ती भाग २, ज्योतिरिति ज्योतिष्मती भाग १, वायवी लज्जालु[14] भाग ३, खेचरी अर्का भाग ४, इति तृतीयपञ्चकम् ।

---

१. च. क. ख. ग. छ नास्ति । २. ग. त्रुटितः पाठः । ३. ग. च. भो. मयैः । ४. च. ०ध्यादि, ग. ध्या युक्तै । ५ क. ख. छ. भो. दिभागै । ६. ग. च. भो. पार्थिवी । ७. क. ख. ग. छ. योच्यते । ८. ख. भाग १ । ९. क. ख. ग. छ. लक्षणा । १०. भो. कर्णा । ११. क. ख. छ. पञ्चन्या० । १२. क. मुसली । १३. छ. 'रुदन्ती' नास्ति । १४. च. ०लका ।

ततश्चतुर्थन्यास उच्यते—मातेति[1]पुटंजारी भाग १, भगिनी सहदेवा भाग ३, पुत्रीति कृताञ्जलिः भाग ४, भागिनेया अजकर्णा भाग ५, स्वजा मोहनी वटपत्रिका भाग २, इति चतुर्थपञ्चकम् ।

ततः पञ्चमो न्यास उच्यते—ब्राह्मणीति बृहती भाग ४, क्षत्रिणी भृङ्गराजः भाग ५, वैश्या[2]यष्टिमधु भाग २, शूद्री[3]कण्टकारी भाग १, डोम्बी मयूरशिखा भाग ३ । इति पञ्चमन्यासः ।

एवं यथासंख्यं धान्यादिशस्यसमूहम् । धान्यं, महाधान्यं, माषाः, श्वेतचणकाः, कृष्णतिला इति प्रथमपञ्चकम् । द्वितीयम्—कोद्रवाः, मुद्गाः, कलाः, शुक्लतिलाः, गोधूमाः । तृतीयम्—[4]मौठम्, त्रिपुटः,[5] कृष्णसर्षपाः, यवाः, माषाः । चतुर्थम्—मसूरिकाः, शुक्लसर्षपाः, कङ्गुः, तुवरिका, [6]वर्वटिका । पञ्चमम्—अतसी, वरटी, वर्णा, कुलत्थाः, कृष्णचणकाः । इति पञ्चशस्यानि यथा[216b] लब्धानि ग्राह्याणि कक्षपुटभागेनेति । अत्र भागाङ्गुलिसंख्याः । ततो रत्नानि ब्रह्मक्षत्रियविट्[7]शूद्रजातोनि वज्राणि । तथा इन्द्रनील-पद्मराग-चन्द्रकान्त-कर्कोटक[8]-मरकतानीति प्रधानानि । तथा लोहानि सुवर्ण-रूप्य-ताम्र-[9]तीक्ष्णायः-अयस्कान्तानि । तथा मध्यमरत्नानि मुक्ताप्रवालराजपट्ट-शूलमणिषड्बिन्दुकाश्चेति । तथा अधमानि—स्फटिक-जीवजाति-[10]डोहरी-काच-हरित-मणय इति । एतानि यथाविभवतो ग्राह्याणि । अथ देवनागानां मणय आज्ञाचक्रवर्तिनो महारत्नाभिषेके पञ्चवर्णा भवन्ति । तदभावे पञ्चवर्णानि सौरभ्यपुष्पाणीति नियमो दरिद्राणाम् । एवं **मृण्मयैर्वा सरत्नैः** । अत्र हरितरत्नं विजयशङ्खे, नीलरत्नं पूर्वापरजय-विजयघटे, कृष्णं पूर्वाग्नेयघटे, रक्तं दक्षिणनैर्ऋत्यघटे, श्वेतमुत्तरेशानघटे, पीतं पश्चिमवायव्यघटे, एव[11]मयःकान्तं तीक्ष्णं ताम्रं रूप्यं[12]सुवर्णम् । तथा[13]**ओषध्यः** । इति एकभागिका जयविजयघटे । द्विभागिका पूर्वाग्नौ । त्रिभागिका यमदैत्ये । चतुर्भागिका उत्तरे[14]हरे । पञ्च[15]भागिका पश्चिमे वायव्य इति । तथा गुडिकाभेदेन शस्यानि । तथा पूर्वोक्तकक्षपुटौषध्यः पञ्चेति । एवं लोहानि रत्नानि वनौषध्यः शस्यानि गन्ध-द्रव्याणि घटेषु क्षिप्त्वा तैः पञ्चविंशतिभिः पुनः पोटलिकां बद्ध्वा विजयशङ्खे[16]क्षिपेत् तोयपूर्णे । तेन[17] पञ्चसु जन्मस्थानेषु सिञ्चयेत्—उष्णीषे, स्कन्धबाहुसन्धौ सव्ये वामे, एवं हि फिच्चककटिसन्धौ । ततः कुलदेवताविशोधनाय पुष्पक्षेपमन्त्रः—ॐ [18]सर्व-तथागतकुलविशोधनि स्वाहा । अनेन मन्त्रेण आचार्यः पुष्पमोक्षं शिष्यं कारयति ।

---

१. ख. छ. पुतं, ग. च. भो. पुत्रं । २. क. ख. छ. षष्ठी । ३. भो. कण्डकारी, क. ख. ग. छ. कण्ठकारी । ४. ग. भो. मोष्ठं । ५. ग. त्रिपुटाः । ६. क. ख. ग. च. वर्धटिका । ७. भो. mThar sKyes Kyi Rigs Las sKyes Paḥi (अन्त्यजजातानि) । ८. छ. ०तक । ९. क. ख. ग. च. छ. तीक्ष्णाय कान्तानि । १०. ग. तोहरी, च दोहरी । ११. भो. lCags rNon Po (तीक्ष्णायः) । १२. च. स्वर्णम् । १३. ग. औषध्यः । १४. च. ०शाने । १५. क. ख. छ. पञ्चम । १६. ग. च. प्रक्षिपेत् । १७. ग. तेषु । १८. च. 'सर्व' नास्ति ।

अनेन मन्त्रेण[1] उद्घाटनम्। ॐ दिव्यनयनमुद्घाटयामि स्वाहा इति। ततः कुलदेवतामण्डले नायकमादिं कृत्वा दर्शयेन्मण्डलं समस्तम्। ततः पूर्वद्वारे कुलशुद्धिं कृत्वा आचार्यः शिष्यं वामहस्तेन चाल्य कर्मवज्रिणा सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वा उत्तरद्वारे नीत्वा [2]ततः कायविशुद्ध्यर्थं तारादिदेवीमन्त्रैः सर्वकलशेषु तोयं गृहीत्वा [3]विजयशङ्खे प्रक्षिप्य उ[217a]दकाभिषेकं पुनः पञ्चजन्मस्थानेष्वभिषेचयेद् अनेन मन्त्रेण—ॐ आ ई ॠ ऊ ॡ पञ्चधातुविशोधनि स्वाहा। ततो मुकुटाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेद् अनेन मन्त्रेण—ॐ अ इ ऋ उ ऌ पञ्चतथागतपरिशुद्ध[4] स्वाहा। ततो रत्नहेममुकुटं वस्त्रमुकुटं [5]चाबन्धयेत्। एवमभिषेकद्वयेन धातुस्कन्धपरिशुद्धौ कायविशुद्धिर्भवति। काय[6]वक्त्रभूम्यां काय[7]शुद्धिं कृत्वा ततो दक्षिणावर्तेन पुनर्दक्षिणद्वारे वाग्विशुद्ध्यर्थं नीत्वा शिष्यं पञ्चसु जन्मस्थानेषु अभिषिञ्च्य[8] पट्टाभिषेकेऽनेन मन्त्रेण—ॐ अ आ अं अः ह हा हं हः होः फ्रें दशपारमितापरिपूरणि स्वाहा इति। ततो रत्नपट्टं स्वर्णपट्टं वा, अलाभे पुष्पमालां ललाटे बन्धयेदिति। ततो [9]**वज्रवज्र**घण्टाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषिञ्च्य अनेन मन्त्रेण—ॐ [10]हूँ होः **सूर्य**चन्द्रविशोधक स्वाहेति। ततो वज्रवज्रघण्टां शिरसि दत्त्वा शङ्खोदकेनाभिषेचयेदिति। ततोऽभिषेकद्वयेन वाग्वज्रं [11]विशोधयित्वा वज्राङ्गुष्ठं दत्त्वा दक्षिणावर्तेन पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा पूर्ववक्त्रे चित्तवज्र[12]शोधनार्थं पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेद्[13] वज्रव्रताभिषेकेऽनेन मन्त्रेण—ॐ अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् [14]विषयेन्द्रियविशोधनि स्वाहा इति ॥ ९६ ॥

क्रोधैर्मैत्र्यादिनामस्फुटजिनपतिनाज्ञा प्रदेया समात्रा
वज्रं घण्टां प्रदाय प्रवरकरुणया देशयेत् शुद्धधर्मम्।
कुर्यात् प्राणातिपातं खलु कुलिशकुलेऽसत्यवाक्यं च खड्गे
रत्ने हार्यं परस्वं वरकमलकुलेऽप्येव हार्या परस्त्री ॥९७॥

ततः श्रोत्रादिषु पुष्पं दत्त्वा पुनर्नामाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थानेषु [15]अभिषिञ्च्य अनेन मन्त्रेण—ॐ ह हा य या र रा व वा ल ला चतुर्ब्रह्मविहारविशुद्ध [217b] स्वाहा इति। ततो हस्तपादेषु पुष्पमालां बध्वा [16]कटकनूपुरादीनामभावे ततोऽभिषेकेन व्याकुर्याद् अमुकवज्र[17] स्त्वमिति कृत्वा। ततो ज्ञानविशुद्धिनिमित्तं चित्तवज्रं [18]विशोध-

१. भो Mig (नयनो)द्घा०। २. ग. च. तत्र। ३. ग. कलशे। ४. ग. शुद्धि। ५. ग. च. वा बन्धयेत्। ६. ग. छ. वस्त्र, च. वज्र। ७. ग. विशुद्धि। ८. ग. च. षिच्य। ९. भो. 'वज्र'नास्ति, ग. वक्त्र। १०. छ. हुँ। ११. भो. 'वि' नास्ति। १२. ग. विशोध०। १३. ग. अनुज्ञाभिषेकेऽभिषिञ्चयेत्। १४. भो. 'अं अः' इत्यधिकम्। १५. ग. च. अभिषिच्य। १६. ग. हाटक। १७. क. ख. ग. च. छ. वज्रसत्त्वमिति। १८. ग. च. 'वि' नास्ति।

यित्वा अभिषेकद्वयेन पुनर्दक्षिणावर्तेन शिष्यमानयित्वा पश्चिमवक्त्रे पञ्चसु जन्मस्थानेष्वनुज्ञाभिषेकेऽभिषिच्य अनेन मन्त्रेण—ॐ हं क्षः धर्मचक्रप्रवर्तक स्वाहेति। अभिषेकं दत्त्वा कायवाक्चित्तज्ञानव[1]ज्राणि सप्ताभिषेकैर्विशोध्य ततः शिष्याय वज्रवज्रघण्टां करे दत्त्वा अमुकवज्र(ज्रेति ?) ताभ्यामाचार्यो [2]**वज्रं** वज्र**घण्टां प्रदाय प्रवरकरुणया देशयेच्छुद्धधर्मम्**। अनेन सार्द्धवृत्तद्वयेन। तद्यथा—"**कुर्यात् प्राणातिपातं खलु कुलिशकुले**" (३।९७) इत्यादिना "**मण्डले संप्रदेयाः**" (३।९९) इति पर्यन्तेन। इति सप्ताभिषेकविधिं मण्डले कृत्वा ततः शिष्याय बुद्धाधिष्ठानं चिन्तयेत्। वज्राचार्यो ज्येष्ठकनिष्ठार्थं संवत्सरादिकमुद्घोषयति[3]। इह अमुकसंवत्सरेऽमुककल्किराजधर्मदेशनायाममुकमासेऽमुकपूर्णिमायाममुकवारेऽमुकतिथावमुकनक्षत्रेऽमुकयोगेऽमुककरणे मया अमुक[4]वज्राचार्येणामुकशिष्योऽभिषिक्तः। परमादिबुद्धे अन्ये वा[5] मण्डले सप्ताभि[6]षेकैर्व्याकृतो अनुज्ञातो मया लौकिकसिद्धिसाधनायाकनिष्ठभुवनपर्यन्तं नायकत्वेन सर्वसत्त्वानां पुण्यज्ञानफलाप्तये। इति सप्ताभिषेकनियमः।

इहान्य**तन्त्रान्तरे** यदुक्तं पञ्चतथागत[7]विशुद्ध्या पञ्चाभिषेका[8] बालजनावतारणे। वैरोचनेन उदकाभिषेको रत्नसम्भवेन [9]मुकुट इति। तत्र पूर्वापरविरोधः। सर्व[10]**तन्त्रेषु** मण्डले पुष्पमोक्षेण शिष्यस्य कुलदेवता। तया [11]मुकुटिन्या तद् कुलमुद्रया तस्य सिद्धिरिति भगवतो नियमः। तेन **नामसंगीत्याम्** "पञ्चबुद्धात्ममुकुटः" (श्लो. ५९) इति वचनाद् यत्र पुष्पं पतति स तथागतो मध्ये मौलौ भवति। न सर्वत्र रत्नसम्भवः। एवं **लघुतन्त्रे** तोयादिशुद्धिर्नास्ति, अपरविधेर्बलवत्त्वादिति।

इदानीं विशुद्धधर्मदेशनामाह—**कुर्यात् प्राणातिपातमि**त्यादिना। इह प्राणातिपातादयः समया द्विधा नेयार्थेन नीतार्थेन बाह्या आध्यात्मि[218a]काश्चेति। तत्र बाह्ये प्राणातिपातं भगवान् यत् कुर्यात्, [12]तत्पञ्चानन्तर्यकारिणां बुद्धशासनापकारिणां समयभेदिनामिति नियमः। तदेव पञ्चानन्तर्यं पूर्वापरं ज्ञात्वा, इह कश्चित्पूर्वं पञ्चानन्तर्यकारी पश्चात् पुण्यकर्ता भवति, चण्डाशोको धर्माशोकवत्। तस्मात्तस्यापकारतो नरकं भवति मन्त्रिणः, शुभाशुभकर्मापरिज्ञानात्। तेन यावत् पञ्चाभिज्ञा न भवन्ति, तावन्मन्त्रिणा क्रूरकर्म न कर्तव्यम्, शान्तिपुष्टिवश्याकृष्टिभिर्विना। एवं मृषावादः, परो(रा)पकारः[13], अदत्तादानमपि, परस्त्रीग्रहणमपि, समयसेवावर्णावर्णाभिगमनं स्वशरीरपर्यन्तं दानमपि न[14] स्वार्थत इति[15]।

१. क. ख. ग. च. छ. ज्ञानवक्त्राणि। २. ग. च. भो. 'वज्र' नास्ति। ३. ग. च. घोषयेत्। ४. क. ख. छ. अमुकाचार्येण, ग. च. अमुकाचार्यवज्रेणा०। ५. सार्व. पाठः वाम। ६. ग. च. षेके व्या०। ७. ग. च. भो. 'वि' नास्ति। ८. क. ०भिषेक, ख. ०भिषेको। ९. क. ख. छ. मुकुटा। १०. क. सर्वतन्त्रे। ११. छ. मुक्तिन्या। १२. छ. ततः। १३. क. ख. ग. च. परोपकारतः। १४. ग. 'न' नास्ति। १५. भो. Ŝes Ṅes Paḥo (इति नियमः)।

इदानीं यदा आमरणान्तं पञ्चानन्तर्यं करोति, तदा पूर्वसाधितं मन्त्रं क्रोधकुलेऽक्षोभ्यसमाधिनाऽनेन मारणं कुर्याद् भगवानिति नेयार्थः। एवममार्गे[1] पतितानामभ्युद्धरणाय मृषावाक्यं वक्तव्यं न स्वार्थतः। एवमदत्तादानं प्रेतगतिगमननिवारणाय न स्वार्थतः। तथा परस्त्रीग्रहणं तिर्य[2]ग्गतिगमन[3]निवारणाय न स्वार्थतः। समयान् पञ्चामृताद्यान् सेवयेत्। कुलग्रहविनाशाय। एवं कर्ममुद्राप्रसिद्ध्यर्थं डोम्ब्याद्याः स्त्रियो नावमन्येत। पुण्यसम्भाराय महादानं ददाति। एवं खड्गकुले रत्नकुले पद्मकुले [4]चक्रकुले कर्तिकाकुले मन्त्रान् साधयित्वा सामर्थ्ययुक्तः सन् योगी सर्वं कुर्यात्। यथा लोके हास्यं न भवतीति नेयार्थः।

इदानीं नीतार्थ उच्यते—इह स्वशरीरे प्राणस्याति[5]पातात् प्राणातिपातः **कुलिशकुले** उष्णीषे निरोधं कुर्यात्। तेन प्राणातिपातेन योगी ऊर्ध्वरेता भवतीति नियमः। **असत्यवाक्यं च खड्गे** इहासत्यं नामाप्रतिष्ठितवचनं नेयार्थेन। नीतार्थेन सर्वसत्त्वरुतं वाक्यं यौगपद्येन सत्त्वानां धर्मदेशकं तदेव हृदयेऽनाहतध्वनिरिति नियमः। **रत्ने हार्यं परस्वम्**। परस्वमिति इह परो वज्रसत्त्वः, तस्य स्वं रत्नं चिन्तामणिः, तस्यापहरणं रत्नकुले कण्ठेऽष्टमभूमिस्थाने इति नियमः। **वरकमलकुलेऽप्येव हार्या परस्त्री**[218b]ति। परस्त्री महामुद्रा तस्यापहरणं परस्त्रीग्रहणम्। सा हार्या [6]कमलकुले ललाटे दशमभूमिस्थाने ऊर्ध्वरेतसेति नियमः ॥ ९७ ॥

मद्यं दीपाश्च बुद्धाः सुसकलविषयाः सेवनीयाश्च चक्रे
डोम्ब्याद्याः कर्तिकायां सुसकलवनिता नावमन्याः खपद्मे ।
देयाः सत्त्वार्थहेतोः सघनतनुरियं न त्वया रक्षणीया
बुद्धत्वं नान्यथा वै भवति कुलसुताऽनन्तकल्पैर्जिनोक्तम् ॥९८॥

मद्यं दीपाश्च बुद्धाः सुसकलविषयाः सेवनीयाश्च चक्र इति। इह मद्यं सहजानन्दम्[7]। दीपो गोक्वादिकानि पञ्चेन्द्रियाणि। अध्यात्मनि बुद्धाः पञ्चामृताश्चक्रे नाभिकमले सेवनीया भक्षणीयाः। बाह्ये विण्मूत्रशुक्राश्रा(स्रा)वः कर्तव्य इति नीतार्थः। **डोम्ब्याद्याः** स्त्रियः **कर्तिकायां** गुह्यकमले **नावमन्याः खपद्मे** योनौ मन्थाने ब्रह्मचर्येणेति बाह्ये शुक्राच्यवनेनेति[8] नियमः। **देयाः सत्त्वार्थहेतोः सह धनेन** पुत्रकलत्रादिभिः सार्धं स्वतनुः प्रदेया पुण्यसंभारार्थम्। एवं शीलसंभारार्थं स्त्रियो नावमन्याः खपद्मे। अतः

१. ग. मार्ग०। २. ग. च. भो. छ. ग्जाति। ३. च. 'गमन' नास्ति। ४. ग. 'चक्रकुले' नास्ति। ५. ग. च. भो. पातः। ६. भो. mChog (वरकमल)। ७. च. सहजानन्दः। ८. ग. च. भो. 'इति' नास्ति।

पुण्यशीलसंभाराभ्यां ज्ञानसंभारः। एवं संभारत्रयेण सम्यक्संबुद्धत्वं ते[1] **भवति** हे कुलपुत्र **नान्यथा**। **अनन्तकल्पैर्जिनै**रुक्तमिति विशुद्धधर्मदेशना नियमः। इह[2] सर्वतन्त्रेषु ॥ ९८ ॥

इदानीं सेकविशुद्धिरुच्यते—

तोयं तारादिदेव्यो मुकुट इह जिनाः शक्तयो वीरपट्टो
वज्रं घण्टार्कचन्द्रौ व्रतमपि विषया नाम मैत्र्यादियोगः ।
आज्ञा संबोधिलक्ष्मीर्भवभयमथनी कालचक्रानुविद्धा
एते सप्ताभिषेकाः कलुषमलहरा मण्डले संप्रदेयाः ॥९९॥[219a]

तोयं तारादिदेव्य इत्यादिना। इह **तोया**भिषेको यः स वाय्वादिपञ्चधातुविशुद्धिर्निरावरणतेति। एवं **मुकुटा**भिषेको विज्ञानादिपञ्चस्कन्धविशुद्धिः। **वीरपट्टा**भिषेको दानादयो दश **शक्तयः** पारमितापरिपूरणायेति। **वज्रं** वज्र**घण्टा**भिषेको ललनारसनाविशुद्धिः, **चन्द्रादित्य**निरावरणतेति[3]। **व्रता**भिषेको रूपादि**विषय**चक्षुरादीन्द्रियविशुद्धिः, दिव्यचक्षुरादिप्रवृत्तिरिति। **नामा**भिषेको **मैत्र्यादियोग**श्चतुर्ब्रह्म[4]विहारेण सर्वकालं रागद्वेषादिविशुद्धिः, निरावरणतेति। **आज्ञा**भिषेकः **सम्बोधिलक्ष्मी**-र्धर्मचक्रप्रवर्तने धर्मदेशना। सा च **भवभयमथनी** परोपकारतः। **कालचक्रानुविद्धा** अच्युतसुखानुविद्धा शून्यतादेशनेति नियमः। एवं च[5] **एते सप्ताभिषेकाः कलुषमलहरा मण्डले सम्प्रदेया** आचार्येण शिष्येभ्य इति तथागतनियमः सप्ताभिषेकदाने वज्राचार्याणामिति ॥९९॥

[6]इदानीमभिषेकफलमुच्यते—

सिक्तः सप्ताभिषेकैर्व्रजति शुभवशात् सप्तभूमीश्वरत्वं
भूयोऽवैवर्तिकाद्यां प्रविशति नियतं कुम्भगुह्याभिषिक्तः ।
प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तो भवभयमथनं मञ्जुघोषत्वमेति
मूलापत्तिं कदाचिद् व्रजति शठवशान्नारकं दुःखमेतत् ॥१००॥

सिक्त इत्यादिना। इह **सप्ताभिषेकैरभिषिक्तः** सन् महामण्डले **व्रजति शुभवशात् सप्तभूमीश्वरत्वम्**। यदि मण्डलचक्रं साक्षात्करोति, तदा[7] तेनैव कायेन सप्त-

१. च. 'ते' नास्ति। २. च. 'इह' नास्ति, ग. 'इह सर्वतन्त्रेषु' नास्ति। ३. ग. ०तयेति। ४. च. विहारविहरणे। ५. क. ख. छ. वैते। ६. क. इदानीं सप्ताभिषे०। ७. च. छ. तदाऽनेनैव।

भूमीश्वरत्वं व्रजति। अथ दशाकुशलरहितो म्रियते, तदा तस्मात् शुभवशात् **भूयोऽवैवर्तिकाद्यां प्रविशति** सप्तभूमीश्वरत्वं व्रजतीति नियमः। पुण्यसंभारेण **नियतं कुम्भगुह्याभिषिक्त** इति। इह कुम्भ[1]गुह्याभ्याम[219b]भिषिक्तः सन् शीलवशाद् अवैवर्तिकामचलां व्रजति। आदिशब्देन साधुमतीं **व्रजति**। अचला बोधिचित्तस्याच्यवनम्। योनिमन्थाने साधुमती [2]महासुखचित्तम्। इह **प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तः** शीलसंभारबलेन **भवभयमथनं मञ्जुघोषत्वमेति।** धर्ममेघां व्रजति। धर्ममेघा महासुखवृष्टिः स्वार्थपरार्थकारिणीति नियमः। एवं पुण्यशीलसंभारपूर्वंगमो ज्ञानसंभारः। ततो द्वादशभूम्यां बुद्धत्वं योगिनामिति तथागतनियमः। अथ **मूलापत्ति** वक्ष्यमाणां **शठवशाद्** दशाकुशलप्रवृत्तिवशात्, तदा **नारकं दुःखमेतत्** समस्तं सेकादिकं भवति, विपर्यासवशादिति नियमः ॥ १०० ॥

इदानीं मूला[3]पत्तिविशुद्धिरुच्यते—

मूलापत्तेर्विशुद्धिर्भवति हि गुणिनः सप्तसेके स्थितस्य
कुम्भे गुह्ये कदाचिद् व्रतनियमवशादुत्तरे नास्ति शुद्धिः।
मूलापत्तिं गतो यो विशति पुनरिदं मण्डलं शुद्धिहेतो-
राज्ञां लब्ध्वा हि भूयो व्रजति गणकुले ज्येष्ठनामा लघुत्वम् ॥१०१॥

मूलापत्तेरित्यादिना। इह [4]यदा वक्ष्यमाणा **मूलापत्तिर्भवति**, तदा **सप्ताभिषेके स्थितस्य** मन्त्रजापैः षट्त्रिंशद्भिः सहस्रैः [5]**शुद्धिर्भवति। गुणिनः** पश्चादकरणसम्वरे स्थितस्येति। **कुम्भे गुह्ये** स्थितस्याभिषिक्तस्य यदा मूलापत्तिर्भवति, तदा **कदाचिद् व्रतनियमवशात्** पुण्यशीलसंभारवशात् [6]शुद्धिर्भवति। तत्रैवाचार्येण दण्डो देयो व्रतनियमेनेति। **उत्तरे नास्ति शुद्धिरिति।** प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तस्य यदा मूलापत्तिर्भवति, तदा शुद्धिर्नास्तीति। कोऽर्थः? [7]अत्राचार्येणास्य दण्डो न देयः, पुण्यशीलबलेन स्वत आत्मनः पापदेशनादिकं कृत्वा बुद्धबोधिसत्त्वानां साधिष्ठानं[8] गत्वा आत्मनाऽशुद्धिं[9] यततीति मतं बुद्धानामिति। **मूलापत्तिं गतो यो विशति पुनरिदं मण्डलं शुद्धिहेतोरिति।** इह सप्ताभिषेके स्थितः कुम्भे गुह्ये वा स्थि[220a]तो मूलापत्तिं व्रजति यदा, तदा तस्य शुद्धिहेतोरिदं मण्डलं वर्तयित्वा पुनर्मण्डलप्रवेशादिकं करोति। पुनरकरणायेति। [10]**तत्राज्ञां लब्ध्वा हि भूयो व्रजति गणकुले** गोत्रमध्ये यः प्राग् **ज्येष्ठनामा स लघुत्वं** व्रजति कनिष्ठो भवतीति पुनरकरणसंवराय तथागतनियमः शिष्यैरवश्यं कर्तव्यः ॥ १०१ ॥

१. च. गुह्याभिषि०। २. ग. 'महा' नास्ति। ३. च. पत्तेर्वि.। ४. च. 'यदा' नास्ति। ५. च. विशुद्धि०। ६. ग. च. भो. विशुद्धि। ७. भो. De La (तत्र)। ८. ग. भो. ०धिष्ठानस्थानं। ९. क. ख, न पततीति, नयतीति शोभन पाठः, भो. ḥThob Bo (प्राप्नोति)। १०. क. ख. ग. [illegible]

इदानीं मूलापत्तय उच्यन्ते—

मूलापत्तिः सुतानां भवति शशधरा श्रीगुरोश्चित्तखेदात्
तस्याज्ञालङ्घनेऽन्या भवति खलु तथा भ्रातृकोपात् तृतीया।
मैत्रीत्यागाच्चतुर्थी भवति पुनरिषुर्बोधिचित्तप्रणाशात्
षष्ठी सिद्धान्तनिन्दा गिरिरपि च नरेऽपाचिते गुह्यदानात् ॥१०२॥

मूलापत्तिरित्यादिना। इह सर्वतन्त्रेषु मूलापत्तयश्चतुर्दश। तेषु प्रत्येकं भवति यथा तथाह—**मूलापत्तिः सुतानाम्** अभिषिक्तानां शिष्याणां **भवति शशधरेति** प्रथमा **श्रीगुरोश्चित्तखेदादिति।** अत्र गुरुर्द्विधा सद्गुरुः, असद्गुरुश्चेति। तयोश्चित्तखेदाद् द्विधा परार्थतः स्वार्थतश्चेति। तत्र यस्य परार्थतश्चित्तखेदः स श्रीगुरुः। यस्य स्वार्थतः चित्तखेदः सोऽसद्गुरुरिति। [1]अत्र श्रीगुरोश्चित्तखेदो दशाकुशल[2]प्रवृत्त्या शिष्यस्य भवति। तस्माच्चित्तखेदान्मूलापत्तिर्भवति, न स्वार्थप्रवृत्तस्य गुरोर्दशाकुशलप्रवृत्तेरिति नियमः। [3]**तस्याज्ञालङ्घनेऽन्या** द्वितीया मूलापत्ति**र्भवति** गुरोः। परोक्षेऽपि दशाकुशलं कुर्वत इति। एवं **भ्रातृकोपात् तृतीया** भवति। यदा ज्येष्ठे वा कनिष्ठे वा वज्रभ्रातरि शिक्ष्यमाणे [4]प्रकोपं करोति। **मैत्रीत्यागाच्चतुर्थीति।** इह मैत्रीत्यागश्चतुःप्रकारः, मृदुमध्याधिमात्रा[5]धिमात्राधिमात्रभेदेन। तत्र मृदुर्जले दण्डरेखावत् मैत्रीत्यागः क्षणमात्रं ततो निवर्तयति। मध्यमो बालुकारेखावद् [6]वातेन पुनः समत्वं याति। अधिमात्रात्मको भूमिस्फुटितवद् वर्षोदकेन पुनः समत्वं याति। [7]ततोऽमैत्रीचित्तम् अधि[220b]मात्राधिमात्रात्मकं परिपक्वं यथा पाषाणभिन्नः पुनर्न क्वचित् संपूर्णः समरसो भवति, यथा वा पक्वफलं न वृक्षे तिष्ठति। [8]तद्वन्मैत्रीत्यागः सत्त्वानाम्। तेन चतुर्थी मूलापत्ति**र्भवती**ति नियमः। **इषुरिति** पञ्चमी भवति। **बोधिचित्तप्रणाशादिति।** इह बोधिचित्तं शुक्रम्, तस्य विनाशाद् अच्युतसुखं न भवति। [9]यतोऽतत्त्विनां द्वीन्द्रियसुखेन बुद्धत्वकाङ्क्षिणां पञ्चमी मूलापत्तिर्भवति। **षष्ठी सिद्धान्तनिन्दा।** सिद्धान्तं प्रज्ञापारमितानयं[10] मन्त्रनये तत्त्वपटलम्, तस्य [11]निन्दा या सा षष्ठीति। **गिरिरिति** सप्तमो भवति। [12]**अपाचिते नरे** श्रावकमार्गस्थिते **गुह्यदानाद्** महासुखदानाद् आचार्याणामापत्तिः[13]। १०२ ॥

स्कन्धक्लेशादहिः स्यात् पुनरपि नवमी शुद्धधर्मेऽरुचिर्या
मायामैत्री च नामादिरहितसुखदे कल्पना दिक् च रुद्रा।

१. च. अतः। २. च. कुशलस्य। ३. छ. तस्यालङ्घ०। ४. च. कोपम्। ५. क. ख छ. 'अधिमात्र' नास्ति। ६. क. ख. तेन। ७. ग. तथाऽ। ८. क. ख. छ. तन्मैत्रीत्यागः। ९. ग. अतो, च. ततो। १०. ग. च. यानं। ११. ग. भो. निन्दया सा, क. ख. निन्वाया। १२. क. ख. ग. च. अयाचिते, छ. अपचिते, १३. ग. ०पत्तिरिति।

शुद्धे सत्त्वे प्रदोषाद् रविरपि समये लब्धके त्यागतोऽन्या
सर्वस्त्रीणां जुगुप्सा खलु भवति मनुर्वज्रयाने स्थितानाम् ॥१०३॥

स्कन्धक्लेशादहोत्यष्टमी। स्कन्धक्लेशादि रूपवासः संन्यस्तादि शरीर-[1]छेदनादिकमुच्यते। तस्मादष्टमी भवति। **पुनरपि नवमी शुद्धधर्मे** शून्यताधर्मेऽ**रुचिर्या** भवति। **मायामैत्री च** मुखतोऽन्यद् वाक्यमिष्टम्। हृदयेऽन्या चिन्तेति। मायामैत्री या सा दिगिति दशमो। **नामादिरहितसुखदे** तथागततत्त्वे **कल्पना** या सा **रुद्रे**ति एकादशी। **शुद्धे सत्त्वे** [2]योगिनी**प्रदोषाद् रविरि**ति द्वादशी भवति। [3]**समये लब्धे** सति **त्यागतो** गणचक्रे**ऽन्या** त्रयोदशी भवति। **सर्वस्त्रीणां जुगुप्सा** या सा **मनुरि**ति चतुर्दशी। **खलु** निश्चिता **भवती**ति नियमः। केषाम्? **वज्रयाने स्थितानाम्** अभिषिक्तानामिति नियमः। वज्रधरस्य स्थूलापत्तयोऽनेकास्तासां स्वल्पदण्डो भवतीति नियमः॥ १०३ ॥

इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभा[221a]यां
मण्डलाभिषेकमहोद्देशश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

५. प्रतिष्ठागणचक्रविधियोगचर्यामहोद्देशः

कृत्वा प्रतिष्ठां ससुरासुरेन्द्रैर्यो वन्दितो नागनरेन्द्रवृन्दैः।
तं कालचक्रं प्रणिपत्य मूर्ध्ना वक्ष्ये प्रतिष्ठां प्रतिमादिकानाम् ॥

इह श्रीपरमादिबुद्धात् प्रतिष्ठाविधिर्मञ्जुश्रिया चतुरधिकशतादिवृत्तैरुद्धृतटीकया वितन्यते—

नागैः राजंश्चतुर्भिर्मणिकनकघटैर्मृण्मयैर्वा सरत्नै-
रोषध्या गन्धयुक्तैर्जयविजयघटैः स्नापयेत् पीठमध्ये।
नागैः श्रीमौलिबद्धे वसुदलकमले पट्टबद्धे चतुर्भि-
र्मुद्रायां श्रीघटेनात्र कमलरहितं पञ्चरेखां विहाय ॥१०४॥

नागैरित्यादिना[4]। इह प्रथमं वक्ष्यमाणैः कलशादिभिरभिषेकैरभिषिच्य[5] ततो ज्ञातसर्वतन्त्रः शिष्यो गुरुणाऽभिषेचनीयो वज्राचार्या[6]ऽधिपतये प्रतिज्ञारूढः। इदानीं

१. ग. छेदादि०। २. भो. rNal ḥByor Pa (योगी)। ३. ख. समयेऽलब्धे।
४. ग. च. ०रित्यादि। ५. क. ख. छ. ०भिषेच्य। ६. क. ख. छ चार्यो।

मया सर्वं सुगतमार्गं तव प्रसादात् [1]हे श्रीगुरो ज्ञातमिति गुरौ निवेद्य प्रतिज्ञां करोति। इतः कालादारभ्य नान्यस्य गुरोराराधनं करोमि त्वां बुद्धबोधिसत्त्वान् विहायेति प्रतिज्ञारूढं शिष्यं दृष्ट्वा सर्वगुणान्वितम्। ततः पूर्वोक्त[2]**जयविजयघटाः**, **तैर्नागैर्वा** अष्टभिश्चतुर्भिर्वा, घटेनैकेन वा[3] त्रिधाधिपतित्वं देयम्। नागैर्भिक्षोर्वज्रधरस्य, श्रामणेरस्य चतुर्भिः, गृहस्थस्यैकेनेति। एवं पूर्वोक्तविधिना **ओषध्या**दिभिर्युक्तैर्घटैः सेकः। अत्र मण्डलगृहबाह्ये समभूमिभागे चतुर्हस्ते पञ्चप्राकाररेखाः कृत्वा [4]मध्ये हस्तद्वयं पद्ममष्टदलं पञ्चचिह्नरहितं विश्ववर्णम्। एतदेव [5]पीठपद्मं [6]पट्टोपरि लिखेत् पञ्चरङ्गैस्तस्य पद्मस्य मध्ये। उपरि स्थापयित्वा भिक्षुं [7]स्थापयेत्। अष्टघटैर्जयविजय[8]सहितैः। दशभिः [9]कन्यकाभिः सुरूपाभिः सर्वालङ्कारयुक्ताभिरप्रसूताभिरष्टभिः। द्वाभ्यां कुमारिकाभ्यामक्षतयोनिभ्यां स्नापयेत्। शिरसि मौलिं बद्ध्वा [10]पट्टमुद्रासहितामिति।

भिक्षुं वज्रधरं कुर्याद् दुष्टतर्जनतत्परम्।
काषायदर्शनाद्यस्य दैत्या यान्ति रसातलम् ॥ इति।

एवं **नागैः श्रीमौलिबद्धे वसुदलकमल** इति। **पट्टबद्धे** पुनः श्रामणेरस्य पट्टं बद्ध्वा समुद्रिकम्। **चतुर्भिः** कन्याभिः। द्वाभ्यां कुमारिकाभ्यां स्नापयेत्। रजःपद्मं विहाय पञ्चरेखाः[11] कृत्वा [12]मध्यपट्टं दत्त्वेति। एवं मध्यमाचार्यः। ततो **मुद्रायामिति**। [221b]अङ्कुशवज्रं दत्त्वा, **घटेनै**केन विजयेन, एकया कन्यया एकया कुमारिकया स्नापयेदिति। **पञ्चरेखां** [13]**विहाये**ति। सामान्ये[14]नालेपनेन रेखात्रयं कृत्वा सामान्यपीठं दत्त्वा स्नापयेद् अधमाचार्यः। एवं यथानुक्रमेण चतुर्हस्तं द्विहस्तम् एकहस्तं पीठं कृत्वा भिक्षुचेल्लकगृहस्थानामभिषेकं देयं वज्राचार्येण, वाचा [15]अनुज्ञया वा तन्त्रदेशनार्थमिति नियमः ॥१०४॥

अतः सेकविधि[16]रुच्यते—

आदौ चोपासको वै भवति हि सलिले श्रामणेरो घटे स्याद्
भिक्षुर्गुह्याभिषेके स्थविर इति भवेदुत्तरे कारणे च।
मुद्रां पट्टं च मौलिं ददति वरगुरुर्वज्रयज्ञोपवीतं
तेषामाचार्यहेतोः स्वजिनकुलवशादेव मुद्रां विशुद्धाम् ॥१०५॥

१. च. 'हे' नास्ति। २. च. पूर्वोक्ताः। ३. ग. च। ४. क. ख. छ. मध्य।
५. ख. ग. च. छ. पीठं। ६. क. ख. छ. पट्टे परि०। ७. ग. च. भो. स्नापयेत्।
८. ग. विजयघट। ९. ग. च. कन्याभिः। १०. भो. Dar dPyaṅ Daṅ Phyag rGya Drug (पट्टपण्मुद्रा)। ११. ग. रेखां। १२. ग. च. भो. मध्ये।
१३. ग. च. विहाय। १४. क. ख. छ. ०न लयनेन। १५. क. ख. छ. अनुज्ञाया।
१६. च. भो. विशुद्धि।

आदावित्यादिना। [1]आदौ सप्ताभिषेके **सलिल**संज्ञकेऽभिषिक्तः सन् सप्तभूमि-व्याकरणाद् **उपासक** इत्युच्यते। तेनोपासको **भवती**ति नियमः। **श्रामणेरो घटे स्याद**-व्याकरणाद् **उपासक** इत्युच्यते। [2]चलाव्याकरणाद् बुद्धपुत्रः[3], कुमार इत्यर्थः। ततो **गुह्याभिषेके भिक्षुर्भ**वति साधुमती-[2]चलाव्याकरणाद् बुद्धपुत्रः, कुमार इत्यर्थः। ततः प्रज्ञाज्ञानाभिषेके **उत्तरे** तृतीये। व्याकरणाद् बुद्धयुवराजः। **स्थविर इति**। ततः प्रज्ञाज्ञानाभिषेके **उत्तरे** तृतीये। **कारणे**ऽभिषिक्तः, धर्मदेशकः [4]शिष्यकर्ता भवति, धर्ममेघायां व्याकृतत्वादिति बुद्ध एव [5]द्वितीयः। तथाह भगवान् **नामसंगीत्याम्**—

त्रैलोक्यैककुमाराङ्गस्थविरो वृद्धः प्रजापतिः।
द्वात्रिंशल्लक्षणधरः कान्तस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥ (ना. सं. ८.५) इति।

तथा—

अवैवर्तिको ह्यनागामी खड्गः प्रत्येकनायकः।
नानानिर्याणनिर्यातो महाभूतैककारणः ॥
अर्हन् क्षीणास्रवो भिक्षुर्वीतरागो जितेन्द्रियः।
क्षेमप्राप्तोऽभयप्राप्तः शीतीभूतो ह्यनाविलः ॥ इति।
(ना. सं. ६.१०-११)

तथा—

महाव्रतधरो मौञ्जी ब्रह्मचारी व्रतोत्तमः।
महातपास्तपोनिष्ठः स्नातको गौतमोऽग्रणीः ॥
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मा ब्रह्मनिर्वाणमाप्तवान्।
मुक्तिर्मोक्षो विमोक्षाङ्गो विमुक्तिः [222a]शान्तता शिवः ॥
(ना. सं. ८. १८-१९)

इत्याचार्याभिषेकः। अतः कायवाक्चित्तवज्रकरणाय [6]वज्रकाय**मुद्रां** ददाति। **पट्टं च मौलिं** ददाति, विष्णुकरणाय चित्तवज्रकरणायेत्यर्थः। **वज्रयज्ञोपवीतम्**। सुवर्णमयं सूत्रमयं वा कायवज्र[7]धरकरणाय ददाति ब्रह्मकरणायेति। **तेषां** ज्येष्ठ-कनिष्ठानाम् **आचार्यहेतोः स्वजिनकुलवशात्** पुष्पपातवशादेव **मुद्रां** ददाति। **विशुद्धा**-मभिषिक्तां वाग्वज्रविशुद्धकरणाय महेश्वरकरणायेति। एवम्—

कायवज्रधरो ब्रह्मा वाग्वज्रस्तु महेश्वरः।
चित्तवज्रधरो राजा स च विष्णुर्महर्द्धिकः ॥

---

१. ग. च. भो. इहादौ। २. ग. चले। ३. क. ख. छ. पुत्र। ४. भो. sDud Pa (शिष्यसंग्रहकर्ता)। ५. च. तृतीयः। ६. ग. च. 'वज्रकाय' नास्ति। ७. ग. च. छ. भो. 'धर' नास्ति।

वज्राचार्य इति। तथा भगवानाह **नामसंगीत्याम्**—

शिखी शिखण्डो [1]जटिलो जटो मौण्डी किरीटवान्।
पञ्चाननः पञ्चशिखः पञ्च[2]चीरकशेखरः ॥
(ना. सं. ८. १७)

इति भगवतः सर्व[3]तन्त्रेषु नियमः। इह देशकाभिषेकेऽभिषिक्तेन भिक्षुणा वा श्रामणेरेण वा गृहस्थेन वा सेवादिधर्मो गृहधर्मो न करणीयोऽसिमसिवाणिज्यादिकः। यदि करोति तदा आज्ञाभङ्गो भवति, आज्ञाभङ्गादवीचिगमनं भवति, आचार्यधर्म-विलोपनादिति वज्राचार्याधिपत्य[4]भिषेकविधिप्रतिष्ठानियमः ॥ १०५ ॥

ऊर्ध्वे दत्त्वा वितानं क्षितितलनिलये वै त्रिरेखं समन्तात्
तासां कोणे सतोया मणिकनकघटाः सूत्रिताः पद्मवक्त्राः।
शङ्खाद्ये हेमपात्रे त्वथ रजतमये साधयेद् गन्धतोयं
गर्भे पीठं प्रदाय स्फुटकनकमयं स्नानमारम्भयेत् तत् ॥१०६॥

पुष्पाद्यैर्गन्धतैले रविशिखिपचितैर्देवताभ्यङ्गनीया
चूर्णैरुद्वर्तयित्वा मधुघृतदधिभिः स्नापयेत् क्षीरतोयैः।
सिद्धार्थैश्च प्रदीपैर्वरविविधफलैरत्र निर्मञ्छयित्वा
तत्स्थानाच्चालनीया तनुरपि पिहिता रक्तवस्त्रेण सम्यक् ॥१०७॥
[222b]

कृत्वा श्रीमण्डलान्ते सममहिनिलये पञ्चरेखा जिनांशै-
र्मध्ये पद्माष्टपत्रं स्वकुलदिशिगतैर्भूषितं पञ्चचिह्नैः।
तन्मध्ये स्थापनीयाऽपरमुखकमला देवता देवती वा
चैत्याद्यं पुस्तकं वा पट इति च तथा संमुखस्तस्य मन्त्री ॥१०८॥

कृत्वा शून्यस्वभावं जिनवरसहितं कायवाक्चित्तवज्रं
पश्चात् पूर्वोक्तयोगैः शशिरविपविजं भावयेत् कालचक्रम्।
विद्या देव्यादिबुद्धानलिकलिकुलजान् स्वस्वबीजैश्च जातान्
हृत्कण्ठे नाभिगुह्ये शिरसि कुलवशाद् भावयेन्मूर्ध्नि चक्रे ॥१०९॥

---

१. छ. 'जटिलो जटी मौण्डी' नास्ति। २. छ. चीरखकेकरः। ३. ख. ग. च. छ. भो. तन्त्रान्तरेषु। ४. ग. च. ०पतिषेक।

एवं वै भावनीयाः पुनरपि सकला देवतायाश्च काये
आकृष्य ज्ञानसत्त्वं त्रिभवभवसमं क्रोधराजैः स्वकाये ।
वेशं बन्धं च तोषं समरसकरणं देवतायाश्च कुर्याद्
आचार्येणैव तस्मात् प्रकटितवदना देवता वन्दनीया ॥११०॥

यद्बीजं ह्यादिकाद्योः स्वकुलगुणगतं देवतादेवतीनां
हृन्मध्ये तत्स्वबीजं शशिरविपुटगं कायवाक्चित्तयुक्तम् ।
द्वात्रिंशल्लक्षणाद्यैः सकलतनुगतैर्व्यञ्जनैः स्वाष्टभिश्च
वर्णैर्भिन्नं तदेव प्रकटदलदले पुस्तकानां च भाव्यम् ॥१११॥

श्रीचक्रं चैत्यगर्भे पविमणिकमलं चासिरेवोत्तरेण
हूंकारं ह्यक्षसूत्रे मणिपरिगणनालक्षणं व्यञ्जनानि ।
घण्टा काये स्वराश्च त्रिगुणितदशकाः कादिवर्गाश्च वज्रे
ते वै यज्ञोपवीते दशगुणितवसुव्यञ्जनान्युत्तरीणाम् ॥११२॥

काद्या वर्गाः समात्रा गगनरसगुणा योगपट्टस्य भाव्या
हं हः श्रीकुण्डलस्य अं अः इति युगलं कण्ठिकामेखलायाम् ।
एवं चाकारयुग्मं भवति कटकयोर्नूपुराणां ह हा च
पञ्चाकारं हि शून्यं सकलतनुगतं भस्मनो भावनीयम् ॥११३॥

[223a]

ज्ञानाकारात् स्वदेहात् त्रिकुलिशसहितं स्कन्धधात्वादिसर्वं
न्यस्तव्यं देवतानां स्वहृदयकमले स्वस्वबीजैः क्रमेण ।
बीजे न्यस्ते प्रतिष्ठा भवति नरपते स्तूपलेपादिकानां
बीजावेशं स्वकाये कुरु करकुलिशेनोपसंहारकाले ॥११४॥

आदर्शे स्नानमत्र प्रथममपि भवेच्चित्रितानां पटानां
पश्चाद् गन्धैः सुसुरभिकुसुमैर्देवताऽभ्यर्चनीया ।
गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैर्वरविविधपटैश्चामरैरातपत्रै-
रेवं कृत्वा प्रतिष्ठां वरविविधरसैः संघभोज्यं प्रदेयम् ॥११५॥

कूपे वाप्यां तडागे दिशि विदिशि वसून् विन्यसेन्नागराजान्
सप्ताम्भोधिः स्वबीजैर्मधुसलिलयुतं क्षपयेत् पञ्चगव्यम् ।

होमान्ते वापिकादौ वरुणमपि सितं पाशहस्तं विभाव्य
उद्याने कल्पवृक्षं सकलतरुगतं सेकयित्वैकवृक्षम् ॥११६॥

मौलिं पट्टं च हारं कटकमपि तथा कुण्डलं मेखलादि-
मात्राचार्याय प्रदेयं भवति नरपते दक्षिणां चात्मशक्त्या ।
दात्रा वै पुण्यहेतोः सकलगणकुलं प्रार्थनीयं परार्थं
पुण्येनानेन सत्त्वास्त्रिविधभवगताऽनुत्तरां यान्तु बोधिम् ॥११७॥

इह प्रतिमादीनां प्रतिष्ठा । "**ऊर्ध्वे दत्त्वा वितानं क्षितितलनिलये च त्रिरेखं समन्तात्**"इत्यादिकं (३.१०६) वृत्तमारभ्य द्वादशवृत्तानि सुबोधानि । यावत् प्रणिधानं शिष्यः [1]पुण्यपरिणामनां करोति । "**पुण्येनानेन सत्त्वास्त्रिविध**[2]**भवगताऽनुत्तरां यान्तु बोधिम्**" (३.११७) इति पर्यन्तं सुबोधं प्रतिष्ठाविधानम् । तेनात्र टीका न कृतेति ॥१०६-११७॥

इदानीमुत्तराभिषेकविधानमुच्यते—

दिग्वर्षं यावदेका भवति दशविधा दर्शनस्पर्शनीया
तस्मादालिङ्गनीयाः सरसजलधयः सेवनीयाश्च लाद्याः ।
विंशद्वर्षोर्ध्वमुद्रा परमभयकराः क्रोधभूताऽसुरांशाः
सेकार्थं षट्चतस्रः शमसुखफलदाश्चापरा भावनार्थम् ॥११८॥

[223b]

दिग्वर्षमित्यादिना । इह कलशाभिषेकार्थं मुद्रां **दिग्वर्षं** दशवर्षं **यावद्** वर्जयेत् कुमारिकाम् । [3]यत **एका** प्रज्ञापारमिता **दशविधा भवति** । दानादिविशुद्ध्या प्रतिवार्षिका । अत्रापि यावद् दन्तपातो न भवति तावज्ज्ञानधातुरव्ययत्वात्, ततो दन्तपातादाकाशधातुः । एवं धातुद्वयेन कुमारिका अक्षतयोनिः । सा तेन **दर्शनीया स्पर्शनीया** पूजनीयेति[4] । **तस्माद्** दशवर्षादिकादशवर्षमादिं कृत्वा यावद्विंशतिवर्षाणि **आलिङ्गनीयाः सरसजलधय** इति षड्भिः सह चतस्रः **सेवनीयाश्च लाद्या** वाय्वादय इति । अतो वायुधातुरेकादशे वर्षे, द्वादशे तेजः, त्रयोदशे तोयम्, चतुर्दशे पृथिवीति चतस्रः । पञ्चदशे शब्दः, षोडशे स्पर्शः, सप्तदशे रसः, अष्टादशे रूपम्, एकोनविंशतिमे गन्धः, विंशतिमे धर्मधातुरिति । ततो **विंशतिवर्षादूर्ध्वं मुद्रा परमभयकरा क्रोधभूताऽसुरांशा** इति । इह विंशतिवर्षादिकविंशतिवर्षमारभ्य प्रत्येकवार्षिका यथासंख्यम्—अतिनीला अतिबला[5] [6]जम्भी मानी स्तम्भी [7]मारीची [8]चुन्दा भृकुटी

१. भो. 'पुण्य' नास्ति । २. क. छ. भगवता । ३. ग. च. यदेका । ४. च. या चेति ।
५. [illegible] । ६. क. ख. छ. यम्भो । ७. क. ख. छ. मारेची । ८. क. चुण्डा ।

वज्रश्रृङ्खला रौद्राक्षीति दशक्रोधदेव्यः। यत एकत्रिंशद्वर्षादष्टौ भूतांशाः—चर्चिका वाराही रौद्री ऐन्द्री ब्रह्माणी महालक्ष्मी कौमारी वैष्णवीति । तत एकोनचत्वारिंशद्वर्षादष्टौ असुरांशाः—श्वानास्या शूकरास्या व्याघ्रास्या जम्बुकास्या गरुडास्या उलूकास्या गृध्रास्या काकास्येति। षट्चत्वारिंशद्वर्षाणि यावन्मुद्रा भावनार्थम्। **सेकार्थं** पुनः [1]**षट्चतस्रः समसुखफलदाः।** तेजोधातुमारभ्य यावद् धर्मधातुरिति। वायु[2]धातुररजस्त्वान्न ग्राह्येति नियमः ॥ ११८ ॥ [224a]

श्रीप्रज्ञास्पर्शनीयं प्रथममपि कुचे कुम्भसेकः स एव
गुह्याद् गुह्याभिषेको भवति शशधरास्वादनालोकनाभ्याम् ।
प्रज्ञाज्ञानाभिषेके सकलजिनकुलैः शोधयित्वाऽङ्गवक्त्रे-
र्मुद्रा शिष्याय देया जिनमपि गुरुणा साक्षिणं चात्र कृत्वा ॥११९॥

इह उत्तराभिषेको द्विधा—एकः सत्त्वावतारणार्थं मार्गपरिज्ञानाय तन्त्रश्रुताधिकारायेति, अपरो महाचार्यपददानाय देशककरणायेति। अत्र पूर्वाभिषेके [3]तावत्—"त्रस्ता विभ्रान्तचित्ता"(का. च. ३.१२१) आदिदोषरहिता द्वादशाब्दादिसुकन्या [4]परियाचिता शिष्येण गुरोः समर्पणीया। ततोऽध्येषणादिकं कृत्वा शिष्यो गुरुमध्येषयति वक्ष्यमाणस्तुत्या। ततस्तुष्टो गुरु[5]र्लोकसंवृत्या स्तन[6]स्पर्शं कारयति स्वमुद्रायाः। तेन **कलशाभिषेकः स एव।** ततो गुह्यपूजां कृत्वा शिष्यायामृतं ददाति। मुद्राभगं चालोकापयति। तेन **गुह्याभिषेको भवति शशधरास्वादनालोकनाभ्याम्।** ततः **प्रज्ञाज्ञानाभिषेके** पञ्चकुलकलापिनीं कृत्वा ॐकारादिबीजैः, ततो **मुद्रा सा शिष्याय देया** पाणिव्याप्तिद्वन्द्वकरणाय च **गुरुणा।** **जिनं** वज्रसत्त्वं **साक्षिणं कृत्वा।** यथायं दुर्भगः सत्त्वः, अस्याधिकाराय भावनादिके तन्त्रश्रवणाय, न [7]शिष्याणां तन्त्रदेशनाय मण्डलालेखनायेति प्रथमं शिष्यावतारणेऽभिषेकनियमः। तथाऽऽह[8]—हसितेनाचार्यो द्विगुणात्मकः शुक्रसुखेन [9]देवविशुद्धया गुह्य इति(ती)क्षणेन त्रिगुणात्मकविशुद्धया, पाणिव्याप्तिरिति चतुर्गुणात्मकविशुद्धया, द्वन्द्वमिति पञ्चगुणात्मकशुक्रसुखेन [10]देवविशुद्धयेत्यादि पञ्चमे पटले वक्ष्यमाणे परमाक्षरज्ञानसिद्धौ [11]वक्तव्यम्। इति [12]लोकसंवृत्या सत्त्वावतारणाय चतुर्विधोऽभिषेकनियमः। ततः सर्वतन्त्रे श्रुते ज्ञाते सटीके महाधिपतित्वाय यथानुक्रमेणोक्ता दशविद्याः समर्पणीया गृहस्थशिष्येण गुरवे। अत्र **मूलमन्त्रे** भगवानाह—

१. भो. Drug Dań gSum (षट् च तिस्रः)। २. क. ख. ग. छ. धातुरज०। ३. ग. तावतस्तत्रा, च. तावत्तत्रा। ४. क. भो. परिपाचिता। ५. च. लोकवृत्त्या। ६. ग. च. स्पर्शनं। ७. भो. Sems Can rNam La (सत्त्वानां)। ८. ग. च. भो. 'आह' नास्ति। ९. भो. 'देव' नास्ति। १०. ग. देवता, भो. नास्ति। ११. क. ख. छ. वक्तव्यः। १२. ग. च. लौकिक।

भागिनेया दुहित्री च भगिनी जननी तथा।
भार्याया जननी चैव मातुलस्य तथाङ्गना॥
पितृभ्रातुस्तथा भार्या भगिनी जनकस्य तु।
स्वमातुर्भगिनी चैव स्वभार्या वररूपिणी॥
ताराद्या धर्मधात्वन्ता दशविद्याः[224b]स्वगोत्रजाः।
सेककाले प्रदातव्या गृहिणा मोक्षकाङ्क्षिणा॥
न ददाति गुरोर्विद्या यद्येताः कुलरक्षणात्।
तदा सेको न दातव्यः अन्याभिर्गृहवासिनाम्॥
मण्डलेष्वभिषिक्ताभिरन्याभिः शूद्र[1]जातिभिः।
भिक्षूणां श्रामणेराणां दातव्यो गुरुणा नृप॥
वाय्वाद्यास्तु क्रमात् शूद्री क्षत्रिणी [2]ब्राह्मणी तथा।
वैश्या डोम्बी च कैवर्ती नटिका रजकी तथा॥
चर्मकारी च चाण्डाली धर्मधात्वन्त्यजा दश।
महाविद्याः समाख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥ इति।

एवमुक्तक्रमेण दश पारमिता दश वशिता दश [3]भूमीर्दश बलान्याभिर्विशुद्धानि भवन्ति। [4]तथाह **नामसंगीत्यां** धर्मधातुस्तवे भगवान्[5]—

महावैरोचनो बुद्धो महामौनी महामुनिः।
महामन्त्रनयोद्भूतो महामन्त्रनयात्मकः॥
दशपारमिताप्राप्तो दशपारमिताश्रयः।
दशपारमिताशुद्धिर्दशपारमितानयः ॥
दशभूमीश्वरो नाथो दशभूमिप्रतिष्ठितः।
दशज्ञानविशुद्धात्मा दशज्ञानविशुद्धधृक्॥
दशाकारो दशार्थार्थो मुनीन्द्रो दशबलो[6] विभुः।
अशेषविश्वार्थकरो दशाकारो वशी महान्॥ इति।

(ना. सं. ६. १-४)

[7]अधिपतिकरणाय दश मुद्रा देयाः। महामण्डलाचार्यपदाभिलाषिणेति तथागतनियमः। एवं दश मुद्राः समर्पयित्वा शिष्यो गुरोस्तत आदेशं प्रार्थयति। इदानीं मया किं कर्तव्यं हे भगवन् सर्वपारमिताप्राप्त[8]! तत आचार्यो ब्रूते—इमां स्वकीयां भार्या

१. च. जादि। २. क. छ. 'ब्राह्मणी' नास्ति। ३. ख. ग. छ. भूमिभिः, क. भूमि। ४. ग. च. तथा। ५. ग. च. भगवानाह। ६. क. ख. ग. च. दलो। ७. ग. च. आधिपत्य। ८. ग. च. प्राप्ता।

[1]स्वभार्या दशानां मध्ये तया सार्धं ममाध्येषणां कुरु। भिक्षुश्रामणेराणां चण्डाली कर्तव्या। ततो गुरुनियमेन तां गृहीत्वा कनकादिकुसुमैर्मण्डलं कुर्वतो द्वे ततोऽध्येषयतः—

नमस्ते कालचक्राय सर्वावरणहानये।
परमाक्षरसुखापूर्ण ज्ञानकाय नमोऽस्तु ते॥

शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तं यदक्षरम्।
तेन सेकेन मे नाथ प्रसादं कुरु साम्प्रतम्॥

पुत्रदारादिभिः सार्धं दासोऽहं तव सर्वदा।
आबोधिमण्डपर्यन्तं नान्योऽस्ति शरणं मम॥

इत्यध्येषितवन्तं सपत्नीकं शिष्यं दृष्ट्वा आचार्यः शब्दवज्रां सर्वालङ्कारानपसार्य नग्नीकृत्यालिङ्गयति। गृहिणस्तु भार्याया मातरम्। ततः—पूर्वे तारा, दक्षिणे पाण्डरा, उत्तरे मामकी, पश्चिमे लोचना, आ[225a]ग्नेय्यां स्पर्शवज्रा, नैर्ऋत्ये रसवज्रा, ईशाने रूपवज्रा, वायव्ये गन्धवज्रा इति। योगिनीचक्रं नग्नं मुक्तकेशं कर्तिकाकपालहस्तं विरचयेत्, नवविद्याभिर्यथानु[2]क्रमेणेति। एवं पूर्वाभिषेकस्तोयादिना सप्तविधः।

तत उत्तराभिषेकः। सामान्यकर्ममुद्रया उत्तरोत्तराभिषेकः पूर्वोक्ताभिः शूद्र[3]जादिभिः। मुद्रासमर्पणाय दशभिर्नागैरष्टभिर्घटैर्जयविजयाभ्यां स्नापयेद् भिक्षुम्। श्रामणेरं तासां मध्ये षड्भिर्मुद्राभिश्चतुर्भिः कलशैः स्नापयेत्, जयविजयाभ्यामपि। गृहस्थं तासां नवानां मध्ये एकया स्वभार्यया, एकेन विजयघटेनाभिषेचयेत् पूर्वोक्तविधिना। ततो मुद्रां समर्पयेत् [4]कलशसेकदानार्थमिति ॥११९॥

**सर्वालङ्कारयुक्तां द्रुतकनकनिभां द्वादशाब्दां सुकन्यां
प्रज्ञोपायात्मकेन स्वकुलिशमणिना कामयित्वा सरागाम्।
ज्ञात्वा शिष्यस्य शुद्धिं कुलिशमपि मुखे क्षेपयित्वा सबीजं
पश्चाद् देया स्वमुद्रा त्वथ पुनरपरा धूममार्गादियुक्ता ॥१२०॥**

अत्र **सर्वालङ्कारयुक्तां द्रुतकनकनिभां द्वादशाब्दां सुकन्यां** विंशतिवर्षपर्यन्तां **प्रज्ञोपायात्मकेन** देवतायोगेन वक्ष्यमाणेन **स्वकुलिशमणिना कामयित्वा** [5]**सरागां** रजस्वलाम्। **ज्ञात्वा शिष्यस्य** [6]**शुद्धिम्** उत्तरोत्तराभिषेके। **कुलिशमपि मुखे क्षेपयित्वा**

---

१. क. ख. स्वभावा। २. ख. च. भो. यथाक्रमेण। ३. ग. जातिभिः। ४. क. ख. कलशे। ५. भो. Khrag lDan (सरक्तां)। ६. छ. शुद्धिः।

[1]**सबीजं पश्चाद् देया स्वमुद्रा** आचार्येण या आलिङ्गिता। अथवा पुत्रस्य भार्या स्वयमाचार्योऽभिगच्छति। ततः सेकक्षणे प्राप्ते शिष्याय पुनः स्वभार्यां समर्पयेत्। अत्र [2]प्रज्ञायाः स्तनस्पर्शनमुपायः करोति, गुरोः(रुः) शिष्यभार्यायाः[3] स्तनं स्पृशेत् कलशाभिषेके। गुह्याभिषेके शिष्यभार्याया मुखे वज्रं क्षिपेत्। शिष्यस्य अक्षि बद्ध्वा गुरुः प्रज्ञाया नरनासिकां चूषयेत्। [4]ततो भार्याज्ञानेन स्वमुद्रां समर्पयेदाचार्य इति सर्वत्र सेकविधिर्महाधिपत्ये। [5]यदि दश मुद्राः, तदा यां यां कामयितुं समर्थः शिष्यस्तां तां समर्पयेद्। अर्धरात्राद् घटिकाद्वयोर्ध्वं या[225b]वत् सूर्योदयम्, ततो विसर्जयेद् गणचक्रम्। विसर्जयित्वा शिष्याय संवरं दद्यात्। इदं यन्मया कथितं संवृत्या विरमान्तं सहजक्षणं यद्बिन्दुत्रयान्तं [6]तद्विवृत्या न भवति। विवृत्या [7]अच्युतं सुखं योगिनाम्। तेनेदं त्वया महासुखं रक्षणीयम्। तथा **आदिबुद्धे** भगवान्[8]—

कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि ज्ञानमुद्राऽनुरागणे।
रक्षणीयं महासौख्यं बोधिचित्तं दृढव्रतैः॥

भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत्।
भावयेद् बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः॥

अनेन रक्षितेनैव बुद्धत्वमिह जन्मनि।
शील[9]संभारसंपूर्णं पुण्यज्ञानसमन्वितम्॥

दशपारमिताप्राप्ताः सम्बुद्धास्त्र्यध्ववर्तिनः।
अनेन सर्वसम्बुद्धैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितम्॥

अतः परतरं नास्ति ज्ञानं त्रैधातुकेश्वरम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं स्वपरार्थप्रसिद्धये॥

यदि पालयसि मे पुत्र संवरं सर्वतायिनाम्।
तदा लप्स्यसि सम्बोधिं सर्वबुद्धैरधिष्ठितः॥

अथ रागाभिभूतात्मा न पालयसि संवरम्।
गृहीत्वा पुरतो भर्तुस्तदा यास्यसि रौरवम्॥

मृदुचित्ताद् यदा योनौ बोधिचित्तं च्युतं भवेत्।
पद्मबाह्यं तदा ग्राह्यं ज्ञात्वा मुद्रां स्वजिह्वया॥ इति।

---

१ क. ख. छ. सवीर्यं। २. क. ख. छ. प्रज्ञया। ३. क. ख. छ. भार्या करोति, ग. शिष्ये; ग. च. भार्या। ४. भो. De Nas Śes Rab Ye Śes Kyi dBaṅ Gi Ched Du sLob dPon Gyis Raṅ Gi Chuṅ Ma Phyag rGyar gTad Par Byaḥo Śes Pa Ni ततो प्रज्ञाज्ञानाभिषेके स्वभार्यां मुद्रां समर्पयेत्, आचार्य इति। ५. ग. यदा। ६. भो. Don Dam Par (तत्परमार्थतः)। ७. ग. अक्षतं। ८. ग. च. भो. भगवानाह। ९. क. संभारं।

संवरं दत्त्वा आचार्यः शिष्याय, शिष्योऽपि गुरुदक्षिणां दत्त्वा पुनर्मण्डलं कृत्वा प्रार्थयेत्—मे भगवान् सेकप्रक्रियाप्रसादं करोतु। ततः शिष्यमामन्त्रयेद् गुरुः। शृणु त्वं पुत्र! यथा संवृत्या षोडशानन्दलक्षणं सर्वसत्त्वानां सुखं साधारणं [1]द्वाविंशदधिकशतादिवृत्तैरुद्धृतं परमादिबुद्धाद् मञ्जुवज्रेण "कामा क्षोभम्" (का. च. ३.१२२) इत्यादिभिः ॥ १२० ॥

त्रस्ता विभ्रान्तचित्ता शठपरवशगा व्याधियुक्ता प्रसूता
क्रुद्धा स्तब्धाऽथ लोलाऽनृतकलहरता स्वाङ्गहीनाऽविशुद्धा।
एताः प्रज्ञाभिषेके सुनिपुणगुरुणा वर्जनीया नरेन्द्र
पूर्वोक्ता बुद्धभक्ता गुरुसमयधरा वन्दनीयार्चनीयाः ॥१२१॥
[226a]

कामा क्षोभं करोति स्वमनसि जगतः पूर्णतां याति पूर्णा
पूर्णाज्ज्वाला सबिन्दुं स्रवति शशधरं द्रावयित्वोत्तमाङ्गात्।
ओट्टाकृष्टि प्रकृत्या ददति वरसुखं बिन्दुमोक्षत्रयान्ते
आलोकस्पर्शसङ्गं क्षरणसुखमथानन्दभेदादिनैतत् ॥१२२॥

इह सर्वस्य **जगतः कामा मनसि क्षोभं करोति** प्रथमानन्दमिति। ततः **पूर्णतां याति पूर्णा**वस्था ललाटे बोधिचित्तपूर्णत्वात्, प्रज्ञालिङ्गनादिना द्वितीयः परमानन्द इति। ततः **पूर्णादुत्तमाङ्गाद्** मैथुने **ज्वाला**वस्था **सबिन्दुं स्रवति शशधरं द्रावयित्वा** तृतीयं विरमानन्दं करोतीति। [2]अत [3]**ओट्टा**वस्था बिन्दुच्यवनकाले कायवाक्चित्तबिन्दूनामवसाने चतुर्बिन्दुनिर्गमकाले सहजानन्दं करोतीति। एवं प्रतिपदादिपञ्चपञ्चकलाभिराकाशवायुतेजउदकपृथिवीस्वरूपाभिर्नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानामभिः अ इ ऋ उ लृ क्, अ ए अर् ओ अल् [4]र, ह य र[5] व ल डित्येतत् स्वरधर्मिणीभिः[6]। एवं पञ्चमी आनन्दपूर्णा। दशमी परमानन्दपूर्णा। पूर्णिमा विरमानन्द[7]पूर्णा। सहजानन्द इति षोडशी कला सर्वधातूनां समाहारो मेलापकः समाजः संवर इति। एवं रागो बोधिचित्तस्य शुक्लपक्षः, विरागः कृष्णपक्ष इति। यथा **नामसंगीत्यां** भगवानाह—

विरागादि महारागो विश्ववर्णोज्ज्वलप्रभः।
सम्बुद्धवज्रपर्यङ्को बुद्धसंगीतिधर्मधृक् ॥ इति।
(ना. सं. ८ ३३-३४)

१. ग एकविंशदधि०, छ. द्वात्रिंशदधि०। २. ख. ग. च. छ. भो. ततः। ३. ग. भो. ओड्डा, च. उड्डा। ४. भो. च। ५. ग. व र ल। ६. छ. इतः परं 'कामानन्दं करोति' इत्यधिकम्। ७. छ. [illegible]

तथा—

सर्वाकारो निराकारः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक्।
अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक् ॥ (ना. सं. १०.३)

इति भगवतो नियमः। एवं विवृत्यां पञ्चमपटले महामुद्राज्ञानं विस्तरेण वक्तव्यमिति। तेनात्र न विस्तारितमिति ॥ १२१-१२२ ॥

इदानीं षोडशानन्दानां चतुर्योगा उच्यन्ते—

कामानन्दं करोति प्रथममपि नृणां चक्षुरालोकनेन
पश्चात् पूर्णाप्रसङ्गे पुनरपि परमानन्दमेव स्वकाये।
ज्वाला बिन्दुं [226b] स्रवन्ती रमति च विरमानन्दवज्रेण पद्मे
ओट्टा बिन्दुत्रयान्तेऽक्षरगतसहजानन्दवज्रं करोति ॥१२३॥

कामानन्दस्तु कम्पाक्षरमपि च चतुष्केण योगः स एकः
पूर्णा शक्त्युद्भवो वै भवति च परमानन्द एवं द्वितीयः।
ज्वाला बिन्दुश्च घूर्मा पुनरपि विरमानन्द एवं तृतीय
ओट्टा नादश्च निद्रा भवति च सहजानन्द एवं चतुर्थः ॥१२४॥

[1]कामेत्यादिना। इह सर्वसत्त्वानां जाग्रत्स्वप्न[2]सुषुप्ततुर्यभेदेन कायवाक्चित्तज्ञानयोगः। ते चानन्दादिभेदेन षोडश। तत्र **कामा** इति कायानन्दः। **आनन्द** इति वागानन्दः। **कम्पा** इति चित्तानन्दः। [3]**अक्षरमि**ति संज्ञया ज्ञानानन्दः। एवं **चतुष्केण** आनन्द**योग एक** इति। तथा **पूर्णा** इति कायपरमानन्दः। अत्र परमानन्दादि[4]त्रयोऽन्तादिना वाक्चित्तज्ञानवज्राणि छन्दोवशादिति। अतः **परमानन्द** इति वाक्परमानन्दः, **उद्भव** इति चित्तपरमानन्दः, **शक्तिरि**ति ज्ञानपरमानन्दः। इति द्वितीयो योगः। **ज्वाला** इति कायविरमानन्दः, **विरमानन्द** इति वाग्विरमानन्दः, [5]**घूर्मे**ति चित्तविरमानन्दः, **बिन्दुरि**ति ज्ञानविरमानन्दः। इति तृतीयो योगः। तथा [6]**ओट्टा** इति कायसहजानन्दः, **सहजानन्द** इति वाक्सहजानन्दः, **निद्रे**ति चित्तसहजानन्दः, **नाद** इति ज्ञानसहजानन्दः। एवं चतुर्विधः कायः। निर्माणसम्भोगधर्मस्वाभाविकभेदेन वाक् चतुर्धा, तथा चित्तं चतुर्धा, ज्ञानं चतुर्धेति। एवं षोडशानन्दभेदा [7]विस्तरेण वक्ष्यमाणे वक्तव्याः। इति षोडशान्तं सहजमिति नियमः ॥ [227a] १२३-१२४ ॥

१. 'कामेत्यादिना' नास्ति। २. क. ग. प्रसुप्त। ३. च. ग. छ. अक्षर इति। ४. छ. त्रयः कान्ताः। ५. भो. च. घूर्णेति, ग. घूरमेति। ६. क. च. ओढा, ग. भो. ओड्डा। ७. ग. च. वक्ष्यमाणे विस्तरेण।

इदानीं कर्ममुद्राविशुद्धिरुच्यते—

माता चित्तेन चिन्त्या भवति च भगिनी स्पर्शनालिङ्गनेन
पुत्री वज्रप्रवेशे सकरणसुरते भागिनेया तथैव ।
भार्या बिन्दुप्रपाते त्वपरकुलगता योगिनी नष्टरागे
एताः षड् योगमुद्राः क्षितिजलहुतभुग्वायुखोच्छेदभावाः ॥१२५॥

5

[1]मातेत्यादिना। इह सर्वतन्त्रेषु मात्रादिमुद्राः साधारणेनोक्ता योगिनामनु-[2]रागाय। सा च बोधिचित्तस्थिरीकृतानाम्, नान्येषां [3]लोकव्यवहारिका स्त्री। अवस्था-भेदेन मातृकाद्या भवन्ति। इह यदा योगी स्त्रीचिन्तां करोति, तदा **चित्तेन चिन्त्या** सती **माता भवति, भगिनी** [4]**स्पर्शेन**। **पुत्री वज्रप्रवेशेन** भवति। **सकरणसुरते** सति **भागिनेया** भवति। **भार्या बिन्दुप्रपाते** सति। **अपरकुलगता** चण्डाली **योगिनी नष्टरागे** [5]सति विरागाद्भवतीति। **एताः षड् योगमुद्राः** पृथिव्यादयो योगिनीनाम्। इह प्रथमं पृथ्वीधातुक्षोभः। एवं तोयतेजोऽनिलाकाशधातूनां क्षोभः। क्षुब्धानां च्यवनम्। अतः **क्षितिजलहुतभुग्वायुखोच्छेदभावा** अवस्थाः षडिति। एवं सव्यावसव्ये पञ्चमण्डल-क्षयोऽपि च्यवनकाले वेदितव्यो मात्राविशुद्धयेति। चक्रीकुण्डलकण्ठिकारुचकमेखला-भस्मविशुद्धया मुद्रा योगिनामिति, तथा दानादिषट्पारमिताविशुद्धया इति नियमः॥१२५॥

10

15

इदानीं कायादिमुद्रात्रयमुच्यते—

अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीय
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा ।
रागाऽरागान्तगाद्या परमगुणनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सा सुमाता भवति दशविधा श्रीगुरोर्वक्त्रमेषा ॥१२६॥
[227b]

20

अब्ज इत्यादिना। इह सर्वतन्त्रेषु बाह्ये नेयार्थेन ललाटे कायमुद्रा, कण्ठे वाङ्मुद्रा, हृदये चित्तमुद्रेति। नीतार्थेन पुनः **अब्जे वज्रप्रवेशो** वज्रस्य सदोत्थानं कायमुद्रा, **शिखिनि च मरुतो** मध्यनाड्यां प्राणवायोः प्रवेशो वाङ्मुद्रा। [6]**बिन्दुपात-**

25

१. क. 'मातेत्यादिना' नास्ति, ग. मात्रे०, भो. Sems Kyi Ses Pa La Sogs Pas (चित्तेत्यादिना)। २. ख. ग. च. छ. ०रागणाय। ३. ग. भो. 'अन्येषां' इत्यधिकम्। ४. ख. ग. च. छ. स्पर्शनेन। ५. ग. सत्यविरा०। ६. भो. Thig Le Mi Lhuṅ (बिन्दुपात)।

श्चित्तमुद्रा। **एतद्योगत्रयस्य** मध्यमाश्रितस्य **कायवाक्चित्तमुद्रा** यथासंख्यं भवन्ति। तदुपरि **रागाऽरागान्तगाद्येति**। रागः शुक्लपक्षः, तस्यान्तगा; अरागः कृष्णपक्षः, तस्याद्या। एवं रागाऽरागान्तगाद्या षोडशकला स्थापनीया यावन्न च्यवति तावत् सा **परमगुणनिधि**रक्षरसुखदायिका। **योगगम्या चतुर्थी** षडङ्गयोगेन गम्या योगिनाम्, नान्येषाम्। **मुद्राणां** पूर्वापराणां नवानां **सा सुमा**ता जननी गर्भोत्पाद-कालादामरणान्तं **भवति**। **दशविधा** सा धूमादिभेदेन दानादिपारमिता **श्रीगुरोर्व**ज्र-सत्त्वस्य **वक्त्रमेषा** ज्ञानवक्त्रं चतुर्थमित्यर्थः। स्वाभाविककायधर्मिणी सेति नियमः।

T 403

5

एवं शिष्यस्य सेकार्थं मुद्रालक्षणं प्रतिपादयित्वा गणचक्राय नियमं ददाति गुरुः। तत्र षट्त्रिंशत् कुलदेवतीर्निमन्त्रयेत्। ततो दिवाकाले कुमारकुमारिकाणां दशकं पायसादिमधुराहारेण भोजयित्वा दक्षिणां दत्त्वा विसर्जयेत्। ततः सप्तघटिकायां भिक्षुभिक्षुणीसङ्घं [1]सन्तर्पयित्वा निरामिषैर्मधुराहारैर्बुद्धप्रमुखं कृत्वा संघाय दक्षिणां दत्त्वा [2]महार्घं सङ्घविहारे प्रवेश्य ततो विजने गृहे निश्छिद्रे वीरवीरेश्वरीणां गणचक्र-विधानेन स्थानानि [3]विचिन्तयेदिति।

10

अत्र विभवानुरूपेण नायको गुरुः प्रज्ञोपायात्मको मध्ये, चतुर्दिग्विभागे चतस्रो योगिन्यः। मध्ये डोम्बी, पूर्वे शूद्री, दक्षिणे क्षत्रिणी, उत्तरे ब्राह्मणी, पश्चिमे वैश्येति पञ्चात्मको गणनायकः। आसामासनं नरचर्म श्वचर्म अश्वचर्म [4]गोचर्म गजचर्मेति। ततो द्वितीयं विदिक्षु ईशाने मूत्रभाण्डम्, वायव्ये विड्भाण्डम्, नैर्ऋत्ये रक्तभाण्डम्, [5]आग्नेय्यां मज्जाभाण्डमिति।

15

ततो द्वितीयपरिमण्डले चित्तचक्रस्थाने पूर्वे कंशकारी, दक्षिणे वेणुनर्तकी, उत्तरे मणिकारी, पश्चिमे रौद्राक्षी, आग्नेय्यां शालिनी, नैर्ऋत्यां शौण्डिनी, ऐशान्यां [228a] हेमकारी, वायव्यां मालाकारीति योगिन्यष्टकम्। आसामासनानि यथासंख्यं मेषचर्म-अरण्याश्वचर्म-उष्ट्रचर्म-[6]खट्टसिंहचर्म-अजचर्म-हरिणचर्म-खरचर्म-शूकरचर्माणि।

20

ततस्तृतीयपरिमण्डले वाक्चक्रस्थाने पूर्वे [7]खट्टिनी, आग्नेय्यां कुम्भकारी, दक्षिणे कन्दुकी, नैर्ऋत्ये गणिका, पश्चिमे शिबिका, वायव्ये कैवर्ती, उत्तरे नटी, ईशाने रजकीति[8] योगिन्यष्टकम्। आसामासनानि कुम्भीरचर्म, कपर्दक[9]पुञ्जम्, कर्कटास्थिपुञ्जम्, शुष्क[10]मत्स्यम्, मकरचर्म, दर्दुरचर्म, कूर्मकरोटकम्, शङ्ख इति यथा-संख्यम्।

25

१. भो. Yaṅ Dag Par mChod Ciṅ (सम्पूजयि०) २. ख. च. छ. भो. महार्घ-सङ्घं, ग. महासङ्घं। ३. ग. च. भो. 'वि' नास्ति। ४. क. 'गोचर्म' नास्ति। ५. क. ख. अग्नेयां। ६ ग. षट, च. खड्, भो. ḥDam Seṅ (मण्डूकः ?)। ७. ग. च. भो. खट्टिकी। ८. क. ख. छ. 'इति' नास्ति। ९. च. 'क' नास्ति। १०. छ. मांसं।

ततश्चतुर्थपरिमण्डले कायस्थाने पूर्वे लोहकारी, दक्षिणे लाक्षाकारी, पश्चिमे कोषकारी, उत्तरे तैलिनी, आग्नेय्यां वेणुकारी, नैर्ऋत्ये काष्ठकारी, वायव्ये चर्मकारी, ईशाने [1]नापितिनीत्यष्टकम्। [2]आसामासनानि गण्डचर्म-व्याघ्रचर्म-ऋक्षचर्म-नकुलचर्म-चमरीचर्म-जम्बुकाचर्म-[3]उदचर्म-विडालचर्माणीति।

ततः पञ्चमे परिमण्डले श्मशानस्थाने पूर्वे [4]म्लेच्छा, दक्षिणे हड्डी, पश्चिमे मातङ्गी, उत्तरे तापिनी, आग्नेय्यां वर्वरी, नैर्ऋत्ये पुक्कसी, वायव्ये भिल्ली, ईशाने शबरी इत्यष्टौ प्रचण्डाः। आसामासनानि गोधाचर्म-मूषकचर्म-शालि[5]जातचर्म-कपिचर्म-शशकचर्म-शल्लकीचर्म-[6]इसुकपशुचर्म-कृकलासचर्माणीति। [7]एषां चर्मणामभावे पूर्वे आग्नेय्यां श्वचर्म, दक्षिणे नैर्ऋत्यामश्वचर्म, पश्चिमवायव्यां गजचर्म, उत्तरेशाने गोचर्मेति। मध्ये नरचर्म। एवमासनानि दत्त्वा योगिनीर्निवेशयेत्। एभिश्चर्मभिः पतुलिकां दापयेत्। तथा करोटकानि पूर्वे शुक्तिपुटिका, अग्नौ तथा, दक्षिणे नैर्ऋत्ये नारिकेलकरोटकम्, पश्चिमे वायव्ये [8]शरावः, उत्तरेशाने नरकपालम्, मध्ये दारुपात्रमिति। ततो मद्यादिकं दत्त्वा भक्ष्यभोज्यादिकं प्रदीपसहितं वक्ष्यमाणं दशप्रकारं तोयार्घादिकं दत्त्वा मण्डलं कृत्वा शिष्यः कर्मवज्रिभिः सार्धं पूजाद्रव्यं ढौकयेत्। इत्येवं गणचक्रे स्थानकुलनियमः ॥१२६॥

प्रज्ञामाता सुमाता त्रिभुवनजननी लोचनाद्या भगिन्यः
षड् वज्रा भागिनेयाः पशुजनभयदा नप्तरश्चर्चिकाद्याः।
चक्रस्थाः[228b] सर्वकालं स्वकुलभुविगता योगिभिः सेवनीयाः
क्षेत्रे पीठे श्मशाने न सजनविजने मोचनीयाः कदाचित् ॥१२७॥

ततः पञ्चमपटलोक्तविधिना संचारः कर्तव्यः, मैथुनं चेति। [9]ततः संचारे **प्रज्ञामाता** मध्ये गणनायिका सा **सुमातेति** डोम्बी चण्डाली[10] चेति। गणचक्रे सर्वत्र स्थितानां [11]योगिनीनां **लोचनाद्या**श्चतस्रो [12]यो(भ)गिन्यः, शब्दवज्राद्याः **षट्**, नीला रौद्राक्षी द्वे **भागिनेयिके**। **पशुजनभयदा नप्तरश्चर्चिकाद्या** अष्टौ [13]ताश्च**चक्रस्थाः सर्वकालं** संचारेणागताः **स्वकुलभुविगता योगिभिः सेवनीयाः**। **पीठे क्षेत्रे** मेलापके **श्मशाने** द्वादशभूम्यां गताः **सेवनीयाः**, [14]**सजने** ग्राममध्ये गणचक्रे बाह्ये **विजने न मोचनीया कदाचिदिति** नियमः। सर्वास्ता नग्ना विवस्त्रा मुक्तकेशाः [15]करोटकर्तिकाहस्ताः संचरन्ति ॥१२७॥

१. च. नापितीनामष्ट। २. क. ख. छ. 'आसाम्' नास्ति। ३. च. भो. उद्र, ग. उद्र। ४. ग. च. म्लेच्छी। ५. ग. च. छ. जातक। ६. भो. ईश्रुक। ७. ग. तत एवं। ८. ग. च. शरावम्। ९. ग. च. तत्र। १०. ग. च. चण्डालिनी। ११. क. ख. ग. छ. योगिनां। १२. ग. च. भो. भोगिन्यः। १३. ग. च. भो. एता। १४. च. स्वजने। १५. ग. च. करोटकर्ति, भो. Thod Pa (कपालकर्ति)।

श्रीवज्री श्रीजनेता त्रिभुवनजनको भ्रातरः सर्वबुद्धा
नेत्राद्या भ्रातृपुत्रास्त्वपरबहुविधा नप्तरो नप्तृपुत्राः।
चक्रस्था योगिनीभिः स्वकुलभुविगता सेवनीयाः प्रहृष्टाः
क्षेत्रे पीठे श्मशाने न सजनविजने मोचनीयाः कदाचित् ॥१२८॥

एवं **श्रीवज्री** आचार्यो डोम्ब इति **श्रीजनेता**, स एव चण्डालः, नायकत्वात्। डोम्बी चण्डाली, उच्छिष्टभक्षणेन, तन्मैथुनकरणादिति। एवं कुलविशुद्ध्या योगिना स्वमात्रादयो गोत्रजा आगताः स्वभुवि न वर्जनीयाः। न तत्र लज्जा कार्येति [1]योगिभिः श्रीवज्री श्रीजनेता **त्रिभुवनजनको** वज्रसत्त्ववद् द्रष्टव्यः। **भ्रातरः सर्वबुद्धाः** शूद्रादयो हड्डिकादयः। **नेत्राद्या** भागिनेयाः कंसकारादयः। **नप्तरो**ऽष्टौ [2]हड्डिकादयः। **नप्तृपुत्रा** लोहकारादयः। **न सजने न विजने मोचनीया** योगिनीभिरिति परस्परचित्तविशुद्धिनियमः। [229a] ॥ १२८।

या काचिद्वज्रपूजां ददति हि वनिता पुण्यहेतोस्त्रिशुद्ध्या
आचार्यायेन्दुवक्त्रा कुवलयनयना दिव्यगन्धानुलिप्ता।
यत्पुण्यं भूमिदाने गजतुरगरथानेककन्याप्रदाने
तस्यास्तत्सर्वपुण्यं भवति नरपते स्वस्थचन्द्रार्कसीम्नः ॥१२९॥

तत्र गणचक्रे **या काचिद्वज्रपूजां ददति हि वनिता पुण्यहेतोस्त्रिशुद्ध्या आचार्याय** सवीराय **चन्द्रवक्त्रा कुवलयनयना दिव्यगन्धानुलिप्ता**। **यत्पुण्यं भूमिदाने गजतुरगरथानेककन्याप्रदाने** भवति, **तस्या** योगिन्यास्**तत्सर्वपुण्यं भवति**। **नरपते** इत्यामन्त्रणे[3]। **स्वस्थचन्द्रार्कसीम्नो**ऽक्षयमित्यर्थः ॥१२९॥

इदानीं तारादिकुलानि शूद्रादिवर्णानामुच्यन्ते –

तारा शूद्री चतुर्धा भवति भुवितले पाण्डरा क्षत्रिणी च
क्ष्मा वैश्या त्रिप्रकारा द्विजजनकुलजा सप्तधा मामकी स्यात्।
शब्दाख्या कांस्यकारी खलु रसकुलिशा शौण्डिनी रूपवज्रा
सम्यग् वै हेमकारी भवति नरपते गन्धवज्रा धरण्याम् ॥१३०॥

मालाकारी प्रसिद्धा प्रकृतिगुणवशात् स्पर्शवज्रांशुकारी
वज्रान्ता धर्मधातुर्भवति हि मणिकारी च लोके प्रसिद्धा।

१. ग. च. भो. योगिनीभिस्तथा। २. ग. भो. खट्टि, ख. छ. खड्डि, च. खडि।
३. ग. आमन्त्रणम्।

चामुण्डा खट्टिकी स्यात् प्रकृतिगुणवशाद् वैष्णवी कुम्भकारी
वाराही कन्दुकी वै भवति च गणिका षण्मुखी सीविकैन्द्री ॥१३१॥

तारेत्यादिना। इह मर्त्यलोके कर्मानुरूपेण कुलम्। तत्र शूद्री चतुर्विधा—भूमिचसकः, गोपालः, मृत्तिकाकर्मकरः, गृहादीनां स्थपतिक इति। एवं **तारा शूद्री** [1]**चतुर्विधा भवति भुवितले। पाण्डरा क्षत्रिणी** चतुर्धा [2]क्षत्रधर्मेण—पदातिः, [3]अश्वारोहो, गजारोहः, रथारोहश्चेति। **क्षमा** लोचना **वैश्या त्रिप्रकारा** वैश्यधर्माद् वणिक् कायस्थो वैद्यश्चेति। **द्विजजनकुलजा मामकी सप्तधा** ब्राह्मणी द्विज[4]धर्मतः—ऋक्शाखा यजुःशाखा साम[229b]शाखा अथर्वणशाखा वानप्रस्थपत्नी यतिपत्नी मुक्तपत्नीति सप्तधा। एवं **शब्दवज्रा कांस्यकारी। रसवज्रा शौण्डिनी। रूपवज्रा सुवर्णकारी। गन्धवज्रा मालाकारी। स्पर्शवज्रा** तन्त्रवायी। **धर्मधातुवज्रा मणिकारी।** रौद्राक्षी कूपकर्त्री। अतिनीला वेणु[5]नर्तकी। डोम्बनटीति। तथा **चामुण्डा खट्टिकी। वैष्णवी कुम्भकारी। वाराही कन्दुकी**[6]। कौमारी वेश्या। **ऐन्द्री सीविका** ॥१३०-१३१॥

ब्रह्माणी धीवरी स्यात् क्षितितलनिलये चेश्वरी नर्तकी स्यात्
लक्ष्मीः पूर्णेन्दुवक्त्रा भवति च रजकी चाष्टमी भूतयोनिः।
रङ्गाकारी च जम्भी भवति नरपते स्तम्भकी कोषकारी
मालाख्या तैलपीडा सुबृहदतिबला लोहकारी चतुर्थी ॥१३२॥

ब्रह्माणी कैवर्ती। रौद्री नटी। **लक्ष्मी** रजकीत्यष्टौ। तथा **जम्भी** लाक्षाकारी। **स्तम्भी** कोशकारी[7]। [8]मालिनी तैलिनी। **अतिबला लोहकारी** ॥ १३२ ॥

मारीची चर्मकारी प्रभवति भृकुटी काष्ठकारी तथैव
श्रीबुद्धा नापिती च क्षितिभुवनगता शृङ्खला वंशकारी।
वज्राक्षी कूपकर्त्री भवति च दशमी वेणुनृत्यातिनीला
क्रोधांशा क्रोधजाताः खलु दशवनिता योगिना पूजनीयाः ॥१३३॥

मारीची चर्मकारी भृकुटी काष्ठकारी चुन्दा नापिती वज्रशृङ्खला वेणुकारीत्यष्टौ क्रोधजातीयाः ॥ १३३ ॥

म्लेच्छा श्रीश्वानवक्त्रा भवति नरपते हड्डिनी शूकरास्या
मातङ्गी जम्बुकास्या क्षितितलनिलये तापिनी व्याघ्रवक्त्रा।

---

१. च. चतुर्धा। २. ग. क्षत्रि। ३. क. ख. ग. च. छ. अश्ववारः। ४. क. ख. ग. च. छ. कर्मतः। ५. ग. च. नटी, छ. वर्तकी। ६. च. कारीं। ७. क. 'स्तम्भी कोषकारी' [illegible] छ. भो. मालिनी।

का[230a]कास्या वर्वरी च प्रकटितनियता पुक्कसी गृध्रवक्त्रा
श्रीभिल्ली तार्क्ष्यवक्त्रा भवति हि शबरी चाष्टमोलूकवक्त्रा ॥१३४॥

श्वानास्या म्लेच्छा। शूकरास्या [1]**हड्डिनी। जम्बुकास्या मातङ्गी। व्याघ्रास्या तापिनी। काकास्या वर्वरी। गृध्रास्या पुक्कसी। गरुडास्या भिल्ली। उलूकास्या शबरी**त्यष्टौ प्रचण्डाः ॥ १३४ ॥

षट्त्रिंशद्वर्णभेदैः क्षितितलनिलये योगिनीनां कुलानि
पीठे क्षेत्रोपक्षेत्रे विषयपुरवरे श्रीवने संस्थितानि।
मूर्खाणां बन्धनानि प्रवरमहितले योगिनां सिद्धिदानि
चत्वारः षट् तथाष्टौ सह दश वसवश्चैकमेकं क्रमेण ॥१३५॥

एवं **षट्त्रिंशद्वर्णभेदैः क्षितितलनिलये योगिनीनां कुलानि पीठे क्षेत्रोपक्षेत्रे विषयपुरवरे श्रीवने संस्थितानि। मूर्खाणां बन्धनानि प्रवरमहितले योगिनां सिद्धिदानी**ति। एषां पुनर्भेदाश्**चत्वारः** शूद्रादयः, **षट्** शब्दवज्रादयः, **तथाष्टौ** चर्चिकादयः, **दश** क्रोधभेदाः, तयोर्द्वौ शब्दादिषु प्रविष्टौ। **वसवो**ऽष्टभेदाः श्वानास्यादयः ॥ १३५ ॥

चत्वारो बुद्धभेदाः खलु पुन ऋतवो बोधिसत्त्वप्रभेदाः
क्रोधानां दिक्प्रभेदा क्षितितलनिलये प्रेतभेदास्तथाष्टौ।
दैत्यानां चाष्टभेदाः फणिभुवनगता योगिना वेदितव्या
एकैको विश्वभर्तुस्त्रिभुवननिलये व्यापकः श्रीकुलानाम् ॥१३६॥

एवं **चत्वारो बुद्धभेदाः,** षड् **बोधिसत्त्वप्रभेदाः,** [2]**प्रेतानामष्टभेदाः, क्रोधानां दश, दैत्यानामष्टभेदाः फणिभुवनगता** इति षट्त्रिंशद्भेदा [3]योगिनीनां **योगिना** [230b] **वेदितव्याः। एकैको** [4]**विश्वभर्तुस्त्रिभुवननिलये** सप्तत्रिंश[5]त्तमो **व्यापकः श्रीकुलाना**मिति ॥ १३६ ॥

पातालेष्वष्टचण्डा दशदिशिवलये क्रोधजा मर्त्यलोके
प्रेताख्याः प्रेतलोके सुरवरनिलये शब्दवज्रादिषट्कम्।
ब्रह्माण्डे श्रीचतस्रः प्रवरशिवपुरेऽप्येकमाता त्रिधातो-
र्विश्वं संहारयन्ति प्रकुपितवदनाः पालयन्त्येव तुष्टाः ॥१३७॥

---

१. ग. हट्टिनी, च. भो. हडिनी (ḥPhyag Pa Mo)। २. ग. क्रोध'''' दैत्य ''' प्रेत—अयं क्रमः। ३. भो. 'योगिनीनां' नास्ति। ४. क. ख. ग. च. छ. विश्वमातुः। ५. क. ख. च. छ. भो. शतिमः।

एवं **पातालेष्वष्टचण्डाः** श्वानास्यादयः। **दशदिशिवलये क्रोधजा मर्त्यलोके।** अष्टौ प्रेताख्याः प्रेतलोके। **सुरवरनिलये शब्दवज्रादिषट्कम्,** षट् कामावचराणाम्। **ब्रह्माण्डे श्रीचतस्रः,** ब्रह्मकायिकादीनां रूपिणां पृथ्वीकृत्स्नादिभाविता[1]नामरूपिणां शून्यधातुः। **प्रवरशिवपुरे एकमाता**[2] ज्ञानधातुः प्रज्ञापारमिता। एता **विश्वं** शरीरं **संहारयन्ति प्रकुपितवदनाः पालयन्त्येव तुष्टाः।** इति योगिनीकुलनियमः॥ १३७ ॥

इदानीं वज्रपूजानियमो योगिनां कर्ममुद्रासिद्ध्यर्थमुच्यते—

बाला वृद्धास्तरुण्यः समलिनतनवो ब्राह्मणी क्षत्रिणी च
वैश्या शूद्रान्त्यजा वा गतनयनकराश्छिन्नकर्णौष्ठनासाः।
आचार्यैर्बोधिहेतोः सकरुणहृदयैः पूजनीयाः समस्ताः
प्रज्ञोपायेन राजन् व्यपगतकलुषैर्बोधिचर्यानुरूढैः ॥१३८॥

बालेत्यादिना। इह गणचक्रे एकान्ते भावनाकाले वा विजने **बाला वृद्धास्तरुण्यो** वा **समलिनतनवो** वा **ब्राह्मणी** वा **क्षत्रिणी** वा **वैश्या** वा **शूद्रा** वा [3]**अन्त्यजा** वा, **गतनयनकरा** वा, **छिन्नकर्णा** वा, छिन्न**नासा** वा, **छिन्नौष्ठा** वा। इत्याद्यङ्गविकला **आचार्यै**र्योगिभि[231a]र्वा **बोधिहेतोः** परमकरुणया सेवनीयाः **समस्ताः, प्रज्ञोपायात्मकेन** योगेन, **व्यपगतकलुषैः** मानादिदोषमुक्तैः, **बोधिचर्यानुरूढैः** [4]सर्वसङ्गबाह्यगृहद्वन्द्वमुक्तैरिति भगवतो नियमः॥ १३८ ॥

इदानीं वज्र[5]पूजायां चतुर्मुद्रासंज्ञोच्यते—

आदौ स्त्री गुह्यमुद्रा भवति हि समये श्रीनरो दिव्यमुद्रा
क्रीडाङ्गं कर्ममुद्रा भवति समसुखैर्द्वीन्द्रियैर्धर्ममुद्रा।
दूतीनां पञ्चगन्धास्तनुकमलगता जातयः पञ्च तासां
कस्तूरीपद्ममूत्राः प्रकृतिगुणवशादामिषः पूतिगन्धः ॥१३९॥

आदावित्यादिना। इह **समय**मेलापके चतुर्धा संज्ञा। **आदौ** या प्रज्ञा **स्त्री** सा **गुह्यमुद्रो**च्यते। **श्रीनरो** योगी उपायो **दिव्यमुद्रा भवति समये**। तयोर्मेलापके **क्रीडाङ्गं** चुम्बनादिकं **कर्ममुद्रो**च्यते। **द्वीन्द्रियसंयोगे समसुखैर्धर्ममुद्रो**च्यते। [इति] चतुर्धा समय[6]भाषा वज्रपूजायामुक्ता[7]।

इदानीं दूतीनां शरीरे वा योनौ वा गन्धलक्षणमुच्यते—दूतीनामित्यादिना। इह **दूतीनां पञ्चगन्धा** भवन्ति **तनुगताः कमलगता** वा। एवं **जातयः पञ्च तासां**

१. च. भो. ०कानां। २. छ. माता। ३. क. अन्यजा। ४. ग. सर्वमङ्गल, च. भो. सर्वा०। ५. छ. [illegible] ६. [illegible] भाषा। ७. ग. च. मुक्तेति।

भवन्ति। तत्र **कस्तूरीगन्धः, पद्मगन्धः, मूत्रगन्धः, प्रकृतिरा**काशादिः, तस्य **गुणवशाद् आमिषः पूतिगन्धः**॥ १३९ ॥

श्रीर्भद्रा पद्मिनी वै भवति जलचरी चित्रिणी हस्तिनी च
श्रीस्तारा पाण्डराख्या भवति कुलवशान्मामकी लोचना च।
योगी सिंहो मृगोऽश्वो भवति च वृषभः कुञ्जरो जातिभेदा-
दक्षोभ्योऽमोघसिद्धिर्विमलमणिकरः पद्मपाणिश्च चक्री ॥१४०॥

यथासंख्यं **श्रीर्भद्रा पद्मिनी** शङ्खिनी **चित्रिणी हस्तिनी**ति। आसां कस्तूरिकादिगन्धो यथाक्रमेण भवति। श्रीरिति वज्रधात्वीश्वरी **श्रीः**। [1]सुभद्रा **तारा** पद्मिनी। **पाण्ड**[231b]**रा** शङ्खिनी। **मामकी**[2] चित्रिणी। **लोचना** हस्तिनी च। एवं **योग्य**पि पञ्चधा, **सिंहो मृगोऽश्वो वृषभः कुञ्जरो जातिभेदात्। अक्षोभ्यः** सिंहः। **अमोघसिद्धिः** मृगः। रत्नसंभवोऽश्वः। अमिताभो वृषभः। **वैरोचनो गज** इति। ततः पूर्ववद् गन्धनियमो जातिनियमश्चेति॥ १४० ॥

इदानीं शरीरलक्षणमुच्यते—

तन्वङ्गी सूक्ष्मकेशा मृदुकरचरणा वत्सला श्रीसुभद्रा
किञ्चित् तन्वी प्रलम्बा त्वचपलनयना पद्मिनी वक्रकेशा।
निर्लज्जा तीव्रकामा बहुकलहरता शङ्खिनी स्वल्पकेशा
दीर्घा सर्वाङ्गपूर्णा खलु लघुविषया चित्रिणी दीर्घकेशा ॥१४१॥

तन्वङ्गीत्यादिना। इह **सुभद्रा तन्वङ्गी सूक्ष्मकेशा मृदुकरचरणा** सत्त्व**वत्सले**ति वज्रधात्वीश्वरी। एवं **किञ्चित् तन्वी प्रलम्बाऽचपलनयना पद्मिनी वक्रकेशे**ति तारा। तथा **निर्लज्जा तीव्रकामा बहुकलहरता शङ्खिनी स्वल्पकेशे**ति पाण्डरा। **दीर्घा सर्वाङ्गपूर्णा खलु लघुविषया चित्रिणी दीर्घकेशे**ति मामकी॥ १४१ ॥

स्थूला खर्वा दृढाङ्गी सुकठिनविषया हस्तिनी स्थूलकेशा
दूतीनां शुद्धजातिः क्वचिदिह हि भवेत् सर्वदा मिश्रजातिः।
सिंहश्चैकान्तवासी विषयविरहितो निर्भयस्त्यागशीलः
सारङ्गः शीघ्रगामी क्षरलघुविषयस्त्रस्तचित्तोऽतिभीतः ॥१४२॥

एवं **स्थूला खर्वा दृढाङ्गी सुकठिनविषया हस्तिनी स्थूलकेशे**ति लोचना। एवं **दूतीनां शुद्धजातिः क्वचिदिह हि भवेत् सर्वदा मिश्रजातिः**। [इति] षट्त्रिंशद्दूतीनां

२. ... 'मामकी' नास्ति।

नियमः। इदानीं योगिनां लक्षणमुच्यते—**सिंहश्चैकान्तवासो विषयविरहितो निर्भयस्त्यागशीलः**, अक्षोभ्य इति। **सारङ्गः शी[232a]घ्रगामी क्षरलघुविषयस्त्रस्तचित्तोऽतिभीतः**, अमोघसिद्धिरिति ॥ १४२ ॥

अश्वो वै कामलोलो भवति परवशो मूत्रगन्धः परार्थी
स्तब्धाक्षो मन्दगामी प्रकृतिगुणजडो मत्स्यगन्धो वृषः स्यात् ।
कामी वै मन्दगामी भवति खलु गजः पूतिगन्धोऽतिमूर्खः
षट्त्रिंशद्भेदभिन्नाः क्षितितलनिलये वर्णगन्धस्वभावाः ॥१४३॥

अश्वो वै कामलोलो भवति परवशो मूत्रगन्धः परार्थीति रत्नसंभवः। **स्तब्धाक्षो मन्दगामी प्रकृतिगुणजडो मत्स्यगन्धो वृषः स्या**दित्यमिताभः। **कामी वै मन्दगामी भवति खलु गजः पूतिगन्धोऽतिमूर्खं** इति वैरोचनः। इत्येवं क्वचित् शुद्धजातिः। योगिनां सर्वत्र मिश्रजातिः। एवं **षट्त्रिंशद्भेदभिन्नाः क्षितितलनिलये वर्णगन्धस्वभावा** [1]अन्योन्य[2]मिश्रजाः सन्तः(न्ति) ॥ १४३ ॥

पूजार्थं कामशास्त्रं बहुगुणनिलयं योगिना वेदितव्यं
नातुष्टा सिद्धिदा स्यात् सुरतमपि गता योगिनी योगिनश्च ।
दिव्या देवी पिशाची भवति च मनुजा राक्षसी नागिनी च
दिव्या श्रीधर्मधातुर्भवति गुणवशाच्छब्दवज्रा च देवी ॥१४४॥

पैशाची गन्धवज्रा भवति च मनुजा रूपवज्रा नरेन्द्र
क्रूरा सा राक्षसी या खलु रसकुलिशा नागिनी स्पर्शवज्रा ।
दिव्या सत्त्वोपकारी व्रतनियमरता संयमध्यानशीला
देवी भोगानुरक्ता प्रभवति मलिनोच्छिष्टरक्ता पिशाची ॥१४५॥

[232 b]

अथ[3] तासां दूतीनां **पूजार्थं कामशास्त्रं बहुगुणनिलयं योगिना वेदितव्य**मिति। कुतः? यतो **नातुष्टा सिद्धिदा स्यात् सुरतमपि गता योगिनी योगिनश्चे**ति, अतो लौकिकसिद्धयर्थं कामशास्त्रं ज्ञातव्यमिति नियमः। इदानीं दूतीनां धर्मधात्वादिकुलमुच्यते—दिव्येत्यादिना। इह **दिव्या धर्मधातुः, देवी शब्दवज्रा, पिशाची गन्धवज्रा, मनुजा रूपवज्रा,** [4]**राक्षसी रसवज्रा, नागिनी स्पर्शवज्रे**ति। तत्र **दिव्या सत्त्वोपकारी व्रतनियमरता संयमध्यानशीला देवी भोगानुरक्ता प्रभवति मलिनोच्छिष्टरक्ता पिशाची** ॥ १४४-१४५ ॥

---

१. ग. अन्योन्याः। २. ग. च. मिश्राः। ३. ग. च. अत आसां। ४. क. 'राक्षसी रसवज्रा' नास्ति।

नारी कामानुरक्ता नररुधिररता राक्षसी मारचित्ता
क्षीराशा नागिनी च प्रवरमहितले योगिना पूजनीया ।
एवं चान्ये स्वभावाः प्रकृतिगुणवशाद् योगिना वेदितव्याः
षट्त्रिंशद्भेदभिन्नाः क्षितितलनिलये खेचरीभूचरीणाम् ॥१४६॥

नारी कामानुरक्ता नररुधिररता राक्षसी मारचित्ता क्षीराशा नागिनी स्यात् **प्रवरभुवितले योगिना पूजनीया**। सर्वत्र पीठोपपीठा[1]दिकेष्विति नियमः। **एवं चान्ये** मिश्र**स्वभावाः प्रकृतिगुणवशाद् योगिना वेदितव्याः**, चर्चिकादीनामिच्छाप्रतीच्छास्वभावेन वक्ष्यमाणविधिना साधनापटले। एवं **षट्त्रिंशद्भेदभिन्नाः क्षितितलनिलये खेचरीभूचरीणाम्** ॥ १४६ ॥

इदानीं देशकस्य पाननियम उच्यते—

मद्यं प्रज्ञास्वभावं समधुजगुडजं धान्यजं वृक्षजं वा
मुद्राहीनः पिबेद् यः स भवति विषयी चावृतो मारवृन्दैः ।
तस्मात् प्रज्ञाधिमुक्तं कलुषमलहरं मन्त्रिणां सिद्धिदं स्या-
न्मुद्रां यां काञ्चिदस्मिन् समयविरहितां पानहेतोः प्रकुर्यात् ॥१४७॥

[233a]

मद्यमित्यादिना। इह सर्वं **मद्यं प्रज्ञास्वभावं मधुजं**[2] **गुडजं धान्यजं वृक्षजं वा**। अन्यद्वा **मुद्राहीनः पिबेद् य** आचार्यः, **स भवति विषयी**, मद्यप इत्यर्थः। **आवृतो मारवृन्दै**र्भवति। **तस्मात् प्रज्ञा**[3]**धिमुक्तं कलुषमलहरं मन्त्रिणां सिद्धिदं स्या**दिति। **मुद्रां यां काञ्चिदस्मिन्** मद्यपान[4]काले मण्डले गणचक्रं विना **समयविरहिता**मपि **पानहेतोः प्रकुर्यात्**। वज्रपूजार्थमिति नियमः ॥१४७॥

येन चतुर्थः समयो भवति सेवितो योगिनां (ना), तस्य [5]गुणा उच्यन्ते—

एको राजन् शशाङ्को मरणभयहरः सेवितः सर्वकालं
प्रज्ञाधर्मोदयस्थो दिनकरसहितः किं पुनर्योगयुक्तः ।
अक्षोभ्योऽमोघसिद्धिर्जिनवरसहितः श्वाऽश्वगोहस्तियुक्तः
क्लेशानां वज्रदण्डः पशुजनभयदश्चाष्टमोऽन्योऽतिरौद्रः ॥१४८॥

एको राजन् शशाङ्को मरणभयहरः [6]**सेवितः सर्वकालम्** अच्युतसुखेन। **प्रज्ञाधर्मोदयस्थो दिनकरसहितो** बोधिचित्तधातुर्बाह्ये भक्षितो मरणभयहरः। **किं पुनर्योग-**

---

१. ग. दिष्विति। २. ग. ०जमिक्षु। ३. क. ख. ०धियुक्तं। ४. ग. पाके। [illegible] 'सेवितः [illegible]भयहरः' नास्ति।

युक्तोऽ[1]च्युतीकृत इत्यर्थः। **अक्षोभ्यो** मूत्रम्, **अमोघसिद्धि**र्मज्जा, **जिनवरो** वैरोचनः, तेन युक्तो मरणभयहरः। तथा **श्वाऽश्वगोहस्तियुक्तः, क्लेशानां वज्रदण्डः पशुजन-भयदश्चाष्टमोऽन्योऽतिरौद्रः**, महामांससमय इति। एवं विण्मूत्रमज्जा पञ्चप्रदीपा अष्टसमयाः, द्वौ चन्द्रादित्यौ। एवं दशविधा पूजा पञ्चामृतैः पञ्चप्रदीपैर्भवति गणचक्र इति मद्यमांसमैथुनामृतभक्षणमिति समयचतुष्टयं कर्तव्यमाचार्येण। अन्यथा मारवृन्दै-र्गृह्यत इति तथागतनियमः ॥१४८॥

इदानीं षट्त्रिंशत्समया उच्यन्ते [3]योगिनीनां रूपपरिवर्तेनेति—

श्वाऽश्वो गोहस्तिमेषास्त्वजहरिणखराः शूकरोऽष्ट्रौ दिगेते
कुम्भीराखुः कुलीरो झष इति मकरो दर्दुरः कूर्मशङ्खौ ।
गण्डो व्याघ्रश्च ऋक्षः सनकुलचमरी जम्बुकोद्रो विडाल
आरण्यश्वा ससिंहो वसुदशकमिदं भूतजं क्रोधजं च ॥१४९॥

[233b]

श्वाऽश्वेत्यादिना। इह **श्वा** तारा। **अश्वः** पाण्डरा। **गौर्मा**मकी। **हस्ती** लोचना। वज्रधात्वीश्वरी सर्वरूपधारिणीति। [4]**मेषः** शब्दवज्रा। **अजा** स्पर्शवज्रा। **हरिणी** रसवज्रा। [5]**खरो** रूपवज्रा। [6]**शूकरो** गन्धवज्रा। **उष्ट्रो** धर्मधातुवज्रा इति। **दिगेते** दश बुद्धबोधिसत्त्वकुलभेदेन। तथा **कुम्भीरः** [7]चर्चिका। **आखुः** वैष्णवी। **कुलीरो** वाराही। **झषः** कौमारी। **मकर** ऐन्द्री। **दर्दुरो** ब्रह्माणी। **कूर्म** ईश्वरी। **शङ्खो** महालक्ष्मीति भूतजाष्टकम्। [8]**गण्डो** जम्भी। **व्याघ्रः** स्तम्भी। [9]**ऋक्षो** [10]मानिनी। **नकुलो**ऽतिबला। **चमरी** वज्रशृङ्खला। [11]**जम्बुको** भृकुटी। **उद्रः** [12] चुन्दा। **विडालो** मारीची। [13]**आरण्यश्वा**ऽतिनीला। [14]**सिंहो** रौद्राक्षीति[15] दशकं [16]**क्रोधजम्** ॥१४९॥

गोधाखुः शालिजातः कपिरपि शशकःशल्लकीषु(षुः)कृकोऽष्टौ
मानी पक्षी शुकश्च प्रकटितजलधिः कोकिला शारिका च ।
लावः पारावतोऽन्यो वक इति चटकः चक्रवाकश्च हंसः
श्रीकुञ्चा कोकिलाक्षी रजकभगवती तित्तिरी सारसा च ॥१५०॥

---

१. क. ख. छ. भो. च्युत । २. भो. sGrol Ma lÑa (पञ्चताराः)। ३. क. ख. छ. भो. योगिनां। ४. भो. Lug Mo (मेषी)। ५. भो. Boṅ Mo (खरी)। ६. भो. Phag Mo (शूकरी)। ७. भो. Kumbhira (कुम्भीरा)। ८. भो. पाठे तु 'गण्डो अतिबला जम्भी व्याघ्री' इति क्रमः। ९. भो. Dom Mo (ऋक्षी)। १०. ग. माननी, छ. मारिणी। ११. भो. Ce sByaṅ Mo (जम्बुकी)। १२. ख. उद्रः, भोटपाठे तु 'उद्रः मारीची विडालो चुन्दा' इतिक्रमः। १३. क. ख. छ. मारेची। ख. ग. अरण्यो। १४. भो. Seṅ Ge Mo (सिंही)। १५. ग. 'इति' नास्ति। १६. ग. क्रोधजम्, छ. क्रोधजाः।

तथा **गोधा** [1]काकास्या, **मूषकः** शूकरास्या, **शालिजातको** जम्बुकास्या, **कपिरपि** व्याघ्रास्या, **शशक** [2]श्वानास्या, **शल्लकी** गृध्रास्या **इषुको** गरुडास्या, **कृकलासः** उलूकास्येत्य**ष्टौ** असुरजातीनां समयाः, रूपपरिवर्तनं च। एवं भूचरजलचर-समयनियमः।

इदानीं खेचरसमया उच्यन्ते—मानी इत्यादिना। इह श्वादि[3]चतुष्कं यथा तथा **मानी पक्षी** चातकः **शुकः कोकिला शारिके**ति, **प्रकटितजलधिश्च**त्वारः समया-स्तारादयः। तथा शब्दवज्रादयः षट्। **लावः पारावतः बकः** [4]**चटकः चक्रवाकः**[5] **हंसः** इति नियमः। तथा भूतजा समया अष्टौ। **कुञ्चा कोकिलाक्षी**, र[234a]जकी। **भगवती**ति[6] पोतकी, **तित्तिरी सारसा** ॥१५०॥

नीराविष्टो बलाका सहरसवसवो वेदितव्याः क्रमेण
काको गृध्रोऽप्युलूको मृगरिपुशिखिनौ कुक्कुटो भेद्रघाराः ।
याजी वृक्षारिरन्याः प्रभवति दशकं क्रोधजं क्रोधजातिः
नीलाक्षः श्रीचकोरस्त्वनिलगुदमुखो बुक्किपादोर्ध्वशायी ॥१५१॥

नीराविष्ट इति जलकाकः। **बलाके**ति। **वसवोऽष्टौ वेदितव्याः**। चामुण्डादीनां **क्रमेणे**ति। तथा [7]क्रोधजानां समया दश। **काकः**। **गृध्रः**। **उलूकः**। **मृगरिपुरि**ति मह[8]याजी। **शिखी कुक्कुटः**। **भेद्र** इति [9]संचाणः। **घार** इति चिल्ला। [10]**याजी वृक्षारी**ति [11]**क्रोधजं क्रोधजाति**र्जम्भ्यादिकं यथाक्रमेण। तथा श्वानास्याद्यष्टौ आसुरीणां समयाः। **नीलाक्षः**, **चकोरः** **अनिलो** [12]वाग्वुलिका, **गुदमुख** इति। [13]**बुक्की**ति दात्यूहः। **पादोर्ध्वशायी** टिट्टिभिका ॥ १५१ ॥

भेरुण्डश्चाम्बरीको भवति नरपते चाष्टमो दिव्यपक्षी
षट्त्रिंशज्जातिभेदाः क्षितिभुवनगता भूचरीखेचरीणाम् ।
पूजाकाले समस्ताः कुलगतसमया योगिना भक्षणीया
मूर्खो मोहात् कदाचित् त्यजति नरपते क्षिप्रनाशं प्रयाति ॥१५२॥

---

१ भो. Khyi gDoṅ Ma (श्वानास्या)। २. भो. Bya gDoṅ Ma (काकास्या)। ३. ग. चतुष्टयं। ४. क. ख. छ. 'चटकः' नास्ति। ५. ग. च. भो. ०वाकश्च। ६. ग. 'इति' नास्ति। ७. क. ख. क्रोधानां। ८. भो. Hor Pa Chen Po (महास्येन), क. ख. छ. पाजी। ९. भो. Sa Na Tsa Ka (संचक), छ. संचानः। १०. क. ख. छ. भो पाजी। ११. क्रोधराजं। १२. च वायु०, भो नास्ति। १३. ग. च. चुक्कीति।

१६

भेरुण्डः। **अम्बरीक** इति। **नरपते** काकास्यादीनामासुरीणां **भवति विध्य-पक्ष्यष्टकम्।** एवं **षट्त्रिंशज्जातिभेदाः क्षितिभुवनगता भूचरीखेचरीणां** द्वासप्तति-समयाः। **पूजाकाले समस्ताः कुलगतसमया योगिना भक्षणीयास्ते** पुनर्योगिनीभि-र्दत्ताः। **मूर्खो मोहात् कदाचिद्** गणचक्रादिके दत्तान् समयान् **त्यजति,** तदा **क्षिप्रं नाशं प्रयाति** जुगुप्साचित्तेनेति ॥ १५२ ॥

इदानीं शरीरावयवसमया उच्यन्ते—

दन्तैः केशैस्त्वगाद्यैः सपिशितसनहार्वस्थिबुक्कैश्च पद्मै-
र्यूकाभिर्लोमकीटैः प्रवरनरपते फुप्फुसैरन्त्रमेढ्रैः।
वीर्यैः पि[234b]त्ताम्बुपूयैर्विविधतनुगतैर्लोहितैः स्वेदमेदै-
रश्रुभ्यां खेटसिंहाणि(ण)जलमिव वसावर्णगन्धैश्च विष्ठैः ॥१५३॥

जिह्वाक्षिश्रोत्रनासा सशशिदिनकरैर्देवताः पूजनीयाः
षट्त्रिंशच्चाक्षराणि प्रकृतिगुणवशाद् बोधिपक्षाश्च धर्माः।
षट्त्रिंशद् धातुभेदाः सकलगुणगता जातयश्चिह्नमुद्राः
षट्त्रिंशद् योगतन्त्राण्यवनितलगतान्यत्र वै योगिनीनाम् ॥१५४॥

दन्तैरित्यादिना। **दन्तैः केशैः त्वग्भिः पिशितैः** [1]**नहारुभिरस्थिभि**[2]**र्बुक्कैः पद्मैर्योनिभिः, यूकाभिर्लोमकीटैः फुप्फुसैः, अन्त्रैः मेढ्रैः वीर्यैः पित्तैरम्बुभिः पूयैर्विविधतनुगतैः** सत्त्वानां शरीरगतैरिति। **लोहितैः स्वेदैः मेदैरश्रुभ्यां** [3]**खेटकाभ्यां सिंहाणाभ्यां जलैर्लसिभिः** [4]**वसाभिर्नाना**[5]**वर्णैर्नानागन्धैर्जिह्वाभिरक्षिभिः कर्णै-र्नासिकाभिः, शशीति** शुक्रैः, **दिनकरैरिति** रजोभिः[6] **समयद्रव्यैः देवताः पूजनीयाः।** योगिभिरिति नियमो गणचक्रे।

षट्त्रिंशच्चाक्षराणि तासां **प्रकृतिगुणवशाद्** आकाशादि[7]गुणवशादिति। ङ घ ग ख क, ञ झ ज छ च, ण ढ ड ठ ट, म भ ब फ प, न ध द थ त, ≍ क श ≍प स ह य र व ल क्ष इति। एते **बोधिपक्षाश्च धर्मा** भगवत्या सार्धं सप्तत्रिंशत्।

एवं **षट्त्रिंशद्धातुभेदाः।** अ आ इ ई ऋ ॠ उ ऊ ऌ ॡ अं अः। अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् अं अः। ह हा य या र रा व वा ल ला हं हः। इति षट्त्रिंशद्धातुभेदाः[8]। एता **सकल**[9]**गुणगता जातयः।** षट्त्रिंश**च्चिह्नानि** षट्त्रि-

---

१. भो. Chu rGyus (स्नायु)। २. क. वंक्त्रैः। ३. ग. च. खेटाभ्यां। ४. भो. Śag Daṅ bŚaṅ Ba (वसाभिर्विष्टाभिश्च)। ५. ग. चूर्णै। ६. ग. च. छ. भो. ०भिरेभिः। ७. ख. ग. च. छ. भो. धातु। ८. ख. ग. च. छ. भो. 'धातुभेदाः' नास्ति। ९. ग. भवि, च. भो. भुवन।

श**न्मुद्राः।** एवं प्रत्येकाक्षरेण जनितानि स्वरसहितेन **षट्त्रिंशद्योगतन्त्राणि,** एवं **योगिनी**कुलतन्त्राणि। भगवत्या सार्धं सर्वं सप्तत्रिंशदात्मकं वेदितव्यमित्य**वनितलगता-नीति** नियमः। शेषाणि शुद्ध[235a]कुलानि [1]न भवन्ति, नानाव्यञ्जनधर्मत्वादिति। एवं षट्त्रिंशत्। कुलमण्डलानां वर्तनं योगिनीनां पूजा प्रतिपूर्णिमायां कर्तव्येति तथागतनियमः। १५३–१५४ ॥

इदानीं चक्रमेलापकेऽर्घादिकमुच्यते—

तोयार्घं गन्धधूपं कुसुममपि फलं चाक्षतानि प्रदीपो
नैवेद्यं चात्र वस्त्रं भवति हि दशकं चक्रमेलापके च।
शुक्रं मूत्रं च मज्जा विडपि च पिशितं कालजं पित्तरक्त-
मन्त्रं चर्माणि राजन् भवति दशविधं चक्रमेलापके च ॥१५५॥

तोयेत्यादिना। **तोय**पात्रम् **अर्घ**पात्रं **गन्ध**पात्रं **धूप**पात्रं **पुष्प**पात्रं **फल**पात्रम् **अक्षत**पात्रं **प्रदीप**पात्रं **नैवेद्य**पात्रं **वस्त्र**पात्रम् एवं **दशविधं** पूजाद्रव्यम्, गण-**चक्रमेलापके** पूजार्थं मण्डलचक्रेऽपि। तथाध्यात्मद्रव्यं दशविधं भवति **शुक्रं मूत्रं** च **मज्जा विट् पिशितं कालजं पित्तं रक्तम् अन्त्रं चर्माणि**[2]। **भवति दशविधं चक्रमेलापके**[3] योगिनीनां[4] पूजाकर्मार्थम्[5]। **राजन्निति** सम्बोधनम् ॥१५५॥

इदानीं तारादि[6]कुलोत्पन्नानां षट्त्रिंशच्चिह्नान्युच्यन्ते—

वज्रं खड्गश्च बाणः शतदलकमलं पञ्चमं चक्रचिह्नं
वीणादर्शश्च पात्रं भवति नरपते पुष्पमाला च वस्त्रम्।
षष्ठो धर्मोदयो वै भवति करतले शब्दवज्रादिचिह्नं
एवं वै कर्तिकाद्यं कलश इति तथा कट्छुकं पीतवस्त्रम् ॥१५६॥

इह गणचक्रे वा प्रविष्टानां ग्रामे वा [7]नगरे वा स्थितानां योगिनीनां यदा ललाटे वा उभयस्कन्धे वा वामे[8] सव्ये कटिप्रदेशे [9]वा कायवर्णाद् यदपरवर्णान्तरमधिगतं भवति, तच्चिह्नं वर्णतो वेदितव्यम्। यत् पुनर्हस्तपादतले भवति, तद् रेखाभिर्वेदित-व्यम्। तेन यो[235b]गिनीनां करग्रहणाय नारीपुरुषलक्षणं शिक्षितव्यम्। येन परस्त्रियोऽपि[10] हस्तं स्वकीयं लक्षणार्थं समर्पयन्ति। तेन व्यपदेशेन तासां शरीरस्थं[11] हस्तपादतलस्थं [12]वा गृहे लिखितं वा चिह्नं वेदितव्यमित्युपायः। तत्र यस्या

---

१. च. वा। २. ग. चर्माणीति। ३. ग. मेलापके च। ४. भो. Lha Mo rNams (देवीनां)। ५. ग. भो. करणार्थं। ६. ग. ताराकुलो०। ७. ग. 'नगरे वा' नास्ति। ८. ग. भो. वामे वा। ९. च. भो. 'वा' नास्ति। १०. ग. च. 'अपि' नास्ति। ११. क. ख. छ. शरीरस्थां, ग. ०स्थ। १२. क. ख. च. छ. 'वा' नास्ति।

वज्रं पञ्चसु जन्मस्थानेषु वर्णतो दृश्यते, सा वज्रधात्वीश्वरी करतले वा[2] पादे वा रेखाभिः। तेन सा आकाशधातुकुलिनी। एवं [1]खड्गः तारायाः। **बाणो** वा[2] रत्नं पाण्डरायाः। **शतदलकमलं** मामक्याः। **पञ्चमं चक्रचिह्नं** लोचनायाः [3]वायुतेजउदकपृथ्वी[4]कुलानां चिह्नानि। तथा **वीणा** शब्दवज्रायाः। **आदर्शो** रूपवज्रायाः। **पात्रं** रसवज्रायाः। **पुष्पमाला** गन्धवज्रायाः। **वस्त्रं** स्पर्शवज्रायाः। **धर्मोदयो** धर्मधातुवज्रायाः [5]पञ्चसु जन्मस्थानेषु हस्तपादेषु वा दृश्यते विषय-कुलजानामिति। **शब्दवज्रादिचिह्नम् एवं वै कर्तिकाद्यमष्टविधम्**। तत्र **कर्तिका** चर्चिकायाः। **कलशं** वैष्णव्याः। [6]**कट्छुकं** वाराह्याः। **पीतवस्त्रं** कौमार्याः॥ १५६॥

सूची वा मुद्गरो वा प्रकटितनियतो मत्स्यजालं त्रिशूलं
लक्ष्मीचिह्नं शिला वै भवति नरपते चाष्टमं भूतजानाम्।
जम्भ्यादेऽलक्तपात्रं दिनकरसदृशं कोशकीटः कुशश्च
शस्त्री चोपानही च क्षुरक इति तथा पादुका चातपत्रम् ॥१५७॥

[7]**सूची वा मुद्गरो वा** ऐन्द्र्याः। **मत्स्यजालं** ब्रह्माण्याः। **त्रिशूलं** रौद्र्याः। **शिलाचतुरस्रं लक्ष्म्याः**। इत्यष्टचिह्नानि **भूतजानाम**मराद्यकुलजानामिति। तथा क्रोधजानां[8] दशकम्। तत्र [9]**जम्भ्या अलक्त**[10]**पात्रं दिनकरसदृशं** वर्तुलम्। स्तम्भ्याः **कोशकीटः**। **कुशो** मानिन्याः। अतिबलायाः **छुरिका**। **उपानद्** मारीच्याः। **क्षुरकः** चुन्दायाः। **पादुका** भृकुट्याः। **आतपत्रं** वज्रशृङ्खलायाः॥ १५७ ॥[236a]

कुद्दालं वेणुदण्डं प्रभवति दशकं क्रोधजानां स्वचिह्नं
गोशृङ्गं मल्लतन्त्री भवति करतले त्राकुटी मांसशूलम्।
वीणोपाङ्गं च काण्डं भवति च शिखिनः पिच्छमत्राष्टमं च
षट्त्रिंशच्चिह्नभेदाः प्रवरभुवितले योगिना पूजनीयाः ॥१५८॥

कुद्दालं रौद्राक्ष्याः। **वेणुदण्डम**ति[11]बलायाः। एवं भवति **दशकं क्रोधजानां**[12] **स्वचिह्नं** द्विधा कर्मेन्द्रियाणामिति। तथा आसुरीणां चिह्नम्—**गोशृङ्गं** श्वानास्यायाः। [13]**मल्ल**मिति [14]सरावं शूकरास्यायाः। **तन्त्री** जम्बुकास्यायाः। [15]**त्राकुटी** व्याघ्रा-स्यायाः। **मांसशूलं** काकास्यायाः। [1]**वीणोपाङ्गं** गृध्रास्यायाः। किन्नरा **काण्डं** च गरुडा-स्यायाः। **मयूरपिच्छम्** उलूकास्यायाः। इत्यष्टचिह्नानि मुखाद्यष्टद्वार[2]शुद्धया। अष्टकुलानां दृश्यन्ते। एवं **षट्त्रिंशच्चिह्ना**नि यासां दृश्यन्ते, तास्तत्कुलिन्यः। तेन चिह्नेन ज्ञात्वा **पूजनीया** इति [3]योगिनीनां नियमः॥ १५८॥

१. ग. खड्गम्। २. ग. च. 'वा' नास्ति। ३. ग. च. भो. एवं वायु। ४. ग. च. भो. कुलजानां। ५. ग. पञ्चजन्म। ६. भो. bCu gZar (कट्छुकं ?)। ७. क. छ. शुचि, ख. ग. च. शूचि। ८. च. क्रोधराजानां। ९. क. ख. छ. यम्भ्या। १०. क. ख. ग. च. छ. पत्रं। ११. ग. च. भो. ०नीलायाः। १२. च. राजानां। १३. भो. Kham Po (मल्लु)। १४. च. शरावं, ग. शरावः। १५. ग. ताकुटी, भो. ḥPhar Ba (...)।

भूयः शूद्रादिचिह्नं भवति गुणवशादुत्पलं वा हलं वा
क्षत्रिण्या रत्नपट्टं भवति नरपते लेखनी रत्नमाला।
वैश्यायास्तद्वदेवं जलचरसहितं ताम्रपात्रं द्विजात्या
मातुश्चिह्नं चतुर्धा डमरुकपटहं मौलिरेवाक्षसूत्रम् ॥१५९॥

भूयः पुनः **शूद्रादिचिह्नं** तारादीनामुच्यते। इह शूद्र**गुणवशात्** ताराकुल-जानाम् **उत्पलं वा हलं वा** संदृश्यते। **क्षत्रिण्याः** पाण्डराकुलजाया **रत्नपट्टम्**। **लेखनी रत्नमाला वैश्याया** लोचनाकुलजायाः। **जलचरं** शङ्खः। **ताम्रपात्रं द्विजात्या** मामकीकुलजायाः। एवं पूर्वापरं **मातुश्चिह्नं चतुर्धा**। **डमरुकं पटहं** डोम्ब्या वज्रधात्वीश्वरीकुलजायाः। तथा **मौलिर्वाऽक्षसूत्रं** चण्डाल्याः प्रज्ञापारमिता-कुलजायाः। एवं [4]ललाटे स्कन्धे वा[5] कट्यां वा हस्तपादेषु वा यस्या[236b] यच्चिह्नं दृश्यते गृहे वा लिखितं पूजयेत् सा तत्कुलिनी योगिना वेदितव्या। तया यद्दत्तं समयद्रव्यं तद्भक्षणीयं यावत् सप्तावर्तं तत्[6] पर्यवस्यति[7]। ततः खेचरत्वं तेन समयद्रव्येण भवतीति नियमः॥ १५९॥

इदानीं विष्ठादीनां समयद्रव्याणां पृथिव्यादिदेवताविशुद्धिरुच्यते—

विष्ठा मूत्रं सरक्तं भवति सपिशितं देवतीनां चतुष्कं
कर्णौ नासाक्षिजिह्वा गुदमपि च भगं शब्दवज्रादिषट्कम्।
पूयः श्लेष्मा च यूका कृमिकलशिवसा लोम केशाष्टकं च
अन्त्रं पित्तास्थिमज्जा विदिधतनुगतं कालजं फुप्फुसं च ॥१६०॥

इह **विष्ठा मूत्रं सरक्तं सपिशितं** यथासंख्यं पृथिव्यप्तेजोवायु**देवतीनां**[8] **चतुष्कं भवतीति**। शुक्रं वज्रधात्वीश्वरी आकाशधातुरनुक्तावपि[9]। एवं **कर्णौ नासाक्षि-**

१. क.ख.ग.च.छ. वीणोपाङ्गं किन्नरा गृध्रास्यायाः, काण्डं गरुडास्यायाः। २. ग. विशुद्धया। ३. ख.ग. योगिनां, भो. नास्ति। ४. भो. Raṅ Gi dBral Baḥam(स्वललाटे) ५. ग. वाम। ६. ख. ग. च. भो. 'तत्' नास्ति। ७. भो. इतः परं De bsTen Par Bya sTe (तत् सेवनीयम्)। ८. भो. Lha rNams Kyi (देवानां)। ९. ग. ०रनुक्ता।

जिह्वा गुदं भगं शब्दगन्धरूपरसस्पर्शधर्मधातुदेवीनां समयषट्कं **शब्दवज्रादि-षट्कमिति**। एवं **पूयः श्लेष्मा यूका कृमिक**[1]लशिवसालोमानि **केशा** इति, समयाष्टकं **च**[2] यथासंख्यं चर्चिका-वैष्णवी-वाराही-कौमारी-ऐन्द्री-ब्रह्माणी-रौद्री-महालक्ष्मीयोगिनीनां भूतजानामिति। तथाऽन्त्रं **पित्तम्** [3]**अस्थीनि। मज्जा विविध-तनुगतं** सर्वसत्त्वानां तनुगतं **कालजं फुप्फुसम्** ॥ १६० ॥

नाडी चर्माणि बुक्कं भवति च दशकं मेदयुक्तं नरेन्द्र
कर्णे नासाक्षिवक्त्रेषु गतमपि मलं पायुमध्ये भगे च ।
कक्षाद्यष्टाङ्गकाये भवति नरपते चाष्टकं ह्यासुरीणां
योगिन्योऽष्टाष्टकाः स्युः सह नखदशनाद् द्वादशाङ्गाः कपालैः ॥१६१॥

[237a]

नाडी चर्माणि[4] **बुक्कं मेदम्** एवं **दशकं भवत्यन्त्रादिकं** मेदपर्यन्तं यथा-संख्यं जम्भी [5]स्तम्भी मानी अतिबला वज्रशृङ्खला भृकुटी चुन्दा मारीची रौद्राक्षी अतिनीला—आसां क्रोधदेवतीनां समयदशकमिति। एवं **कर्णमलं नासिकामलम् अक्षिमलं** जिह्वामलं[6] **गुदमलं भगमलं** लिङ्गमलं **कक्षमलं** सर्वाङ्गमलमिति **समयाष्टकम् आसुरीणां** यथासंख्यम्, श्वानास्या शूकरास्या जम्बुकास्या व्याघ्रास्या काकास्या गृध्रास्या गरुडास्या उलूकास्या—आसां समयाष्टकमिति। तथा **योगिन्यो** भीमादयो [7]या **अष्टाष्टकाश्चतुःषष्टिकास्तासां समया नखानि** विंशतिर्दन्ता द्वात्रिंशद् **द्वादशखण्डानि कपाल**नाडीप्रवाहभेदेनेति चतुः[8]षष्टिसमयाः। एवं शतकुलभेदेन शतसमयाः। "त्रिकुलं पञ्चकुलं चैव स्वभावैकं शतं कुलम्" इति वचनात् षट्त्रिंशत् कुलानि, चतुःषष्टि-कुलानि। योगिनीनामेकत्वं शतकुलानि [9]वेदितव्यानीति नियमः ॥१६१॥

इदानीं पीठादिभिः समयविशुद्धिरुच्यते—

विण्मूत्रं रक्तमांसं विविधतनुगतं पीठभेदे चतुष्कं
कर्णो नासाक्षिजिह्वा गुदमपि च भगं क्षेत्रभेदे च षट्कम् ।
पूयाद्याः केशसीम्नः क्षितितलनिलये चाष्टछन्दोहभेदा
अन्त्राद्या मेदसीम्नो दिगिति च नृप मेलापकस्य प्रभेदाः ॥१६२॥

विण्मूत्रं रक्तमांसमिति। सकलसत्त्वानां **विविधानां तनुगतं पीठ**[10]**भेदे चतुष्कम्**। **कर्णो नासाक्षिजिह्वा गुदं भगमिति षट्कं क्षेत्रभेदे** भवति। तथा **पूयः** श्लेष्मा यूका

१. च. लसि। २. ग. 'च' नास्ति। ३. क. ख. छ. अस्थीति। ४. क. ख. छ. चर्मणि। ५. क. 'स्तम्भी' नास्ति। ६. क. ख. ग. छ. 'जिह्वामलम्' नास्ति। ७. ग. 'या' नास्ति। ८. ख. षष्टिः, क. छ. षष्टी। ९. क. ख. भेदितव्या०। १०. ग. च. भेदेन।

कृमिर्लसिवसालोमकेशा इत्यष्टौ **छन्दोहभेदाः**। तथाऽन्त्रं पित्तम् अस्थीनि मज्जा कालजं फुप्फुसं नाडो चर्माणि बुक्कं **मेद** इति दशकं **मेलापकस्य भेदाः** ॥१६२॥

कर्णाद्यष्टाङ्गकाये खलु विविधमलानि श्मशानप्रभेदाः
कालाग्नीन्द्वर्कराहुः प्रकटितनियतं पीठभेदे चतुष्कम् ।
भौमः[237b]सौम्यश्च मन्त्री भृगुशनिफणिनः क्षेत्रभेदे च षट्कं
पृथ्वीतोयाग्निवाताः क्षितिजसलिलजा वातजा वह्निजाश्च ॥१६३॥

अष्टौ छन्दोहभेदाः पुनरपि च तथा षड् रसा गन्धवर्णौ
स्पर्शः शब्दस्तथैव प्रकटितदश मेलापकस्य प्रभेदाः ।
पृथ्वीतोयाग्निवायुः क्षयमपि पुरतो वामसव्ये च पूर्वे
वर्णादीनां चतुर्णां विदिशि निधनताष्टश्मशानप्रभेदाः ॥१६४॥

तथा **कर्णमलं** घ्राणमलम् अक्षिमलं जिह्वामलं भगमलं गुदमलं [1]लिङ्गमलं कक्ष-मलमष्टाङ्गमलमित्यष्टौ **श्मशान**[2]**प्रभेदाः**। तथा बाह्ये लोकधातौ पीठादिविशुद्धया समया उच्यन्ते। इह **कालाग्निः, इन्दुः, अर्कः,** राहुः **पीठभेदे**[3] समय**चतुष्कं** लोचनादीनाम्। **भौमः** [4]**सौम्यश्च मन्त्री भृगुः शनिः फणी**ति केतुः—एते रूपवज्रादीनां [5]**क्षेत्रभेद**समयाः। तथा **पृथ्वी तोयं तेजो वायु क्षितिजाः सलिलजा वह्निजा वातजाश्च**, इत्यष्टौ स्थावरजङ्गमा भूताश्छन्**दोह**भेदे भूतजानां समया इति। **पुनरपि च तथा षड्रसाः**, [6]**गन्धः, वर्णः, शब्दः, स्पर्श** इति **दश मेलापकस्य प्रभेदाः** क्रोधजाना-मिति। पृथिव्यादीनां चतुष्कं वर्णादीनामपि क्षयः श्वासनिःश्वासाभ्यामिति **श्मशानस्य प्रभेदा** आसुरीणामष्टौ समया इति पीठादिबाह्याभ्यन्तरसमयविशुद्धि-नियमः ॥१६३-१६४॥

इदानीं[7] पीठादिस्थानान्युच्यन्ते—

पीठं तारादिवेश्म स्फुटरवकुलिशाद्यं तथा क्षेत्रमुक्तं
छन्दोहं चर्चिकाद्यं प्रभवति नृप मेलापकं जम्भिकाद्यम् ।
श्वानास्याद्यं श्मशानं परमभुविगतं मूलपीठं सुगुह्यं
मातुर्वेश्म द्विधा तत्प्रकटितमवनौ चान्त्यजं ह्यन्त्यजं वै ॥१६५॥

[238a]

१. क. ख. च. छ. 'लिङ्गमलं' नास्ति, गृहीतस्तु पाठो भोटसम्मतः। २. ग. ०नभेदा। ३. ग. भेदेन। ४. क. ख. छ. शुक्रश्च। ५. ग. 'क्षेत्रभेद' नास्ति। ६. ग. च. भो. गन्धवर्णशब्दस्पर्श इति। ७. च. भो. ०नीमुपपी०।

पीठमित्यादिना। इह सामान्येन बालानां देशभ्रमणार्थं जालन्धरादिना पीठादिकमुक्तम्। तदेव सर्वत्र व्यापकं न भवति। षट्त्रिंशत्कुलानि पुनरेकनगर्यामपि तिष्ठन्ति योगिनीनाम्। [1]येनात्र **परमादिबुद्धे** सर्वपृथ्वीव्यापकत्वाद् भोट्टादिचीनादिविषयेष्वपि पीठादीनि सन्ति, तान्येव लघुतन्त्रान्तरेण[2] देशितानि[3] सर्वनगर्यां पीठादीन्युक्तानि। [4]**पीठं तारादिवेश्म** चतुर्विधम्। तथा शब्दवज्राद्यं वेश्म **क्षेत्रं** षड्विधम्। **चर्चिकाद्यं** वेश्म **छन्दोहमष्टविधम्। मेलापकं जम्भिकाद्यं** वेश्म दशविधम्। **श्वानास्याद्यं** वेश्म **श्मशानाद्य**मष्टविधम्। **परमभुविगतं मूलपीठं सुगुह्यं मातुर्वेश्म द्विधा, तत्प्रकटितमवनौ** [5]**चान्त्यजं** [6]**ह्यन्त्यजं वै** डोम्बीचण्डालीगृहमिति। एवं शूद्रादिकं गृहं पीठादि[7]संज्ञया योगिना वेदितव्यमिति सर्वत्र नियमः॥१६५॥

इदानीं[8]मध्यात्मपीठादिसंज्ञोच्यते—

पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठं
क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचितिभुवनं तद्वदेवं समस्तम्।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्यपरमपि तथा दक्षिणं चोपपीठं
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगतं चाङ्गुलीकान्तसीम्नः॥१६६॥

पीठमित्यादिना। इह **समयमेलापके** पीठं सर्वत्र [9]**स्त्रीपद्मं** भवति। **उपपीठ**शब्देन **पुरुषवज्रं** भवति। एवं स्त्रीणां षडायतनं **क्षेत्रं** पुरुषाणामुपक्षेत्रम्। तथा स्त्रीणां समानवाय्वष्टकं **छन्दोहं** पुरुषाणामुपछन्दोहम्। एवं स्त्रीणां जिह्वा[10]लम्बनं करद्वयं पादद्वयं पायु[11]सव्येतरनाडीद्वयं मूत्रशुक्रनाडीद्वयमेतत् कर्मेन्द्रियदशकं **मेलापकं** पुरुषाणामुपमेलापकम्। एवं घ्राणद्वये [12]मेढ्रे मल[13]निर्गमं श्रोत्रद्वये चक्षुर्द्वये मुखे गुदे च, **एवं** श्मशानाष्टकं स्त्रीणां पुरुषाणामुपश्मशानमिति **समस्तम्**। तथोभयशरीरे प्रत्येक[14]**पीठं वामाङ्गं पूर्वम्। उपपीठं** पश्चिमं **दक्षिणाङ्गम्। एवं** द्विधा पीठम्। तथा वामेन्द्रियसमूहं **क्षेत्रम्**। दक्षिणेन्द्रियसमूहमुपक्षेत्रम्। एवं कूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयचतुष्कं छन्दो[238b]हम्। समानोदानव्याननागसमूह-

---

१. भो. Gaṅ Gis Na ḥDir Sa Ṡgi Thams Cad Du Khyab Par Dam Pa Daṅ Poḥi rGyud Du gSuṅs Paḥi Phyir Ro. (येनात्र सर्वपृथ्वीव्यापकपरमाद्यतन्त्रे उक्तत्वात्)। २. भो. Ma bsTan To (०न्तरे न देशितानि)। ३. ग. च. भो. 'सर्वदेशेषु' इत्यधिकम्। ४. क. ख. ग. छ. एवं। ५. भो. mThar sKyes Ma Daṅ mThar skyes Ma (अन्त्यजं चान्त्यजं)। ६. ग. च. नास्ति। ७. ग. संज्ञं। ८. ग. च. भो. ०मध्यात्मनि। ९. छ. 'स्त्री' नास्ति। १०. ग. च. लम्बकं। ११. क. ख. ग. च. छ. [illegible] [illegible] १३. च. विषयं। १४. ग. च. भो प्रत्येके।

मुपछन्दोहम्। तथा वामे कर्मेन्द्रियसमूहं मेलापकम्। [1]तथा दक्षिणे [2]कर्मेन्द्रियसमूहमुपमेलापकम्। वामकर्णादिच्छिद्रमलनिर्गमं श्मशानम्। दक्षिणमुपश्मशानमिति। तथा **करचरणादिगतम**परविशुद्ध्या पूर्ववामाङ्गं पीठम्। दक्षिणं पश्चिममुपपीठम्। तथा वामबाहुसन्धिः वामोरुकटिसन्धिः क्षेत्रम्। दक्षिणमुपक्षेत्रम्। वामोपबाहुसन्धिः [3]जानूरुसन्धिश्छन्दोहम्। दक्षिणमुपछन्दोहम्। तथा करपादसन्धिद्वयं वामे मेलापकं [4]दक्षिणमुपमेलापकम्। [5]वामाङ्गुलिनखानि श्मशानम्। [6]दक्षिणमुप[श्म]शानम्। अथ वा उभयबाहुसन्धिद्वयं क्षेत्रम्, ऊरुसन्धिद्वयमुपक्षेत्रम्। एवं छन्दोहादिकमपि करचरणगतमपि **चाङ्गुलीकान्तसीम्न** इति समयमेलापके पीठादि[7]समयसंज्ञा योगिना वेदितव्या॥१६६॥

इदानीं सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मैर्योगिनीनां विशुद्धिरुच्यते—

देव्योऽर्चिः स्मृत्युपस्थानमपि भवति वै कालचक्रे प्रसिद्धं
प्रज्ञा बोध्यङ्गमाता त्वपरमपि तथा शब्दवज्रादिषट्कम्।
अब्धिः सम्यक्प्रहाणान्यपरजलधयश्चर्द्धिपादाष्टकं स्यात्
पञ्च क्रोधा बलानि प्रकटितनियतानीन्द्रियाण्येव पञ्च॥१६७॥

देव्योऽर्चिरित्यादिना। इह चतस्रो देव्यो यथाक्रमेण कायानु**स्मृत्युपस्थानं** लोचना, वेदनानुस्मृत्युपस्थानं पाण्डरा इति पश्चिमदक्षिणम्। चित्तानुस्मृत्युपस्थानं मामकी, धर्मानुस्मृत्युपस्थानं तारेति वामपूर्वं कायभेदेन पीठोपपीठद्वयमिति [8]**कालचक्रे प्रसिद्धम्**। नान्यस्मिंस्तन्त्रे प्रसिद्धं गोपितं भगवतेत्यर्थः। तथा सप्त[9]**बोध्यङ्गा**नां मध्ये एकं बोध्य[239a]ङ्गं **माता** वज्रधात्वीश्वरी कुलपीठमुपेक्षासम्बोध्यङ्गमिति। **अपरमपि तथा शब्दवज्रादिषट्कमिति**। स्मृतिसंबोध्यङ्गं शब्दवज्रा। धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गं स्पर्शवज्रा। वीर्यसंबोध्यङ्गं रूपवज्रा। उपक्षेत्रं कायभेदात्। तथा प्रीतिसंबोध्यङ्गं गन्धवज्रा। प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्गं रसवज्रा। समाधिसंबोध्यङ्गं धर्मधातुवज्रेति। क्षेत्रं द्विधा। तथाब्धिः **सम्यक्प्रहाणानी**ति। अनुत्पन्नानां [10]पापानामनुत्पादाय प्रहाणं चर्चिका। उत्पन्नानां पापानां प्रहाणं कुशलमूलं वैष्णवी। अनुत्पन्नाना[11]मकुशलानां प्रहाणं कुशलोत्पादनं माहेश्वरी। [12]उत्पन्नाकुशलानां [13]बुद्धत्वपरिणामनाप्रहाणं महालक्ष्मीः। उपछन्दोहाश्चत्वारः। **अपरजलधय**श्चतस्रो देव्य **ऋद्धिपादा** भवन्ति। तत्र छन्दऋद्धिपादो ब्रह्माणी। वीर्यऋद्धिपाद

---

१. ग. च. भो. 'तथा' नास्ति। २. ग. च. भो. 'कर्मेन्द्रियसमूह' नास्ति। ३. क. ख. जानुसन्धि। ४. ग. 'दक्षिणमुपमेलापकम्' नास्ति। ५. ग. च. वामाङ्गुली। ६. ग. च. 'दक्षिणमुपश्मशानम्' नास्ति। ७. भो. 'समय' नास्ति। ८. क. कायचक्रे। ९. ग. संबोध्यङ्गानां। १०. ग. पापकानां। ११. क. ख. ग. च. छ. कुशलानां। १२. ग. भो. उत्पन्नकुशलानां। १३. ग. च. बुद्धत्वे।

ऐन्द्री। चित्तऋद्धिपादो वाराही। मीमांसाऋद्धिपादः कौमारीति छन्दोहभेद इत्यष्टकं **स्यात्**। तथा **पञ्च क्रोधबलानी**ति। इह श्रद्धाबलमतिनीला। वीर्यबलमतिव्रला। स्मृतिबलं वज्रशृङ्खला। समाधिबलं मानी। प्रज्ञाबलं चुन्देत्युपमेलापकम्। तथा **प्रकटितनियतानीन्द्रियाण्येव पञ्चे**ति। तथा श्रद्धेन्द्रियं स्तम्भी। [1]वीर्येन्द्रियं मारीची। स्मृतीन्द्रियं जम्भी। समाधीन्द्रियं भृकुटी। प्रज्ञेन्द्रियं रौद्राक्षीति मेलापकमेवं दशकम् ॥ १६७ ॥

सम्यक्चाष्टाङ्गमार्गो भवति नरपते चाष्टकं दैत्यजानां
सप्तत्रिंशत्प्रभेदैस्त्रिभुवननिलये बोधिपक्षाश्च धर्माः।
योगिन्यस्ताः समस्ताः क्षितितलनिलये योगिना वेदितव्या
एवं पीठादि सर्वं भवति नरपते बाह्यदेहे च तद्वत् ॥१६८॥

सम्यक्चाष्टाङ्गमार्गो भवति नरपते चाष्टकं दैत्यजानामिति। इह सम्यग्दृष्टिः श्वानास्या। सम्यक्संकल्पः काकास्या। सम्यग्वाग् व्याघ्रास्या। सम्यक्कर्मान्त उलूका-[239b]स्या। सम्यगाजीवो जम्बुकास्या। सम्यग्व्यायामो गरुडास्या। सम्यक्स्मृतिः शूकरास्या। सम्यक्समाधिः गृध्रास्येति। एवं **सप्तत्रिंशत्प्रभेदैस्त्रिभुवननिलये बोधि-पाक्षिका धर्मा** ये, **योगिन्यस्ताः** [2]**समस्ताः क्षितितलनिलये योगिना वेदितव्या** डोम्ब्यादयः। **एवं** सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मैर्विशोधितं **पीठादिकं** धर्मकायलक्षणं भवति **नरपते बाह्यदेहे च** तद्वदिति सर्वत्र नियमः ॥ १६८ ॥

इदानीमेषामाराधनाय योगिनां चर्याधर्म उच्यते—

बौद्धः शैवोऽथ नग्नो भगव इति तथा स्नातको ब्राह्मणो वा
कापाली लुप्तकेशो भवतु सितपटः क्षेत्रपालस्तु कौलः।
मौनी चोन्मत्तरूपोऽप्यकलुषहृदयः पण्डितश्छात्र एव
योगी सिद्ध्यर्थहेतोः सकलगुणनिधिर्लब्धतत्त्वो नरेन्द्र ॥१६९॥

बौद्ध इत्यादिना। इह कालचक्रतन्त्रराजमण्डलेऽभिषिक्तः सर्वमण्डलेष्वभिषिक्त-स्तीर्थिकानामपि साधको देवतादेवतीनां हरिहरादीनां चर्चिकादीनां [3]मण्डलविशोधि-तानाम्, तेन योगी लब्धतत्त्वाभिषेको **बौद्धो** वा भवतु साधनाय ज्ञानस्य लौकिकस्य वा कर्म[4]प्रसरस्य, **शैवो** वा, **अथ नग्नो** भवतु परमहंसः। **भगवो**[5] वा **स्नातको** वेति।

१. भो. brTson ḥGrus Kyi dBaṅ Po Ni rMug Byed Ma Daṅ. Dran Paḥi dBaṅ Po Ni Hod Zer Can Daṅ (वीर्येन्द्रियं जम्भी, स्मृतीन्द्रियं मारीची)। २. क. 'समस्ताः' नास्ति। ३. ग. च. भो. मण्डले। ४. क. ख. प्रसवस्य। ५. क. ख. ग. च. भगवतो।

तथा ब्राह्मणो वा कापाली वा **लुप्तकेशः** क्षपणको वा **भवतु सितपटो** वा **क्षेत्रपालो** वा भवतु शुद्धः। **मौनी** वा। **उन्मत्तरूपो** वा। **कौलो** वा। **अकलुषहृदयः पण्डितश्छात्रो** वा **योगी सिद्ध्यर्थहेतोः सकलगुणनिधि**[1]**र्लब्धतत्त्वो नरेन्द्र** यां(या) रोचते [2]मनसस्तां चर्यां[3] करोतु यावत्सिद्धिर्भवति। ततो लोकातिक्रान्तां करोतु सामर्थ्यतः सकाशादिति तथागतनियमः ॥ १६९ ॥

इति [4]मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां प्रतिष्ठा-
गणचक्रविधियोगचर्यामहोद्देशः
पञ्चमः ॥ [240a]

(६) मुद्रादृष्टिमण्डलविसर्जनवीरभोज्यविधिमहोद्देशः

[5]दैत्येन्द्रा करमुद्राभिस्त्रासिता येन दृष्टिभिः।
प्रणम्य कालचक्रं तं वक्ष्ये मुद्रादिलक्षणम् ॥
यथोद्धृतं महातन्त्रात् स्वल्पतन्त्रेण वाग्मिना।
तनोमि टीकया सर्वं मुद्रादृष्ट्यङ्ग[6]छोमकम् ॥ इति।

इह मुद्राबन्धार्थं वृद्धाङ्गुष्ठकादि [7]पञ्चाङ्गुलीनां संज्ञा इति—

अङ्गुष्ठस्तर्जनी या पुनरपि च तथा मध्यमाऽनामिका च
तस्यान्ते वै कनिष्ठा सकलगुणनिधिर्योगिना वेदितव्या।
मुद्रार्थं नामभेदो भवति गुणवशादङ्गुलीनां क्रमेण
बन्धोक्ते वज्रबन्धो भवति नियमितो मुष्टिबन्धे च तद्वत् ॥१७०॥

वृद्धाङ्गुष्ठः, ततो द्वितीया **तर्जनी**, तृतीया **मध्यमा**, चतुर्थी **अनामिका**, **तस्या** अनामिकाया **अन्ते कनिष्ठा सकलगुण**[8]**निधिः**, आकाशधातुत्वात्। **योगिना वेदितव्या** आचार्योपदेशेनेति। एवं **मुद्राबन्धार्थं नामभेदो भवति गुणवशात्**। गन्ध-रूप-रस-स्पर्श-शब्दगुणवशादिति क्रमेण। एवं **बन्धोक्ते** सति **वज्रबन्ध** इति **भवति**। **नियमितो**[9] **मुष्टिबन्धे** कृते सति वज्रमुष्टिबन्ध इति नियमः, **तद्वदे**वेति वचनात् ॥१७०॥

१. भो. 'लब्धतत्त्वो' नास्ति। २. ग. मनस्तां। ३. ग. च. भो. 'गुप्तां' इत्यधिकम्। ४. ग. श्रीमूल०। ५. क. ख. छ. दैत्येन्द्रो। ६. ग. छोम्म। ७. भो. 'पञ्च' नास्ति। ८. छ. विधिनाकाश। ९. भो. नियमतो।

इदानीं जिनपतेर्मुद्रोच्यते—

मुष्टी वज्रासनस्थे भवति जिनपतेर्वज्रमुद्रोरुमूर्ध्नि
पर्यङ्के वामहस्तो भवति भुविगतो दक्षिणो जानुदेशात् ।
भूस्पर्शाऽक्षोभ्यमुद्रा त्वपि वरदकरो दक्षिणो रत्नपाणे-
र्वामोर्ध्वे सव्यहस्तो भवति समगतोत्तानकः पद्मपाणेः ॥१७१॥

इहोभयकरेण [1]**वज्रमुष्टिबन्धः**, अङ्गुष्ठौ मुष्ट्या निपीडितौ सव्या[2]वसव्योरु**मूर्ध्नि वज्रासनस्थे** वज्रमुद्रा **भवति**। इदानीम् अक्षोभ्यमुद्रोच्यते। पूर्वं पर्यङ्कं कृत्वा तत्र **पर्यङ्के वामहस्तो** भवत्युत्तानको **दक्षिणो भुविगतो** दक्षिण**जानु**[3]**देशाद्** भूस्पर्शं यावत्। एवं [4]**भूस्पर्शाऽक्षोभ्यमुद्रे**ति। अपि च तेनैव क्रमेण किन्तूत्तानको **दक्षिणकरो रत्न-पाणेर्वरद**मुद्रेति। एवं पर्यङ्के **वामहस्तोर्ध्वेन सव्यहस्तः समगतोत्तानकः पद्मपाणे**रमिताभस्य समाधिमुद्रेति ॥१७१॥

वामं पर्यङ्कमूर्ध्नि ह्यपरकरतलं चाभयं खड्गपाणेः
सव्ये मुष्ट्याऽत्रसव्या खलु पुनरपरा तर्जनी मुष्टिबन्धे ।
मुद्रा वैरोचनस्य स्फुटहृदयगता चापरा चक्रमुद्रा
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगः कटक इह भवेन्मध्यमादेः प्रसारः ॥१७२॥

[240b]

एवं [5]**वामं** करतलमुत्ता[6]नकं **पर्यङ्कमूर्ध्नि, अपरं** दक्षिणं **करतलं** दक्षिण-जानूपरि **अभयप्रदम्, खड्गपाणे**रमोघसिद्धेरभयमुद्रेति। एवं [7]**सव्ये मुष्ट्यावसव्यमुष्टौ** या **तर्जनी** वामा सा **पुनरपरा** ऊर्ध्वं**मुष्टिबन्धे तर्जनी** प्रविष्टा, इयं बोध्यग्री**मुद्रा वैरोचनस्य स्फुटहृदयगता**[8]। तथा **चापरा** धर्म**चक्रमुद्रा तर्जन्यङ्गुष्ठयोगो** वामे दक्षिणकरेऽपि **कटक इह भवेद्** वामवलयनखमेलापके [9]दक्षिणनखमेलापके देशनायोगेन **मध्यमादेः प्रसारः**, अनामिकायाः कनिष्ठायाः किञ्चिदूर्ध्वमिति हृदयप्रदेशे धर्मचक्र-मुद्रा। एवं षट्तथागतानां नियमः ॥१७२॥

इदानीं दिव्यमुद्रोच्यते—

वामे हस्ते सुपूर्णो विमलशशधरो दक्षिणे वज्रसूर्यः
सूर्येन्द्वोः संपुटस्थं भयकरकुलिशं क्रोधजं पञ्चशूकम् ।

---

१. ख. ग. च. भो. मुष्टि बद्ध्वा। २. ग. सव्यापस० ३. ग. च. प्रदेशात्। ४. च. भूस्पर्शम०। ५. क. ख. ग. छ. वामकर। ६. ग. त्तानं कृत्वा। ७. क. ख. छ. भो. सव्य। ८. ग. च. भो. गत[illegible]

ध्यात्वाऽङ्गं स्पर्शनीयं समुकुटशिरसारभ्य पादान्तमेव
एषा श्रीदिव्यमुद्रा कलुषमलहरा कालचक्रस्य राजन् ॥१७३॥

इह स्वशरीरे महाकवचार्थं **वामे हस्ते सुपूर्णो विमलशशधर** इति। इह अकारादिपञ्चदशस्वरात्मकं चन्द्रमण्डलं वामे हस्ते सुपूर्णं विमलशशधरं पञ्च-दशकलापरिपूर्णमिति। अ इ ऋ उ ऌ अ ए अर् ओ अल् ह य र व ला इति स्वराः। एवं **दक्षिणहस्ते वज्रसूर्यः** [241a]पञ्चदशस्वरात्मकः [1]ला वा रा या हा र आल् औ आर् ऐ आ ॡ ऊ ॠ ई आ इति सूर्यः सम्पूर्णः। अनयोः **सूर्येन्द्वोः संपुटितं** वज्रं **भयकरं** करालवज्रं **क्रोधज**मिति [2]हूंकारजं **पञ्चशूकं ध्यात्वा** तेन वज्रेण वक्ष्यमाणया वज्रमुद्रया सर्वाङ्गं **स्पर्शनीयम्। समुकुट** इति उष्णीषसहितं **शिरसारभ्य पादान्तं**[3] [4]पादनखपर्यन्त**मेव**[5]। **एषा श्रीदिव्यमुद्रा** सर्वरक्षा **कलुषमलहरा कालचक्रस्य राजन्** ॥१७३॥

यत्किञ्चिद् ग्राह्यवस्तु क्षितिजसलिलजं गर्भजं स्वेदजाद्य-
मन्नं पानं सवीर्यं गुरुमपि चरणं मुद्रया स्पर्शनीयम् ।
यद्यत् कार्योपयोग्यं भवति गुणवशात्तस्य तद्योजनीयं
भूम्याद्यं मण्डलार्थं चरणमपि गतौ योगिना ताडनीयम् ॥१७४॥

तथा अनया मुद्रया **यत्किञ्चिद् ग्राह्यं वस्तु** क्षितिजं [6]**सलिलजं** समयं **गर्भजं** वा **स्वेदजं** वा, **आदि**शब्देन क्लेदजं वा समयम्, तथान्नं **पानं** [7]**सवीर्यं** मांसैः सह वक्ष्यमाण-क्रमेण शोधनीयं [8]बोधनीयं प्रदीपनीयमिति। एवं **गुरुमपि चरणं** देवतामूर्तौ स्वचरणं गमनार्थं **यद्यत् कार्योपयोग्यं** तद्वस्तु **भवति गुणवशात्** सत्त्वरजस्तमोगन्धादिविषय-वशात्, **तस्य** कार्यस्य **तन्मुद्रया** स्पृष्ट्वा **योजनीयं भूम्याद्यं मण्डलार्थं चरणमपि**[9] **गत्यर्थं योगिना ताडनीय**मनया मुद्रयेति दिव्यमुद्रा ॥ १७४ ॥

इदानीं क्रोधनाथस्य मुद्रोच्यते—

हस्ताभ्यां वज्रबन्धैर्भवति खलु महाक्रोधराजस्य मुद्रा
तर्जन्याद्यन्तबन्धस्त्रिभुवनविजया मुष्टिबन्धेन भर्तुः ।
चिह्नाकारास्तु शेषाः प्रकटितनियता देवतादेवतीनां
हस्ताभ्यां वज्रबन्धे भवति चलफणाकारमुद्रा फणीनाम् ॥१७५॥

[241b]

---

१. ग. 'एवं' अधिकं। २. छ. हुं। ३. भो. Ses (मिति)। ४ च. यावन्न०। ५. च. वम्। ६. क. ख. छ. 'सलिलजं' नास्ति। ७. ग. सवंवीर्यं, भो. dPaḥ Bo (सवीर्यं)। ८. ग. बोध्यम, भो. rGyasPa (वर्धनीयं)। ९. भो. 'अपि' नास्ति।

इह हस्ताभ्यां वज्रबन्धैरिति। इह सव्यहस्तो वामहस्तमणिबन्धोपरि[1]गत्वाऽधः प्रविश्य बाहूपबाहुसन्ध्युपरि वज्रमुष्टिना स्थितः, एवं वामहस्ते(स्तो)ऽपि। **वज्रबन्धैर्भवति** खलु **महाक्रोधनाथस्य मुद्रा** वज्रवेगस्येति। तथा **तर्जन्याद्यन्तबन्ध** इति। इह तर्जन्योः परस्परमङ्कुशबन्धः। अन्त इति कनिष्ठयोर्द्वयोर्बन्धः करपृष्ठयोगेन मुष्टिबन्धोऽङ्गुष्ठौ मुष्टिमध्ये। एवं **त्रिभुवनविजया** भर्तुस्त्रैलोक्यविजयस्य हृदये स्थितेति। **चिह्नाकारास्तु शेषाः प्रकटितनियता देवतादेवतीनामिति।**

तथा नागानां मुद्रा **हस्ताभ्यां वज्रबन्ध** इति। इह वामबाहूपबाहुसन्ध्युपरि दक्षिणबाहूपबाहुसन्धि[2]बन्धेन वामकरोपबाहु[3]सन्धिदक्षिणकरोपबाहुसन्ध्युपरि वामदक्षिणहस्तौ चलफणाकारौ, एवं **चलफणाकारमुद्रा फणीनाम्।** एवं सव्यावर्तेनापि वेदितव्येति ॥ १७५ ॥

इदानीं चिह्नमुद्रा उच्यन्ते—

> श्लिष्टाङ्गुष्ठौ कनिष्ठे कमलदलसमे मध्यमे सारिते च
> तर्जन्यौ द्वेऽर्द्धवक्रे स्वकरतलगतेऽनामिके कुञ्चितेऽधः।
> मुद्रेयं पञ्चशूका भवति हि कुलिशे वज्रिणो दर्शनीया
> आराकाराङ्गुलीका ह्युभयकरतलेऽङ्गुष्ठकाद्याः समस्ताः ॥१७६॥

श्लिष्टेत्यादिना। इह पञ्चशूकवज्रमुद्रायाः करसंपुटं कृत्वाङ्गुष्ठौ **श्लिष्टौ कनिष्ठिके** द्वे श्लिष्टे **कमलदलसमे** ते[4] **मध्यमे** द्वे **प्रसारिते** [5]समे मध्ये **तर्जन्यौ द्वेऽर्द्धवक्रे**[6]-ऽर्धचन्द्राकारे मध्यमयोः पृष्ठभागे **स्वकरतलगतेऽना**[242a]**मिके कुञ्चितेऽधः।** एवं **मुद्रेयं पञ्चशूका भवति हि कुलिशे वज्रिणो दर्शनीयेति।** दिव्यमुद्रापीयं पूर्वोक्तेति। तथा **आराकाराङ्गुलीका उभयकरगता अङ्गुष्ठकाद्याः** [7]**समस्ता** इत्यपरा वज्रमुद्रा प्रज्ञालिङ्गनायेति ॥१७६॥

> द्वौ हस्तौ वज्रबन्धौ भवति हि कुलिशं वज्रमुष्ट्या सघण्टा
> मुष्ट्यर्धं तीक्ष्णखड्गे भवति शरसमे तर्जनीमध्यमे च।
> तर्जन्याद्यास्त्रिशूलाः पुनरपि विरलास्त्वर्धमुष्ट्या त्रिशूले
> श्रीकर्त्र्यां मुष्टिबन्धो भवति भयकरा श्रीकनिष्ठार्धचन्द्रा ॥१७७॥

तथा **द्वौ हस्तौ वज्रबन्धौ** पूर्ववत्। **भवति हि वज्रमुष्ट्या कुलिशं** दक्षिण ऊर्ध्वकृतया। वामेऽधोमुष्ट्या **घण्टा** भवति। [8]तथा **मुष्ट्यर्धम**नामिकाकनिष्ठामुष्टिमध्ये

१. भो. 'गत्वा' नास्ति। २. ग. बन्धने। ३. ग. 'सन्धि'' बाहु' नास्ति। ४. भो. 'ते' नास्ति। ५. क. ख. 'समे' नास्ति। ६. ख. ग. च. छ. चक्रे। ७. ग. समस्तपरा। ८. ग. तदा।

अङ्गुष्ठमेव[1] **मुष्ट्यर्धं तीक्ष्णखड्गे भवति। शरसमे तर्जनीमध्यमे च** श्लिष्टे इत्यूर्ध्वे खड्गमुद्रा। तथाङ्गुष्ठमुष्ट्यर्धे **तर्जन्याद्या** इति तर्जनीमध्यमाऽ[2]नामिका **त्रिशूलाकारा विरला पुनरर्धमुष्ट्या** त्रिशूलमुद्रा। विषयार्थे सप्तमीति सर्वत्र। तथा **श्रीकर्त्र्यां मुष्टिबन्धो भवति, कनिष्ठार्धचन्द्राकारा भयकरा** दुर्दान्तानामिति कर्तिकामुद्रा ॥१७७॥

> कर्णोर्ध्वं मुष्टिबन्धो भवति वरशरेऽङ्गुष्ठकं मध्यमोर्ध्वे
> तर्जन्यत्यन्तवक्रा भवति नृप तथैवाङ्कुशे मुष्टिबन्धः।
> मूले तर्जन्यनामा भवति शरसमा मध्यमोर्ध्वं च कुन्ते
> तिर्यङ्मुष्टिश्च दण्डे सुसमकरतलेऽङ्गुष्ठसारः कुठारे ॥१७८॥

[3]**कर्णोर्ध्वं मुष्टिबन्धो वरशर**मुद्रायाम्, **अङ्गुष्ठं मध्यमोर्ध्वे** तर्जन्याध[4] इति शरमुद्रा। **अङ्कुशे** वज्र**मुष्टिबन्धस्तर्जनी**[5]मुष्ट्यूर्ध्वमङ्कुशाकारा [6]**वक्राऽत्यन्त**मित्य[242b]-ङ्कुशमुद्रा। तथा कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां मुष्टिस्त**र्जनी, अनामे**ऽधः **शरसमा**श्लिष्टे, तयोरुपरि **मध्यमा कुन्ते**, एवं कुन्तमुद्रा। तथा **तिर्यङ्मुष्टिश्च** बाहुप्रसारा[7] **दण्डे**, [8]एवं दण्डमुद्रा भवति। तथा **सुसमकरतले** ऊर्ध्वमङ्गुष्ठप्रसारस्तिर्यग्विभागेन तर्जन्याद्याश्चतस्रः श्लिष्टाः, एवं **कुठार**मुद्रा भवति ॥१७८॥

> ऊर्ध्वे मुष्टिद्वयं स्यादसुरपतिगजस्याजिने तर्जनी च
> दंष्ट्रायां मुष्टिबन्धो ह्युभयकरतले चार्धचन्द्रा कनिष्ठा।
> वामे बाहुप्रसारो भवति करतलं चोर्ध्वगं खेटके च
> खट्वाङ्गेऽच्छिद्रमुष्टिर्भवति च नियता स्कन्धसारा कनिष्ठा ॥१७९॥

तथा **ऊर्ध्वे मुष्टिद्वयं स्यात् असुरपतिगजो** विनायकः, तस्य चर्ममुद्रायामूर्ध्वे **तर्जनी** मुष्टिद्वयेऽपीति गजचर्ममुद्रा। तथा **दंष्ट्रायां मुष्टिबन्धो** भयहृत्**करतलेऽर्धचन्द्रा**कारे **कनिष्ठे** सव्यावसव्यमुखे दर्शयेत्। एवं दंष्ट्रामुद्रेति दक्षिणहस्तचिह्नमुद्रा गजचर्मदंष्ट्रामुद्रानियमः।

इदानीं वामहस्तचिह्नमुद्रोच्यते—इह **वामे बाहुप्रसारो भवति करतलमूर्ध्वग**मभयकरतलवत् **खेटके** फलके, एवं फलकमुद्रा। तथा **खट्वाङ्गेऽछिद्रमुष्टि**स्तर्जनीमध्यमाऽनामाङ्गुष्ठाः श्लिष्टाः **स्कन्धस्थाने कनिष्ठोर्ध्वं** प्रसारिता, एवं खट्वाङ्गमुद्रेति ॥१७९॥

१. ग. च. भो. मेवं। २. ग. च. ऽनामा। ३. ग. च. 'तथा' अधिकं। ४. ग. न्यामधः। ५. ग. मुष्टयोर्ध्वं। ६. ख. वज्रा०, ग च. चक्रात्यन्त। ७. च. प्रसारं। ८. क. 'एवं दण्ड' नास्ति।

अङ्गुल्यच्छिद्रपाणिः कमलदलमिव श्रीकपाले कृतोर्ध्वं
पाणावुत्तानमुष्टिर्भवति धनुषि वै वामबाहुप्रसारः ।
तर्जन्यारूढवक्रा भवति च नियता मध्यमा वज्रपाशे
रत्ने द्वन्द्वोऽङ्गुलीनां भवति नृप विकाशश्च पद्मे च तासाम् ॥१८०॥

[243a]

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगो भवति जलचरेऽङ्गुष्ठकाधश्च मुष्टि-
रादर्शे संमुखं स्यात् सुसमकरतलं साङ्गुलीकं ह्यछिद्रम् ।
तर्जन्याद्यूर्ध्ववक्रा क्रमपरिरचिताङ्गुष्ठके श्रृङ्खलाया-
मङ्गुष्ठाद्याश्चतस्रः शिरसि सममुखा कुञ्चिताधः कनिष्ठा ॥१८१॥

तथा **कपालेऽङ्गुल्यच्छिद्रपाणिः कमलदलवत्** कपालमुद्रा उत्तानकेति। तथा प्रसारितपाणा**वुत्ताना मुष्टिर्धनुषि**, एवं धनुर्मुद्रा। तथा वाममुष्ट्यूर्ध्वे **तर्जनीमारूढा वक्रा मध्यमा** द्वयोर्मध्ये छिद्रम्, एवं **वज्रपाशः**। एकहस्तमुद्रेयम्। अपरा हस्तद्वयेन वरुणादेर्यत्र दक्षिणे यौगपद्येन वज्राङ्कुशो न दृश्यते। एवं पाशमुद्रेति। तथा **द्वन्द्वो** मेलापकः। पञ्चाङ्**गुलीनां** मध्ये मध्यमां कृत्वा ऊर्ध्वं पाणाविति **रत्न**मुद्रा। वामहस्ते **पद्म**मुद्राया[1]मङ्गुष्ठे[2] श्लिष्टे तर्ज[3]न्यादिषु, एवमङ्गुलीनां **विकाश**श्चतुर्दलकमलवद् उभयहस्ताभ्याम् अष्ट[4]दलं भवति। एवं पद्ममुद्रेति। तथा डमरुके मध्यमा[5]नामिकाभ्यां मुष्टिबन्धः। अङ्कुशाकारेण तर्जनी अङ्गुष्ठनखोपरि कनिष्ठा[6]र्धवक्रेति[7]। तथा मुद्गरे मुष्टिबन्ध इति। चक्रे सर्वाङ्गुलीनामाराकारेण प्रशा(सा)र एकहस्ते उभयहस्तकरतलसंपुट इति। तथा **तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्योगोऽङ्गुष्ठाधः** कनिष्ठादि**मुष्टि**रङ्गुष्ठतर्जनीप्रसारिता शङ्खमुद्रेति। **आदर्शाभिमुखं सुसमकरतलं** वामेति दर्पणमुद्रायाम्, **अङ्गुलीकमछिद्रं** तथा **तर्जन्यादिकं** कृत्वा कनिष्ठापर्यन्तमङ्गुष्ठोर्ध्वं तर्जनी **वक्रा** [8]कुण्डलाकारा, तदुपरि मध्यमा, मध्यमोपरि अनामा, अनामोपरि कनिष्ठा। एवं **श्रृङ्खला**मुद्रेति। तथा ब्रह्म**शिरसि अ**[243b]**ङ्गुष्ठाद्याश्चतस्रः सममुखा** द्वन्द्वयोगेना**धो**मुखा **कनिष्ठा कुञ्चि**तेति शिरोमुद्रा ॥१८०-१८१॥

हस्ताभ्यां शङ्खमुद्रा भवति हि मुकुटे तर्जनीद्वन्द्वयोगः
पञ्चाङ्गुल्यैकयोगोऽपि च करतलयोः पृष्ठतः कुण्डलंच ।

१. ग. ० द्रामङ्गुष्ठे। २. ग. च. ०ष्ठकनिष्ठे। ३. च. न्यग्रादिषु, ग. न्याद्या दिक्षु। ४. च. भो. दलकमलं। ५. ग. च. ० नामाभ्यां। ६. ग. 'अर्धं' नास्ति। ७. सा. पा. चक्रेति।

पाणौ पृष्ठेऽङ्गुलीनां क्रमपरिरचितं बन्धनं कण्ठिकायां
त्र्यङ्गुल्यन्योन्ययोगोभयकरकुटिलाद्यन्तयोर्मेखलायाम् ॥१८२॥

तथा **हस्ताभ्यां शङ्खमुद्रा** श्लिष्टा **मुकुटे भवति** इत्यूर्ध्व**तर्जनीद्वन्द्वयोगः**। उभयहस्तयोर्विषमकरतलदेशः **पञ्चाङ्गुलीनां** पृष्ठतः कुण्डलेष्विति **कुण्डल**मुद्रा। तथा **पाणौ पृष्ठेऽङ्गुलीनां क्रमपरिरचितं** परस्परं **बन्धनं कण्ठिकाया**मेवं कण्ठिकामुद्रा। तथा **मेखलायां त्र्यङ्गुल्यो**ऽनामामध्यमातर्जन्यो वामसव्ययोरङ्गुल्यग्रे मेलापकः कनिष्ठाङ्गुष्ठाया मुष्टिबन्ध इति [1]मेखलामुद्रा ॥१८२॥

अङ्गुष्ठौ मध्यमे द्वे वलयमिव कृतौ नूपुरे मुष्टिबन्धात्
तद्वत् केयूरयुग्मे भवति च कटके तर्जनीद्वन्द्वयोगः ।
अङ्गुष्ठो डाकिनीनां भवति वरकुलं तर्जनी गुह्यकानां
गन्धर्वाणां फणीनां क्रमपरिरचिता मध्यमाऽनामिका वा ॥१८३॥

तथोभयहस्तयोरङ्गुष्ठे द्वे **मध्यमे द्वे** श्लिष्टे ताभ्यां **वलयमिव** [2]**कृतौ नूपुरे** शेषाङ्गुलीभि**र्मुष्टिबन्ध** [3]इति नूपुरमुद्रा। तथा **केयूरे कटके** वाऽङ्गुष्ठयोग**स्तर्जनीयोगो** वलय इव **भवती**ति भगवतश्चिह्नमुद्रा। [244a]

इदानीं कुलमुद्रोच्यते—अङ्गुष्ठेत्यादिना। इह सर्वासां **डाकिनीनां** साधारण**मङ्गुष्ठ**दर्शनं वज्रमुष्ट्युपरि **कुलमुद्रा भवति**। तथा वज्रमुष्ट्युपरि **तर्जनी** प्रसारिता **गुह्यकानां** यक्षाणां कुलमुद्रा। तथा **गन्धर्वाणां** मुष्टिबन्धाद् [4]**मध्यमा** प्रसार्य दर्शिता कुलं भवति। एवं **फणीनामनामिका** कुलं भवति ॥१८३॥

भूतानां श्रीकनिष्ठा प्रवरकरतलं राक्षसानां कुलं स्यात्
सिद्धानां मुष्टिबन्धो भवति वरकुलं पर्वसन्धिः सुराणाम् ।
पञ्चाङ्गुल्यर्धवक्रा ह्युभयकरतलं जातिमुद्रा नखीनां
तर्जन्यौ द्वेऽर्धवक्रे खलु शिरसि गते श्रृङ्गिणां मुष्टिबन्धात् ॥१८४॥

भूतानां कनिष्ठा दर्शिता कुलं भवति। तथोर्ध्वं चतुरङ्गुलीभिर्मुष्टिबन्धः **करतलं** [5]प्रकटितं दर्शितं **राक्षसानां कुलं स्यात्**। **सिद्धानां मुष्टिबन्धो** दर्शितः **कुलं भवति**। तथा **सुराणां** बाहू[6]पबाहु**पर्वसन्धिः** कुलम्। तथा ब्रह्मराक्षसस्य हस्तपृष्ठतलम्। तथोपबाहुकर[7]तलसन्धिर्दर्शिता [8]व्यन्तराणां कुलं स्यात्। एवमष्टविधा मुद्रा वामहस्तेन दर्शनीयाऽष्टकुलजानामिति। इदानीं [9]नखीनां जाति[10]मुद्रोच्यते—पञ्चेत्यादिना।

१. ख. भो. मेखलायाः। २. ग. भो. कृते। ३. क. 'इति' नास्ति। ४. क. ख. ग. च. 'मध्यमा' नास्ति। ५. च. प्रकटं। ६. ग. 'उपबाहु' नास्ति, च. 'पर्व' नास्ति। ७. क. ख. ग. छ. 'तल' नास्ति। ८. भो Ro Lans (वेतालानां)। ९. क ख. छ. तिर्यङ्गुलीनां। १०. ग. मुद्रा उच्यते

इह **पञ्चाङ्गुल्यर्धवक्रा** सिंहनखाकारेण **जातिमुद्रा नखीनामेककरतले उभये** वा। तथा **तर्जन्यौ द्वेऽर्धवक्रे**ऽर्धचन्द्राकारेणोभयकरमुष्ट्युपरि शिरसि दर्शिता **शृङ्गिणां मुष्टिबन्धा**-**विति** शृङ्गिणीमुद्रा ॥१८४॥

बद्धेऽन्योन्यं कनिष्ठे विषमकरतले पक्षयोगोऽण्डजानां
पञ्चाङ्गुल्यग्रवक्रा भवति हि फणिनां जातिमुद्रा विशिष्टा ।
तर्जन्यन्ताः प्रसाराः प्रतिदिवसबलौ चापरेऽधश्च श्लिष्टे
ज्वालायां श्लिष्टज्येष्ठौ वरकरतलयोस्तर्जनी सारिताऽन्या ॥१८५॥
[244b]

तथा **बद्धेऽन्योन्यं कनिष्ठे विषमकरतले** पृष्ठयोगेन तर्जनीमध्य[1]माद्या[2]नामिकाऽङ्गुष्ठयोर्मुखयोग इत्येवं गरुडमुद्रा। तथा[3] **पञ्चाऽङ्गुल्योऽग्रपर्ववक्रा** दर्शिता [4]**फणिनां जातिमुद्रा भवति**। तथा ज्वालामुद्रायां मध्यमाऽनामाकनिष्ठा प्रसारिता उभयकरे तर्जन्यौ द्वेऽन्योन्यं ग्रन्थिते [5]शिरस उपर्यधो[6]मुखेनाङ्गुष्ठौ **श्लिष्टाविति वरकरतलयो**-**स्तेनैव** प्रकारेण, किन्तु **तर्जनी** [7]**सारिताऽन्या** द्वितीया **ज्वालामुद्रे**ति जातिमुद्रा तिर्यङ्मुखीनां दर्शनीयेति नियमः ॥१८५॥

इदानीं वीरवीरेश्वरीणां परस्परसंभाषणमुद्रा उच्यन्ते—

तर्जन्या दर्शनं वै कथितमपि भवेत् स्वागतं योगिनश्च
द्वाभ्यां सुस्वागतं च प्रवदति सुभगा क्षेममङ्गुष्ठबन्धात् ।
अङ्गुल्याश्छोटिकायाः कथयति नियतं श्रेष्ठमन्त्री त्वमत्र
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां ससमयसुरया तर्पणं ते करोमि ॥१८६॥

तर्जन्येत्यादिना। इह यत्र कुत्रचिद् [8]**दर्शनमात्रेण** मुष्टिं बद्ध्वा ऊर्ध्व[9]मुखां तर्जनीमङ्गुष्ठाभिमुखां श्लिष्टां [10]दर्शयेत्। तस्या दर्शने सति **स्वागतं कथितं भवेद्**, योगिन्या **योगिनो** योगिना योगिन्या वा इति। **द्वाभ्यां** तर्जनीमध्यमाभ्यां पृष्ठतः संयुक्ताभ्यां **सुस्वागतं** कथितं भवति। तथा **प्रवदति सुभगा क्षेमं** वामाङ्गुष्ठमुष्टि-**बन्धादिति**। तथाऽङ्गुल्याश्छोटिकाया अङ्गुष्ठतर्जन्याः **कथयति नियतं श्रेष्ठमन्त्री त्वमत्रे**ति। **अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां** छोटिकां कृत्वा कथयति **ससमयसुरया तर्पणं ते करोमि** ॥ १८६ ॥

---

१. ग. मध्यमाद्य। २. ग. च. नामिता। ३. ग. एषां। ४. क. ख. 'फणिनां' नास्ति। ५. ग. भो. शिरसि। ६ भो. मुखेन दर्शिताङ्गु०। ७. ग. च. भो. प्रसारिता। ८. भो. Phrad Pa Tsam Gyi (स्पर्शमात्रेण)। ९. क. ख. मुखीं। १०. ग. च. संदर्शयेत्।

सर्वाङ्गुल्यग्रसारात् प्रवदति सुभगा स्वागतं योगिनश्च
वामाङ्गस्पर्शनेन प्रकटयति सदा बन्धुरेको मम त्वम् ।
योनौ स्पर्शे च भर्ताऽप्यधरकुचयुगालेखने वा नखैश्च
अङ्गुल्यन्योन्यबन्धात् कथयति समयं मध्यमाङ्गुष्ठसारात् ॥१८७॥
[245a]

तथाऽभिवादनयोगेन **सर्वाङ्गुल्यप्रसारात् प्रवदति सुभगा स्वागतं योगिनश्च**। तथा **वामाङ्गस्पर्शनेन प्रकटयति सदा बन्धुरेको मम त्वम्**। तथा **योनौ स्पर्शे च भर्ता**। तथाऽ**धरकुचयुगालेखने वा** भर्ता कथित इति। **नखैश्चे**ति। **अङ्गुल्यन्योन्य**-**बन्धादिति** कराभ्यां संपुटं कृत्वा कनिष्ठाद्या [1]अङ्गुल्यन्योन्यबद्धा, अतो बन्धात् तर्जन्याऽनामिकाबन्धादङ्गुष्ठमध्यमाप्रसारात् **समयमेलापकं कथयति** संभाषण-मुद्रा ॥ १८७ ॥

इदानीं निर्भर्त्सनमुद्रा उच्यन्ते—

ओष्ठभ्रूनेत्रवक्रे वदति शिरसि कण्डूयमानेऽतिमूर्खो
दंष्ट्रामध्ये कनिष्ठा प्रकटयति भयं तर्जनी हृन्मुखे च ।
अङ्गुष्ठे मुष्टिबन्धाद् भुवि करचरणास्फालने भक्षयामि
जिह्वास्पर्शे च भुक्तं ह्युदरदशनयोस्ताडिते नैव भुक्तम् ॥१८८॥

ओष्ठ इत्यादिना। इह यदा यत्र कुत्रचिद् दूतिकां दृष्ट्वा सती साधकं दृष्ट्वा ओष्ठादिकं वक्रं दर्शयति। तत्र **ओष्ठे वक्रे भ्रुवि वक्रे नेत्रे**[2]**वक्रे** तथा **शिरसि कण्डूयमाने वदत्यति**[3]महामूर्खस्त्वं यदा मुद्रा[4]संकेतकं न जानाती(सी)ति। तथा यदि **दंष्ट्रामध्ये कनिष्ठा**रोपिता तया, तदा सा कनिष्ठा **भयं प्रकटयति**। अथवा **तर्जनी हृदये मुखे** वा रोपिता कथयति भयमिति। तथा**ङ्गुष्ठे** मुष्टिबन्धं कृत्वा तस्मा-**न्मुष्टिबन्धात्** तेनैव **भुवि** स्फालनात्[5] **करचरणाभ्यां**[6] **स्फालने** सति **भक्षयामी**ति वदति, मुद्रासंकेतानभिज्ञत्वादिति निर्भर्त्सनमुद्राः। तथा भोजनार्थं **जिह्वास्पर्शे च भुक्त**मना-मिकयेति। तथा वामकरे**णोदरदशनयोस्ताडिते न भुक्त**मिति ॥ १८८ ॥

पाणौ पृष्ठे च गच्छ प्रवदति नियतं संमुखे तिष्ठ तिष्ठ
जानूरूमर्दने वै कथयति सुभगाऽद्यैव विश्रामय त्वम् ।

---

१. क. ख. ग. च. छ. स्तिस्रोऽन्योन्य०। २. ग. 'वक्रे' नास्ति। ३. च. 'महा' नास्ति। ४. ग. संकेतनं, च. संकेतं। ५. क. ख. ० नात्। ६. ग. च. चरणाभ्यां वा।

निद्रां पादप्रसारात् कुरु मम सुरतं जानुयुग्मप्रसारात्
सर्वाङ्गे स्पृश्यमाने वदनगतकरे नास्ति मेलापको मे ॥१८९॥
[245b]

तथा **पाणौ पृष्ठे** दर्शिते सति **गच्छेति प्रवदति नियतम्**। **संमुखे** दर्शिते सति **तिष्ठ तिष्ठे**ति वदति। तथा **जानुमर्दिते ऊरुमर्दिते** सति **कथयति सुभगाऽद्य विश्रामय त्वम्**। तथा **निद्रां पादप्रसारात् कुर्व**(वि)ति [1]नियतं ददाति। तथा **कुरु मम सुरतं जानुयुग्मप्रसारा**दिति नियमः। तथा यदि सर्वाङ्गं स्वकं वामहस्तेन स्पृशति, **वदने**[2] वामहस्तं ददाति। एवं क्रियमाने(णे) **नास्ति मेलापको मे** त्वया सार्धमिति वदति स्वाम्यादिना रक्षितत्वादिति ॥ १८९ ॥

अन्योन्यं हस्तबन्धे वदति मम गृहे चक्रमेलापकोऽद्य
अङ्गुष्ठानामिकाग्राद् बहुविधसमयैस्तर्पयामो यथेष्टम् ।
पादे कण्डूयमाने गमनमपि तथा बाह्यमेलापके च
तर्जन्यन्योन्यबन्धे त्वपहरति भयं वज्रमित्रं त्वमद्य ॥१९०॥

तथा स्वकीयहस्तेऽन्योन्यं **बन्धे**ऽङ्गुष्ठतर्जनीमध्ये विनिःसृत्य तदा **वदति** मुद्रया**ऽद्य मम गृहे चक्रमेलापको** भविष्यतीति, त्वमपि तिष्ठेत्यर्थः। **अङ्गुष्ठानामिकाग्राद्**दर्शिते **बहुविधसमयै**[3]स्तर्पयामो **यथेष्ट**मिति वदति[4]। तथा **पादे कण्डूयमाने** सति **गमनमपि** कथयति [5]**बाह्यचक्रमेलापके**, त्वमप्यागच्छेत्यभिप्रायः। तथा **तर्जन्य**[6]ङ्कुशाकारेणान्योन्य[7]**बन्धे** सति [8]**भयमपहरति वज्रमित्रं त्वमद्ये**ति। एवं समयमेलापकमुद्रानियमः ॥ १९० ॥

इदानीमत्यन्तक्रुद्धानां मुद्रा उच्यन्ते—

केशच्छेदे स्वदन्तैर्वदति नरपशो पातनीयस्त्वमत्र
अन्योन्यं दन्तघृष्टे तव पिशितमिदं भक्षणीयं मयाद्य ।
जिह्वौष्ठे लालिते च वदति तव तनौ रक्तपानं करोमि
ओष्ठे सन्दश्यमानेऽप्युदरगतमिदं भक्षयामस्तवान्त्रम् ॥१९१॥
[246a]

---

१. ग. च. नियमं। २. च. वदने च। ३. छ. स्तर्पयात्मा, भो. mChod Par Bya (अर्प्यताम्)। ४. च. वदति त्वाम्। ५. ग. च. बाह्ये। ६. क. ख. छ. तर्जन्याङ्कु०। [illegible] ८. च. भयमपि।

केशेत्यादिना। इह यदा साधको मिथ्याहङ्कारेणावमानं करोति, प्रतिमुद्रां वा दर्शयति सामर्थ्यं विना, तदा[1] सामर्थ्ययुक्ता स्वकेशान् छेदयति स्वदन्तैरेवं **केशच्छेदे स्वदन्तैः** कृते सतीदं **वदति** मुद्रया, हे **नरपशो पातनीयस्त्वमत्र** मयेति। तथाऽ**न्योन्यं** दन्तै**र्दन्तान्** घृष्यति तत्र **घृष्टे** सतीदं वदति **तव पिशितमिदं भक्षणीयं मयाद्य** हे नरपशो इति। तथा **जिह्वौष्ठे लालिते** सति **वदति तव तनौ रक्तपानं करोमी**ति। तथा **ओष्ठे** दन्तैः **संदश्यमानेऽपि** वद**त्युदरगतमिदं भक्षयामस्तवान्त्रं** हे नरपशो क्व गच्छसीति मुद्रां दर्शयति क्रुद्धा सती। तेन सामर्थ्यरहितेन प्रतिमुद्रा न दर्शनीया। तासामभिवादनं कृत्वा हृदये वामकरतलं दत्त्वा वामावर्तेन परिभ्राम्य स्वकायं ततो वामहस्तेनोर्ध्वं प्रणामं कृत्वा गन्तव्यम्। ताभिः सार्धं वादो न कर्तव्य इति बालयोगिनां नियमं[2] यद्ददाति, तत्तेन करणीयमन्यथा मरणं नयति रुष्टा दूतिका सामर्थ्ययुक्तेति भगवतो नियमः।

इदानीं परस्परमुद्रादर्शने प्रतिमुद्रालक्षणमुच्यते। इह कालचक्रभगवतो वामसव्यभुजाभ्यां यानि चिह्नानि [3]तत्स्वरूपा मुद्राः। ततश्च परस्परं मुद्राप्रतिमुद्रेति। वज्रवज्रघण्टयोः, खड्गफ[4]लकयोः, त्रिशूलखट्वाङ्गयोः, कर्तिकाकपालयोः, बाणचापयोः, अङ्कुशपाशयोः, डमरुकरत्नयोः, मुद्गरपद्मयोः, चक्रशङ्खयोः, कुन्ददर्पणयोः, दण्डशृङ्खलयोः, पर्शुब्रह्मवक्त्रयोः, गजचर्मतर्जन्योः, मुकुटकुण्डलयोः, कण्ठिकारुचकयोः, मेखलानूपुरयोः, शृङ्गीनख्योः, नागगरुडयोः, हस्तपादयोः, मुखगुदयोः, भगलिङ्गयोः, स्तनौष्ठयोः, नेत्रभ्रुवोः, तिलककज्जलयोः, प्रकोपशिखामोक्षणयोः, जान्वोः, कण्ठललाटयोः, नाभिहृदययोः, सीमन्तसिन्दूररेखयोः, दंष्ट्राकनीयस्योः, अङ्गुष्ठानामिकयोः, तर्जनीमध्यमयोः। एवमनेकमुद्रादर्शिते प्रतिमुद्रा अनेका भवन्ति प्रज्ञोपायधर्मेण पृथिव्यादितत्त्वभेदेन, सर्वत्र योगिना वेदितव्येति नियमः ॥ १९१ ॥ [246b]

लास्यायोगेन लास्या भवति नरपते हास्ययोगेन हास्या
नृत्यायोगेन नृत्या भवति बहुविधा वाद्ययोगेन वाद्या ।
गीतायोगेन गीता वरविविधगुणा गन्धयोगेन गन्धा
मालायोगेन माला भवति गुणवशाद् धूपयोगेन धूपा ॥१९२॥

इदानीं लास्यादयो मुद्राऽनन्ताः। तासां स्वभावं ज्ञात्वा सर्वास्ता वेदितव्याः। तद्यथा—**लास्यायोगेन लास्या भवति नरपते हास्ययोगेन हास्या, नृत्यायोगेन नृत्या भवति बहुविधा वाद्ययोगेन वाद्या, गीतायोगेन गीता वरविविधगुणा गन्धयोगेन गन्धा, मालायोगेन माला भवति गुणवशाद् धूपयोगेन धूपा** ॥ १९२ ॥

---

१. क. ख. तथा। २. च. नियमः। ३. च. तत्स्वरूप। ४. ग. खेटयोः, च. खेटकयोः।

दीपाकारेण दीपा खलु निहततमा पात्रमुद्राऽमृता स्याद्
इत्येवं सर्वमुद्राः पुनरपि च ततः पञ्चभेदैर्विभिन्नाः ।
अन्या मुद्रास्त्वनन्ताः सकलतनुगता योगिना वेदितव्या
यद्यद् वस्तुस्वभावो भवति भुवितले तत्स्वभावाश्च मुद्राः ॥१९३॥

दीपाकारेण दीपा खलु निहततमा पात्रमुद्राऽमृता स्यात्, इत्येवं सर्वमुद्राः पुनरपि च ततः पञ्चभेदैर्विभिन्नाः, अन्या मुद्रास्त्वनन्ताः सकलतनुगता योगिना वेदितव्याः, यद्यद् वस्तुस्वभावो भवति भुवितले तत्स्वभावास्तु मुद्रा इत्यतः—

यावन्तो दृष्टिविक्षेपास्तावन्मुद्राः प्रकीर्तिताः ।
मुद्रायाः प्रतिमुद्रायां कः समर्थोऽवधारितुम् ॥
अभिज्ञा योगिनां यावन्नोत्पद्यन्ते समाधिना ।
तावल्लौकिकवादार्थं प्रतिमुद्रां न दर्शयेत् ॥

इति मुद्रासंकेतनियमः ॥ १९३ ॥

इदानीं दृष्टि[1]संकेत उच्यते—

तिर्यग्दृष्ट्या च दूती कथयति सुभगस्यागतस्त्वं कुतश्च
प्रत्युक्तं योगिनः स्यात् शिरसि गतकरस्येक्षणे तद्दिशो वै ।
क्षेम[247a]स्तेऽप्यूर्ध्वदृष्ट्या क्षितितलगतया तिष्ठ विश्रामय त्वं
गच्छ त्वं वक्रदृष्ट्या कथयति सुरतं रागदृष्ट्या च दूती ॥१९४॥

तिर्यगित्यादिना । इह यदा योगिनो दर्शने दूतीति योगिनी **तिर्यग्दृष्ट्या** दर्शयेत् तया दृष्ट्या **कथयति सुभगस्येति** योगिन् **आगतो**ऽसि **कुतः** स्थानात् **त्वमिति** पृच्छति । ततः **प्रत्युक्तं योगिनः स्यात् शिरसि** वामकरगतस्येक्षणात् **तद्दिशो वै**[2] स्थानादागमनकथनम् । **क्षेमस्तेऽप्यूर्ध्वदृष्ट्या** कथयति **क्षितितलगतया तिष्ठ विश्रामय त्वमि**ति कथयति । **गच्छ त्वं वक्रदृष्ट्ये**ति **कथयति** । **रागदृष्ट्या सुरतं** कुर्विति कथयति **दूती** ॥ १९४ ॥

मित्रं मे सौम्यदृष्ट्या प्रकटयति भयं क्रोधदृष्ट्या भृकुट्या
क्रूराऽहं केशदृष्ट्या कथयति सुभगस्येङ्गितैः स्वस्वभावम् ।
ऊर्णादृष्ट्योत्तमाहं प्रकटयति गुणं योगिनी घ्राणदृष्ट्या
सौभाग्यं चौष्ठदृष्ट्या वदति कुचयुगालोकनेऽहं सुमुद्रा ॥१९५॥

१. ग. च. छ. संकेतक । २. ग. च. वैं इति ।

मित्रं मे त्वं **सौम्यदृष्ट्या** कथयतीति संभाषणदृष्टिनियमः । इदानीं भयदृष्ट्य उच्यन्ते—इह यदा भृकुटीं[1] कृत्वा क्रोधदृष्टिं दर्शयति तदा तया **क्रोधदृष्ट्या भृकुट्या** योगिनो **भयं प्रकटयति**, अज्ञत्वादिति । तथा **केशदृष्ट्या क्रूराऽहमिति कथयति सुभगस्य** योगिनः **स्वस्वभावमे**भिरि**ङ्गितै**रिति । तथा **ऊर्णादृष्ट्या उत्तमाहमिति प्रकटयति** । तथा **गुणं** प्रकटयति **घ्राणदृष्ट्या** । **ओष्ठदृष्ट्या सौभाग्यं** स्वकीयं प्रकटयति । तथा **स्वकुचयुगालोकनेऽहं** [2]**सुमुद्रे**ति वदति ॥ १९५ ॥

हृद्दृष्ट्या भावितात्मा वदति भुजयुगालोकनेऽहं प्रचण्डा
शक्ताहं स्कन्धदृष्ट्या सनखकरतलालोकने राक्षसी च ।
पृष्ठालो[247b]के भुजङ्गी त्वहमिति समयी नाभिदृष्ट्या नरेन्द्र
शुद्धाहं गुह्यदृष्ट्याऽप्यहमपि सुरते दुर्जया चोरुदृष्ट्या ॥१९६॥

हृद्दृष्ट्या भावितात्मेति **वदति** । तथा **भुजयुगालोकनेऽहं प्रचण्डे**ति वदति । तथा **स्कन्धदृष्ट्या शक्ताह**मिति वदति । तथा **सनखकरतलालोकने राक्षसी चाह**मिति वदति । तथा **पृष्ठालोके नागिन्यह**मिति वदति । तथा **नाभिदृष्ट्याऽहं समयिनी**ति वदति । **नरेन्द्रे**त्यामन्त्रणम् । तथा **गुह्यदृष्ट्या शुद्धाह**मिति वदति । तथा **ऊरुदृष्ट्या सुरते दुर्जयाह**मिति कथयति ॥ १९६ ॥

सिद्धाहं जानुदृष्ट्या कथयति नियतं चर्द्धिदा पाददृष्ट्या
पादाङ्गुष्ठावलोके त्वहमपि भुवने वज्रकायैकवीरा ।
सर्वाङ्गुल्यग्रदृष्ट्या त्रिभुवननिलये सर्वगा विश्वमाता
दूतीनामेव दृष्टिः क्षितितलनिलये योगिना वेदितव्या ॥१९७॥

तथा **जानुदृष्ट्या सिद्धाऽहमि**ति **कथयति** । तथा [3]**पाददृष्ट्याऽहमृद्धिदे**ति कथयति । तथा **पादाङ्गुष्ठावलोके** कृते सति तया दृष्ट्याप्य**हं भुवने वज्रकायैकवीरे**ति कथयति । तथा **सर्वाङ्गुल्यग्रदृष्ट्या** पादयो**स्त्रिभुवननिलये** [4]**सर्वगा विश्वमाता**ऽहमिति कथयति । एवं योग्यपि सामर्थ्ययुक्तमात्मगुणान् दूतीनां प्रकटयति । एवमुक्तक्रमेण **दूतीनामेव दृष्टिः** पुनरपि बहुविधा **वेदितव्या** स्वभावैरिति दृष्टिसंकेत[5]नियमः ।

तथा छोमकाः । यस्य भावस्य यन्नाम तस्याद्याक्षरेण तद्ग्रहणं वेदितव्यम्, प्रस्ताव-वशादिति । यथा सैन्धवमानयेत्युक्ते स्नाने वस्त्रम्, भोजने लवणम्, गमनेऽश्वः, युद्धे

१. क. च. भ्रुकुटिं । २. क. ख. ग. च. समुद्रेति । ३. छ. 'पाददृष्ट्या ''' कथयति, तथा' नास्ति । ४. ग. सर्वगा । ५. ग. च. छ. संकेतक ।

खड्गमिति न्यायेन [1]सर्वः प्रथमा[2]क्षरसंकेतवस्तुधर्मो वेदितव्यः। गणचक्रादिके[3]ऽसमयि-सत्त्वमध्ये सन्ध्याभाषान्तरेण छोमकेन वा वक्तव्यं [4]**योगिना** योगिन्या वा इति सर्वत्र नियमः ॥ १९७ ॥ [248a]

इदानीं शिष्याणां दानार्थं स्वशरीरादिविभागनियम उच्यते—

षड्भागं देहमध्ये करचरणतनोर्दानमप्युत्तमाङ्गं
वाचा कर्मेन्द्रियाणां सगुणमपि मनस्त्विन्द्रियाणां च मध्ये ।
धात्वंशं धातुमध्ये द्विपदपशुगणान् तत्त्वभागेन चान्यद्
आचार्याय प्रदाय व्रजति सुखपदं दिव्यमुद्रानुविद्धः ॥१९८॥

षड्भागमित्यादिना। इह यदा वज्राचार्येणाभिषिक्तो गृहस्थ[5]श्चेल्लको भिक्षुको वा, तेनेयं प्रतिज्ञा कर्तव्या मया सर्वकालं [6]षडंशं सर्ववस्तूनां दानं दातव्यमिति[7]। तत्र प्रथमं तावत् **षड्भागं देहमध्ये करचरणतनो**रिति हस्तद्वयस्य चरणद्वयस्य तनोरेषु पञ्चसु मध्ये षष्ठमु[8]**त्तमाङ्गदानं** नमस्कारार्थम् आचार्याय प्रदेयं बुद्धबोधिसत्त्वाय[9] गुरवे। तं दत्त्वा **व्रजति सुखपदं दिव्यमुद्रानुविद्धो** दानदातेति। तथा **वाचा कर्मेन्द्रियाणां** मध्ये देया पाणिपादपायुभगादीन्द्रियाणां षष्ठं वागिन्द्रियं सत्यवचनार्थं वाचा देयेति भगवतो नियमः। तथा चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकाये**न्द्रियाणां मध्ये** षष्ठं **मनः सगुणं** मायाप्रपञ्चरहितं सत्त्वार्थं देयमिति दाननियमः।

तथा [10]**धात्वंशमि**ति। धातवः स्वर्णरत्नधान्याद्यचेतनानि द्रव्याणि, तेषां चिरागन्तुकधातूनां [11]षडंशं देयं योगिन्यादिपूजार्थमिति। तथा सचेतनानि **द्विपद**-चतुष्पदानि [12]षडंशेन देयानि, [13]पञ्चांशान्यात्मकुटुम्बभोगाय स्थापयितव्यानि। तथा **तत्त्वभागेन चान्यद्** रूपभार्यादिकं मासमध्ये पञ्चवारान् कामदानेन देयमिति तथागत-नियमः। अन्यथा मन्त्रनये काम[14]दानेन विनाऽनन्तकल्पैर्महामुद्रासिद्धिर्न भवति। कर्ममुद्राज्ञानमुद्रासिद्धिरपि न भवति, रागाभिभूतस्य कुल[15]ग्रहादिति। [16]एवं षड्-वि[17]भागदाननियमः ॥ १९८ ॥

इदानीं करुणाभिषेक उच्यते—

ये सत्त्वा लोकधातौ त्रिविधभवगता ज्ञानवज्राङ्कुशेन
आकृष्ट्वा तान् समन्तात् परमकरुणया मण्डले चाभिषिच्य ।

१. ग. सर्वप्रथमा० । २. च. माक्षरः । ३. ग. दिके सम । ४. क. ख. 'योगिना' नास्ति । ५. च. गृहस्थचेल्ल० । ६. च. षडङ्गं । ७. भो. Ṅes Pa (नियमः) इत्यधिकम् । ८. ग. च. ०त्तमाङ्गं । ९. ग. च. सत्त्वयुक्ताय । १०. च. धात्वङ्ग । ११. च. षडङ्गं । १२. च. षडङ्गेन । १३. च. पञ्चा[illegible]न्यस्म । १४. ग. दानाद् । १५. क. ख. छ. ग्रहादि० । १६. ग. 'एवं' नास्ति । १७. च. भो. 'वि' नास्ति ।

बुद्धैर्व[248b]ज्रामृतेनामलशशिवपुषा वज्रिणो लब्धमार्गाः
स्वस्थाने प्रेषणीया व्यपगतकलुषा बोधिचर्यानुरूढाः ॥१९९॥

ये सत्त्वा इत्यादिना। इह **लोकधातौ** षड्गतिषु **ये सत्त्वा**[1] अनभिषिक्ता-स्त्रिविध[2]**भवगता**स्तान् सर्वज्ञ**ज्ञानवज्राङ्कुशेनाकृष्य** भावनामात्रात् **परमकरुणया मण्डले चाभिषिच्य बुद्धै**र्विण्मूत्ररक्तमज्जाभिः, तथा **वज्रामृतेन** शुक्रेणा**मलशशिवपुषा** ततो **वज्रिणो लब्धमार्गाः** सन्त इति [3]विभाव्य ततस्ते **स्वस्थाने प्रेषणीया** वज्राचार्येण सर्वे **व्यपगतकलुषा बोधिचर्यानुरूढा** इति करुणाभिषेकनियमः ॥१९९॥

इदानीमवधूतस्य शिष्यस्याभिषेकनियम उच्यते—

द्रव्याभावेऽभिषेको जिनपतिवचनेनावधूतस्य देय
एवं धूमादिमार्गः सकलगुणनिधिर्नाडिकायोगयुक्तः ।
सेवार्थं हस्तमुद्रा स्वहृदयवशगा सर्वदोषैर्विमुक्ता
अन्येषां नैव देयं जिनवरहृदयं मातृपूजाविहीनम् ॥२००॥

द्रव्याभाव इत्यादिना। इह यदावधूतस्य शिष्यस्य द्रव्याभावस्तदा गुरुणा **द्रव्याभावेऽभिषेको जिनपतिवचनेनावधूतस्य देयो** यथानुक्रमेण सप्ताभिषेकस्ततो देयः। कलशादिकस्त्रिविधः, **एवं** चतुर्थो **धूमादिमार्गो** देय इति कथनीयो वाचेति। तथा **सकलगुणनिधिर्नाडिकायोगयुक्तो** महाक्षरसुखक्षणो वाचा कथनीयः। तस्य **सेवार्थं** कर्ममुद्राऽभावे सति **हस्तमुद्रा**नियमो देयः। **स्वहृदयवशगा** [4]सा हस्तमुद्रा **सर्वदोषै-र्विमुक्ता** बोधिचित्तस्थिरीकरणायेति नियमः। **अन्येषां** पुनर्गृहस्थानां **नैव देयं जिनवर-हृदयं** वज्रपदं **मातृपूजाविहीन**मिति तथागतसेकनियमः ॥२००॥ [249a]

इदानीं मण्डलविसर्जनमुच्यते—

सेकान्ते श्रीघटानां मृदुतनुसुखदं कञ्चुकं वस्त्रयुग्मं
देयं श्रीयोगिनीभ्यस्त्वपरमपि तथा कञ्चुकं वस्त्रयुग्मम् ।
द्वारस्थेभ्यः प्रदेयं सकलगणकुलायात्मशक्त्या तथान्यद्
अन्ते होमं प्रकृत्य स्वहृदयकमले ज्ञानसत्त्वं प्रवेश्य ॥२०१॥

सेकान्त इत्यादिना। इह **सेकावसाने** यद्व**स्त्रयुग्मं**[5] **सकञ्चुकं**[6] घटोपरि दत्तं **तद्योगिनीभ्यो** [7]घटरक्षपालिकाभ्यो **देयम्**। **अपरमपि तथा कञ्चुकं**

१. ग. नाभि० । २. क. ख. छ. भगवता । ३. क. ख. छ. भाव्य । ४. च. भो. 'सा' नास्ति । ५. क. ख. छ. युगलं । ६. ग. च. कञ्चुलीकं । ७. छ. 'घट ˝ काभ्यो' नास्ति ।

वस्त्रयुग्मम्, प्रत्येकं **द्वारस्थेभ्यः प्रदेयं** रक्षपालेभ्यः प्राग् यथाविभवतो मुकुटादिकं देयमिति नियमः। तथा **सकलगणकुलायात्मशक्त्या तथान्यद्** गणचक्रे वीरवीरेश्वरीभ्य इति। ततो गणचक्रं विसर्ज्य **अन्ते होमं प्रकृत्याचार्यः** पूर्ववत् पूजां कृत्वा पूर्वद्वारे भगवतोऽभिमुखो वज्रवज्रघण्टां गृहीत्वा वज्रबन्धेन [1]**स्वहृदयकमले ज्ञानसत्त्वं प्रवेश्य** ॥२०१॥

स्वस्थाने लौकिकान् वै सकलमपि रजो वाहयेच्छुद्धनद्यां
ताम्बूलं गन्धधूपं कुसुमफलसमं शाटिकां कन्यकानाम् ।
दत्त्वाऽऽचार्यः सशिष्यः सकलगणकुलं तर्पयित्वा यथेष्टं
शिष्यस्याज्ञां प्रदाय प्रवरकरुणया प्रेषयेत् स्वस्वधाम्नि ॥२०२॥

स्वस्थाने लौकिकान् वै इन्द्रादीन् ततोऽश्वत्थपत्रेण स्वकरेण वा वज्रेण वा ब्रह्मसूत्रमार्गेण महासुखचक्रवज्रं यावल्लोपयेत्, ततः स्वशिरसि रजस्त्रुटिमात्रं दत्त्वा पद्मादिकं लोपयेत्, इति मण्डलविसर्जननियमः। ततः **सकलं रजो** गजोपरि छत्रचामरध्वजपूजासहितं नीत्वा **शुद्धनद्यां** समुद्रगामिन्यां **वाहयेत्**। यत्र कलशे [2]नीतं [3]तं कलशमुदकपूर्णं कृत्वा पुनर्गजस्कन्धे स्थाप्य मण्डलगृहमानयेत्। गजाभावे सुखासने ऋम्पाणे[4] कृत्वा नेयमिति रजोविसर्जनम्।

ततो मण्डलगृहमागत्य [249b] गोमयेनोपलिप्ते मण्डलगृहे दशकुमारिकां पञ्चवर्षादारभ्य दशवार्षिकां यावद् दुग्धेन घृतेन पायसेन खण्डलड्डुकाद्यैर्मधुराहारैः पूर्वाह्णे संतर्प्य ततस्**ताम्बूलं[5]गन्धधूपं कुसुमं** च[6] **फलसमं शाटिकां** कलशग्रीवावेष्टितां **कन्यकानामिति** कुमारिकाणां **दत्त्वाऽऽचार्यः सशिष्यः सकलगणकुलं** वीर[7]भोजे-(ज्ये)न **तर्पयित्वा यथेष्टमिति**। तत्र वीरभोज्ये विधिरयम्—इहाचार्यपरीक्षायां त्रिधा वज्राचार्यः, उत्तमो मध्यमोऽधम इति। तद्यथा—

दशतत्त्वपरि[8]ज्ञानात् त्रयाणां भिक्षुरुत्तमः।
मध्यमः श्रावणेराख्यो गृहस्थस्त्वधमस्तयोः॥

इति नियमात् तन्त्रे तेषां भिक्षुचेल्लकगृहस्थानामेकसंकरं सामान्येन ज्येष्ठकनिष्ठत्वं वाऽभिषेकतः। तस्माद्भिक्षुवज्रधरपङ्क्तिः पूर्वाभिमुखी भवति कर्तव्या वा[9], चेल्लकपङ्क्तिरुत्तराभि[10]मुखी, गृहस्थाचार्यपङ्क्ति[11]र्दक्षिणाभिमुखी। एवं भिक्षुणीपङ्क्तिः,

१. च. 'स्व' नास्ति। २. छ. नियतं। ३. ग. भो. तत्कलश, च. सकलश, क. ख. तं तं कलश। ४. भो. Khyogs (ऋम्पाणे)। ५. क. ख. ग. छ. ताम्बूल। ६. च. कुसुमफल। ७. क. ख. च. छ. भोजने। ८. ख. ग. च. भो. ज्ञाता। ९. च. भो. 'वा' नास्ति। १०. ग. घ. पूर्वामुखी। ११. ग. घ. दक्षिणामुखी।

[1]महल्लिकापङ्क्तिः [2]उपासिकापङ्क्तिः पृथक्। तेषां ज्येष्ठकनिष्ठादिना आसनानि देयानि। तत्र भिक्षूणां यो ज्येष्ठः सेकेन किन्तु मूर्खः, लघुको महाचार्यस्तन्त्रदेशकः,तयोर्यस्तन्त्रदेशकः स वीरभोज्ये गणनायकः। ज्येष्ठोऽन्यगृहे पृथक् सन्तर्पणीयः। एवमन्येऽपि ज्येष्ठा धर्म[3]देशका [4]उपदेशका इति सत्त्वार्थकरणेऽशक्तत्वादिति। अन्ये पुनश्चेल्लकगृहस्थाः प्रागभिषिक्ता भिक्षोर्वज्रधरस्य ज्येष्ठा न भवन्ति, यावदभिज्ञा नोत्पद्यते[5]। अथ विवादं करोति [6]कश्चित्, तदा सामर्थ्यं पृच्छ्यते। यदि दर्शयत्यभिज्ञादिकम्, तदा स गणचक्रनायक इति।

अथ मिथ्याभिषेकाभिमानः कलहं करोति संवृतिं त्यक्त्वा, तदा स्वगृहान्निर्घाटयेत्। अथ निर्घाटितो दण्डमङ्गीकरोति, तदा खानपानादिको दण्डो देयो दण्डाधिपतिना। एवं भिक्षुचेल्लकगृहस्थानां यथानुक्रमेण खानपानादिकं देयम्। तदेव सर्वं[7] प्राक् स्थापनीयम्। तेषां मध्ये मण्डलं कृत्वा कालचक्रभगवतः प्रथमपट्टिकां खानपानादिकं दत्त्वा ततो भिक्ष्वादीनामाचार्याणामन्येषामभिषिक्तानां तेषु मूलेषु स्थितानां देयम्।

एवं **सकलगणकुलं तर्पयित्वा यथेष्टम्,** तत **आचार्यः शिष्यस्याज्ञां प्रदा**[250a]**य** संघदानार्थं तदाऽऽत्मशक्त्या संघाय दक्षिणां दत्त्वा **प्रवरकरुणया** आनन्दितं [8]**प्रेषयेत् स्वस्वधाम्नि** इति वीरभोज्यनियमः॥ २०२॥

इदानीं सर्वभयोपद्रवशमनमुच्यते—

शत्रुः सिंहो गजेन्द्रो हविरुरगपतिस्तस्करा पाशबन्धः
क्षुब्धाम्भोधिः पिशाचा मरणभयकरा व्याधिरिन्द्रोपसर्गः।
दारिद्र्यं स्त्रीवियोगः क्षुभितनृपभयं वज्रपातोऽर्थनाशो
नाशं तस्य प्रयान्ति प्रतिदिनचरणं यः स्मरेद्योगिनीनाम् ॥२०३॥

शत्रुरित्यादिना। इह कश्चिद्यः कुलपुत्रो[9] मण्डलं वर्तयित्वाऽभिषेकं गृहीत्वा **प्रतिदिनं चरणं योगिनीनां** पूर्वोक्तानाम्, अध्यात्मन्यवधूत्यादीनां चरणं **स्मरति, तस्य** सर्वाणि भयानि **नाशं प्रयान्ति**। **शत्रु**भयं **सिंह**भयं [10]**गज**भयं **वह्नि**भयम् **उरग**भयं **तस्कर**भयं **पाशबन्ध**भयं **क्षुब्धसमुद्र**भयं **पिशाच**भयं **व्याधि**भयम् **इन्द्रोपद्रव**भयं **दारिद्र्य**दुःखभयं **स्त्रीवियोग**दुःखभयं **क्षुभित**[11]**नृपभयं वज्रपात**भयम् **अर्थनाश**भयम्। एवं षोडशभयान्यन्यान्यपि नाशं प्रयान्ति। एषां विस्तारं प्रथमपटले स्तुतिद्वारेण कथितम्, तेनात्र न

१. क. महिल्लायाः, ख. च. छ. महल्लायी। २. ग. 'उपासिकापङ्क्तिः' नास्ति। ३. भो. Chos sTon Pa Ma Yin Pa (न धर्मदेशका), च. काश्चेति। ४. ग. 'उपदेशका इति' नास्ति। ५. ग. च. पद्यन्ते। ६. च. 'कश्चित्' नास्ति। ७. ग. च. भो. 'पूर्वं' अधिकम्। ८. च. प्रवेशयेत्। ९. च. कुलपुत्रो वा। १०. क. ख. छ. 'गजभयं' नास्ति। ११. क. ख. नृपतिभयं।

प्रकाशितम्। एवं कालचक्रमण्डलेऽभिषिक्तः सर्वयोगिनीयोगतन्त्रेष्वभिषिक्तो भवति। सर्वतन्त्राणां देशकः, सर्व[1]मन्त्राणा[2]मनुज्ञापकः, सर्वसिद्धीनां साधकः। यथा मञ्जुश्रीर्भगवान्, यथा कालचक्र आदिबुद्धस्तथा वज्राचार्यो द्रष्टव्यो मोक्षार्थिभिः कालचक्रतन्त्रदेशक इति परमादिबुद्धानुसारेणाभिषेकपटलटीका लिखिता ॥ २०३ ॥

इति श्री मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायामभिषेकपटले
मुद्रादृष्टिमण्डलविसर्जनवीरभोज्य-
विधिमहोद्देशः षष्ठः ॥

॥ समाप्तेयं टीका अभिषेकपटलस्य ॥ [250b]

[3]आगमप्रत्ययादादौ लोकधातुकमण्डलः।
पुनरध्यात्मनि प्रोक्त आत्मप्रत्यययोगतः॥

गुरुप्रत्ययतः शुद्धं रजोमण्डलमादिशेत्।
गम्भीरार्थप्रकाशार्थं भगवान् प्रत्ययत्रयम्॥

एवं प्रत्ययितैः कथं पुनरयं सत्येन नो गृह्यते
संवृत्या परमार्थतोऽपि गदितः सेकार्थतत्त्वक्रमः।

यत्सत्यं तदिहाभिषेकपटले ताथागताभ्यागत-
श्रेयःश्रीभिरलङ्कृतं रतिफलं मोक्षस्य सौख्यस्य च॥

सुखाद्बीजादस्मात् प्रभवति मनःकल्पविटपो
महारागासेकात् त्रिभुवनभुवः सर्पति ततः।
फलं सौख्यं भूयः फलति तदनुव्यापि बहुशः
स्वयं कल्पातीतो गुरुचरणरागाङ्कितधियाम्॥

अस्त्यत्र सेकसुखवारिधिवारिवेला-
विक्षेपदोललडि(लि)तस्य कुतोऽवकाशः।

गाहेत तेन वडवानलवत् समुद्र-
सेकं महारतसुखज्वलनैरतृप्तः॥

लोकाध्यात्मप्रथमनिखनक्रान्तपृष्ठाभिषेक-
प्राप्तं पुण्यं भवभयहरं लेखयित्वावुकेन।

दत्तेनायं यदिह सकलं तेन सेकोदितश्री-
वीर्योत्साहस्थिरहृदयतासाधनायाऽस्तु लोकः॥ [251a]

●

१. ग. तन्त्राणाम०। २. ग. च. भो. अनुज्ञादायकः। ३. ग. च. भो. 'आगम''' लोकः' नास्ति।

४. साधना नाम चतुर्थः पटलः

(१) स्थानरक्षापापदेशनादिमहोद्देशः

॥ [1]नमः श्रीकालचक्राय ॥

पुण्यज्ञानविनिर्मितं भगवतो दुर्दान्तिसत्त्वाः सदा T 336
रूपं भैरवभीषणं गतमदं पश्यन्ति सन्तो जनाः । 5
भाषा सर्वरुता परश्रुतिगता सन्मार्गसंदेशिकी
सत्त्वानामधिमुक्तिचित्तवशतो यस्यैव तस्मै नमः ॥

सर्वाकारवरोपेतः कायो नानाधिमुक्तितः ।
दृश्यते स्वस्वभावेन सत्त्वैर्निर्माणलक्षणः ॥

सर्वसत्त्वरुतैर्ऋद्धिमात्मनो यः प्रकाशते । 10
सत्त्वाशयवशेनैष[2] कायः संभोगलक्षणः ॥

[3]नानित्यो नापि नित्यो यो नैको नानेकलक्षणः ।
न भावो नाप्यभावोऽसौ धर्मकायो निराश्रयः ॥

शून्यताकरुणाऽभिन्नो रागारागविवर्जितः ।
न प्रज्ञा नाप्युपायोऽसौ कायः स्वाभाविकोऽपरः ॥ 15

कालचक्रमिति ख्यातं चतुष्कायात्मकं शिवम् ।
प्रणिपत्य सर्वभावेन मञ्जुश्रीचोदितेन च ॥

साधनापटले टीका पुण्डरीकेण लिख्यते ।
मया निर्मितकायेन लोकेशेनाब्जधारिणा ॥

इह श्रीमति कलापग्रामदक्षिणमलयोद्याने श्रीकालचक्रमण्डलगृहपूर्वद्वारावसाने 20 रत्नमण्डपे [4]रत्नसिंहासनस्थो मञ्जुश्रीर्भगवान् निर्मितकायो यशोनरेन्द्रः सूर्यरथाध्येषितः सन् परमादिबुद्धात् साधनापटले सुचन्द्राध्येषणं बुद्धभगवतः प्रतिवचनं प्रथमवृत्तेन महापर्षदः प्रकाशयति स्म— T 337

लब्धः सप्ताभिषेको जिनजनक मया कुम्भगुह्याभिषेकः
प्रज्ञाज्ञानाभिषेको भवभयमथनो योगगम्यश्चतुर्थः । 25
भूयः पृच्छामि सम्यग् जिनवरसहितं साधनं विश्वभर्तुः
श्रुत्वा सौचन्द्रवाक्यं गदति जिनपतिः साधनं वज्रिणश्च ॥१॥

---

१. च. नमः शाक्यमुनये, ग. नास्ति । २. ख. च. नैव । ३. च. न नित्यो नाप्यनित्यो यो । ४. भो. 'रत्न' नास्ति ।

इह वृत्ते पदत्रयेण सुचन्द्राध्येषणं [1]साधनपटलदेशनाय। ततश्चतुर्थप[ा]दमारभ्य यावत् [2]पटलपरिसमाप्तिस्तावद्भगवतः प्रतिवचनमिति। इदानीं **श्रुत्वा सौचन्द्रवाक्यं गदति जिनपतिः** शाक्यमुनिर्भगवान् कालचक्रसमाधिसमापन्नः **साधनं वज्रिणः** श्रीकालचक्रभगवतः। **च**काराच्चाक्षोभ्यादितथागतानां वज्रधात्वीश्वर्यादिदेवीनां वज्रपाण्यादिबोधिस[251b]त्वानां शब्दवज्रादिविषयदेवीनामुष्णीषादि[3]महा[4]क्रोधराजानाम् अतिनीलादिक्रोधदेवीनां चर्चिकादिमातॄणां विष्ण्वादिदेवानां जयादिनागराजानां श्वानास्यादिप्रचण्डानां प्रत्येकं साधनमन्येषामपि गदति जिनपतिर्लौकिकसिद्धिसाधनायाकनिष्ठभुवनपर्यन्तं रूप[5]भावनयेति भगवतो नियमः॥ १॥

इदानीं कालविशुद्धया भगवतो रूपकल्पनोद्देश उच्यते—

चन्द्राङ्गं युग्मपादं शिखिगलमुदधिं श्रीमुखं विश्ववर्णं
षट्स्कन्धं सूर्यबाहुं जिनकरकमलं शून्यषड्वह्निपर्वम्।
पादाभ्यां माररुद्रं शशिरविहुतभुङ्मण्डले त्रास्यमानं
लीलाक्रान्तं तमेकं त्वभवभवसमं साधयेत् कालचक्रम्॥२॥

[6]चन्द्राङ्गमित्यादिना। इहाविबुद्धे भगवानाह—

दिनं सूर्यो रजो वज्रं भावभेदैर्निशा शशी।
शुक्रं पद्मं तयोरैक्यं कालचक्रं [7]महासुखम्॥ इति।

तथा[8]ऽपरतन्त्रान्तरेऽपि भगवता सामान्येनोक्तम्—

दिनस्तु भगवान् वज्री नक्तं प्रज्ञा प्रकीर्तिता।
आदित्यो हि [9]यथा रुद्रस्तथा चन्द्र उमा मता(तः)॥

एवं सूर्यचन्द्रदिवानिशाभेदेनाहोरात्रं काल इत्युच्यते, तस्य चक्रं षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासात्मकं द्वादशाङ्गं प्रतीत्यलक्षणं राशिचक्रं लौकिकसंवृत्योत्पादक्षयहेतुभूतं सर्वसत्त्वानाम्। तथा चाह—

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते सदा।
कालो हि भगवान् वज्री अहोरात्रस्वरूपवान्॥ इति।

---

१. ग. नास्ति। २. क. ख. छ. 'पटल' नास्ति। ३. ग. महादेवीनाम्। ४. छ. क्रोढ। ५. भो. भावना। ६. क. चक्राङ्ग। ७. छ. 'महा' नास्ति। ८. ग. च. परत्र। ९. ख. महा।

एवमस्य कालचक्रस्य साधनमुत्पादक्षयविनाशार्थं योगिभिः कर्तव्यं वक्ष्यमाणक्रमेणेति रूप[1]कल्पनानियमः। **चन्द्राङ्ग**[2]**मित्यादि**। द्वादशलग्नात्मकम् अहोरात्रमेकाङ्गम्। तस्य षट् षड् लग्नात्मकं वामदक्षिणचरणम्। **युग्मपादमिति**। [3]ततश्चतुर्लग्नात्मकं वामदक्षिणमध्यकण्ठं **शिखिगलमिति** त्रिकण्ठम्। एवं [4]त्रित्रिलग्नात्मकं पूर्वदक्षिणपश्चिमो[5]त्तर[6]वक्त्रचतुष्क**मुदधिरिति**। चतुर्मुखं **विश्ववर्णं** वक्ष्यमाणमिति। एवं द्विद्विलग्नात्मकं वामे दक्षिणे च पूर्वापरं [7]मध्यस्कन्धं[8]**षट्स्कन्धमिति**। तथा प्रत्येकमासात्मका [9]द्वादशभुजास्तैर्भुजैः **सूर्यबाहुमि**[10][252a]ति। [11]एवं प्रत्येकार्धलग्नम्। पक्षभेदेन चतुर्विंशतिकरं **जिनकरकमलमिति**। एवं षष्टिषष्टिप्रत्येकश्वासात्मकेन दिनभेदेन षष्ट्युत्तरत्रिशताङ्गुलीपर्वं प्रत्येक[12]करे पञ्चाङ्गुलीत्रिपर्वभेदेन पञ्चदशपर्वाणि चतुर्विंशतिकरेषु षष्ट्युत्तरशतत्रयं भवति। एवं **शून्य**[13]**षड्वह्निपर्वम्। पादाभ्यां माररुद्रमिति**। स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रमारम्, रागद्वेषमोहमानात्मकं रुद्रम्, **शशिरविहुतभुङ्मण्डले त्रास्यमानम्, लीलयाक्रान्तं** येन कालचक्रेण **तमेकमभवभवसमं** निर्वाणभवैकलोलीभूतं निरावरणतः। एवं **साधयेत् कालचक्रमिति** भगवतो नियमः॥ २॥

इदानीमस्य साधनाय स्थानान्युच्यन्ते—

उद्याने पर्वते वा जिनवरभवने शून्यदेवालये च
सिद्धस्थाने श्मशाने सरसि सुनिलये गुप्तभूम्यां तथैव।
यस्मिंश्चित्तप्रतोषो भवति नरपते साधनं तत्र कुर्यात्
कृत्वा पूर्वोक्तरक्षां खलु मृदुशयने चासने चोपविश्य॥३॥

उद्यान इत्यादिना। इह लौकिककर्मसाधनानुरूपेण स्थानं भवति। **उद्याने** वश्याकृष्ट्यर्थं **साधनं कुर्या**न्मन्त्री। **पर्वते** [14]**वा** स्तम्भनमोहनकीलनार्थम्। **जिनवरभवने** साधिष्ठाने महाचैत्येऽष्टमहासिद्ध्यर्थम्। **शून्यदेवतालये चो**च्चाटनविद्वेषणार्थम्, चकाराद् महोदधितटे वा। **सिद्धस्थाने** कर्ममुद्रासिद्ध्यर्थम्। **श्मशाने** मारणार्थम्। **सरसि सुनिलये** शान्तिपुष्ट्यर्थम्। **गुप्तभूम्यामिति** गुहावासे भूमिगृहे वा त्रैलोक्यराज्यसाधनार्थम्। एवं कर्मानुरूपेण **यस्मिन्** देशे **चित्तप्रतोषो भवति नरपते साधनं तत्र कुर्यात्**। तथा चाह—

धार्मिको यत्र भूपालः प्रजा यत्रैव सुस्थिता।
भूभृतोर्विग्रहो नास्ति तत्र योगं समारभेत्॥ इति।

---

१. च. विकल्पना। २. च. मिति। ३. छ. चतुश्चतु। ४. ग. त्रिलग्ना। ५. ग. च. त्तरं। ६. छ. रक्त। ७. च. मध्ये पट्। ८. ख. ग. स्कन्धं ९. भो. 'द्वादश' नास्ति। १०. च. रिति। ११. भो. 'एवं' नास्ति। १२. च. 'करे' नास्ति, छ. कर। १३. च. सद्वह्नि। १४. च. 'वा' नास्ति।

कृत्वा पूर्वोक्तरक्षामित्यभिषेकपटलोक्तरक्षां कृत्वा । **खलु मृदुशयने** [1]**चासने चोपविश्येति** स्थाननियमः ॥ ३ ॥ [252b]

इदानीं वक्त्र[2]शुद्ध्यादि[3]रुच्यते—

आदौ हृच्चन्द्रमध्ये दशदिशि विविधान् भावयेत्तत्त्वरश्मीन्
कृत्वा वक्त्रादिशुद्धिं पुनरपि गगने स्फारितानां जिनानाम् ।
कृत्वा पूजां विचित्रां बहुविधकलुषं सञ्चितं देशयित्वा
कर्तव्यं साधकेन त्रिशरणगमनं कायवाक्चित्तशुद्ध्या ॥४॥

आदावित्यादिना । इह योगिना पूर्वोक्तरक्षा कर्तव्या [4]मारनिर्घा[5]टनं च । ततः साधनापटलोक्तविधिना देवतारूपमात्मानं [6]झटित्याकारेण कृत्वा स्वहृदये पंकारपरिणतमष्टदल[7]रक्त[8]पद्मम्, तदुपरि कर्णिकायाम् अँकारपरिणतं **चन्द्रमण्डलम्**, तस्य **मध्ये तत्त्वमि**ति संवृत्या हूँकारजं वज्रं पञ्चशूकम्[9], तस्य **रश्मीन् विविधान्** पञ्चवर्णान् भावयेद्योगी । पूर्वं **कृत्वा वक्त्रादिशुद्धिं** पञ्चामृत[10]गुलिकया मुखे प्रक्षिप्तया वक्त्रशुद्धिर्भवति । तथा पूर्वोक्तया दिव्यमुद्रया शिरसा[11]रभ्य यावत् पादान्तं तावदात्मानं[12] संस्पर्शयेत् । एवं कायशुद्धिः[13] । एवं कृत्वा वक्त्रादिशुद्धिं ततश्चन्द्रमण्डले वज्ररश्मिभि**र्गगन**तले तथागतान् प्रतिबोध्य तेषां **स्फारितानां जिनानां** पूजार्थं तान् रश्मीन् पुनराकृष्य स्वहृदये चन्द्र[14]वज्रप्रविष्टान् विभाव्य ततश्चन्द्रमण्डले द्वादशपूजादेवीनां बीजाक्षराणि[15] ध्यायात् । क्ख्ग्घ्ङ क्ख्ग्घ्ङा च्छ्ज्झ्ञ च्छ्ज्झ्ञा ट्ठ्ड्ढ्ण ट्ठ्ड्ढ्णा प्फ्ब्भ्म प्फ्ब्भ्मा त्थ्द्ध्न त्थ्द्ध्ना स्‌‌ष्प्श्‌क स्‌ष्प्श्‌का इत्येभिर्बीजाक्षरैर्निष्पन्ना यथासंख्यं [16]नृत्या वाद्या गन्धा माला धूपा दीपा नैवेद्या अक्षता लास्या हास्या [17]गीता कामा इत्यादिभिस्तथागतानां **पूजां कृत्वा**ऽभिषेकपटलोक्तविधिना ततो वक्ष्यमाणक्रमेण **बहुविधकलुषं सञ्चितं देशयित्वा आदौ**, ततः **कर्तव्यं साधकेन त्रिशरणगमनं कायवाक्चित्त**[18]**शुद्ध्ये**ति नियमः ॥ ४ ॥

इदानीं पापदेशनावसाने पुण्यमनुमोदयेत्—

संबुद्धैर्बोधिसत्त्वैर्बहुविधकुशलं यत्कृतं चार्यसंघै-
रनुमोदे तत्समस्तं व्यपगतकलुषो बोधिचर्यानुरूढः ।

१. ग. च. वासने । २. च. विशुद्धया । ३. च. दिकमु । ४. च.मारादि । ५. छ. तनं । ६. च. झटिता । ७. ग. च. दलं । ८. ग. रक्तवर्णं । ९. ग. शूचिकं । १०. च गुडिकया । ११. ख. ग. छ. सादारम्य । १२. च. 'सं' नास्ति । १३ च. विशुद्धिः । १४. ग. च. वज्रे । १५. भो० Goṅ Bu rNams (पिण्डानि) इत्यधिकम् । १६. ग.च. गीता, भो. वाद्या नृत्या । १७. ग. च. नृत्या । १८. क. ख. ग. छ. विशुद्धये ।

बुद्धं [253a] धर्मं च संघं भवभयहरणं बोधिसीम्नः प्रयामि
संबुद्धोऽहं भवामि प्रणिधिमिति करोम्यत्र सत्त्वार्थहेतोः ॥५॥

संबुद्धैर्बोधिसत्त्वैर्बहुविधकुशलं यत्कृतं चार्यसंघैरनुमोदे तत् समस्तं व्यपगतकलुषो बोधिचर्यानुरूढो मन्त्री । ततस्त्रिशरणं गच्छति—**बुद्धं धर्मं च संघं भवभयहरणं बोधिसीम्नः प्रयामि** । [1]एवं त्रिशरणं गत्वा आत्मनिर्यातनं कृत्वा ततः सत्त्वार्थाय प्रणिधानं करोति—**संबुद्धोऽहं भवामि प्रणिधिमिति करोम्यत्र सत्त्वार्थहेतोरि**ति । एवं वन्दना पूजना पापदेशना पुण्यानुमोदना तथागतानामध्येषणा याचना पुण्यपरिणामनेति । एवं सप्तविधां पूजां कृत्वा तत्र त्रीणि मूलानि स्मरेत्, बोधिचित्तोत्पादः, आशयविशुद्धिः, अहंकारममकारपरित्यागः कर्तव्यः । ततो दश पारमिता[2]श्चिन्तयेत् । पुण्यज्ञानशीलसंभारार्थं दानपारमिता । एवं [3]शील[4]क्षान्तिवीर्यध्यानप्रज्ञा-उपायप्रणिधिबलज्ञानपारमिता विचिन्त्य ततो ब्रह्मविहारान् स्मरेत् मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षामिति । ततश्चत्वारि संग्रहवस्तूनि [5]चिन्तयेत्, दानं प्रियवाक्यमर्थचर्यां समानार्थतामिति । ततो दशाकुशलपरित्यागं विभावयेत् प्राणातिपातम् [6]अदत्तादानं काममिथ्याचारं मृषावादं पारुष्यं पैशुन्यं संभिन्नप्रलापम् अभिध्यां व्यापादं कुदृष्टिं चेति । एवं कौकृत्यस्त्यानमिद्धौद्धत्यविचिकित्सेति पञ्चावरणानि परित्यजेदेवं रागद्वेषमोहमानक्लेशान् परित्यजति । एवं कामा[7]श्रवं भवाश्रवम् अविद्याश्रवं दृष्ट्याश्रवं त्यक्त्वा ततश्चतुर्विमोक्षं[8] विभावयेत्, शून्यतामनिमित्तमप्रणिहितमनभिसंस्कारमिति विभाव्य त्रैधातुकं सचराचरं विचारयेदनया गाथया—

अभावे भावनाभावो भावना नैव भावना ।
इति भावो न भावः स्याद्भावना नोपलभ्यते ॥ इति ।
(गु. त. २.३)

अस्यार्थो वक्ष्यमाणे वक्तव्यः ॥ ५ ॥

इदानीं पुनर्भवग्रहणाय शून्यतालक्षणमुच्यते—

शून्यं भावाद् विहीनं सकलजगदिदं वस्तुरूपस्वभावं
तस्माद् बुद्धो न बोधिः परहितकरुणा चानिमित्तप्रतिज्ञा ।
एवं ज्ञात्वा[253b] समस्तं तदपि नरपते कायवाक्चित्तवज्रं
ध्यातव्यं बोधिसत्त्वैरपरिमितगुणं मण्डले मण्डलेशम् ॥६॥

१. क. ख. ग. च. छ. 'एवं' नास्ति । २. क. ख. मितां, च. छ. मितां विचि । ३. च. शीलज्ञान । ४. छ. 'क्षान्ति' नास्ति । ५. च. विचि । ६. ग. च. मृषा० अदत्ता० काम० अयं क्रमः । ७. भो. च. 'आस्रवं' सर्वत्र । ८. च. क्षान् ।

शून्यमित्यादिना । **शून्यं भावाद् विहीनं सकलजगदिदं वस्तुरूपस्वभावं** [1]**यत्तस्मा-न्महाशून्याच्च बुद्धो न बोधिः परहितकरुणा न** । एवं **चानि**[2]**मित्तप्रतिज्ञा** बुद्धो भवेयं जगतो हितायेति[3] । **एवं ज्ञात्वा समस्तं** बुद्धत्वाय । **तदपि नरपते कायवाक्चित्तवज्रं ध्यातव्यं बोधिसत्त्वैरपरिमितगुणं मण्डले मण्डलेशमिति** । कायवाक्चित्तमण्डले काय-वाक्चित्तवज्रं ध्यातव्यं नायकं लौकिकफलसाधनाय[4] [5]सर्वसत्त्वसंदर्शनायेति भगवतो नियमः ॥ ६ ॥

इदानीं लोकोत्तरस्कन्धग्रहणाय सांसारिकस्कन्धपरित्यागाय समाधिरुच्यते—

तोयेनाग्नेर्विनाशं प्रथममिह यतिः कारयेद् देहमध्ये
पश्चात्तोयं धरित्री भवति लवणवत्तोयमध्ये प्रविष्टा ।
अन्तर्धानं हि वायुर्व्रजति नभसि तच्छोषयित्वाम्बुराशिं
चित्तं वह्नौ तमोऽन्ते विषयविरहिते स्थापयेन्मध्यभूमौ ॥७॥

तोयेनेत्यादिना । इह मर्त्ये गर्भजानां मरणकाले तोयेनाग्नेर्विनाशः क्रियते । अतस्तेनैव समाधिना **तोयेनाग्नेर्विनाशं प्रथममिह यतिः कारयेद् देहमध्ये** । **पश्चादग्ने**[6]-रभावाद् **धरित्री** कठिनतां त्यक्त्वा **लवणवद्** द्रवीभूता **तोयं भवति तोयमध्ये प्रविष्टा** । ततो **वायुस्तत्समस्तं** तोयं **शोषयित्वा नभस्यन्तर्धानं** प्रयाति । एवं धातुसमूहस्य विनाशं शीघ्रम् । ततश्चित्तं **वह्नौ तमोऽन्ते** आकाशधातौ सर्वाकारबिम्बे **विषयविरहिते स्थापयेद् मध्यभूमौ**, आलयविज्ञानमिति । तत इदं मन्त्रमुच्चारयेत्—ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम् । ॐ अनिमित्तज्ञानवज्रस्वभा[254a]वात्मकोऽहम् । ॐ अप्रणिहितज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम् । ॐ अनभिसंस्कारज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्, इत्युच्चार्य त्रैधातुकं परमाणुधर्मतातीतं [7]शून्यताबिम्बं [8]विभावयेदिति तथागत-नियमः ॥ ७ ॥

इति [9]श्रीमूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
[10]द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां साधनापटले
स्थानरक्षापापदेशनादिमहोद्देशः
प्रथमः ॥ १ ॥

---

१. च. यतस्तस्मा । २. च. मित्ता । ३. ख. 'इति' नास्ति । ४. च. येति । ५. च. 'सर्वं ......येति' नास्ति । ६. ग. द्वह्नेः । ७. च. शून्यं विभा । ८. ग. 'वि' नास्ति । ९. क. ख. च. छ. 'श्री' नास्ति । १०. च. 'द्वाद ...कायां' नास्ति ।

(२) उत्पत्तिक्रमेण कायनिष्पत्तिमहोद्देशः

इदानीं [1]पूर्वप्रणिधानपरिपूरणाय धर्मचक्रप्रवर्तनार्थं गर्भावक्रमणन्यायेन भगवत उत्पत्तिक्रमेण साधनमुच्यते—

शून्यं वाय्वग्नितोयान्यवनिसुरनगाब्जेन्दुसूर्याग्नयश्च
कूटागारं समन्तात् स्फुरदमलकरं वज्रजं पञ्जरं वा ।
तन्मध्ये वज्रभूमौ मणिकरनिकरैर्मण्डलं विस्फुरन्तं
ॐकारं ज्ञानजातं जिनवरकमलं चन्द्रसूर्यासनानाम् ॥८॥

शून्यमित्यादिना । इह बाह्ये अध्यात्मनि उत्पत्तिनिमित्तमनन्ताकाशधातुः प्रज्ञा-धर्मोदयं त्रिकोणम् । बाह्ये वर्तुलं [2]दशारवज्रमयं मर्त्ये मातृशरीरमध्यात्मनि तत्र बाह्ये **वायु**मण्डलं मध्ये धन्वाकारं तिर्यङ्मानेन चतुर्लक्षयोजनं यँकारबीजपरिणतं कृष्णमध ऊर्ध्वं हूँकारपरिणतविश्ववज्रद्वयसहितं ध्वजाङ्कितम् । तदुपरि त्रिलक्षयोजनायामं रँकारपरिणतं त्रिकोणं **वह्नि**मण्डलमध ऊर्ध्वं हूँकारपरिणतं विश्ववज्रद्वयसहितं रक्तं स्वस्तिकाङ्कितम् । तदुपरि **तोय**मण्डलं द्विलक्षयोजनं वँकारपरिणतं [3]शुक्लमध ऊर्ध्वं हूँकारपरिणतं विश्ववज्रद्वयसहितं पद्मलाञ्छितं वृत्तम् । तदुपरि लँकारपरिणतं **पृथ्वी-**मण्डलं चतुरस्रं पीतवर्णमध ऊर्ध्वं हूँकारपरिणतविश्ववज्रद्वयसहितं वज्रलाञ्छितं लक्षयोजनम् । तदुपरि मँकारपरिणतं वज्रमयं महामेरुमधो विस्तारेण षोडशसहस्रम् ऊर्ध्वं पञ्चाशत्सहस्रं तन्मध्ये विश्व**ाब्जं** मेरुप्रमाणार्धेन क्षँकारपरिणतम् । तस्य त्रिभागिका कर्णिका[4]तुल्यं [5]सार्धद्वादशसहस्रयोजना[6]यामात् क्षँकारपरिणता । तदुप-[254b]रि हँकारपरिणतं **चन्द्र**मण्डलं कर्णिकातुल्यम् । तदुपरि विसर्गपरिणतं **सूर्य-**मण्डलम् । तदुपरि **अग्निरि**ति राहुमण्डलं नीलवर्णं बिन्दुपरिणतम् । एवं समस्तमेक-लोलीभूतं ह् क्ष् म् ल् व् र् यँ इति बीजाक्षरं विभाव्य ततो लोकधातुं निष्पन्नं [7]चिन्तयेदिति बाह्ये । अध्यात्मनि [8]मातृशरीरे ललाटे पूर्वोक्तविधिना वायुमण्डलं कण्ठे तेजोमण्डलं हृदये तोयमण्डलं नाभौ पृथ्वीमण्डलम् । नाभेर्गुह्यकमलपर्यन्तं महामेरुः । गुह्यकमलं [9]भगवतः कमलमिव । विण्मूत्रशुक्रवाहिन्यस्तिस्रो नाड्यश्चन्द्र-सूर्यराहुमण्डलानि । गुह्यकमलकर्णिकायां समाहारस्तेषामिति । एवं तदुपरि **कूटागारं समन्तात् स्फुरदमलकरं वज्रजं** हूँकारजं वज्र**पञ्जरं वा**, मातृयोनौ **सकुलिशकमलम्** (का. त. ५.१२०)इति ज्ञापकात् । तेनैव वज्रमयं पञ्जरं वा **तन्मध्ये वज्रभूमौ** भ्रुँकार-परिणतं ॐकारपरिणतं वा **मणिकरनिकरैर्मण्डलं विस्फुरन्तम् ॐकारं ज्ञानजातं जिनवरकमलं चन्द्रसूर्यासनानामि**ति चित्तमण्डलं भूवलयान्तम् ॥ ८ ॥

---

१. च. भो. 'पूर्व' नास्ति । २. क. ख. च. छ. दशाकार । ३. ग. 'शुक्ल' नास्ति । ४. ग. च. भो. 'तुल्यं' नास्ति । ५. भो. 'सार्ध....णता' नास्ति । ६. ग. याम । ७. च. विचि । ८. भो. Miḥi Lus La (नृशरीरे) । ९. च. भगवत् ।

बाह्ये वाङ्मण्डले वै वसुकमलमिदं चन्द्रसूर्यैर्विहीनं
बाह्ये दिक्कोणभागे दिनकरकमलं द्वारमध्ये रथाश्च ।
अर्कद्वारेषु राजन् मणिकनकमयैस्तोरणैश्च श्मशानै-
र्द्व्यष्टस्तम्भैश्च गर्भे कुलिशमयसुसम्भोगचक्रं जिनस्य ॥९॥

तद् **बाह्ये वाङ्मण्डले** समुद्रवलयान्ते [1]**वसुकमलमिदं** कमलाष्टकं **चन्द्रसूर्यैर्विहीनम्**, तस्यैव **बाह्ये** कायमण्डले वायुवलयान्ते **दिनकरकमलमि**ति द्वादशकमलं चन्द्रसूर्यैर्विहीनम् । एवं **चतुर्द्वारे रथाश्च** । एवं कायमण्डलं चतुर्लक्षयोजनायामम्, वाङ्मण्डलं तदर्धम्, चित्तमण्डलं [2]तस्याप्यर्धम्, महासुखचक्रं तस्याप्यर्धं भगवतः [3]पद्मम् । पद्मत्रिभागिका कर्णिका चन्द्रादित्यराहुमण्डलानि । तथैवमध्यात्मनि गुह्यकमलाद् अध ऊर्ध्वं हृदयाद् गुह्यकमलं शिरो या[255a]वत् । अथवा हृदयाद् बाहूपबाहुनखान्तं यावद् मातृशरीरे विकल्पभावादिति नियमः । एवं प्रत्येकमण्डले चतुश्चतुर्द्वाराणि । एवं द्वादश द्वाराणि । **अर्कद्वारेषु राजन्**निति संबोधनम् । **मणिकनकमयैस्तोरणैश्च** कायमण्डलबाह्ये अष्ट**श्मशानै**श्च । **गर्भे द्व्यष्टस्तम्भैः** षोडशकलाभेदेन षोडशस्तम्भैः । **कुलिशमयं** बोधिचित्तमयं **सुसम्भोगचक्रं जिनस्ये**ति । अस्य कायधातुभिर्विशुद्धिर्ज्ञानपटले वक्तव्या । अत्र **मूलतन्त्रानुसारेण** धर्मस्कन्धविशुद्धिरुच्यते । अत्र भगवानाह—

बुद्धधर्ममहासंघैश्चित्तवाक्कायमण्डलम् ।
चतुर्ब्रह्मविहारैश्च वज्रसूत्रचतुष्टयम् ॥

चतुर्भिः स्मृत्युपस्थानैश्चतुरस्रं समन्ततः ।
द्वादशाङ्गनिरोधेन द्वाराणि द्वादशानि च ॥

भूमिभिर्द्वादशैस्तद्वत् तोरणानि शुभानि च ।
आर्याष्टाङ्गिकमार्गैश्च श्मशानान्यष्टदिक्षु च ॥

शून्यता षोडश स्तम्भाः कूटागारं तु[4] धातुभिः ।
निर्यूहाष्टविमोक्षैश्च रूपिभिश्चाष्टभिर्गुणैः ॥

कपोला [5]पक्षकाश्चैव चित्तवाक्कायभेदतः ।
शीलादिपञ्चभिः स्कन्धैः पञ्चवर्णं विशोधितम् ॥

त्रि[6]प्राकारैस्त्रियानैश्च पञ्चश्रद्धेन्द्रियादिभिः ।
श्रद्धादिभिर्बलैः पञ्च चित्तवाक्कायमण्डले ॥

---

१. च. भो. वसुदल । २. ग. तस्यार्घं । ३. च. मण्डलम् । ४. च. रं च ।
५. क. ख. पक्षक । ६. च. छ. प्राकारा ।

समाधिधारिणीभिश्च वेदिका मण्डलत्रये ।
दशपारमितापूर्णैर्विचित्रा रत्नपट्टिका ॥

हारार्धा वेणिकाधर्मैरष्टादशभिरेव ते ।
वकुली वशिताभिश्च कुशलैः [1]कवशीर्षकम् ॥

शून्यतादिविमोक्षैश्च घण्टादिध्वनिपूरितम् ।
ऋद्धिपादैर्ध्वजाकीर्णं प्रहाणैर्दर्पणोज्ज्वलम् ॥

बोध्यङ्गैश्चामरो[2]द्धूतं नवाङ्गैः स्रग्दाममण्डितम् ।
चतुर्भिः संग्रहैः कोणं विश्ववज्रैरलङ्कृतम् ॥

खचितं सत्यच(सच्च)[3]तूरत्नैर्द्वारनिर्यूहसन्धिषु ।
पञ्चाभिज्ञामहावलयैर्वेष्टितं पञ्चभिः सदा ॥

सर्वाकारज्ञ[4]बोध्यङ्गवज्रावल्या सुवेष्टितम् ।
सुखैकचक्र[5]वाडेन ज्ञानवज्रार्चिषा तथा ॥

प्रज्ञोपायविभागेन चन्द्रसूर्यं सदोदितम् ।
चित्तवाक्कायसंशुद्धं धर्मचक्रं महाघटम् ॥

दुन्दुभिर्बोधिवृक्षश्च तच्चिन्तामणिकादिकम् ।
एतच् छ्रीकालचक्रस्य मण्डलं धर्मधातुकम् ॥

सर्वसम्पत्करं ध्यात्वा आदिकाद्यं ततो न्यसेत् ।

इति गर्भशोधनाविधिर्भगवतो गर्भा[255b]वक्रमणकाले ॥९॥

इदानीं बाह्ये[6]देवतानिष्पत्तिरध्यात्मनि गर्भनिष्पत्तिरुच्यते—

आद्याः काद्येन्दुसूर्येऽपि कुलिशसहिताः पञ्चकादर्शकाद्यै-
र्मुञ्चन्तं पञ्चरश्मीन् स्फुरदमलकरं भावयेत् कालचक्रम् ।
वज्रालङ्कारदेहं जिनवरकमलं सूर्यबाहुं युगास्यं
त्रिग्रीवं सूर्यनेत्रं विकसितवदनं चार्धदंष्ट्राकरालम् ॥१०॥

आद्या इत्यादिना । इह मण्डलकर्णिकोपरि चन्द्रसूर्यराहुमण्डलोपरि चन्द्रमण्डले आद्या द्वात्रिंशल्लक्षणार्थं वामदक्षिणावर्तेन देया त्रिंशत् स्वरा बिन्दुर्विसर्गश्चेति । द्वात्रिंशत् तत्र अ इ ऋ उ ऌ इति प्रथमकलापञ्चकम् । ततो गुणभेदेन अ ए अर् ओ

---

१. भो. क्रम, ग. क्रव । २. क ख. छ. द्रुतं । ३. छ. भूरत्नै । ४. च. ज्ञता ।
५. च. वाटेन । ६. क. ख. ग. भो. बाह्य ।

अलिति द्वितीयकलापञ्चकम्। ततो यणादेशेन ह य र व लेति तृतीयकलापञ्चकम्। [1]पञ्चदशकलान्ते बिन्दुः। अं[2] इति षोडश वामावर्तेन। ततो दक्षिणावर्तेन कृष्णप्रतिपदादिकला देयाः। ला वा रा या हा आल् औ आर् ऐ आ लॄ ऊ ॠ ई आ इति पञ्चदश, अमान्ते विसर्गः अः इति षोडशस्वराः। एतानि द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानि [3]चन्द्रांशे गर्भाधाने शुक्रधाताविति नियमः। ततः काद्या अर्कमण्डले चत्वारिंशदेकव्यञ्जनात्मानः। चत्वारिंशत् [4]संयुक्ताः। तत्र ह य र व लेन षड्वर्गाः। पञ्चत्रिंशद्भवन्ति। तथा द्विधोच्चारणवशाद् ल-व-य-ड-ढा[5] गृह्यन्ते[6] ल्ल व्व य्य ड्ड ढ्ढ ल्ल व्व र्र य्य ह्ह स्स ᳲप्प श्श ᳱक्क त्त थ्थ द्द ध्ध न्न प्प फ्फ ब्ब भ्भ म्म ट्ट ठ्ठ ड्ड ढ्ढ ण्ण च्च छ्छ ज्ज झ्झ ञ्ञ क्क ख्ख ग्ग घ्घ ङ्ङ इति चत्वारिंशद्दक्षिणावर्तेन पृथिव्यादिभेदेन संयुक्ताः। ततो वामावर्तेन ङ घ ग ख क। ञ झ ज छ च। ण ढ ड ठ ट। म भ ब फ प। न ध द थ त। ᳱक श ष ᳲप स। ह य र वँ ल। ढ ड य व ल। इति चत्वारिंशदेकव्यञ्जनात्मानः। एवमशीतिव्यञ्जनानि सूर्ये गर्भाधाने [8]रजसीति नियमः। **एवमाद्याः काद्येन्दुसूर्येऽपि कुलिशसहितास्तयोः**। [9]सूर्यस्तले चन्द्रः सूर्योपरि चन्द्रमध्ये हूँकारं चन्द्रा[10]कंवत्। एवं रजोपरि [11]शुक्रम्। शुक्रमध्ये आलयविज्ञानं गन्धर्वसत्त्वम्। ततः **पञ्चका[12]दर्शकाद्यैरिति**। ततश्चन्द्रः शुक्रं स्वरान्वितम्। आदर्शज्ञानं [13]रूपस्क[256a]न्धजनकं वैरोचनः सूर्यो रजो व्यञ्जनान्वितः। समताज्ञानं वेदनास्कन्धजनको रत्नसंभवः। प्रत्यवेक्षणा[14] गन्धर्वसत्त्वं हूँकारान्वितं संज्ञास्कन्धजनकोऽमिताभः। तेषामेकत्वं प्राणवायुः। हो(ह्लोः)कारान्वितः। कृत्यानुष्ठानज्ञानं संस्कारस्कन्धजनकोऽमोघसिद्धिः। ततः सर्वाङ्गावयवपरिपूर्णं विज्ञानं हँकारान्वितं सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानं विज्ञानस्कन्धजनकोऽक्षोभ्य इति पञ्चज्ञानात्मकं बाह्येऽध्यात्मनि च। एषामेकलोलीभूतं बीजं स्वराणां बिन्दुः, व्यञ्जनानां विसर्गः, विज्ञानस्यानाहतम्। प्राणस्य अकारः, इत्युक्तक्रमेण भगवन्तं **मुञ्चन्तं पञ्चरश्मीन् स्फुरदमलकरं भावयेत् कालचक्रमिति**। बाह्ये गर्भे च कायनिष्पत्तिनियमः।

इदानीं देवताविग्रहे कालविभागेन संस्थानमुच्यते—वज्रेत्यादि। इह देवतानामुत्पादकाले सर्वालङ्कारसहित उत्पादः, [15]तेन नानाशरीरावयवा नानावर्णा नानासंस्थाना एवोत्पद्यन्ते। [16]अतो **वज्रालङ्कारदेहं जिनकरकमलं** चतुर्विंशतिकरम्, **सूर्यं** इति द्वादश**बाहुम्**। **युगास्यं** चतुर्मुखं **त्रिग्रीवं** द्वादशनेत्रं **विकसितवदनं चार्धदंष्ट्रा-**

---

१. ग. 'ततः' इत्यधिकम्। २. ग. च. छ. भो. अं। ३. ग. च. भो. चन्द्राङ्गे, छ. चद्रांशं। ४. क. ख. ग. भो. संयुताः, छ. संपुटाः। ५. क. ख. छ. ढ। ६. क. ख. मृज्यन्ते। ७. ग. ळव। ८. ग. तेजसि। ९. ग. भ. सूर्यतले, च. स्ततो। १०. क. ख. च. छ. ङ्गवत्। ११. ग. शुक्रः। १२. भो. Me Loṅ La Sogs Pa lṄa (पञ्चादर्शाद्यैः)। १३. ग. स्वरूप। १४. भो. Ye Śes (०ज्ञानं)। १५. क. ख. च. छ. भो. स्ते च। १६. ग. अन्ये।

करालमिति कायनिष्पत्तौ काय[1]विज्ञानाधिपतेर्लक्षणम्। मध्ये मण्डलकमलकर्णिकायां [2]स्वशरीरान्तर्भूतो देवताविन्यासो मण्डलाकार उच्यते ॥ १० ॥

श्रीमत्योङ्कारजाते जिनपतिकमले चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि
रुद्रानङ्गद्वयोर्हृत्सुललितचरणालीढपादं जिनेन्द्रम्।
मारो रक्ते च सव्ये वरचरणतले शुक्लवामे च रुद्रो
मध्यं सव्यावसव्यं भ्रमररविनिभं चन्द्रवर्णं च कण्ठम् ॥११॥

श्रीमति ॐकारजाते जिनपतिकमले हृत्कमले **चन्द्रसूर्याग्निमूर्ध्नि** ललनारसनाऽवधूतीमूर्ध्नि **रुद्रानङ्गयोर्द्वयोर्मा**रिक्लेश[3]पक्षयोर्वामदक्षिणप्रवा[256b]हयोः, **हृदि सुललितचरणालीढपादं जिनेन्द्रमिति**। तत्र **मारः** कामदेवः पञ्चपुष्पबाणधनुर्हस्तः पाशाङ्कुशधरश्चतुर्भुज एकवक्त्रो **रक्तवर्णः सव्ये** पादतले रक्त[4]वर्णः। तथा रुद्रस्त्रिनेत्र एकाननश्चतुर्भुजस्त्रिशूलडमरुकपालखट्वाङ्गधरो वामपादतले शुक्ले **शुक्ल** इति। एवं नीलाङ्गं तथा मध्यकण्ठं नीलं दक्षिणे[5] **रविनिभं** रक्तम्। **अवसव्यं** वामं **चन्द्रवर्णं** शुक्लमेवं त्रिकण्ठं पूर्वोक्तविधानात्। पूर्वमुखं कृष्णं द्रंष्ट्राकरालोग्रम्। दक्षिणं सरागं रक्तं वामं प्रशान्तं शुक्लम्। पश्चिमं समाधिस्थं पीतम्। जटामुकुटे विश्ववज्रम् अर्धचन्द्रं वज्रसत्त्वमुकुटं। वज्रमणिवज्रकुण्डलवज्रकण्ठिकावज्ररुचकवज्रमेखलावज्रनूपुरवज्रपट्टवज्रमालाव्याघ्रचर्माम्बरधरम् ॥ ११ ॥

स्कन्धं नीलं च रक्तं शशधरधवलं दक्षिणे चोत्तरे च
द्वौ द्वौ सव्यावसव्येऽसितरविवपुषौ बाहवश्चन्द्रवर्णाः।
तद्वद् वै व्यष्टकेन प्रहरणसहिताः पाणयश्च क्रमेण
पञ्चाङ्गुल्यस्त्रिपर्वाः शशिकरकमले पञ्चवर्णाः स्फुरन्त्यः ॥१२॥

तथा दक्षिण**स्कन्धं** प्रथमं **नीलं** द्वितीयं **रक्तं** तृतीयं शुक्लम्। एव**मुत्तरे च**। एवं **द्वौ** बाहू नीलौ **द्वौ** रक्तौ द्वौ शुक्लौ **दक्षिणे चोत्तरे च**। एवं कराश्चत्वारः कृष्णाः। चत्वारो रक्ताः। चत्वारः शुक्लाः। दक्षिणे चोत्तरे च। ते च वक्ष्यमाण**प्रहरणैः सहिताः**। एवं प्रत्येककरे **पञ्चाङ्गुल्यस्ताः**[6] प्रत्येकास्त्रि**पर्वाः**। अङ्गुष्ठः पीतः। तर्जनी शुक्ला। मध्यमा रक्ता। अनामिका कृष्णा। कनिष्ठा हरिता। हस्ततलात् सर्वाङ्गुलीनां [7]प्रथमा पर्वपङ्क्तिः कृष्णा। द्वितीया रक्ता। तृतीया शुक्लेति। एवं **शशिकरकमले** प्रत्येक[8]**पञ्चवर्णास्ता** मुद्रिकाभिः [9]**स्फुरन्त्यः**। [10]इत्यविद्यासंस्कारविज्ञानानु[11]प्रवेशनियमो गर्भे तृतीयमासः प्रथममात्रा ॥ १२ ॥ [257a]

---

१. च. 'वि' नास्ति। २. क. ख. छ. 'स्व' नास्ति। ३. क. ख. च. भो. यक्ष। ४. च. वर्णे। ५. ग. च. क्षिणं। ६. भो. 'कनिष्ठा हरिता' इत्यनन्तरं 'ताः ...... पर्वाः' अयं पाठः। ७. क ख. च. छ. प्रथम। ८. ग. च. त्येके। ९. ग. स्फर। १०. भो. De lTar (एवं)। ११. भो. rNam Par Śes Pa rNams (विज्ञानानि)।

इदानीमस्त्रवृन्दमुच्यते—

कृष्णे रक्ते च शुक्ले प्रवरकरतले संस्थितं चास्त्रवृन्दं
वज्रं खड्गस्त्रिशूलं भुवनभयकरा कर्तिका वह्निबाणः ।
तस्माद् वज्राङ्कुशो वै सरवडमरुको मुद्गरश्चक्रमेव
कुन्तो दण्डः कुठारो रविकरकमले दक्षिणे वज्रिणश्च ॥१३॥

कृष्ण इत्यादिना । **कृष्णे** करतलचतुष्के प्रथमे **वज्रम्**, द्वितीये **खड्गः**, तृतीये **त्रिशूलम्**, चतुर्थे **कर्तिकेति** । तथा **रक्ते** करतलचतुष्के प्रथमेऽ**ग्निबाणः**, द्वितीये **वज्राङ्कुशः**, तृतीये [1]**रणड्डमरुकः**, चतुर्थे **मुद्गर** इति । तृतीये **शुक्ले** करतलचतुष्के प्रथमे करतले **चक्रम्**, द्वितीये **कुन्तः**, तृतीये **दण्डः** । चतुर्थे [2]पर्शुरिति **दक्षिणेऽस्त्रवृन्दम्**, रविकरकमले दक्षिणे **वज्रिणश्चेति** ॥ १३ ॥

इदानीं [3]वामकृष्णकर[4]तलचतुष्के चिह्नमुच्यते—

घण्टा खेटं च खट्वाङ्गविकसितमुखं रक्तपूर्णं कपालं
कोदण्डं पाशरत्ने कमलजलचरौ दर्पणः शृङ्खला च ।
वेदास्यं ब्रह्मणो यच्छिरकमलमलं वामहस्ते जिनस्य
कुर्वन्त्यौ दीनवक्त्रं धृतचरणतले माररुद्रस्वदेव्यौ ॥१४॥

प्रथमे **वज्रघण्टा**, द्वितीये **खेटम्**, तृतीये **खट्वाङ्गं विकसितमुखम्**, चतुर्थे **रक्तपूर्णं कपालमिति** । तथा रक्ते करतलचतुष्के प्रथमे **कोदण्डम्**, द्वितीये **पाशः**, तृतीये मणि**रत्नम्**, चतुर्थे श्वेत**कमलमिति** । तथा शुक्ले करतलचतुष्के, प्रथमकरतले **जलचर** इति शङ्खः, द्वितीये **दर्पणः**, तृतीये वज्रश्रृङ्खला, चतुर्थे **ब्रह्मशिर** इति । एवं **वेदास्यं ब्रह्मणो यच्छिरकमलमलं** [5]भूषणं **वामहस्ते जिनस्येति** । तत्र माररुद्रसंनिधाने **कुर्वन्त्यौ दीनवक्त्रं धृतचरणतले माररुद्रयोः स्वदेव्यौ** रतिर्मारस्य, उमा रुद्रस्येत्यक्षोभ्यप्रवेशः ॥ १४ ॥ [257b]

इदानीं विश्वमातालक्षणमुच्यते—

हेमाभा वेदवक्त्रा वसुकरकमलालिङ्गिता विश्वमाता
सव्ये कर्त्यङ्कुशो वै सरवडमरुकश्चाक्षसूत्रं क्रमेण ।
वामे शुक्तिश्च पाशः शतदलकमलं दिव्यरत्नं तथैव
प्रत्यालीढार्कनेत्रा जिनपतिमुकुटा मुद्रिता मुद्रिकाभिः ॥१५॥

---

१. ग. 'रणत्' नास्ति । २. ग. च. परशु । ३. च. वामे । ४. ख. छ. तले ।
५. च. 'भूषणं' नास्ति ।

हेमाभेत्यादिना । तत्रैकसमरसाच्चन्द्रशुक्रस्वभावेन भगवत उत्पादः, सूर्यरजःस्वभावेन देव्या उत्पादः । तत्र श्वेतकृष्ण[1]धर्मा चन्द्रः, रक्तपीत[2]धर्मा सूर्यः । तेन **हेमाभा वेदवक्त्रा** चतुर्मुखा **वसुकरकमला** अष्टभुजाग्रत **आलिङ्गिता विश्वमाता** । तस्याः प्रथमकरे दक्षिणे, **कर्तिका**, द्वितीयेऽङ्कुशः, तृतीये **सरवडमरुकः**, चतुर्थे **अक्षसूत्रमिति** । **वामे** प्रथमकरे **शुक्तिः**, द्वितीये **पाशः**, तृतीये **शतदलकमलं** धवलम्, चतुर्थे **दिव्यरत्नं तथैव** च । एवमालीढो भगवान् **प्रत्यालीढा** विश्वमाता । **अर्कनेत्रा** द्वादशनेत्रा **जिनपतिमुकुटा** वज्रसत्त्वमुकुटा । **मुद्रिता** पञ्च**मुद्राभिः** समापत्तिस्था ॥ १५ ॥

अष्टौ देव्योऽष्टपत्रे वसुकरकमला वेदवक्त्रार्कनेत्राः
कोणे तासां चतस्रस्त्वहिचमरधरा वक्त्रभेदैर्जिनस्य ।
ईशे नैर्ऋत्यकोणे शिखिनि च पवने धर्मशङ्खश्च गण्डी
एवं चिन्तामणिः स्याद् भवति खलु तथा कल्पवृक्षक्रमेण ॥१६॥

तस्या विश्वमातुर्ज्ञानपारमिताया अन्तर्भाविता अपराः पारमिता[3] दानादयः पारमिता **अष्टपत्रे**[4]**ष्वष्टौ देव्यः** । ता **वसुकरकमला** अष्टभुजाः, **वेदवक्त्रा**श्चतुर्मुखाः, **अर्कनेत्रा** द्वादशलोचनाः । **तासां** मध्ये **चतस्रोऽहिचमरधरा** अष्टभुजैरष्टचमरधराः । चतुः**कोणे वक्त्रभेदैर्जिनस्येति** । अग्नौ कृष्णा, नैर्ऋत्ये रक्ता, वायव्ये पीता, ईशाने शुक्ला । एवं तासां [5]पृष्ठत **ईशे धर्मशङ्खः** शुक्लः, **नैर्ऋत्ये धर्मगण्डी** रक्ता, **शिखिनि चिन्तामणिः** कृष्णः, **वायव्ये कल्पवृक्षः**[258a] पीत इति । एवं पूर्वपत्रे कृष्णा, दक्षिणे रक्ता, उत्तरे श्वेता, पश्चिमे पीतदीप्तेति । यथा भगवतो मुखभेदश्चतुर्दिक्षु भेदेन तथा देवीनां विश्वमातुः प्रथमं मुखं हेमाभम्, दक्षिणं[6] शुक्लम्, वामं[7] रक्तम्, पश्चिमं[8] नीलम् । एवं पीतानां देवीनाम् । शुक्लानां [9]शुक्लं पूर्वम्, दक्षिणं कृष्णम्, पश्चिमं रक्तम्, वामं पीतम् । रक्तानां प्रथमं रक्तम्, दक्षिणं पीतम्, वामं नीलम्, पश्चिमं शुक्लम् । कृष्णानां पूर्वं कृष्णम्, वामं शुक्लम्, पश्चिमं पीतमिति । गर्भपद्मदेवीनां यथा भगवत्या अलङ्कारः पञ्चमुद्रास्तथा ज्ञातव्या इति नियमः ॥ १६ ॥

इदानीं कृष्णदीप्तादीनां सव्यवाम[10]हस्तेषु [11]चिह्नान्युच्यन्ते— T 341

कृष्णाया धूपपात्रं प्रथमकरतले शीतपात्रं द्वितीये
पिष्टं रक्तं तृतीये समदशशधरं सव्यहस्ते चतुर्थे ।

---

१. ग. च. भो. धर्मी । २. ग. धर्मं, च. भो. धर्मी । ३. च. मितायाः, ग. दानादयोऽपरा पारमिता । ४. क. ख. ग. छ. पत्रेऽष्ट । ५ ग. च. भो. पृष्ठ । ६. ग. दक्षिणे । ७. ग. वामे । ८. क. ख. छ. पश्चिमे । ९. च. पूर्वं शुक्लम् । १०. क. ख. छ. हस्ते । ११. क. ख. ग. च. छ. चिह्नमु ।

वामे घण्टा च पद्मं सुरतरुकुसुमं पुष्पमाला क्रमेण
रक्ताया दीपहारौ समुकुटकटकं दक्षिणे वामहस्ते ॥१७॥

कृष्णेत्यादि। **कृष्णाया धूपपात्रं प्रथमकरतले, शीतपात्रं** चन्दनपात्रं **द्वितीये, पिष्टं रक्तं** कुङ्कुमपात्रं **तृतीये, समदशशधरं** कस्तूरिकासहितं कर्पूरपात्रं **चतुर्थे।** इति दक्षिणकरेषु। **वामे** प्रथमहस्ते **घण्टा,** द्वितीये **पद्मम्,** तृतीये **सुरतरुकुसुमम्,** चतुर्थे नाना**पुष्पमाला क्रमेणे**ति पूर्वपत्रे। **रक्त**दीप्तायाः प्रथमहस्ते सव्ये **प्रदीपः,** द्वितीये **हारः,** तृतीये [1]**मुकुटः,** चतुर्थे **कटकमि**ति सव्ये ॥ १७ ॥

वस्त्रं वै मेखला च स्फुरदमलकरं कुण्डलं नूपुरं च
पीतायाः शङ्खवेणू समणिडमरुकः सव्यहस्ते क्रमेण।
वामे वीणा च ढक्का प्रगुणरणरणत्कंसिका काहला च
दुग्धाम्ब्वौषध्यपानं त्वमृतरसफलं भक्तपात्रं सितायाः ॥१८॥
[258b]

तथा वामहस्ते प्रथमे **वस्त्रम्,** द्वितीये **मेखला,** तृतीये रत्न**कुण्डलम्,** चतुर्थे **नूपुरमि**ति। तथा **पीत**दीप्तायाः सव्ये प्रथमकरे **शङ्खः,** द्वितीये **वेणुः,** तृतीये **मणिः, डमरुकश्**चतुर्थ इति। **वामे** प्रथमे **वीणा, द्वितीये ढक्का**[2], तृतीये **रणत्कंसिका**[3], चतुर्थे **काहला च** क्रमेणेति। तथा श्वेतदीप्तायाः, [4]प्रथमे हस्ते **दुग्ध**पात्रम्, द्वितीये-**ऽम्बु**पात्रम्, तृतीये दिव्य**ौषधी,** चतुर्थे **मद्य**पात्रम्। वामे प्रथमहस्ते **अमृत**पात्रम्, द्वितीये सिद्ध**रस**पात्रम्, तृतीयेऽमृत**फलम्**, चतुर्थे **भक्तपात्रं सितायाः।** इति वज्रसत्त्वनिष्पत्तिः स्वमुद्रासहिता ॥ १८ ॥

दिक्पद्मेष्वब्धिबुद्धाः खलु नवनयना वह्निवक्त्रर्तुहस्ताः
कोणे तारादिदेव्यः पुनरपि च तयोरष्टकक्षेऽष्टकुम्भाः।
कृष्णा रक्ता च पीता शशधरधवला देवता देवती च
कृष्णा श्वेतेन्दुमूर्ध्नि त्वथ विदिशि गते रक्तपीतेऽर्कमूर्ध्नि ॥१९॥

इदानीं नामरूपाद्युत्पादाय महारागवैनेयसप्तलोकमादिबुद्धदेशनायां भाजनमभिसंवीक्ष्य सुरतध्वनिना स्वकायेऽक्षोभ्यादिजिनसमूहं प्रवेश्याकाशादिधातुसमूहं

१. ग. मकुटः। २. भो. दुन्दुभिः, छ. 'ढक्का'''दुग्धपात्रं द्वितीये' नास्ति। ३. ग. केसिका, च. कांचिका। ४. च. सव्ये।

पुरुषविद्याचक्षुरादिरूपादिविषयस्वभावेन देवतास्वरूपाविर्भूतं पुनरपि [1]तं स्वकायान्निश्चार्य विश्वमातरि यथावदन्तर्भावयेत्। ततस्तथैव निश्चार्य पुनरपि मण्डलचक्राकारान् तथागतान् सधातून् स्वकाये प्रवेश्य चन्द्रद्रवापन्नान् स्वकुलिशेनोत्सृज्य स्वविद्याकमलोदरे तत्परावृत्तं देवतादेवतीगणमण्डलमाधाराधेय[2]-लक्षणमक्षोभ्याधिपतिं ध्यात्वा पूर्वं भगवतः काये प्रवेशयेत्। ततो **दिक्पद्मेष्वब्धिबुद्धाश्चत्वारः खलु नवनयना वह्निवक्त्रास्त्रिमुखा ऋतुहस्ताः** षड्भुजाः स्फारणीयाः। तत्र पूर्वपद्मे सूर्यमूर्ध्नि अमोघसिद्धिः कृष्णः दक्षिणावर्तेन कृष्णरक्तसितवदनः, दक्षिणे रत्नसंभवो रक्तवर्णो दक्षिणावर्तेन रक्तसितकृष्णाननः, उत्तरे अमिताभः शुक्लो दक्षिणाव[259a]र्तेन सितकृष्णरक्ताननः, पश्चिमे वैरोचनः पीतो दक्षिणावर्तेन पीतसितकृष्णानन इति चत्वारः सूर्यमण्डले। "**दिनस्तु भगवान् वज्री**" (वि. प्र. पृ. 150) इति ज्ञापकात्। आग्नेय्यां **तारा** अमोघसिद्धिवत्, नैर्ऋत्ये पाण्डरा रत्नसंभववत्, ईशाने मामकी अमिताभवत्, वायव्ये लोचना वैरोचनवत्, इति चतस्रश्चन्द्रमण्डले। "**नक्तं प्रज्ञा प्रकीर्तिता**"(वि. प्र. पृ. 150)इति ज्ञापकात्। **पुनरपि च तयोर्**देवता देव्योर्मध्ये**ऽष्टकक्षास्वष्टामृतकलशाः।** एवं **कृष्णा रक्ता च पीता शशधरधवला देवता देवती चे**ति। पूर्वद्वारेऽतिबलः क्रोधो वर्णमुखभुजतोऽमोघसिद्धिवत् कृष्णः, दक्षिणद्वारे जम्भको रत्नसंभववद् वर्णमुखभुजतो रक्तः, पश्चिमद्वारे स्तम्भको वैरोचनवद् [3]वर्णमुखभुजतः पीतः, उत्तरे मानकोऽमिताभवद् वर्णमुखभुजतः शुक्लः, ऊर्ध्वे उष्णीषोऽक्षोभ्यवद् वर्णमुखभुजतः श्यामः। किन्त्वेते क्रोधा आलीढाः, क्रोधदेव्यः प्रत्यालीढा इति। चतुर्थे मासे नामरूपोत्पादकाले रूपं चतुर्महाभूतात्मकं वाय्वग्न्युदकपृथ्वीधात्वात्मकम्। तेन [4]स्कन्धधातुक्रोधानामुत्सर्गः॥ १९ ॥

ततः पञ्चमे मासे षडायतनोत्पादकाले खगर्भादीनुत्सृजेत्—

वैगर्भाद्याश्च भित्तौ दिशिविदिशिगताः स्पर्शवज्रादयश्च
पूर्वे सव्येऽवसव्ये परदिशिकमले विश्वभद्रस्तथैव।
श्रीमान् वै वज्रपाणिः खलु खकुलिशा धर्मधातुः क्रमेण
जम्भः स्तम्भश्च मानस्त्वतिबल इति यो द्वारपालः स पूर्वे ॥२०॥

[5]**वैगर्भाद्याश्च** [6]**भित्तावि**ति। इह वायुजन्यो घ्राणो वेगर्भोऽमोघसिद्धिवत् संस्थानतः पूर्वद्वारस्य सव्ये प्राकारभित्तौ **दिशी**ति। **विदिशिगता**ग्नेयकोणे वायुजन्या **स्पर्शवज्रा** तारावत् संस्थानतः। एवं दक्षिणद्वार**सव्ये** तेजोजन्यं चक्षुः क्षितिगर्भो रत्नसंभववत् संस्थानतः। एवं तेजोधातुजन्या रसवज्रा पाण्डरावन्नैर्ऋत्यकोणे पश्चिमद्वारसव्ये। पृथिवीजन्यं [7]कायेन्द्रियं सर्वनीवरणविष्कम्भी वैरोचनवत्। एवं [8]पृ[259b]थ्वीजन्या

१. छ. तत्त्वकाया। २. च. भो. देवी। ३. क. ख. ग. छ. मुखवर्ण। ४. ग. च. भो. धातुकस्कन्ध। ५. भो. mKhaḥi rÑiṅ (खगर्भ)। ६. भो. 'भित्तौ' नास्ति। ७. छ. 'कायेन्द्रियः'''एवं पृथ्वी' नास्ति। ८. भो. Sa Khams Las (पृथ्वीधातु)।

गन्धवज्रा वायुकोणे लोचनावत्। उत्तरद्वारसव्ये उदकजन्या जिह्वा लोकेश्वरोऽमिताभवत्। ईशाने उदकजन्या रूपवज्रा मामकीवत्। अधो [1]ज्ञानधातुजन्यं मनः समन्तभद्रो नोलवर्णस्त्रिमुखः षड्भुजो वर्णतः कालचक्रवत् पूर्वद्वारस्य वामे प्राकारभित्तौ। एवं ज्ञानधातुजन्या शब्दवज्रा उत्तरद्वारवामे समन्तभद्रवत् [2]संस्थानतः। ऊर्ध्वे आकाशधातुजन्यं श्रोत्रं वज्रपाणिरक्षोभ्यवत् श्यामो दक्षिणद्वारवामे। एवमाकाशधातुजन्या धर्मधातुवज्रा पश्चिमद्वारस्य वामे वज्रपाणिवत् [2]संस्थानतः। एवं षडायतनं पञ्चमे "**षष्ठे स्पर्शः**" इति ज्ञापकात् स्पर्शादयो विषयाः। एवं द्वादशायतनोत्सर्गो [3]द्वितीयमासे मात्रा कायवज्रस्य। अत्र कृष्णा[:] श्वेता देवतादेवत्यः पूर्वोत्तरा ऊर्ध्वस्थाश्चन्द्रमण्डले देयाः, शुक्रधर्मित्वात् खवायूदकधातूनाम्। अथ विदिशिगताः कोणदेव्यश्चन्द्रे "नक्तं प्रज्ञा प्रकीर्तिता" (वि. प्र. पृ. 150) इति वचनात्। एवं [4]रक्ता पीता दक्षिणपश्चिमा[5] देवतादेव्योऽधस्ताच्च, सूर्यमण्डले ज्ञानतेजःपृथ्वीधातूनां रजोधर्मित्वात्। अथ दिशिगता देवताः सूर्यः "**दिनस्तु भगवान् वज्री**" (वि. प्र. पृ. 150)इति वचनात्। एवं यो भगवतोऽभिमुखः स नायको दिक्षु, विदिक्षु देवी नायिका भगवतोऽभिमुखीति। पराङ्मुखोऽनुनायक इति ॥ २० ॥

प्रज्ञोत्सङ्गे ह्युपायः शशधरकमले देवतानां च देवी
अन्योन्यालिङ्गितौ द्वौ स्वकरसलिलजैः स्वस्वचिह्नाङ्कितैश्च।
यच्चिह्नं यस्य सव्ये प्रथमकरतले सास्य मुद्राब्जहीना
प्रज्ञोपायेन चक्रं परमसुखगतं पद्मवज्रासनाढ्यम् ॥२१॥

अतः **प्रज्ञोत्सङ्गे ह्युपायो**ऽनुनायकः **शशधरकमले** कोणभागे विदिक्षु। एवं **देवतानामु**पायानामुत्सङ्गे **देवी** अनुनायिका सूर्यमण्डले दिक्षु। **अन्योन्यालिङ्गितौ द्वौ स्वकरसलिलजैः स्वस्वचिह्नाङ्कितै**र्वक्ष्यमाणै**र्यच्चिह्नं यस्य सव्ये प्रथमकरतले सास्य मुद्राब्जहीना**। अब्जचिह्नं वामेऽपि दक्षिणेऽपि साधारणं रत्नं खड्गश्चेति। [260a] एवं पूर्वापरं वामदक्षिणं अध ऊर्ध्वं **प्रज्ञोपायेन चक्रं परमसुखगतं वज्रासनाढ्यम्** उपायनायकम्, **पद्मासनाढ्यं** देवीगण[6]नायकमिति नियमः ॥२१॥

इदानीं चिह्नान्युच्यन्ते—

कृष्णानां खड्गकर्त्र्यौ भुवनभयकरं सव्यहस्ते त्रिशूलं
वामे खेटं कपालं भवति करतले श्वेतखट्वाङ्गमेव।
बाणो वज्राङ्कुशो वै सरवडमरुकः सव्यहस्ते क्रमेण
वामे कोदण्डपाशौ स्फुरदमलमणिर्लोहितानां तथैव ॥२२॥

१. ग. धातुज्ञान। २-२. भो. 'संस्थानतः' नास्ति। ३. भो. gNas sKabs gÑis Pa (द्वितीयावस्था)। ४. च. रक्त। ५. ग. पश्चिम। ६. भो. ḥDren Ma (नायिकामि०)।

कृष्णानामित्यादिना। [1]षट्कुलस्कन्धविशुद्ध्या षट्चिह्नानि। तत्र **कृष्णानां** संस्कारकुलजानां प्रथमे दक्षिण[2]करे **खड्गः**, द्वितीये **कर्तिका**, तृतीये **त्रिशूलम्**। **वामे** प्रथमे **खेटम्**, द्वितीये **कपालम्**, तृतीये **करतले श्वेतखट्वाङ्गम्** अमोघसिद्धितारा-अतिबलखगर्भस्पर्शवज्राणामिति। **तथा लोहितानां** सव्ये प्रथम[3]हस्तेऽग्नि**बाणः**, द्वितीये **वज्राङ्कुशः**, तृतीये **सरवडमरुकः**। **क्रमेणे**ति, **वामे** प्रथमे **चापम्**, द्वितीये **वज्रपाशः**, तृतीये **स्फुरदमलमणी** रत्नम्, नवशूकं वेदनाकुलजानां रत्नसंभवपाण्डराजम्भकक्षितिगर्भरसवज्राणामिति ॥२२॥

पीतानां चक्रदण्डं भयकरकुलिशं सव्यहस्ते क्रमेण
श्रीशङ्खः श्रृङ्खला वै भवति च सरवा वज्रघण्टा च वामे।
सव्ये श्रीमुद्गरो वै शशधरधवलानां च कुन्तस्त्रिशूलं
वामे श्वेतं च पद्मं शतदलसहितं दर्पणं चाक्षसूत्रम् ॥२३॥

एवं रूपकुलजानां सव्ये प्रथमहस्ते **चक्रम्**, द्वितीये **दण्डः**, तृतीये **भयकरकुलिशम्**। वामे प्रथमे **शङ्खः**, द्वितीये वज्रश्रृङ्खला, तृतीये **सरवा वज्रघण्टा**। एवं **पीता**[260b]नां वैरोचनलोचनास्तम्भकसर्वनीवरणविष्कम्भिगन्धवज्राणामिति। तथा संज्ञाकुलजानां श्वेतानां **सव्ये** प्रथमहस्ते **मुद्गरः**, द्वितीये **कुन्तः**, तृतीये **त्रिशूलम्**। **वामे** प्रथमे **श्वेतं शतदलपद्मम्**, द्वितीये **दर्पणम्**, तृतीये **अक्षसूत्रम्** अमिताभमामकीपद्मान्तकलोकेश्वररूपवज्राणामिति ॥२३॥

वज्रं कर्त्री कुठारः प्रभवति हरितानां च सव्ये क्रमेण
वामे घण्टा कपालं सकलगुणनिधिर्ब्रह्मवक्त्रं तदेव।
नीलानां वेदितव्यं प्रकृतिगुणवशाद् देवतीनां च तद्वत्
कृष्णा रक्ता च शुक्ला द्रुतकनकनिभाः पूर्वभूम्यादिदेव्यः ॥२४॥

तथा विज्ञानकुलजानां **हरितानां** प्रथमे **सव्ये वज्रम्**, द्वितीये **कर्त्री**, तृतीये **पर्शुः**। **वामे** प्रथमे **घण्टा**, द्वितीये **कपालम्**, तृतीये **ब्रह्मशिरः**, अक्षोभ्यवज्रधात्वीश्वरी-उष्णीवज्रपाणिधर्मधातुवज्राणामिति। एवं **नीलानाम**पि ज्ञानकुलजानां वज्रसत्त्वविश्वमातासुम्भराजसमन्तभद्रशब्दवज्राणामिति चिह्ननियमः। अथवा तारायाः समन्तभद्रस्योत्पलं वा खट्वाङ्गस्थाने ब्रह्मशिरःस्थाने चेति ॥२४॥

अष्टौ धूमादिदेवीर्जिनपतिकमले वर्जयित्वा कदाचित्
श्रीचक्रं गर्भमध्ये भवति नरपते पञ्चविंशात्मकं च।

१. च. भो. इह षट्। २. च. दक्षिणे। ३. ग. च. छ. प्रथमे।

ज्ञात्वा शक्तिं स्वचित्ते त्वयमपि भगवान् योगिभिर्भावनीयः
सेकार्थं मण्डलं वा भवति कुलवशाद् बाह्यचक्रप्रहीणम् ॥२५॥

अष्टौ धूमादिदेवीर्वर्जयित्वा अष्टौ घटान् धर्मशङ्खादिकं च जिनपतिकमले कदाचित् श्रीचक्रं चित्तमण्डलं गर्भमध्ये भवति नरपते पञ्चविंशात्मकं च। उ[261a]पविष्टोऽपि तदा भगवान् भवति श्रीसमाजवत्। अत्र दोषो नास्ति निरन्वयत्वात्। एवं ज्ञात्वा शक्तिं स्वचित्ते साधकैरयमपि भगवान् योगिभिर्भावनीयः। सेकार्थं मण्डलं वा भवति कुलवशाद्बाह्यचक्रप्रहीणम्।

अत्र सहजसुखं वज्रसत्त्वं शुक्रं गर्भप्रविष्टं प्रथममासेऽविद्या, द्वितीये संस्कारः, तृतीये विज्ञानम्, चतुर्थे [1]रूपम्, [पञ्चमे] रूपसम्बन्धिषडायतनम्। स्पर्शादिकं षष्ठं मासं यावत्, कुलवशादिति भगवतो नियमः। एवं हृदये चित्तमण्डलं [2]च [3]पञ्चपञ्चधात्वात्मकम्। ततः सप्तमे मासे वेदनोत्पादकाले तृतीया मात्रा वाङ्मण्डले कालनाडीदेवीनामुत्सर्गः। तत्र वाङ्मण्डलं कण्ठनिर्माणचक्रपर्यन्तं चतुरस्रं ग्राह्यम्। तत्र निर्माणचक्रे चतुर्विधा नाड्यो गर्भे प्रथमपरिमण्डले चतस्रः, द्वितीयेऽष्टौ, तृतीये द्वादश चित्तवाक्कायस्वभावेन। ततश्चतुर्थपरिमण्डले त्रिवज्रसाधारणाश्चतुःषष्टिनाड्यः। तत्र षष्टिमण्डलवाहिन्यश्चतस्रः शून्याः। एवं कण्ठे मुहूर्तवाहिन्यः त्रिंशत्, द्वे शून्ये। एवं निर्माणचक्रे वाङ्नाड्योऽष्टप्रहरभेदवाहिन्यो द्वितीयपरिमण्डलस्थाश्चतुःषष्टिभिः सार्धमुत्सृजेदिति नियमः, आकण्ठात् ॥ २५ ॥

इदानीं वाङ्मण्डलदेवतोत्सर्ग उच्यते—

बाह्ये चाष्टाष्टकेनाष्टसु कमलदलेष्वष्टदिग्देवतीभि-
र्योगिन्यश्चर्चिकाद्याः शशिरविरहिता वेदहस्तास्त्रिनेत्राः।
पूर्वाब्जे चर्चिकाग्नौ खगपतिगमना शूकरी षण्मुखी च
याम्ये नैर्ऋत्यकोणे सवरुणपवने वज्रहस्ताब्धिवक्त्रा ॥२६॥

बाह्य इत्यादिना। इह चित्तमण्डलबाह्ये वाङ्मण्डले। तस्मिन् बाह्ये चाष्टाष्टकेनाष्टसु कमलदलेष्वष्टदिग्योगिनीभिः सार्धं योगिन्यश्चर्चिकाद्याः शशिरवि[4]रहिताः स्वस्ववाहनस्था वेदहस्ता चतुर्भुजास्त्रिनेत्रा नानावक्त्रा इति। तत्र पूर्वाब्जे चर्चिका। एकवक्त्रा कृष्णा। अग्नौ खगप[261b]तिगमना वैष्णवी। शूकरी षण्मुखी च रक्तवर्णा याम्ये नैर्ऋत्ये[5]। [6]वारुण्ये ऐन्द्री पीता। वायव्येऽब्धिवक्त्रा ब्रह्माणी पीता ॥ २६ ॥

---

१. भो. Miṅ Daṅ gZugs (नामरूपम्)। २. ग. च. 'च' नास्ति। ३. ग. 'पञ्च' नास्ति। ४. क. ख. छ. सहिताः। ५. च. त्ये च। ६. च. वारुणे, ख. छ. वरुणे।

रौद्री लक्ष्म्युत्तरेशे प्रहरणसहितालिङ्गितोपायकाया
योगिन्योऽष्टाष्टकाद्याः कमलदलगता नायिकावर्णवर्णाः।
पूर्वादौ कर्तिका च प्रथमकरतलाच्छूलचक्रं गदा च
दण्डः खड्गश्च शक्तिर्यमकरकमले दक्षिणे चाङ्कुशो वै ॥२७॥

उत्तरे रौद्री शुक्ला एकवक्त्रा। ईशाने लक्ष्मीः शुक्ला। एवं यथा नायिका कर्णिकास्था तथा वर्णसंस्थानतः। तासां पत्रस्था देव्यः। एवं योगिन्योऽष्टाष्टकाद्याः कमलदलगता नायिकावर्णवर्णाः। इदानीं चर्चिकादीनां यथाक्रमेण सव्यभुजद्वयेन चिह्नान्युच्यन्ते- पूर्वादावित्यादिना। इह पूर्वे चर्चिकायाः प्रथमहस्ते कर्तिका, द्वितीये शूलम्। वैष्णव्या चक्रं गदा। वाराह्या दण्डः खड्गः। कौमार्याः शक्तिः अङ्कुशः ॥२७॥

वज्रं बाणश्च पद्मं तडिदनलनिभो ब्रह्मदण्डस्त्रिशूलं
नानारत्नैर्निबद्धः सरवडमरुकः पद्ममेवाक्षसूत्रम्।
वामे शुक्तिश्च खट्वाङ्गमपि च कमलं कम्बुकः शृङ्खला च
खेटो वै रत्नपाशौ प्रगुणरणरणद्वज्रघण्टा च चापम् ॥२८॥

ऐन्द्र्या वज्रं बाणः। ब्रह्माण्याः पद्मं ब्रह्मदण्डः। रौद्र्यास्त्रिशूलं डमरुकः। महालक्ष्म्याः पद्मम् अक्षसूत्रं चेति सव्यहस्तद्वये। एवं पत्रदेवीनामपि। ततो वामहस्तद्वये पूर्वादि यथाक्रमेण चर्चिकायाः प्रथमे वामकरे कपालम्, द्वितीये खट्वाङ्गम्। वैष्णव्याः कमलं शङ्खः। वाराह्याः शृङ्खला खेटः। कौमार्या रत्नं पाशः। ऐन्द्र्या घण्टा चापम् ॥ २८ ॥ [262a]

कुण्डीपात्रं च खट्वाङ्गमहिरपि च ततस्तोयजं रत्नमेव
योगिन्योऽष्टाष्टका याः कमलवसुदले शस्त्रहस्ताश्च तद्वत्।
भीमोग्रा कालदंष्ट्रा ज्वलदनलमुखा वायुवेगा प्रचण्डा
रौद्राक्षी स्थूलनासा कमलवसुदले चर्चिकायाः स्वदिक्षु ॥२९॥

ब्रह्माण्याः कुण्डिकापात्रम्। रौद्र्याः खट्वाङ्गं सर्पश्च। महालक्ष्म्याः कमलं रत्नमेव च। एवं योगिन्योऽष्टाष्टका याः कमलवसुदले शस्त्रहस्ताश्च तद्वत्। यथा नायिकास्तथेति नियमः।

इदानीं तासां नामानि भवन्ति । तत्र[1] चर्चिकादिकमलदलेषु पूर्वादिदक्षिणावर्तेन चर्चिकादीनां यत्र देव्यो वेदितव्याः, तत्र प्रथमपत्रे **भीमा**। एवं द्वितीयादौ **उग्रा, कालदंष्ट्रा, ज्वलदनलमुखा, वायुवेगा, प्रचण्डा, रौद्राक्षी, स्थूलनासा, कमलाष्टदलेषु चर्चिकायाः स्वदिक्षु** ॥२९॥

श्रीर्माया कीर्तिलक्ष्म्यौ सुपरमविजया श्रीजया श्रीजयन्ती
श्रीचक्री चाष्टमा वै कमलवसुदले वैष्णवी दिक्प्रदेशे ।
कङ्काली कालरात्री प्रकुपितवदना कालजिह्वा कराली
काली घोरा विरूपा कमलवसुदले शूकरी पत्रदेवी ॥३०॥

वैष्णव्याः प्रथमपत्रादौ **श्रीः, माया, कीर्तिः, लक्ष्मीः, विजया, श्रीजया, श्रीजयन्ती, श्रीचक्री चाष्टमा वै कमलवसुदले वैष्णवी दिग्प्रदेशे**ऽग्नौ । ततो वाराह्याः प्रथमपत्रादौ **कङ्काली, कालरात्री, प्रकुपितवदना, कालजिह्वा, कराली, काली, घोरा, विरूपा** इति **कमलवसुदले शूकरी पत्रदेवी**[2] दक्षिणे ॥३०॥

T 343

पद्मानङ्गा कुमारी मृगपतिगमना रत्नमाला सुनेत्रा
क्लीना भद्राब्जपत्रे वरशिखिगमना नायिका यत्र राजन् ।
वज्राभा[262b] वज्रगात्रा वरकनकवती चोर्वशी चित्रलेखा
रम्भाहल्या सुतारा कमलवसुदले वज्रहस्ताधिदैवे ॥३१॥

तथा कौमार्याः पूर्वपत्रादौ **पद्मा, अनङ्गा, कुमारी, मृगपतिगमना, रत्नमाला, सुनेत्रा, क्लीना, भद्रा। अब्जपत्रे वरशिखिगमना नायिका यत्र राजन्।** नैर्ऋत्ये तथा ऐन्द्र्याः पूर्वपत्रादौ **वज्राभा, वज्रगात्रा, कनकवती, उर्वशी, चित्रलेखा, रम्भा, अहल्या, सुतारा कमलवसुदले वज्रहस्ताधिदैवे** पश्चिमे ॥ ३१ ॥

सावित्री पद्मनेत्रा खलु जलजवती बुद्धिवागीश्वरी द्वे
गायत्री विद्युदेव स्मृतिरपि कमले वेदवक्त्राधिदैवे ।
गौरी गङ्गा च नित्या सुपरमतुरिता तोतला लक्ष्मणा च
पिङ्गा कृष्णा तथाष्टौ कमलवसुदले नायिका यत्र रौद्री ॥३२॥

ततो ब्रह्माण्याः पूर्वपत्रादौ **सावित्री, पद्मनेत्रा, जलजवती, बुद्धिः, वागीश्वरी, गायत्री, विद्युत्, स्मृतिः, अपि कमले वेदवक्त्राधिदैवे।** वायव्ये ततो रौद्र्याः पूर्वपत्रादौ **गौरी, गङ्गा, नित्या, तुरिता, तोतला, लक्ष्मणा, पिङ्गला, कृष्णा, तथाष्टौ[3] कमलवसुदले नायिका यत्र रौद्री**त्युत्तरे ॥ ३२ ॥

---

१. च. 'तत्र' नास्ति । २. छ. 'देवी' [illegible] । ३. भो. [illegible]

श्रीश्वेता चन्द्रलेखा शशधरवदना हंसवर्णा धृतिश्च
पद्मेशा तारनेत्रा विमलशशधरा चेशपद्मे सचिह्नाः ।
तद्बाह्ये सूर्यपद्मे दनुकचलयमाः पावकः षण्मुखश्च
यक्षः शक्रोऽब्धिवक्त्रः पशुपतिरुदधिः श्रीगणेन्द्रश्च विष्णुः ॥३३॥

ततो लक्ष्म्याः पूर्वपत्रादौ **श्रीश्वेता, चन्द्रलेखा, शशधरवदना, हंसवर्णा, धृतिः, पद्मेशा, तारनेत्रा, विमलशशधरा ईशपद्मे सचिह्ना** इति चतुःषष्टियोगिन्यश्चर्चि-[263a]कादीनां पद्मदलेषु वाङ्मण्डले नायिका इति वेदनाङ्गे तृष्णाङ्गेऽपि सर्वकायवज्र-निष्पत्तिः । [1]ललाटाद् गुह्य[2]कमलान्तं कायनिष्पत्तौ वेदितव्यं [3]चतुरस्रम् । [4]तत्र यानि हस्तपादेषु द्वादश, [5]सन्धौ द्वादशकमलानि । कर्मचक्रे क्रियाचक्रे । अष्टाविंशद्दलानि नाडी देवतामूर्त्या उत्सर्जयेद् अष्टमे मासे । **तद्बाह्ये सूर्यपद्म** इति । तस्य बाह्ये काय-मण्डले द्वादशपद्मेषु पूर्वद्वारस्य सव्यभागादौ प्राकारभित्तौ खगर्भादिवद् नैर्ऋत्यादयो यथासंख्यमुच्यन्ते । **दनुक** इति नैर्ऋत्यः । पूर्वद्वारसव्ये [6]**चल** इति वायुराग्नेय्याम् । **यम** इति दक्षिणद्वारवामे । सव्ये **पावकः** । नैर्ऋत्ये **षण्मुखः** । पश्चिमद्वारवामे **यक्षः** । सव्ये **शक्रः** । वायव्ये **ब्रह्मा** । उत्तरद्वारवामे **रुद्रः** । दक्षिणे **समुद्रः** । ईशाने **गणपतिः** । पूर्वद्वारवामे **विष्णु**रिति सर्वे चतुर्भुजाः ॥ ३३ ॥

खड्गः कर्त्री द्रुमेन्द्रः सुरतरुकुसुमं दण्डखड्गश्च शक्ति-
र्दण्डः शक्तिश्च कुन्तो मणिरपि च गदा वज्रमेवाग्निबाणः ।
सूची चाप्यक्षसूत्रं भवति करतले शूलबाणं च पाशो
रत्नं पर्शुश्च वज्रं भवति हरिकरे चक्रदण्डश्च सव्ये ॥३४॥

एषां द्वादशानां यथाक्रमेण सव्यहस्तद्वये चिह्नानि भवन्ति । नैर्ऋत्यस्य प्रथमे **खड्गः**, द्वितीये **कर्त्री** । वायोः प्रथमे **द्रुमेन्द्रः** कल्पवृक्षः, द्वितीये **पारिजातकपुष्पम्** । यमस्य प्रथमे **दण्डः**, द्वितीये **खड्गः** । वैश्वानरस्य प्रथमे **शक्तिः**, द्वितीये **दण्डः** । षण्मुखस्य प्रथमे **शक्तिः**, द्वितीये **कुन्तः** । धनदस्य प्रथमे **मणिरत्नम्**, द्वितीये **गदा** । इन्द्रस्य प्रथमे **वज्रम्**, द्वितीयेऽ**ग्निबाणः** । ब्रह्मणः प्रथमे **सूची**, द्वितीयेऽ**क्षसूत्रम्** । रुद्रस्य प्रथमे **त्रिशूलम्**, द्वितीये **बाणः** । वरुणस्य प्रथमे **पाशः**, द्वितीये **रत्नम्** । विनायकस्य प्रथमे **पर्शुः**, द्वितीये **वज्रम्** । विष्णोः प्रथमे **चक्रं**, द्वितीये **गदे**ति ॥३४॥ [263b]

वामे खेटं कपालं त्वसितमणिरपि ह्युत्पलं शृङ्खला च
पाशाऽब्जं कुण्डिका वै भवति नरपते वामहस्ते क्रमेण ।

---

१. ख. ललाटाङ्गुष्ठकमलान्तं । २. क. कलान्तं । ३. भो. 'चतुरस्रं' नास्ति । ४. क. ख. 'तत्र' नास्ति । ५. क. ख. च. स्कन्धौ । ६. क. ख. बल ।

रत्नादर्शश्च तद्वत् सनकुलजलजं वज्रघण्टा च चापं
पद्मं वै कुण्डिकाहिर्धनुरपि च तथा नागपाशश्च रत्नम् ॥३५॥

ततो **वामे** नैर्ऋत्यस्य प्रथमे करे **खेटम्**, [1]द्वितीये **कपालम्**। वायोः प्रथमे इन्द्रनीलम्, द्वितीये **नीलोत्पलम्**। यमस्य प्रथमे **शृङ्खला**, द्वितीये **पाशः**। अग्नेः प्रथमे पद्मम्, द्वितीये कमण्डलुः। कार्तिकेयस्य प्रथमे **रत्नम्**, द्वितीये दर्पणम्। यक्षस्य प्रथमे **नकुलम्**, द्वितीये पद्मम्। इन्द्रस्य प्रथमे **घण्टा**, द्वितीये धनुः। ब्रह्मणः प्रथमे **पद्मम्**, द्वितीये **कुण्डिका**। रुद्रस्य प्रथमे खट्वाङ्गं सर्पसहितम्, द्वितीये **धनुः**। समुद्रस्य प्रथमे **नागपाशः**, द्वितीये चन्द्रकान्तमणि**रत्नम्** ॥३५॥

पाशो रत्नं च पद्मं भवति दनुरिपोः पाञ्चजन्यं च शङ्खः
चैत्राद्याः पद्मपत्रे वसुकरतिथयः कर्णिकायां द्विपूर्णाः।
सर्वाः शून्यर्तुलोकाः परमशशिकला वेदितव्याब्दयोगाद्
द्वारे देव्यो रथस्थास्त्वसिकुलिशधराः साङ्कुशा बाणहस्ताः ॥३६॥

विनायकस्य प्रथमे **पाशः**, द्वितीये **रत्नम्**। वासुदेवस्य प्रथमे **पद्मम्**, द्वितीये **पाञ्च**[2]**जन्यः शङ्खः** इति। वामहस्तद्वये सर्वेषां यथानुक्रमेण चिह्नानि। कमलकर्णिकास्थानां तेषां नैर्ऋत्यादीनां कमलदलेष्वष्टाविंशद्दलेषु दक्षिणावर्तेषु त्रिपरिमण्डलदलेषु प्रथमपरिमण्डले चत्वारि दलानि, द्वितीयेऽष्टौ, तृतीये षोडश। एवमष्टाविंशतिदलेषु चैत्रादिमासतिथयः। शुक्लकृष्णपक्षाणां पूर्णिमाऽमावासी कर्णिकायां नायकत्वेन स्थिताः। एवं चैत्रतिथयो नैर्ऋत्यस्य[3] कमलदले, वैशाखतिथयो वायोः, ज्येष्ठतिथयः पावकस्य, आषाढतिथयः षण्मुखस्य, श्रावणतिथयः समुद्रस्य, भाद्रतिथयो विनायकस्य, आश्वि[264a]नतिथय इन्द्रस्य, कार्तिकतिथयो ब्रह्मणः, मार्गतिथयो [4]हरस्य, पौषतिथयो यक्षस्य, माघतिथयो विष्णोः, फाल्गुनतिथयो यमस्य। तद्वद्वर्णायुधसंस्थानेन देव्यः। एवं **चैत्राद्याः पद्मपत्रे वसुकरतिथयः कर्णिकायां द्विपूर्णाः सर्वा शून्यर्तुलोकाः** षष्ट्युत्तरत्रिशताः। **परमशशिकला वेदितव्यास्ता अब्दयोगा**दिति। आसां वक्ष्यमाणबीजेनादिभूतेन वज्रान्तं नाम भवतीति नियमः। इदानीं हस्तपादतलोष्णीषगुदनाडीस्फरणशुद्ध्या **द्वारे देव्यो रथस्था** मारीच्याद्या एकवक्त्राश्चतुर्भुजाः। आसां परस्थानगमनादनुनायिकात्वं [5]नीलदण्डादीनां नायकत्वं स्वस्थानतः। अत आसां पूर्वादिकुलं वज्रशृङ्खलादीनां गमनमभिमुखस्थाने। तेन कुलवशेन शृङ्खलायाः प्रथमे सव्ये भुजे असिः, द्वितीये **वज्रम्**, अमोघसिद्धिकुलवशादिति। एवं रत्नकुलवशादिति। भृकुट्याः [6]प्रथमे करे [7]**बाणः, साङ्कुशे**ति द्वितीयेऽङ्कुशः ॥३६॥

१. क. 'द्वितीये '' इन्द्रनीलं' नास्ति। २. क. ख. छ. जन्य। ३. ग. पृ. १६६, पं. तः 'स्त्री च रक्तवर्णं '' नैर्ऋत्यस्य' नास्ति। ४. भो. Drag Po (रुद्रस्य)। ५. क. 'नीलदण्डादीनां नायकत्वं' नास्ति। ६. ग. प्रथम। ७. च. बाणं, भो. बाणः, द्वितीये साङ्कुशेति।

श्रीचक्रा दण्डहस्ता प्रकृतिगुणवशान्मुद्गरा कुन्तहस्ता
श्रीकर्त्री वज्रहस्ता खलु परशुकरा शूलहस्ता तु सव्ये।
वामे खेटाहिहस्ता प्रकृतिगुणवशात् पाशकोदण्डहस्ता
श्रीशङ्खा रत्नहस्ता कमलशशधरादर्शहस्ता च तद्वत् ॥३७॥

वैरोचनकुलवशाद् मारीच्याः [1]**सव्ये** हस्ते **चक्रम्**, द्वितीये **दण्डः**। **प्रकृतिगुणवशात्** पद्मकुलवशात् चुन्दायाः प्रथमकरे **मुद्गरः**, द्वितीये **कुन्तम्**। अतिनीलाया ज्ञानकुलवशात् प्रथमे **कर्त्री**, द्वितीये **वज्रम्**। रौद्राक्ष्या आकाशकुलवशात् प्रथमे **पर्शुः**, द्वितीये **त्रिशूलमि**ति। तथा **वामहस्ते** शृङ्खलायाः **खेटम् अहिश्चे**ति। भृकुट्याः प्रथमे **कोदण्डः**, द्वितीये **पाशः**। मारीच्याः [2]**शङ्खो रत्नम्**। [3]चुन्दायाः **पद्म आदर्शः** ॥३७॥[264b]

श्रीघण्टा शुक्तिहस्ता खलु भुजगकराप्येव खट्वाङ्गहस्ता
मारीच्याद्येकवक्त्रा युगकरकमला वेदितव्याः क्रमेण।
स्तम्भाधोऽप्यष्टनागा घटकुलिशकराः पद्ममाणिक्यहस्ता
वाय्वादौ मण्डले वै युगकरकमलाः पद्मकर्कोटकाद्याः ॥३८॥

अतिनीलायाः **कपालं घण्टा**, रौद्राक्ष्या **नागपाशः खट्वाङ्गमि**ति। एवं नीलदण्डस्य टक्किराजस्य महाबलस्य अचलस्य पूर्वे दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे [4]द्वारे स्थितस्येति नियमः। ततो नवमे मासे उपादाने क्रियाचक्रे विंशत्यङ्गुलिकानाडीविशुद्ध्या दश[5]नागदशप्रचण्डा उत्सर्जयेत्। बाह्ये कायमण्डले चतुस्तोरणेऽ**ष्टस्तम्भतले अष्टौ नागाः**, जयविजयावध ऊर्ध्वे। सर्वे चतुर्भुजाः। सव्येऽमृतघटः प्रथमे, द्वितीये वज्रम्। वामे प्रथमे पद्मम्, द्वितीये रत्नम्। अतो **घटकुलिशकराः पद्ममाणिक्यहस्ता वाय्वादौ मण्डले वै** [6]इति। **पद्मकर्कोटकौ** पूर्वे वायुमण्डलद्वये। दक्षिणे वह्निमण्डले वासुकिः शङ्खपालः। पश्चिमे पृथ्वीमण्डले तक्षको महापद्मः। उत्तरे तोयमण्डलेऽनन्तः कुलिक इति। आकाशे जयो ज्ञाने विजय इति दशपादाङ्गुलिकाः ॥३८॥

श्वानास्या शूकरास्या खलु चलवलये जम्बुकास्या च दिक्षु
व्याघ्रास्या चोत्तरस्था त्रितिभुवनगता कर्तिकाशुक्तिहस्ता।
काकास्या गृध्रवक्त्रा खगपतिवदनोलूकवक्त्रा च कोणे
वज्राक्षी चातिनीलाघसि नभसि गते भूतयोनिश्चलान्ते ॥३९॥

१. भो. Dań Po Na (प्रथमे)। २. क. ख. छ. शङ्खं। ३. ग. बुद्धायाः। ४. क. ख. छ. द्वार। ५. क. ख. छ. नागा। ६. ग. नास्ति।

ततो हस्ताङ्गुलिकाविशुद्धया **श्वानास्या** पूर्वे। **शूकरास्या** दक्षिणे। **जम्बुकास्या** पश्चिमे। **उत्तरे व्याघ्रास्या**। वाय्वग्निवलयमध्ये महाश्मशाने द्विभुजा। **कर्तिकाशुक्तिहस्ता** एकवक्त्रा। [265a] एवं **काकास्या**ऽग्नौ, **गृध्रास्या** नैर्ऋत्ये, **गरुडास्या** वायव्ये, **उलूकास्या** ईशाने, **वज्राक्षी** पाताले, **नीला**ऽऽकाशे। सर्वा एता कर्तिकपालहस्ता नग्नाः पञ्चमुद्राविभूषिता मुण्डमालावलम्बिता इति। एवं लोमकेशविशुद्धया **सार्द्धत्रिकोटिभूतयोनिश्चलान्ते** वायुवलयान्ते चर्मान्ते लोमानीति। उत्सर्जयेन्मन्त्री बाह्ये। एवं नवमासावधेः कायदेवतागणनिष्पत्तिः ॥३९॥

इदानीं चामुण्डादीनां कमलासनान्युच्यन्ते—

रक्तप्रेतं खगेन्द्रो महिषशिखिगजा हंसगोपञ्चवक्त्रा-
श्चामुण्डादेः क्रमेण प्रभवति कमलान्यासनं दिग्विदिक्षु ।
दैत्यादीनां च तद्वद् धनपतिशिखिनोरब्धिवाय्वोर्गणस्य
मातङ्गेशश्च मेषो मकर इति मृगो मूषकश्च क्रमेण ॥४०॥

रक्तप्रेतमित्यादिना। इह पूर्वे **चामुण्डाया रक्तमहाप्रेतासनं** कमल[1]कर्णिकायाम्। अष्टदलेषु चामुण्डादिदेव्यः। एवं वैष्णव्या **गरुडः**, वाराह्या **महिषः**, कौमार्या **मयूरः**, ऐन्द्रया **गजः**[2], ब्रह्माण्या **हंसः**, रौद्रया **वृषभः**, महालक्ष्म्या **सिंह** इति **क्रमेणासनं कमलस्य दिग्विदिक्षु**। **दैत्यादीनां च**[3] **तद्व**दिति वचनाद् नैर्ऋत्यकमला[4]सनं रक्तप्रेतम्। विष्णोर्गरुडम्, यमस्य महिषः, कुमारस्य मयूरः, इन्द्रस्य गजः, ब्रह्मणो हंसः, रुद्रस्य वृषभ इति नैर्ऋत्यादीनां नियमः। तथा **धनपतिशिखिनो**[5]**रब्धिवाय्वोर्गणस्ये**ति पञ्चानां यथासंख्यम्। धनपते**र्मातङ्गः**, अग्ने**र्मेषः** अब्धे**र्मकरः**, वायो**र्मृगः**, गणपते**र्मूषक** इति ॥ ४० ॥

भेरुण्डः क्रुञ्चनीलेक्षणगुदवदनाः काकवक्त्रादिकोणे
खड्गी ऋक्षश्च सिंहः प्रभवति चमरी श्वानवक्त्रादिदिक्षु ।
वज्राक्ष्या अष्टपादस्त्ववनितलगतो व्योम्नि नीलारथस्य
सक्रूरः पञ्चवर्णस्त्वनिल इति खगः स्फीतगात्रस्त्रिनेत्रः ॥४१॥

[265b]

तथा **काकास्यायाश्चक्रतले भेरुण्डः**, गृध्रास्यायाः **क्रुञ्चः**, गरुडास्याया **नीलाक्षः**, उलूकास्याया वाग्वलिरिति कोणे। तथा दिक्षु श्वानास्यायाश्चक्रतले **खड्गी**, शूकरास्याया **ऋक्षः**, जम्बुकास्यायाः **सिंहः**, व्याघ्रास्यायाश्**चमरी**ति **श्वानवक्त्रादि-**

१. च. भो. कमलस्य । २. क. 'गजः.....रौद्रया' नास्ति । ३. क. ख. ग. छ. 'च' नास्ति । ४. च. लस्या । ५. क. ख. च. छ. नोब्धेर्वायो ।

दिक्षु। वज्राक्ष्या अष्टपादः पातालरथगतः। **व्योम्नि नीलारथस्य। सक्रूरः पञ्चवर्णोऽनिल इति खगः स्फीतगात्रस्त्रिनेत्र** इति ॥ ४१ ॥

मारीच्याः शूकराः स्युर्हयगजहरयः सप्तसंख्या रथेषु
चुन्दायाः श्रृङ्खलायाः सुरयमवरुणे चोत्तरे वै भृकुटयाः ।
गन्धा माला च पूर्वे यमवरुणगते धूपदीपे च लास्या
हास्या वाद्या च नृत्या धनदभुवितले चाम्बरे गीतकामा ॥४२॥

एवं **मारीच्या** रथे **सप्तशूकराः** पूर्वद्वारे। दक्षिणे सप्ताश्वाश्चुन्दारथे। पश्चिमे श्रृङ्खलारथे सप्त **गजाः**। उत्तरे भृकुटीरथे सप्त सिंहाः। एवं ततो हृदयदशनाडीस्वभावेन पूजादेवी[1]रुत्सर्जयेत्। चित्तमण्डले चतु[2]र्द्वारस्य [3]सव्यवामवेदिकायां **गन्धा माला**। [4]पूर्वदक्षिणे **धूपा दीपा**। पश्चिमे **लास्या हास्या**। उत्तरे **वाद्या नृत्या**। आकाशे **गीता कामा**। अधो विण्मूत्र[5]नाडीस्वभावेन नैवेद्या। अमृतफला इति ॥४२॥

गर्भेऽष्टौ वेदिकायां गगनतलगते तोरणाधो नियोज्यो
धारिण्यः पट्टिकायां फणिकुलसहिता वेदिकायां प्रतीच्छाः ।
विद्वेषः स्तोभनेच्छा भवति नृप तथा पौष्टिकं स्तम्भनेच्छा
तारादेव्यादिशुद्धया त्रिभुवनजननो मारणोत्पादनेच्छा ॥४३॥

रजोमण्डले **गगन**[6]**तलगता** देव्यो याः काश्चित्ताः पूर्वापर**तोरणाधो** दर्शनीयाः। भावनायां पुनर्दिक्पालादयो यथोक्तस्थान एव। समन्तभद्रादयश्च[266a]त्वारो द्वारस्यावसव्य इति नियमः। एवं यथा पूजादेव्यस्तथानन्ता **धारिण्यः पट्टिकायां** वेदिकायामिति। एवं बाह्ये कायमण्डले **फणिकुलसहिता वेदिकायां प्रतीच्छाः**। अतो वाङ्मण्डले वेदिकायामिच्छाः। तत्र पूर्वे **विद्वेषेच्छा** ताराजन्या, **स्तोभनेच्छा** दक्षिणे पाण्डराजन्या, उत्तरे **पौष्टिकेच्छा** मामकीजन्या, पश्चिमे **स्तम्भनेच्छा** लोचनाजन्या इति **तारादेव्यादिशुद्धया त्रिभुवनजननी मारणेच्छा** वज्रधात्वीश्वरीजन्या। **उत्पादनेच्छा** विश्वमातृजन्या इति ॥४३॥

वाद्येच्छा भूषणेच्छा भवति नरपते भोजनेच्छा तृतीया
गन्धेच्छा चांशुकेच्छा प्रकटितनियता मैथुनेच्छा च षष्ठी ।
काये कण्डूयनेच्छा वदनगतकफोत्सर्जनेऽङ्गे मलेच्छा
नृत्येच्छा चासनेच्छा पयसि च शयने प्लावने मज्जनेच्छा ॥४४॥

१. ग. च. रुत्सृजेत् । २. क. ख. ग. छ. द्वार । ३. च. वामदक्षिण । ४. ग. च. भो. पूर्वे । ५. ग. 'नाडी' नास्ति । ६. क. ख. छ. तले ।

एवं शब्दजन्या **वाद्येच्छा**, **भूषणेच्छा** रूपजन्या, [1]**भोजनेच्छा** रसजन्या, **गन्धेच्छा** गन्धजन्या, **अंशुकेच्छा** स्पर्शजन्या, **मैथुनेच्छा** धर्मधातुजन्या इति पूर्वादिवेदिका[2]याम् । [3]स्वकुलभेदेन **काये कण्डूयनेच्छा** चामुण्डाजन्या । **वदनगत-कफोत्सर्जनेच्छा** वैष्णवीजन्या । **अङ्गे मलेच्छा** वाराहीजन्या । **नृत्येच्छा** कौमारीजन्या । **आसनेच्छा** रौद्रीजन्या । **पयसि प्लावनेच्छा** ब्रह्माणीजन्या । **शयने मज्जनेच्छा** ऐन्द्रीजन्या । राज्येच्छा लक्ष्मीजन्या इति ॥४४॥

चामुण्डाद्यष्टकृत्यान्यपि च भुवितले क्रोधजानां तथेच्छा
सन्तापे बन्धनेच्छा खलु मृदुवचने शोषणोच्चाटनेच्छा ।
स्पर्शाकृष्टी च बन्धे भवति नरपते कीलने धावनेच्छा
सर्वाङ्गक्षोदनेच्छा प्रकटितनियता मूत्रविट्स्रावणेच्छा ॥४५॥
[266b]

चामुण्डाद्यष्टकृत्यान्यपि च भुवितले क्रोधजानां तथेच्छा । अत्र **संतापेच्छा** अतिनीलाजन्या । **बन्धनेच्छा** [4]स्तम्भनीजन्या । **मृदुवचनेच्छा** मानिनीजन्या । **शोषणेच्छा** [5]जम्भनीजन्या । **उच्चाटनेच्छा** अतिबलाजन्या । तथा [6]**स्पर्शनेच्छा** वज्रशृङ्खलाजन्या । **आकृष्टीच्छा** भृकुटीजन्या । [7]**बन्धनेच्छा** चुन्दाजन्या । **कीलनेच्छा** मारीचीजन्या । **धावनेच्छा** रौद्राक्षीजन्येति । तथा दनुकुलजानामिच्छाः । **सर्वाङ्ग-**[8]**क्षोदनेच्छा** श्वानास्याजन्या । **मूत्रविट्स्रावणेच्छा** शूकरास्याजन्या ॥ ४५ ॥

सत्त्वानां वञ्चनेच्छा खलु बहुकलहे पञ्चमोच्छिष्टभक्ते
संग्रामेच्छाऽहिबन्धे भवति दनुकुले दारकाक्रोशनेच्छा ।
सप्तत्रिंशत्प्रतीच्छाः पुनरपि च ततो मण्डले बाह्यपट्यां
यत्किञ्चित् सत्त्वकृत्यं प्रतिदिनसमये योगिनीकृत्यमत्र ॥४६॥

सत्त्वानां वञ्चनेच्छा जम्बुकास्याजन्या । **बहुकलहेच्छा** व्याघ्रास्याजन्या । [9]**उच्छिष्टभ**[10]**क्तेच्छा** काकास्याजन्या । **संग्रामेच्छा** गृध्रास्याजन्या । अहिब[11]न्धनेच्छा गरुडास्याजन्या । **दारकाक्रोशनेच्छा** उलूकास्याजन्येति । सप्तत्रिंशदिच्छा वाङ्मण्डले स्वकुलभेदेन स्वस्वदिक्षु । एवं **सप्तत्रिंशत् प्रतीच्छाः**, इच्छानां निवर्तनं प्रतीच्छा

१. क. 'भोजनेच्छा रसजन्या' नास्ति । २. ग. च. 'याम्' नास्ति । ३. ग. सु, भो. 'स्व' नास्ति । ४. ग. च. स्तम्भी । ५. ग. च. जम्भी । ६. ग. च. भो. स्पर्शेच्छा । ७. ग. बन्वेच्छा, भो. gÑen Pa ḥDod Ma (बान्धवेच्छा) । ८. भो. bsKyod Pa (क्षोभणे) । ९. क. ख. ग. छ. उत्सिष्ट । १०. ग. भुक्ते । ११. ग. बन्धेच्छा ।

इत्युच्यते । ताः कायमण्डल[1]वेदिकायां स्वकुलवशात् स्वस्वदिक्ष्विति सर्वत्र नियमः । एवं ब्रह्ममण्डले **बाह्य**[2]**पट्यामपरमपि यत्किञ्चित् सत्त्वकृत्यमिच्छातः प्रतिदिनसमये** तत् सर्वं **योगिनीकृत्यमत्र**, धातुवशादिति नियमः ॥ ४६ ॥

इदानीं नित्यानित्यमुच्यते—

इत्येवं वज्रिणश्च त्रिभुवनसकलं मण्डलाकारमुक्तं
बाह्ये देहे परे च स्फरणनिधनते संस्थिते वस्तुजातेः ।
तस्मिन्नित्यः खवज्रस्त्रिविधभवगतोऽनित्यतां न प्रयाति
नो नित्यं भूतवृन्दं भवति नरपते शक्रजालं यथैव ॥४७॥
[267a]

इत्येवमित्यादिना[3] । **इत्येवं** सप्तादिभिर्मसिजतिकस्य बाह्ये **वज्रिणश्च त्रिभुवन-सकलं** स्कन्धधात्वायतनादिकं **मण्डलाकारमुक्तं** बालजनानां चित्तस्थिरीकरणार्थम् । अत्र **बाह्ये** लोकधातौ **देहे**ऽध्यात्मनि **परे** [4]कल्पितमण्डले स्फरणं च निधनता च **स्फरणनिधनते संस्थिते वस्तुजातेः** । अत्र वस्तु परमाणुद्रव्यं पृथिव्यप्तेजोवायुरिति चत्वारो भूताः । आकाशधातुश्चन्द्रोऽनुस्वारः शुक्रं वा तथा रजो वा बिन्दुद्वयं सूर्यो वाकाशधातुः । राहुर्विज्ञानधातुः । एवं षड्धात्वात्मको महापुरुषपुङ्ग(द्ग)लो वस्तुजातिः । तस्य वस्तुजातेरुत्पादः स्फरणम्, विनाशो निधनता, ते[5] द्वे संस्थिते भूतजानामिति । एवं पृथिवीजातिस्तर्वादयः स्थावराः, उदकजातिः स्वेदजाः, तेजो-जातिर्जरायुजाः, वायुजातिरण्डजाः, चन्द्रजातिर्नागासुराः, सूर्यजातिर्भूतदेवताः[6] । राहुजातिररूपाः, कालाग्निजातिर्नारकाः । एवमष्ट[7]धा जाति[8]र्वस्तुरूपिणी वस्तुजातिः । **तस्मिन्नित्यः खवज्र** इति । [9]इह ख[10] इति आकाशधातु[11]र्नवमः । परमाणुद्रव्यरहितोऽच्छेद्यः । अच्छेद्याभेद्यत्वात् खवज्र आकाशधातुर्नित्यो द्रव्याभावात् । स आकाशधातुः । सर्वगतत्वात् । **त्रिविध**[12]**भवगतोऽनित्यतां न प्रयाति** । **नो नित्यं भूतवृन्दं** पूर्वोक्तं **भवति नरपते शक्रजालं यथैव**, दृष्टनष्टमिति न्यायात् ॥ ४७ ॥

नित्यानित्यं च दृष्ट्वा तदपि जडधियां चित्तशुद्धयर्थहेतो-
र्वक्तव्यं साधनं वै न हि हृदयगतः साध्यते कश्चिदत्र ।
यत्साध्यं साधकः स भ्रममिति सकलं साधनं वज्रिणो यत्
तस्माद् राजन् स्वचित्तं व्यपगतकलुषं मण्डलेशं प्रकुर्यात् ॥४८॥

१. च. मण्डले । २. क. वेद्या । ३. ख. ग. च. 'ना' नास्ति । ४. च. कल्पिते । ५. क. ख. छ. 'ते' नास्ति । ६. च. देवाः । ७. ग. च. भो. मष्टविधा । ८. क. 'वस्तु''''जातिः' नास्ति । ९. च. 'इह ख इति' नास्ति । १०. ग. खवज्र । ११. भो. 'धातु' नास्ति । १२. क. ख. छ. भगवतो ।

एवं **नित्यं** महाशून्यं **दृष्ट्वा** विचार्य वाऽनित्यं परमाणुसमागमं च वियोगं च [1]तेषां दृष्ट्वोभयोः साधनं न स्याद् बुद्धत्वाय। **तदपि जडधियां** बालानामवतारणाय **चितशुद्धयर्थहेतोर्वक्तव्यं साधनं** त्वया हे नरपते सुचन्द्र! परमार्थतः पुनर्न **हि हृदयगतः साध्यते कश्चिदत्र** नित्यानित्यपदार्थः। अतो बुद्धत्वाय **यत् साध्यं साधकः स** एवे- [267b]ति नियमः। इह यत्कल्पना साधनं तद् **भ्रममिति। सकलं साधनं वज्रिणो यत् तस्माद् राजन्! स्वचित्तं व्यपगतकलुषं** कल्पना[2]रहितं **मण्डलेशं कुर्यादिति** नियमः ॥ ४८ ॥

इदानीमाधाराधेय उच्यते—

श्रीवज्री चित्तवज्रं भवति नरपते मण्डलं कायवज्रं
वाग्वज्रं देवतानामलिकलिकुलजं चन्द्रमिन्द्वर्कमूर्ध्नि।
कन्दं नालं त्वकारो दलमपि च तथा केशराण्यप्युकारो
मध्ये श्रीकर्णिका च द्विविधपथगतौ चन्द्रसूर्यौ मकारः ॥४९॥

श्रीत्यादिना[3]। [4]कायवाक्चित्तमण्डले **श्रीवज्री** नायक**श्चित्तवज्रं भवति। नरपते! मण्डलं कायवज्रं** कायवाक्चित्तलक्षणम्। **वाग्वज्रं देवताना**[5]**मलिकलिकुलजं चक्रमिन्द्वर्कमूर्ध्नि**। एवं वाक्कायमण्डलेऽपि वाग्वज्रं देवतागणम्। एवं त्रिविधं चित्तं कायाकारेण [6]मण्डलाकारेण, कायस्त्रिविधो वागपि [7]त्रिविधा प्रत्याहारेणेति सर्वत्र नियमः। अत्र कमलानां **कन्दं नालं** च **अकारेणोद्भूतम्, दलानि केशराणि** च **उकारेण** संभूतानि। [8]**मध्ये कर्णिका चन्द्रासनं मकारेण सूर्यासनं** वा रकारेण[9]। एवं ॐकारः प्रणवः। हृदयमुच्यते कमलमिति। प्रथमदेवताकायसंस्थाननिष्पत्तिर्गर्भजानामिह जन्मनीति नियमः। एवं पञ्चज्ञानात्मकं कालचक्रं भगवन्तं वज्रसत्त्वमुकुटिनं ध्यात्वा सुविशुद्धधर्मधात्वात्मकम्, ततः षड्गतिस्थान् सर्वसत्त्वानाकृष्य तस्मिन्नेव मण्डले प्रविष्टान् विभाव्य ततो वैरोचनादींस्तथागतान् स्वहृदये प्रवेश्य सधातून् [10]बोधिचित्त- द्रवापन्नान् स्वगुह्यकुलिशेनोत्सृज्य तेन बोधिचित्तेन तान् सर्वसत्त्वानभिषिक्तान् ध्यायात्। ततस्तान् बोधिचित्तरश्मिभिः स्पृष्टान् सर्वसत्त्वान् त्रिमुखान् [11]नानामुखान् नाना[12]वर्णान् देवतास्वरूपान् प्रज्ञोपायात्मकान् परमानन्द[13]सुखपूर्णान् भावयेत्। ततस्तेषां [14]स्वकायान् मण्डलचक्रस्वभावीभूतान् झटिति पश्येत्। तत्र मन्त्रबीजानि नानाव्यञ्जनसंयुक्तानि स्वरसहितानि। अत्र सर्वव्यञ्जनसमूहः[15] क्षकारः। तेन ज्ञाप- [268a]केन यस्य यत् प्रथमं नाम तस्य व्यञ्जनं तेन तत्सर्वं कर्तव्यम्। अत्र क्ष क्षि

१. ग. भो. 'तेषां' नास्ति। २. क. 'रहितं' नास्ति। ३. च. 'ना' नास्ति। ४. च 'इह' इत्यधिकम्। ५. भो. आलिकालि। ६ ग. 'मण्डलाकारेण' नास्ति। ७. ग. त्रिधा। ८. क. ख. ग. छ. मध्य। ९. ग. गकारेण। १०. ग. 'बोधि''' पन्नान्' नास्ति। ११. ग. 'नानामुखान्' नास्ति। १२. ग. वस्त्रान्। १३. क. ख. च. छ. सुखापूर्णान्। १४. ख. स्वकी। १५. क. ख. छ. समूह।

क्षृ क्षु क्ष्लृ इति विज्ञानादिपञ्चतथागताः। तथा क्षा क्षो क्षॄ क्षू क्ष्लॄ इति आकाशादिपञ्च- धातवः। एवं क्ष क्षे क्षर् क्षो क्षल् क्षं इति श्रोत्रादयो बोधिसत्त्वाः षट्। तथा क्षा क्षै क्षार् क्षौ क्षाल् क्षाः इति षड् विषयाः। [1]क्ष्लृ क्ष्य क्षृ क्ष्व क्ष्ल[2] इति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि। [3]अत्र क्रोधाः [4]क्ष्लॄ क्ष्या क्षॄा क्ष्वा क्ष्ला[5] इति पञ्चकर्मेन्द्रियविषयाः। एवं पञ्चस्कन्धाः, पञ्चधातवः, द्वादशायतनानि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियविषयाः। एवं द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणीभूतान् मण्डलचक्राकारान् सर्वसत्त्वान् भावयेद् झटिति।

अथ विस्तरतः प्रत्येकैक[6]बीजेन देवीगुह्ये प्रत्येकदेवतां[7] निष्पाद्य उत्सृजेत्— तेषामिति। तथा **मूलतन्त्रे** भगवानाह—

बुद्धक्षेत्रेषु ये सत्त्वास्त्रिकायसमयामृतैः।
जाता वज्रश्रिया स्पृष्टाः सर्वे तत्र तथागताः ॥

अभूवन्निह सम्बुद्धास्त्रिवज्रज्ञानलाभिनः।
भावयित्वा ततस्तांश्च स्वस्वक्षेत्रे प्रवेशयेत् ॥ इति।

अभिषेकदानं सत्त्वानां कृपार्थमिति नियमः।

इदानीं भवाङ्गे दशमे प्राणोत्सर्जनाय वाग्वज्रोत्पादनाय [8]प्रसूतिरुच्यते। बाह्येऽपि द्वितीयमात्रानिष्पत्तिः[9]। तत्र नाभौ होकार उष्णीषेऽपि, अनयोर्द्वयोर्मध्ये विदर्भितं ललाटे कायवज्रम् ॐ, कण्ठे वाग्वज्रम् आः, हृदये चित्तवज्रं हूँ इति त्र्यक्षरं कायवाक्चित्त- लक्षणं त्रिनाडी[10]जनकाय नाभौ होकारं ज्ञानरश्मिभिर्द्रुतं समसुखकमले कायवाक्चित्त- वज्रं प्रज्ञारागद्रुतं तत् शशिनमिव विभुं वज्रिणम्। चकारात् प्रज्ञया सार्धं वीक्ष्य, अध्यात्मनि पञ्चमण्डलवाहार्थं सर्वबाह्यविषयोपभोगार्थं बाह्ये देवतानिष्पत्तौ सकलजगदर्थकरणाय मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षास्वभाविन्यस्तारामामकीपाण्डरालोचनागीतं कुर्वन्ति देव्यः। त्वमपि भगवन् सर्वसत्त्वोपकारी अस्मान् रक्षाहि वज्रिन् त्रिदशनरगुरो कामकामार्थि- नीश्चेति तारा मैत्रीरूपेण चित्तवज्रं [11]चोदयति, मामकी करुणारूपेण[12] कायवज्रम्, पाण्डरा मुदितामूर्त्या वाग्वज्रम्, लोचना उपेक्षामूर्त्या ज्ञानवज्रं चोदयति। एवं चित्तकायवाग्ज्ञानात्मको भगवान् तासां गीतं श्रुत्वा स वज्री त्रिभुवनसकलं [13]कामरूपाख्यलक्षणं दृष्ट्वा इन्द्रजालोपमं वै तत्र चन्द्रद्रवे हूँकारं नीलवर्णं दृष्ट्वा स्फुरदमलकरं तेन परिणतं वज्रं तेन स्फारितमिति निष्पन्नमात्मानं योगी भगवान् [14]वज्रालङ्कारयुक्तो जिनपतिमुकुटः प्रज्ञयालिङ्गितश्च पूर्ववत्। पुनः प्रज्ञोपायात्मकेन

१. च. 'तथा' इत्यधिकम्। २. क. ख. छ. क्षू। ३. ग. च. भो. तथा। ४. क. ख. च. छ. क्ष्ला। ५. क. छ. क्षा। ६. क ख. 'बीजेन'''' इन्द्रजालो' नास्ति। ७. भो. 'देवतां' नास्ति। ८. भो. bTsaḥ Ba (प्रसूति)। ९. भो. bsKyed Pa (उत्पत्तिः)। १०. ग. कनकायां, छ. कार्य। ११. भो 'चोदयति' नास्ति। १२. च. मूर्त्या। १३. च. रूप्यारूप्य। १४. क. ख. सर्वालङ्कार।

चित्तकायवाग्धर्मेण मण्डलो[1]त्सर्जनं कुर्याज्जातस्य [2]बालकस्य [3]प्रबोधाक्रन्दनादिति। इह मन्त्रनये जरायुजोत्पत्तिक्रमेण नवमासैर्बालकस्य[4] कायनिष्पत्तिः। देवतानां पञ्चाकाराभिसंबोधिलक्षणा कायनिष्पत्तिः। सेवाङ्गं प्रथमम्। अत्र देवताहङ्काराय मन्त्रपदम् ॐ सुविशुद्धधर्मधा[5]त्वात्मकोऽहमित्युच्चार्य ततो **[6]वागु**त्पादाय द्वितीयं सेवाङ्गं भावयेद् योगी ॥ ४९ ॥

इति [7]मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां [8]साधनापटले
उत्पत्तिक्रमेण कायनिष्पत्तिमहोद्देशो द्वितीयः।

(३) प्राणदेवतोत्पादमहोद्देशः

होःकाराद्यन्तगर्भे समसुखफलदे कायवाक्चित्तवज्रं
प्रज्ञारागद्रुतं तच्छशिनमिव विभुं वज्रिणं [9]चेक्षयित्वा।
गीतं कुर्वन्ति देव्यस्त्वमपि हि भगवन् सर्वसत्त्वोपकारी
अस्मान् रक्षा हि वज्रिन् त्रिदशनरगुरो कामकामार्थिनीश्च ॥५०॥
[268b]

वाग्वज्रं दशमण्डलात्मकमिह प्राणस्य संचारतः
पञ्चस्थानगतं स्वरप्रकृतितः शून्यादिभेदात् सदा।
सत्त्वानामधिमुक्तितो भवभयात् सन्मार्गसंदेशकम्
उत्पादोऽस्य वितन्यते निगदितो मञ्जुश्रिया टीकया ॥

होःकारेत्यादि। इह यथा मर्त्ये गर्भजानां प्राणवायूत्पादाय स्वमण्डलवाहिनः पृथिव्यादिधातवो विज्ञानं चोदयन्ति जाग्रदवस्थार्थं स्वप्नावस्थां प्रविष्टस्य, तथा लोचनादिदेव्यो वेदितव्याः सत्त्वार्थायेति। अत्र नाभाववधूतीमार्गे उष्णीषे च **होःकारमाद्यन्ते** देवतायां विन्यस्य ततो ललाटे कायवज्रं ॐ, कण्ठे वाग्वज्रम् आः, हृदये चित्तवज्रं हूँ—एवं **कायवाक्चित्त**[10]समुद्भूतं चन्द्रसूर्यराहुलक्षणं कालाग्निना अध ऊर्ध्वं प्रज्ञारश्मिभि[11]र्द्रुतं **प्रज्ञारागद्रुतम्**िति, प्रज्ञा चण्डाली तया द्रुतम्। [12]अत्र द्विधा चोदना—एका प्राणनिष्पत्तये, द्वितीया षोडशवर्षावधेः सुखनिष्पत्तये। तेन **शशिनमिव द्रुतं वज्रिणं** [13]**चेक्षयित्वा** चकारात् प्रज्ञामपि, सप्रज्ञमवधूतीशङ्खिन्याश्रितं चित्तं ज्ञानवज्रं

१. च. लस्यो। २. ग. च. भो. बालस्य। ३. ग. प्रतिबो, च. बोधाश्चा। ४. ग. च. भो. लस्य। ५. भो. स्वाभावात्मको। ६. भो. gSuṅ rDo-rJe (वाग्वज्रम्)। ७. ग. श्रीमूल। ८. भो. 'साधनपटले' नास्ति। ९. मु. वीक्षयित्वा। १०. च. भो. संभूतं। ११. भो. Su Ba सर्वत्र 'द्रुतम्' इत्यत्र 'द्रवम्' पाठः। १२. ग. तत्र। १३. छ. चक्षुयित्वा।

चेति। **गीतं कुर्वन्ति देव्यस्त्वमपि हि भगवन् सर्वसत्त्वोपकारी अस्मान्**[1] **रक्षा हि**[2] **वज्रिन् त्रिदशनरगुरो** [3]**कामकामार्थिनीश्चे**ति। अत्र मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षास्वभाविन्यस्तारामामकीपाण्डरालोचनादेव्यश्चोदयन्ति [4]पञ्चमण्डलवाहार्थं बालानां भगवतो जगदर्थायेति देवीवज्रगीतिकाचोदनानियमः। तथा **मूलतन्त्रे**—

लोचनाऽहं जगन्माता निष्यन्दे योगिनां स्थिता।
मे मण्डलस्वभावेन कालचक्रोत्थ काम माम् ॥

मामकी भगिनी चाहं विपाके योगिनां स्थिता।
मे मण्डलस्वभावेन कालचक्रोत्थ काम माम् ॥

पाण्डरा दुहिता चाहं पुरुषे योगिनां स्थिता।
मे मण्डलस्वभावेन कालचक्रोत्थ काम माम् ॥

तारिणी भागिनेयाहं वैमल्ये योगिनां स्थिता।
मे मण्डलस्वभावेन कालचक्रोत्थ काम माम् ॥

शून्यमण्डलमादाय कायवाक्चित्तमण्डलम्।
स्फारयस्व जगन्नाथ जगदुद्धरणाशय ॥ इति।

एवं **समसुखफलदे** नाभिगुह्यादिकमले मूर्च्छागतं विज्ञानं प्रबोधयन्ति बालानामिव देवता[5]कायस्थमिति नीतार्थः ॥५०॥

इदानीं देवतोत्थानमुच्यते—

गीतं श्रुत्वा स वज्री त्रिभुवनसकलं त्विन्द्रजालोपमं वै
दृष्ट्वोत्पत्तिं करोति स्फुरदमलकरं स्फारयित्वा स्वचिह्नम्।
वज्रालङ्का[269a]रयुक्तो जिनपतिमुकुटः प्रज्ञयालिङ्गितश्च
प्रज्ञोपायेन राजन् पुनरपि सकलं मण्डलोत्सर्जनं च ॥५१॥

गीतं श्रुत्वेत्यादिना[6]। अत्र शून्यतायां प्रविष्टो भगवान् गीतिकाभिः प्रबोधितः सन् मायोपमं सकलं जगद् **दृष्ट्वा** सत्त्वार्थाय भूय **उत्पत्तिं करोति स्फुरदमलकरं स्फारयित्वा स्वचिह्नं** पञ्चशूकवज्रं हूँकारपरिणतम्। तेन **वज्रालङ्कारयुक्तो जिनपतिमुकुटो**ऽक्षोभ्यमुकुटः **प्रज्ञालिङ्गितो** वै शून्यमण्डलवाहिन्या वज्रधात्वीश्वर्या विश्वमात्रा। तद्हृदये बालानामिव **प्रज्ञोपायेन**। **राजन्नि**ति सम्बो[7]धनम्। प्रज्ञोपायसमापत्त्या गगनस्थान् स्कन्धधात्वायतनादिस्वभावेन समयमण्डलार्थं बुद्धान् पञ्चमण्डलस्वभावान्

१. ग. च. अस्माद्। २. ग. भिव। ३. ग. काय। ४. भो. 'पञ्च' नास्ति। ५. ग. ताकारकायस्थ। ६. ग. 'ना' नास्ति। ७. ग. धनार्थम्।

स्वकाये प्रवेश्य प्रज्ञापद्मे प्रत्येकाक्षर[1]मन्त्रस्वभावान् ततः पश्चादुत्सृजेत् पूर्ववत् वक्त्रभुज-चिह्नसंस्थानलक्षणान् ज्ञानचित्तवाक्कायमण्डलेषु। एवं **मण्डलोत्सर्जनं च**। चकारात् पूर्ववदिति। बालस्य [2]गर्भान्निर्गम[3]काले प्राणादिवायूनां दशानामुत्पादः। शिष्याणां मण्डलप्रवेशकाले पुष्पक्षेपः। नग्नो जरायुचर्माम्बरधरो बाल इति विशुद्धया देवतायाः [4]समयमण्डलनिष्पत्तिः। तत इन्द्रियप्रबोधो ज्ञानसत्त्वप्रवेशो बालस्य यथा तथा देवतायां[5] भावनीया[6] योगिभिर्विंशत्याकारसंबोधिलक्षणा। एवं पञ्चाकाराभिसंबोधौ [7]सेवाङ्गं कायनिष्पत्तौ, विंशत्याकारसंबोधावुपसाधनं वाङ्निष्पत्तौ, एवमुत्पत्तिक्रमो द्विधा–एको जरायुजः, द्वितीयोऽण्डजः। योऽण्डजः स लोकधातूत्पादः। ब्रह्माण्डजमिति भाषया। यो जरायुजः स मनुष्योत्पादः। यो झटितः स उपपादुकोत्पादः। [8]सत्त्वानां स एकोत्पत्तिक्रमः। झटिताकारेण सत्त्वाशयेनोक्तो भगवता [9]उत्पन्नक्रमः पुनः कल्पना-रहितः।

> गगनोद्भवः स्वयंभूः प्रज्ञाज्ञानानलो महान्।
> वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः॥ (ना० सं० ६. २०-२१)

T 347

इत्यादिपञ्चाकाराभिसम्बोधिनाऽवगन्तव्यः॥ ५१॥

इदानीं ज्ञानचक्राकर्षणमुच्यते—

> नीलाभं भीमकायं प्रहसितवदनं चार्धदंष्ट्राकरालं
> गर्जन्तं सूर्यनेत्रं द्व्यधिकजिनकरं वेदवक्त्रं द्विपादम्।
> प्रज्ञोपायो[269b]द्भवन्तं प्रहरणसहितं प्रेषयेद् वज्रवेगं
> अष्टाङ्घ्रिस्यन्दनस्थं जिनरिपुमथनं ज्ञानचक्रस्य हेतोः॥५२॥

नीलाभमित्यादिना। इह [10]जातबालस्य मध्यमाप्राणनिर्गमो नीलाभः, तस्य निर्गमेने(णे)न्द्रियाणां प्रबोधो बाह्यविषयाणां षड्विज्ञानानां प्रवृत्तिरध्यात्मनि। अतो बाह्यदेवतानिष्पत्तौ **नीलाभं** प्राणं मध्यमाविशुद्धया वज्रवेगं **भीमकायं प्रहसितवदनं चार्धदंष्ट्राकरालं गर्जन्तं** द्वादशनेत्रं **द्व्यधिकजिनकरं** षड्विंशतिभुजं। चतुर्मुखं द्विचरणं **प्रज्ञोपायो**[11]**द्भवन्तं** भर्तृवत् **प्रहरणसहितं** गजचर्माम्बरधरं पञ्चमुद्राविभूषितम् अक्षोभ्य-मुकुटिनं कपालमुण्डमालाधारिणं सर्पाभरणं [12]हूंकारवज्रनिर्माणं तं **वज्रवेगं** [13]**प्रेषयेद्**

---

१. क. मण्ड। २. च. गर्भाद्विनि। ३. क. ख. ग. च. छ. कालः। ४. क. समल। ५. क. ख ग. छ. ताया। ६. च. नीयो। ७. क. शवाङ्गं, छ. सर्वाङ्गं। ८. भो. 'सत्त्वानां' नास्ति। ९. भो. [illegible] १०. [illegible] जातस्य। ११. ग. भो. द्भूतं, च. छ. भवं तं। १२. भो हुं। १३. च. प्रैष, भो. bsKul Bar (प्रेर)।

आलयविज्ञानं[1] प्रवृत्तिविज्ञानमिति। **अष्टाङ्घ्रिस्यन्दनस्थमिति**। शब्दस्पर्शरसरूपगन्ध-सत्त्वरजस्तमोगुणस्थं **जिनरिपुमथनं** मारक्लेशमथनम्। **ज्ञानचक्रस्य हेतोः** पञ्चविषय-ज्ञाननिवृत्तय इति॥ ५२॥

> नाभौ हत्वाङ्कुशेन स्फुरदमलकरं ज्ञानचक्रेश्वरं वै
> हस्तेष्वेवं प्रबद्ध्वा सकुलिशफणिना भीषयित्वा स्वशस्त्रैः।
> साध्यं कृत्वा समस्तं व्रजति पुनरसौ चालयित्वा सुचक्रं
> वेशं बन्धं च तोषं समरसकरणं जम्भकादिः करोति॥५३॥

ततो नाभिकमलाद् [2]बाह्यनिर्गतः प्राणो बाह्यभावानाकृष्य पुनर्निवर्तते। [3]अतो विशुद्धया **हत्वा नाभौ** वज्राङ्कुशेन **स्फुरदमलकरं ज्ञानचक्रेश्वरं वै हस्तेषु** चतुर्विंशतिषु बन्धयित्वा **सकुलिश**नागपाशै**र्भीषयित्वा स्वशस्त्रैः**। एवं ज्ञानचक्रं **साध्यं कृत्वा व्रजति पुनः** स्वस्थानं **चालयित्वा समस्तं** भावलक्षणं विश्व**चक्र**मिति। ततो [4]**वेशं जम्भकः करोति** चक्षुरिन्द्रियजनितमालयविज्ञानम्। **बन्धं** कायेन्द्रियजनितं कायविज्ञानं स्तम्भकः करोति। [5]**तोषं** जिह्वेन्द्रियजनितं जिह्वाविज्ञानं मानकः करोति। **समरस-करणं** [270a] घ्राणेन्द्रियजनितं घ्राणविज्ञानमतिबलः करोति। एवं पञ्चप्रकारं जःकारेणाकृष्टम्, हूंकारेण प्रविष्टम्, वंकारेण बद्धम्, होःकारेण तोषितम्, हीःकारेण समरसीकृतम्। वज्राङ्कुशेन वज्रेण वज्रपाशेन वज्रघण्टया वज्रदण्डेनेति। एवं ज्ञानचक्रं सम्पूज्य पूर्ववत् समयचक्रं समरसीभूतं भावयेदिति नियमः॥ ५३॥

इदानीमुत्पत्तिक्रमेण प्रत्येकस्थाने ज्ञानदेवतानां समयदेवताभिः सार्धमेकत्व-मुच्यते—

> चित्तं निष्पत्तियोगे भवति सगगनं गर्भपद्मेऽग्निमूर्ध्नि
> पूर्वे श्रीकृष्णदीप्ता वरकमलदले दक्षिणे रक्तदीप्ता।
> वामे श्रीश्वेतदीप्ता भवति कुलवशात् पश्चिमे पीतदीप्ता
> धूमाग्नेय्यां मरीचिर्दनुजदिशि तथा द्योतकेशप्रदेशे॥५४॥

[6]चित्तमित्यादिना। इह [7]**निष्पत्तियोगे** उत्पत्तिक्रमे **भवति सगगनं** वज्रधात्वीश्वर्या सार्धं विज्ञानं [8]**गर्भपद्मे** महासुखे **अग्निमूर्ध्नि** चन्द्रसूर्यराहुकालाग्निमण्डलोपरि

---

१. भो. rNam Par Śes Pa Las (विज्ञानात्)। २. ख. ग. च. छ. बाह्ये। ३. [illegible] ४. भो. gŚug Pa (प्रवेशं)। ५. ग. च. तोयं। ६. भो. sKyed Pa (उत्पत्ति)। ७. भो. sKyed Pa (उत्पत्ति)। ८. क. गर्भे।

समयसत्त्वेन ज्ञानसत्त्वस्य समरसत्वम्। एवं **पूर्वपत्रे कृष्णदीप्ता** समरसा। **वरकमलदले दक्षिणे रक्तदीप्ता,** उत्तरे **श्वेतदीप्ता, पश्चिमे पीतदीप्ता भवति कुलवशाद्** ज्ञान[1]चक्रवशात्। एवमाग्नेय्यां **धूमा।** नैर्ऋत्ये **मरीचिः। खद्योत ईशे**॥ ५४॥

वायव्यां श्रीप्रदीपा मणिरपि च तरुर्धर्मगण्डी च शङ्खो
वह्नौ वायौ च दैत्ये हरदिशि च तथाभ्यन्तरे कोणभागे।
पूर्वे संस्कारपृथ्वी खलु कमलगतौ दक्षिणे वेदनाम्भो
वामे संज्ञा च वह्निर्भवति स पवनं रूपमेवापरे च॥५५॥

[2]**वायव्यां प्रदीपा** समरसा इति। एवमग्निकोणे चिन्ता**मणिः, नैर्ऋत्ये धर्मगण्डी,** ईशाने धर्मशङ्खः, वायव्ये कल्पवृक्ष इति। वज्रावलीपद्मदलयोः **कोणभा[270b]गेऽभ्यन्तरे।** एवं पूर्वकमलासने कर्णिकायां सूर्ये **संस्कारपृथिव्यौ** द्वौ समरसौ समयसत्त्वाभ्यां सह। **दक्षिणे वेदना** तोयधातुः, उत्तरे **संज्ञा** तेजोधातुः, पश्चिमे **सपवनं रूपं** समरसं [3]भवतीति। अत्रोपाया नायकाः॥ ५५॥

आग्नेय्यां वायुरूपे भवति दनुपतौ वह्निसंज्ञा द्वयं च
ईशेऽम्भो वेदना वै मरुति च धरणी स्कन्धसंस्कारयुक्ता।
देवी बुद्धान्तरालेष्वमृतरसघटाश्चाष्टकक्षप्रदेशे
घ्राणो गन्धश्च पूर्वे पुनरपरपुटे दक्षिणे नेत्ररूपे॥५६॥

एवमाग्नेय्यां वायुरूपे समरसे भवतः, नैर्ऋत्ये तेजोधातुसंज्ञे, **ईशाने** तोयधातु**वेदने,** वायव्ये पृथिवीधातु**संस्कारौ** समरसाविति कोणदेव्यो नायिकाः। एवं **देवीबुद्धानामन्तरालेष्वमृतरसघटा अष्टकक्षप्रदेशे** समरसा भवन्तीति नियमः। तथागतपुटे ततो बोधिसत्त्व**पुटे घ्राणो गन्धश्च पूर्व**कमले समरसः। **दक्षिणे नेत्रं रूपविषयः**॥५६॥

वामे जिह्वारसः स्याद् भवति हि वरुणे स्पर्शकायस्तथैव
पाताले शब्दकर्णौ भवति कुलवशाद् दक्षिणे द्वारवामे।
चित्तं वै धर्मधातुर्भवति सगगनं सर्वतो द्वारवामे
आदौ चोपायषट्कं भवति जिनवशान्मण्डलस्याधिदेवम्॥५७॥

१. ग. 'चक्र' नास्ति, भो. Sal (वक्त्र)। २. ग. [illegible] ३. [illegible] 'इति' नास्ति।

उत्तरे **जिह्वारसः, वरुणे** [1]**स्पर्शकायेन्द्रियम्, पाताले शब्दकर्णौ, दक्षिणद्वारपूर्वे वामे चित्तं वै धर्मधातुर्भवति सगगनं** पूर्वद्वारस्य **वामे।** एवमा**दौ चोपायषट्कं भवति।** तथागतकुल**वशाद् मण्डलस्याधिदेवम्**॥५७॥

पश्चात् प्रज्ञादिषट्कं प्रकटमधिपतिः स्वस्वपद्मासने च
पूर्वद्वारे प्रचण्डस्त्वसिधृगतिबलः स्तम्भकी तस्य मुद्रा।
सव्ये जम्भश्च मानी भवति च धनदे मानको जम्भकी च
स्तम्भश्चानन्तवीर्या भवति च वरुणे द्वारमध्यस्थपद्मे॥५८॥

पश्चात् प्रज्ञादिषट्कं धर्मधात्वादिकमिति। [2]अत्राग्नेय्यां स्पर्शवज्रा कायेन्द्रियम्, नैर्ऋत्ये रसवज्रा जिह्वा, ईशाने रूपवज्रा चक्षुः, वायव्ये गन्धवज्रा घ्राणः, पाताले[271a] शब्दवज्रा श्रोत्रम्। उत्तरद्वार[3]वामे धर्मधातुः, मनः पश्चिमद्वारवामे इति द्वादशायतनानि। बोधिसत्त्वपुटे समरसीकरणं ज्ञानसत्त्वस्य [4]**स्वस्वपद्मासने** चन्द्रमूर्ध्नि। इदानीं क्रोधराजानां समरसत्वमुच्यते—**पूर्वद्वारे प्रचण्डस्त्वसिधृगतिबलः स्तम्भकी तस्य मुद्रा, सव्यद्वारे जम्भकश्च मानी** मुद्रा, उत्तरद्वारे **मानको** [5]**जम्भकी** मुद्रा। पश्चिमद्वारे [6]**स्तम्भोऽनन्तवीर्या** तस्य मुद्रा **भवति** समरसा। **द्वारमध्यस्थपद्म** इति चित्तमण्डले सम[7]रसकरणम्। नाभिचक्रे हृत्कमले जातकस्येति नियमः॥५८॥

मारीची नीलदण्डोऽचल इति भृकुटी शृङ्खलाऽनन्तवीर्यष्टक्किश्चुन्दारथस्था सुरधनदपरे दक्षिणे द्वारमध्ये।
सुम्भो रौद्रेक्षणाद्यो भवति नभसि चोष्णीष एवातिनीला
पूर्वद्वारा परोर्ध्वे भवति च नियतं स्यन्दनश्च द्वयोश्च॥५९॥

एवं क्रोधप्रासङ्गिकेन **मारीची नीलदण्डो** बाह्यकायमण्डले द्वारपालः पूर्वे समरसः, **दक्षिणे टक्किश्चुन्दारथस्था,** उत्तरे**ऽचलो भृकुटी,** पश्चिमे **शृङ्खलाऽनन्तवीर्यो** महाबल इति समरसः। **सुम्भराजो रौद्राक्षो** पाताले। **अतिनीला उष्णीष ऊर्ध्वे** रजोमण्डले पूर्वद्वारोपरि उष्णीषः। पश्चिमे सुम्भ इति **स्यन्दनश्च द्वयोश्चेति** नियमः। इन्द्रियभावनायां पुनरध ऊर्ध्वेऽपि स्यन्दन इति गर्भमण्डले मुखेन्द्रियगुदोष्णीषद्वाराणि। इन्द्रियकायेमिति मूत्रशुक्रद्वारम्। [8]बाह्ये कायमण्डले घ्राणचक्षुर्जिह्वाकायश्रोत्राणीति। बालकाये यथा तथा मण्डले [9]इति नियमः॥ ५९॥

१. च. स्पर्शः। २. ग. च. तत्रा। ३. ग. च. भो. वामे आकाशे। ४. ग. 'स्व' नास्ति। ५. क. ख. च. छ. जम्भी। ६. क. ख. ग. छ. स्तम्भको। ७. ग. रसी। ८. [illegible] ९. क. ग. घ. छ. 'इति' नास्ति।

वाग्जाते मण्डले वै भवति वसुदिशास्त्रासनं भूतजानां
चामुण्डेन्द्रश्च पूर्वे भवति शिखिनि वै वैष्णवी वेदवक्त्रा ।
यामे रुद्रो वराही भवति दनुपतौ षण्मुखी विघ्ननाथः
[1]बाह्येन्द्रद्वारसव्ये भवति दनुपतौ पश्चिमे वायवीन्द्रौ ॥६०॥
[271b]

[2]वायौ ब्रह्मा च विद्युद् भवति हि धनदे सागरः शूकरी च
कौमारीशे गणेन्द्रः खलु धनदयमद्वारयोर्वामभागे ।
रुद्रः कालश्च विष्णुर्धनद इति सुरे चापरे द्वारवामे
तेषां मुद्रा प्रसिद्धा भवति गिरिसुता यामिनी श्रीधनेशा ॥६१॥

यक्षे रौद्री यमः स्याद् भवति पशुपतौ षण्मुखश्चैव लक्ष्मी-
र्बाह्येन्द्रद्वारसव्ये भवति दनुपतौ राक्षसी तस्य मुद्रा ।
वह्नौ वायुः प्रचण्डा हरिरपि वरुणा दक्षिणद्वारसव्ये
लक्ष्मीः श्रीषण्मुखो वै भवति दनुपतौ पश्चिमे वायवीन्द्रौ ॥६२॥

बाह्ये नागाः समस्ताः सुरयमधनदे पश्चिमे वेदिकायां
पद्मः कर्कोटको वै चलवलयगतौ वासुकिः शङ्खपालः ।
वह्निस्थो तोयमूर्ध्नि प्रभवति कुलिकोऽनन्तनागः प्रसिद्ध-
स्तद्वद् भूमण्डलस्थो भवति कुलवशात् तक्षको वै महाब्जः ॥६३॥

तेषां प्रज्ञाः प्रचण्डाश्चितिभुवनगताः श्वानवक्त्रादयश्च
तासां पद्माद्युपायास्त्वपरकुलवशात् सत्सुखार्थं भवन्ति ।
श्वानास्या पूर्वचक्रे चलवलयगता शूलभेदे श्मशाने
याम्ये वै शूकरास्या खलु शवदहने चोत्तरे व्याघ्रवक्त्रा ॥६४॥

सक्लिन्ने पूतिगन्धे भवति च वरुणे जम्बुकास्या तथैव
उच्छिष्टे घोरयुद्धे शिखिनि दनुपतौ काकवक्त्रा सगृध्रा ।

---

१. चतुर्थपङ्क्तिस्थाने मुद्रितपुस्तके—'ऐन्द्री दैत्योऽपरे स्यात् खलु युगवदना मारुते विष्णुरेव' इति पाठः । २. मुद्रितपुस्तक एक षष्टितम-द्वाषष्टितमश्लोकयोः क्रमविपर्ययः ।

वायव्ये सर्पदष्टे खगपतिवदना चेश्वरे बालमृत्यौ
चक्रस्थोलूकवक्त्रा महिवलयगतौ चन्द्रसूर्यौ च भाव्यौ ॥६५॥

प्रत्यालीढं हि मातुर्भवति समपदं यत्र देवीगणस्य
प्रत्यालीढं विशाखं दशवसुगणयोर्मण्डलं चासुरीणाम् ।
प्रत्यालीढे स्थितानां खलु भवति समापत्तिरालीढपादो
वैशाखाख्यं विशाखे भवति च नियतं मण्डलं मण्डले च ॥६६॥
[272a]

शेषा वज्रासनस्थाः प्रकटितनियता देवता मण्डले च
देव्यः पद्मासनस्थाः स्वकुलदिशिगताः स्वस्वपद्मेन्दुमूर्ध्नि ।
देवा वज्रासनस्थाः फणिकुलसहिताः स्वस्वदिग्वाहनस्थाः
पत्रे देव्यः सुराणां खलु ललितपदा भूतजानां तथैव ॥६७॥

सव्यैराकुञ्चितैश्च क्षितितलनिहितैः सारितैर्वामपादैः
प्रत्यालीढं पदं तद् भवति नरपते सार्धहस्तद्वयेन ।
आलीढं वामयोगाद् भवति समपदं पादयुग्मे समे च
वैशाखं मण्डलं यद् भवति गुणवशाज्जानुयुग्मप्रसारात् ॥६८॥

किञ्चिज्जान्वर्धवक्त्रे भवति हि ललितं शेषमेवं प्रसिद्धं
ज्ञातव्यं योगिना वै पुनरपि भरते वज्रनृत्यस्य हेतोः ।

एवं वाग्द्वाराणि पञ्च, पञ्चस्थानोच्चारणवशात् । एवमध ऊर्ध्वं शून्यद्वारत्रयम् । शुक्रद्वारं कायकण्ठस्थानलक्षणं वर्जयित्वा द्वादशद्वाराणि त्रिमण्डलेषु । एवं सूर्यलग्नभेदेन द्वादशद्वाराणि, चन्द्रकलाभेदेन पञ्चदश, सर्वसत्त्वानां कायवाक्चित्तधर्मेणेति नियमः । अत्र वाङ्मण्डलादिसमरसत्वं सुबोधं प्रत्यालीढादिपदादिकं च । "वाग्जाते मण्डले वै" (४.६०) इत्यारभ्य "वज्रनृत्यस्य हेतोः" (४.६९) इतिपर्यन्तं सार्धनववृत्तानि सुबोधानीति ॥ ६०-६८½ ॥

T 348

इदानीं कुलमुद्रणं देवतानामुच्यते—

वज्रस्यान्योन्यवज्रो भवति हि मुकुटे पञ्चबुद्धाः कदाचिद्
रूपस्याक्षोभ्य ऊर्ध्वं स्फुटकमलधरस्यैव वैरोचनः स्यात् ॥६९॥

वज्रस्येत्यादिना। इह मण्डले परमादिबुद्धे **वज्रस्यान्योन्यवज्रो भवति हि मुकुटे।** तत्कस्य हेतोः? ज्ञान[1]विज्ञानपरस्परसंयोगादिति। अतो [2]ज्ञानेन विज्ञानं विज्ञानेन ज्ञानम्। उभयोश्चित्तवज्रश्चीवरोष्णोषधारी शिरसि वज्रपर्यङ्कस्थः भूस्पर्शमुद्रया। तथागतोयाश्वासतः पञ्चकुलैर्मुद्रणम्, स्वाभाविककुलस्य प्रतिषेधः, बुद्धानां जनकत्वादिति। अथ ज्ञानविज्ञान[3]धर्मेण **पञ्चबुद्धात्ममुकुटः कदाचित्** क[272b]र्तव्य इति तथागतनियमः। **रूपस्याक्षोभ्य ऊर्ध्वम्**, "चित्तं कायाकारेण" (गु० त०, पृ० ११) इति वचनात्। **स्फुटकमलधरस्यैव वैरोचनः स्यात्**, "कायं वाक्प्रव्याहारेण" (गु० त०, पृ० ११) इति वचनात् ॥ ६९ ॥

रत्नेशस्याब्जधारी प्रवरमणिकरोऽमोघसिद्धेश्च मौलौ
षण्णां मौलिर्जटाख्या भवति गुणवशाच्छेषचक्रस्य चान्यत्।
भूमौ चक्रप्रसूतिर्भवति हि कमलस्योदकेऽग्नौ मणेश्च
वायौ खड्गस्य शून्ये भवति हि कुलिशस्याक्षरे कर्तिकायाः ॥७०॥

रत्नेशस्याब्जधारी, रजोधर्मित्वात्। **प्रवरमणिकरोऽमोघसिद्धे[4]श्च मौलौ**, रक्ततो मांससंभवादिति। **षण्णां मौलिर्जटाख्या भवति गुणवशादिति**। गुणास्तीर्थिकानामव[5]ताराय। ईश्वरवक्त्रविशुद्धया षड्वक्त्राणि, पञ्चवक्त्राणि वा [6]पञ्चब्रह्मलक्षणानि जटा[7]मुकुटधराणि। [8]अत्र सद्यो वैरोचनः, वामदेवोऽमिताभः, अघोरो रत्नसंभवः, तत्पुरुषोऽमोघसिद्धिः, ईशानोऽक्षोभ्यः, कालाग्निर्वज्रसत्त्व इति। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशज्ञानस्वभावाः प्राकृतस्कन्धाः शुद्धस्कन्धैरुष्णीषचीवरधारिभिर्मुद्रिता इति। एवं षण्णां मौलि[9]र्जटाख्या। **शेषचक्रस्य** देवता[10]देवतीनां मौलिर्नानारत्नमयी स्वस्वकुलमुद्रिता यो येन जातस्तेन तस्य मुद्रणं वक्ष्यमाणे। इदानीं चक्रादीनां चिह्नानां प्रसूतिरुच्यते—**भूमा**वित्यादि। इह भूमिबीजेन[11]लृकारेणं **चक्रस्य प्रसूतिः। कमलस्योदक**[12] उकारे। **अग्नौ मणेः** ऋकारे। **वायौ खड्गस्य** इकारे। **शून्ये कुलिशस्य** अकारे। अंकारे [13]ज्ञाने **कर्तिकाया** भवतीति क्रियासम्बन्धः ॥ ७० ॥

वस्त्रं पीयूषपात्रं प्रभवति हि तथादर्शमाला च वीणा
षष्ठो धर्मोदयो वै क्षिति जलहुतभुङ्मारुताकाशशान्तात्।
खेटं कु[273a]न्तं च बाणं परशुडमरुकौ पञ्च चिह्नानि तद्वद्
दण्डः पाशोऽङ्कुशो वै भवति खलु तथा मुद्गरं च त्रिशूलम् ॥७१॥

१. क. ख. छ. 'विज्ञान' नास्ति। २. क. ख. छ. भो. ज्ञानं। ३. च. धर्मणः। ४. क. ख. छ. स्वमौलौ। ५. ख. ग. च. छ. तारणाय। ६. ग. 'पञ्च' नास्ति। ७. ग. मकुट। ८. क. ख. ग. च. अवसव्यो। ९ क. ख. छ. ली जटा। १०. च. देवी। ११. छ. ऋ। १२. छ. दरे। १३. क. ख, भो. ज्ञानकर्तिकाया।

एवं [1]लृकारे **वस्त्रं** भवति। **पीयूषपात्रमू**कारे, **आदर्शमृ**कारे, गन्ध ईकारे, **वीणा** आकारे, **धर्मोदयो** [2]विसर्ग [3]आकार इति पृथिव्यादिगुणभेदेन चिह्नानि। एवं **खेटम्** अल्कारे, **कुन्तमो**कारे, **बाणोऽ**र्कारे, परशुः एकारे, **डमरुको**ऽकारे। इति **पञ्च चिह्नानि** गुणभेदेन। तथा **दण्ड** आल्कारे, **पाश** औकारे, **अङ्कुश** आर्कारे, **मुद्गर** ऐकारे, **त्रिशूलमा**कारे इति पञ्चचिह्नानि स्वरवृद्धया ॥ ७१ ॥

कोदण्डश्चोत्पलं वै पुनरपि च तथा वक्त्रखट्वाङ्गघण्टा
एवं वै शृङ्खलाद्यं जलचरचषकं द्वीपिचर्मेभचर्म।
शेषाण्यत्रोपचिह्नान्यवनिजलहुताशानिलाकाशजानि
ज्ञातव्यान्येव तानि प्रकृतिगुणवशाद् देवतादेवतीनाम् ॥७२॥

[4]**कोदण्डो** लकारेण, **उत्पलं** वकारेण, [5]**वक्त्रं** रकारेण, **खट्वाङ्गं** यकारेण, **घण्टा** हकारेण, **एवं वै शृङ्खला** लाकारेण, शङ्खो वाकारेण, कपालं राकारेण, **द्वीपिचर्म** याकारेण, दन्तिचर्मं हाकारेणेति, दीर्घैर्यणादेशैरिति द्वात्रिंशच्चिह्नानां स्वरनियमः। **शेषाण्यत्रोपचिह्नान्यवनिजलहुताशानिलाकाशजानि ज्ञातव्यान्येव**[6] **तानि प्रकृतिगुणवशाद देवतादेवतीनामिति**। सर्वेषां चर्चिकादीनां वाय्वादिभेदेन चिह्नानि वेदितव्यानि ॥ ७२ ॥

लाद्यास्त्रिंशत् स्वरा ये क्षितिजलहुतभुङ्मारुताकाशजाता-
श्चिह्नानां ते स्वमन्त्राः क्रमपरिरचिता ह्रस्वदीर्घप्रभेदैः।
चक्रादीनां समस्ताः खलु कमलगताश्चन्द्रसूर्यासनस्थाः
षष्ठं यत्रैव चिह्नं भवति गुणवशात् तत्र चानाहतं स्यात् ॥७३॥
[273b]

अत्रोक्ता [7]**लाद्यास्त्रिंशत् स्वरा ये क्षितिजलहुतभुङ्मारुताकाशजाताः, चिह्नानां ते स्वमन्त्राः क्रमपरिरचिता** [8]**ह्रस्वदीर्घप्रभेदैः। चक्रादीनां समस्ताः खलु कमलगताश्चन्द्रसूर्यासनस्थाः। षष्ठं यत्रैव चिह्नं भवति गुणवशात् तत्र चानाहतं स्यात्।** एवं बीजेन चिह्नोत्पादः, [9]चिह्नेन देवतोत्पादः [10]सर्वत्रावगन्तव्यो योगिनेति तन्त्रनियमः ॥ ७३ ॥

१. क. 'लृ' नास्ति, छ. ऋ। २. ग. च. सर्गे। ३. भो. अः। ४. भो. De bŚin Du (तथा) इत्यधिकः पाठः। ५. भो. mGo Boḥo (शिरं)। ६. क. ख. छ. व्यानि प्रकृति। ७. भो. Lṛ La Sogs Pa (लृ-आदयः)। ८. च. दीर्घह्रस्व। ९. क. ख. छ. 'चिह्नेन देवतोत्पादः' नास्ति। १०. च. सदैवाव।

इदानीं वज्रसत्त्वादीनां जातिबीजाक्षराण्युच्यन्ते—

नादः श्रीवज्रसत्त्वो भवति नरपते चित्तवज्रस्त्वकारो
ह्रस्वेकारश्च खड्गी भवति पुन ऋकारश्च वै रत्नपाणिः ।
ह्रस्वोकारोऽमिताभो भवति पुन लृकारोऽत्र वैरोचनश्च
दीर्घं भावप्रभेदैः सुरगणसकलं षड्जिनानां क्रमेण ॥७४॥

नाद इत्यादिना । **नादोऽनाहतः**, **श्रीवज्रसत्त्वो** ज्ञानस्कन्धः । एवं सर्वत्र संज्ञा-संज्ञिसम्बन्धः । एवं **अ अक्षोभ्यः** । **इ अमोघसिद्धिः** । **ऋ रत्नसंभवः** । **उ अमिताभः** । **लृ वैरोचनः** । लॄ लोचना । ऊ मामकी । ॠ पाण्डरा । ई तारा । आ वज्रधात्वीश्वरी ॥७४॥

श्रीमाताऽनाहताख्या भवति खलु तथाकारजाकाशधातुर्
ई ॠ ऊ लॄ क्रमस्था मरुदनलजलक्ष्मासु सर्वा भवन्ति ।
अन्योऽन्यं कायभावौ परमजिनपतिर्विश्वमाता सुखार्थं
अक्षोभ्यः शून्यधातुस्त्वसिकरकमलौ लोचनाकायभावौ ॥७५॥

श्रीमाता प्रज्ञापारमिता **अनाहताख्या** । एवं कायभावभेदेन ह्रस्वदीर्घाणां स्वराणां जातिः । एव**मन्योन्यं कायभावौ** । **परमजिनपति**र्ज्ञानस्कन्धः । **विश्वमाता** ज्ञानधातुः । विज्ञानमाकाशधातुः । संस्कारः पृथ्वीधातुः । [1]वेदना तोयधातुः ॥७५॥
[274a]

रत्नेशो मामकी च त्वपि कमलधरः पाण्डराकायभावौ
तद्वच्चक्री च तारा प्रकृतिगुणवशाज्ह्रस्वदीर्घस्वरैश्च ।
अंकारो विश्वभद्रो भवति तनुवशाद् वज्रपाणिस्त्वकारो
ह्रस्वैकारः खगर्भोऽरपि भवति तथा भूमिगर्भश्च सम्यक् ॥७६॥

संज्ञा तेजोधातुः । रूपं वायुधातुरिति । एवं **अंकारः** समन्तभद्रः । **अकारो वज्रपाणिः** । [2]**ए खगर्भः** । **अर्** क्षितिग**र्भः** ॥ ७६ ॥

ओकारो लोकनाथोऽलपि भवति तथा चात्र विष्कम्भिकाय
आकारो धर्मधातुर्भवति खलु तथाःकारजा शब्दवज्रा ।
ऐकारः स्पर्शवज्रा खलु रसकुलिशार्कारजा कायभेदा-
दौकारो रूपवज्रा भवति नृप तथाल्कारजा गन्धवज्रा ॥७७॥

---

१. च 'वेदना तोयधातुः' नास्ति । २. ग. ऐ ।

[1]**ओ लोकेश्वरः** । **अल्** सर्व[2]नीवरण**विष्कम्भी**[3] । एवं **आ धर्मधातुः** । **आः शब्दवज्रा** । **ऐ स्पर्शवज्रा** । **आर् रसवज्रा** । **औ रूपवज्रा** । **आल् गन्धवज्रा** इति ॥ ७७ ॥

श्रीभद्रो धर्मधातुस्त्वपि रवकुलिशा वज्रपाणिश्च युग्मं
वेगर्भो गन्धवज्रा वररसकुलिशा लोकनाथश्च युग्मम् ।
भूगर्भो रूपवज्रा भवति हि युगलं स्पर्शविष्कम्भिनौ च
एवं वै षट्कुलानि प्रकृतिगुणवशाद् वेदितव्यानि सम्यक् ॥७८॥

समन्तभद्रो धर्मधातुः । परस्परं कायभावौ । शब्दवज्रा **वज्रपाणिः** । **युग्मं** कायभावौ । [4]**वैगर्भो गन्धवज्रा** । **रसवज्रा लोकेश्वरः** । क्षितिगर्भो **रूपवज्रा** । सर्वनीवरण**विष्कम्भी स्पर्शवज्रे**ति । एवं **षट्कुलानि प्रकृतिगुणवशाद् वेदितव्यानि सम्यग्** योगिनेति नियमः ॥ ७८ ॥ [274b]

इदानीं क्रोधानां पञ्चकुलबीजान्युच्यन्ते—

हंकारोष्णीषचक्री भवति तनुवशादत्र हश्चातिनीला
सुम्भो ह्रस्वो हकारो भवति खलु तथा दीर्घजा रौद्रनेत्रा ।
यं ला युग्मक्रमेण प्रकटमतिबलः स्तम्भकी चैव युग्मं
रं वा जम्भश्च मानो वमपि र इति वै मानको जम्भकी स्यात् ॥७९॥

हमित्यादिना । अत्र हंकार उष्णीषे[5] **चक्री भवति तनुवशात्** कायभेदादिति । एवमन्येऽपि । **हश्चातिनीला** । **सुम्भो ह** । **रौद्राक्षी हा** । **यं अतिबलः**[6] । **लाः** [7]**स्तम्भकी** । **रं जम्भः**[8] । **वाः** [9]**मानकी** । **व मानकः** । **राः जम्भकी** ॥ ७९ ॥

लं याः स्तम्भोऽतिवीर्या भवति य व र लं नीलदण्डोऽचलश्च
टक्किश्चानन्तवीर्यो भवति तनुवशाद् देवतीनां च दीर्घाः ।
या वा रा लास्तथा स्युर्गजतुरगहरिस्यन्दने शूकरे च
मारीची नीलदण्डोऽचल इति भृकुटी शृङ्खलानन्तवीर्यः ॥८०॥

लं स्तम्भकः । [10]**याः अतिवीर्या** । एवं यथासंख्यं भवति । [11]**य व र लं** । **नील-दण्डः**, **अचलः**, **टक्किः**, महाबलः । **तनुवशाद् देवतीनां च दीर्घाः** । [12]**या गजरथे** वज्र-

---

१. ख. छ. औ, च. शः । २. क. ख. छ. णि. । ३. ग. च. कम्भीः । ४. भो. खगर्भो । ५. क. ख. उष्णीषं । ६. क. ख. ग. च. बल । ७. क. ह्यम्भीरं । ८. क. यम्बकः, च. जम्बुकः । ९. क. मामकी । १०. ग. या । ११. क. ख. ग. च. छ. य र व ल । १२. छ. या च जयरथे ।

श्रृङ्खला। **वा** तुरगस्यन्दने चुन्दा। **रा** हरिस्यन्दने **भृकुटी**। **ला** शूकरस्यन्दने मारीची। एवं [1]**मारीचो नीलदण्डो** युग्मं कायभावौ परस्परम्। **अचलो भृकुटी**। वज्रश्रृङ्खला अतिबलः॥ ८० ॥

टक्किश्चुन्दा च युग्मं भवति नरपते मण्डले सत्सुखार्थ-
माकारावंविसर्गौ हमपि ह इति ह हाकारजाः शक्तयोऽष्टौ।
कुम्भेष्वेवं हकारो मरुदनलजलक्ष्मास्वरैर्भेदितः स्याद्
ॐ हूं होर् आश्च शङ्खस्त्वमलगुणमणिश्चाङ्घ्रिपो धर्मगण्डो ॥८१॥
[275a]

टक्किश्चुन्दा च युग्मं मण्डले सत्सुखार्थमिति परकुलालिङ्गनेन। एवं शक्तिबीजानि। शक्तयो धूमादयो निमित्तदैवत्यः। तत्रा**कारावंविसर्गौ** इति। अ आ अं अः। यथाक्रमं कृष्णदीप्ता पीतदीप्ता [2]श्वेतदीप्ता रक्तदीप्ता। एवं **हमपि ह**[3] **इति ह हा**। हं खद्योता[4]। हः मरीचिः। ह धूमा। हा प्रदीपा। एवमष्टाक्षरजाः **शक्तयोऽष्टौ**। **कुम्भेष्वेवं हकारो मरुदनलजलक्ष्मास्वरैर्भेदितः स्यादिति**। पूर्वघटयोः हि ही, दक्षिणघटयोः हृ हॄ, उत्तरघटयोः हु हू, पश्चिमघटयोः [5]ह्ऌ ह्ॡ। इति वाय्वादिभेदः। [6]तथा ओङ्कारो धर्मशङ्खः, हूँ चिन्तामणिः, [7]होः कल्पवृक्षः, **आः धर्मगण्डीति** चित्तमण्डले देवताबीजाक्षराणि ॥ ८१ ॥

इदानीं वाङ्मण्डले चर्चिकादीनां बीजाक्षराण्युच्यन्ते—

चामुण्डा वै हकारो हमपि ह इति चापीश्वरी शूकरी च
हा क्ष क्षा क्षं क्ष ऐन्द्री खगपतिगमना ब्रह्मिका श्रीः कुमारी।
ही हृ हू ह्ऌ च पृष्ठे वरकमलदले ह्रस्वमात्राग्रतश्च
क्षी क्षृ क्षू क्ष्ॡ तथैव प्रकटितनियता ह्रस्वमात्राश्च तद्वत् ॥८२॥

चामुण्डा वै हकारः। हं **माहेश्वरी**। हः वाराही। **हा ऐन्द्री**। **क्ष वैष्णवी**। **क्षा ब्रह्माणी**। **क्षं** महालक्ष्मीः। **क्षः कौमारीति** नायिकानां बीजानि। [8]तथा यत्र देवीनां यथाक्रममष्टसु दिक्षु पूर्वादिषु कमलपृष्ठदलेषु। **ही हृ हू [9]ह्ॡ। क्षी क्षृ क्षू क्ष्ॡ। ह्रस्वमात्राग्रतश्चेति** अष्टदलेषु हि हृ हु ह्ऌ क्षि क्षृ क्षु क्ष्ऌ इति॥ ८२ ॥

पूर्वे सव्येऽवसव्ये वरुणहविदनावीशवाय्वोश्च पद्मे
याद्याः षण्मात्रभिन्नाः क्रमपरिरचिताः षड्दले ह्रस्वदीर्घाः।

१. क. ख. मारीचि, च. मारेची। २. क. छ. 'श्वेतदीप्ता' नास्ति। ३. ग. हमिति, भो. हः इति। ४. क. ख. ग. च. छ. खद्योतः। ५. क. ख. ग. च. ॡ। ६. छ. 'तथा ओङ्कारो बीजाक्षराणि' नास्ति। ७. भो. ह। ८. छ. यथा। ९. क. ल।

हिक्ष्याद्यालोऽन्तसर्वा वसुफणिगुणिता देवतीनां दलेषु
चामुण्डादेरुपायो भवति कुलवशात् संमुखो मन्त्रभेदैः ॥८३॥
[275b]

पूर्वपद्मदलयोः। दक्षिणयोः। उत्तरयोः। पश्चिमयोः। आग्नेययोः। नैर्ऋत्ययोः। **ईशानयोः**। **वायव्ययोः**। शेषेषु षड्दलेषु **याद्याः षण्मात्रभिन्नाः क्रमपरिरचिताः षड्दलेषु ह्रस्वदीर्घा**[1] दिक्षु विदिक्षु पद्मदलेषु। तत्र चामुण्डा पद्मदले पूर्वे हिकारः पूर्वन्यस्तः। ततो दक्षिणावर्तेन द्वितीयपत्रे [2]य, तृतीये यि[3], चतुर्थे [4]यृ, पञ्चमे पूर्वन्यस्तो ही, षष्ठे यु, सप्तमे य्ऌ, अष्टमे [5]यं, एवं वैष्णव्याः क्षि या यी [6]यॄ क्षी यू य्ॡ यः। एवं वाराह्याः पूर्वदले हृ, ततो र रि रृ [7]ह्ॠ रु [8]र्ऌ रं। कौमार्याः क्षृ रा री रॄ क्षॄ रू र्ॡ रः। रौद्र्याः हु व वि वृ हू [9]वु व्ऌ वं। तथा महालक्ष्म्याः क्षु वा वी वॄ क्षू[10] वू व्ॡ वः। ऐन्द्र्याः [11]ह्ॡ ल लि ऌ [12]ह्ॡ [13]ल्ऌ लं। ब्रह्माण्याः क्ष्ऌ ला ली ॡ [14]क्ष्ॡ लू [15]ल्ॡ लः। एवं **हि**[16]**क्ष्याद्यालोऽन्तसर्वा वसुफणिगुणिता** अष्टावष्टभिर्गुणिता **देवतीनां दलेषु** भोमादीनां यथानु[17]क्रमेणेति नियमः। दिक्षु [18]ह्यादिक्ष्याद्याः पद्मादीनां विदिक्षु। इह **चामुण्डादेरुपायो भवति कुलवशात् संमुखो मन्त्रभेदैरिति**। अत्र चामुण्डा, वैष्णवी संस्कारकुलिनी। तस्या अभिमुखो रूपकुली उपायो मन्त्रभेदैः ऌकार [19]कुली। वाराही, कौमारी वेदनाकुलिनी। तस्याः संमुखः संज्ञाकुली उपाय उकारजन्मा। ऐन्द्री, ब्रह्माणी रूपकुलिनी। तस्याः संमुखः संस्कारकुली उपाय इकारजन्मा। रौद्री, महालक्ष्मीः संज्ञाकुलिनी। तस्याः संमुखो वेदनाकुली उपाय ऋकारजन्मा। एवं चतुःकुलव्यवस्था वाङ्मण्डले॥ ८३ ॥

इदानीं कायमण्डले शक्रादीनां बीजान्युच्यन्ते—

तं नः शक्रोऽब्धिवक्त्रः पमिति म इति वै सागरः श्रीगणेन्द्रः
टं णो वह्निः कुमारो चमिति ञ इति वै राक्षसेन्द्रश्च वायुः।
कं ङो विष्णुश्च कालो हर इति धनदो वै समत्र ≍क एव
चाद्या वर्गाः समात्राः सुरकमलदले देवतीनां भवन्ति ॥८४॥

तं शक्रः। **नः ब्रह्मा**। **पं समुद्रः**। **मः गणेन्द्रः**। **टं वह्निः**। **णः कुमारः**। [276a] **सं हरः**[20]। **≍कः यक्षः**। **चं राक्षसेन्द्रः**। **ञः वायुः**। **कं विष्णुः**। **ङः यमः**।

१. ग. दिषु, च. दिदिक्षु। २. छ 'य' नास्ति। ३. छ पि। ४. छ. पू। ५. क. ख. य। ६. क. य्ऌ। ७. क. ख. ह्वृ। ८. ग. च. र्ॡ। ९. भो हु। १०. क. 'क्षू' नास्ति। ११. क. ख. छ. ऌ। १२. क. ख. छ. ॡ। १३. ग. ऌ, भो. ल्ॡ। १४. क. ख. छ. क्ष्ऌ। १५. क. ख ल्ऌ। १६. क. ख. ग. च. क्षमाद्या। १७. च. 'नु' नास्ति। १८. क. ख. ग. च. छ. 'ह्यादि' नास्ति। १९. ख. कुलो, ग. कुलत्वेना, च. कुलत्वे। २०. भो. Drag Po(रौद्रः)।

एवं चादीनां षड्वर्गाणां ह्रस्वदीर्घभेदैरमावास्याबीजं चैत्रादीनामिति चं ञः इत्यादिना ग्राह्यं चैत्रामावासीवैशाखामावासीतः । एवं **चाद्या वर्गाः समात्राः सुरकमलदले देवतीनां भवन्ति** ॥ ८४ ॥

चैत्रादीनां तिथीनामृतुनियमवशाच्छून्यषड्वह्निसंख्या
तत्त्वारूढो हकारो मरुदनलजलक्ष्मासु पूर्वाद्यहीनाम् ।
कूटस्थाः सप्तवर्गाः क्षयरवलयुताश्चासुरीणां श्मशाने
प्रज्ञोपायाङ्गभावैर्भवति कुलवशात् संमुखो योऽत्र मध्ये ॥८५॥

चैत्रादीनां तिथीनाम् ऋतुनियमवशात् शून्यषड्वह्निसंख्या षष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्या वर्षतिथयः। अत्र चैत्रदेव्यः प्रथमपरिमण्डले चतुर्दशदलेषु। तत्र प्रथमदले ञवज्रा, द्वितीय[1]दले ञिवज्रा, एवं ञृवज्रा, ञुवज्रा, ञ्लृवज्रा, ञंवज्रा। एवं झवज्रा, झिवज्रा, झृवज्रा, झुवज्रा, झ्लृवज्रा, झंवज्रा। जवज्रा, जिवज्रेति [2]चतुर्दशदेव्यो नैर्ऋत्यस्य कमलदलेषु । जृवज्रा संमुखस्य प्रज्ञा, पूर्णिमाधर्मित्वादिति। एवं द्वितीयपरिमण्डले कृष्णप्रतिपदादयः प्रथमे[3] दले जुवज्रा, एवं [4]ज्लृवज्रा, जंवज्रा, छवज्रा, छिवज्रा, छृवज्रा, छुवज्रा, छ्लृवज्रा, छंवज्रा। चवज्रा, चिवज्रा, चृवज्रा, चुवज्रा, च्लृवज्रा, चंवज्रेति अमावासीबीजम् । अत्र च सृष्टि[5]क्रमतः। ञ इति विलोमतः सृष्टिक्रमेण। वायव्ये दले चावज्रा। एवं वज्रान्ताः सर्वे मन्त्राः। चा ची चृ चू च्लृ चः। छा छी छृ छू छ्लृ छः। जा जी जृ इति पूर्णापदं पूर्ववत्। द्वितीयपरिमण्डले कृष्णप्रतिपदादि जू ज्लृ जः। झा झी झृ झू झ्लृ झः। ञा ञी ञृ ञू ञ्लृ ञः इति। अमावासीबीजं कर्णिकायां वायोः, एवं टवर्गः ज्येष्ठाषाढयोः, पवर्गः श्रावणभाद्रयोः, तवर्गः आश्विनकार्तिकयोः, सवर्गः मार्गशीर्षपुष्ययोः, कवर्गः माघफाल्गुनयोः। एवं वर्षतिथिदेवताबीजनियमः।

इदानीं [6]नागबीजान्युच्यन्ते—**तत्त्वारूढो हकार** इत्यादिना। इह तत्त्वानि [7]यरवलानि, तान्यारूढस्तत्त्वारूढः। ह्य ह्या कर्कोटकपद्मयोर्वा[276b]युमण्डले, ह्ल ह्ला तक्षकस्य महापद्मस्य यथासंख्यं पृथिवीमण्डले, ह्र ह्रा वासुकिशङ्खपालयोर्वह्निमण्डले, ह्व ह्वा अनन्तकुलिकयोर्वारिमण्डले, एवं **मरुदनलजलक्ष्मासु** मण्डलेषु **पूर्वाद्यहीनामिति**।

इदानीं श्वानास्यादीनां बीजान्युच्यन्ते—कूट इति। कूटं पञ्चाक्षरात्मकं प्रत्येकाक्षरैः। ते च **कूटस्थाः सप्तवर्गाः क्षयरवलयुताश्चाष्टौ** इत्या**सुरीणाम्। श्मशानाष्टके**। तत्र दिक्श्मशाने पूर्वे क् ख् ग् घ् ङ, दक्षिणे ह् य् र् व् ल, पश्चिमे ‿क् श् ष् ‿ प् स, उत्तरे ह् य् र् व् ल, कोणे अग्नेय्यां ञ् झ् ज् छ् च, नैर्ऋत्ये ण् ढ्

१. च. द्वितीये। २. ग. 'चतुर्दशदेव्यो' नास्ति। ३. ग. च. प्रथम।
४. क. ख. ग. च. जू। ५. म. क्रमरतः। ६. ग. च. छ. भो. नागराजबीजा।
७. छ. भो. लरव, यरलवानि।

ड् ठ् ट, वायव्ये न् ध् द् थ् त, ईशाने म् भ् ब् फ् प इति। एवं सर्वत्र **प्रज्ञोपायाङ्गभावैर्भवति कुलवशात् संमुखो योऽत्र** मध्ये नायकोपनायकभेदेनावगन्तव्यो योगिनेति तन्त्रनियमः। ८५ ॥

श्रीवज्री विश्वभद्रो भवति कुलवशाद् वज्रधृग् वज्रपाणि-
र्वैगर्भोऽमोघसिद्धिर्विमलमणिकरो भूमिगर्भश्च सम्यक् ।
विष्कम्भी वज्रपाणिर्भवति कुलवशाल्लोकनाथोऽमिताभः
श्रीमाता धर्मधातुस्त्वपि वरकुलिशा वज्रधात्वीश्वरी च ॥८६॥

श्रीतारा स्पर्शवज्रा खलु रसकुलिशा पाण्डरा जातिभेदाद्
रूपाख्या मामकी वै भवति कुलवशाल्लोचना गन्धवज्रा ।
क्रोधेन्द्रो वज्रवेगो भवति जिनपतिर्विश्वभद्रः स एव
उष्णीषोऽक्षोभ्य एवात्र पुनरतिबलोऽमोघसिद्धिः प्रसिद्धः ॥८७॥

जम्भो वै रत्नपाणिर्भवति कुलवशान्मानकश्चामिताभः
स्तम्भो वैरोचनश्च प्रभवति बलवान् वज्रपाणिश्च सुम्भः ।
वैगर्भो नीलदण्डः प्रकृतिगुणवशाद् भूमिगर्भश्च टक्कि-
र्विष्कम्भी चातिवीर्यो भवति कुलवशाल्लोकनाथोऽचलश्च ॥८८॥

माता क्रोधेन्द्रमुद्रा भवति कुलवशाद् धर्मधातुस्तथैव
शून्याख्या चातिनीला मरुदनलजलक्ष्मादयोऽनन्तवीर्या ।
जम्भी मानी क्रमेण प्रकटितनियता स्तम्भकी च प्रसिद्धा
रौद्राक्षी शब्दवज्रा भवति कुलवशाच्छृङ्खला स्पर्शवज्रा ॥८९॥
[277a]

मारीची गन्धवज्रा प्रभवति भृकुटी चैव चुन्दा प्रसिद्धा
ज्ञातव्या जातिभेदात् खलु रसकुलिशा रूपवज्रा नरेन्द्र ।
स्तम्भः कालान्तकोऽत्रैव पुनरतिबलो विघ्नशत्रुः प्रसिद्धो
जम्भः प्रज्ञान्तको वै प्रभवति च तथा मानकः पद्मशत्रुः ॥९०॥

चामुण्डा शूकरीशा मरुदनलजलक्ष्मास्तथैन्द्री चतुर्थी
गन्धो रूपं रसः स्पर्श इति चलहरे दैत्यवह्नौ स्थिताश्च ।
ब्रह्मा वैरोचनो वै भवति कुलवशात् सागरश्चामिताभो
वह्निः श्रीरत्नपाणिर्भवति हि पवनोऽमोघसिद्धिस्तथैव ॥९१॥

अक्षोभ्यो दैत्यशत्रुर्भवति जिनपतिः शङ्करश्च प्रसिद्धो
विष्कम्भी यः स शक्रो भवति गणपतिर्लोकनाथस्तथैव ।
भूगर्भः षण्मुखः स्याद् भवति दनुपतिः श्रीखगर्भः प्रसिद्धः
कालः श्रीवज्रपाणिर्भवति दनुपतिर्विश्वभद्रश्च षष्ठः ॥९२॥

षड् विद्याः षट् न वज्राः प्रकृतिगुणवशात् स्वस्वमुद्राश्च तेषां
मुद्रा विद्यादयोऽर्काः सुरवरपतयः श्वेतकृष्णाश्च पूर्णाः ।
तेषां याः पद्मपत्रे वसुकरतिथयो माघमासादयस्ताः
षण्मासे पूर्वषट्कं भवति कुलवशाच्चापरं देवतीनाम् ॥९३॥

ये नागाष्टौ घटास्ते विभुकमलदले शक्तयस्ताः प्रचण्डाः
श्रीधूमा काकवक्त्रा भवति कुलवशाद् गृध्रवक्त्रा मरीचिः ।
खद्योतोलूकवक्त्रा खगपतिवदना श्रीप्रदीपा प्रसिद्धा
श्वानास्या कृष्णदीप्ता सुविकृतवदना शूकरास्यातिदीप्ता ॥९४॥

व्याघ्रास्या श्वेतदीप्ता भवति कुलवशाज्जम्बुकी पीतदीप्ता
एवं लास्यादिसर्वाः प्रकटदशविधा विश्वमातावशेषाः ।

इदानीं जन्यजनकादिसम्बन्धः "श्रीवज्री विश्वभद्रः" (४.८६) इत्यादिसार्धनववृत्तानि "विश्वमातावशेषाः" (४.९५) इति पर्यन्तं कुलकुलीनयोः सम्बन्धः ॥ ८६-९४½ ॥

इदानीं [१]चतुःकायपरिशुद्धिरुच्यते—

दिव्या बुद्धाश्च विद्याः सतरुसकलशाः शुद्धकायो जिनस्य
क्रोधेन्द्रा बोधिसत्त्वाः खलु रसकुलिशा धर्मकायः स एव ॥९५॥

[277b]

दिव्या इत्यादि । इह यथा जरायुजस्य बालस्याध्यात्मपटले गर्भे बाह्ये चतुर्विधावस्थाभेदेन चतुर्विधः काय उक्तः, तथा देवताभावनायां विशोधनीयो योगिनेति । [२]तत्र **दिव्या**[३] धूमा मरीचिः खद्योता प्रदीपा पीतदीप्ता श्वेतदीप्ता कृष्णदीप्ता । [४]शशिकला बिन्दुरूपिणीति महासुखकमलदले[५] सुखचक्रे । द्वितीयपुटे **बुद्धाश्च विद्या** इति । अत्र बुद्धा अमोघसिद्धि-रत्नसंभव-अमिताभ-वैरोचनाः । विद्यास्तारा-पाण्डरा-मामकी-लोचना

१. च. विशुद्धिरु, भो. rNam Pa Dag Pas Dag Pa (विशुद्धेः शुद्धिरु)। २. च. अत्र । ३. भो. Lha Mo Ni (देव्यः) । ४. भो. 'शशि' नास्ति । ५. ख. भो. दलेषु महा ।

इति । **सतरुसकलशा** इति । तरुः कल्पवृक्ष [१]इति । एवं चिन्तामणिः, धर्मगण्डी, धर्मशङ्खः । कलशा रजःशुक्रयोः कायवाक्चित्तज्ञानबिन्दुभेदेन विण्मूत्ररक्तमज्जाघटा [२]अष्टाविति । **शुद्धकायो जिनस्य** मण्डलाधिपतेः । ततो बाह्यपुटे चित्तमण्डलद्वारेषु **क्रोधेन्द्रा** विघ्नान्तकः, प्रज्ञान्तकः, पद्मान्तकः, यमान्तकः, उष्णीषः । **बोधिसत्त्वा** वज्रपाणिः, खगर्भः, क्षितिगर्भः, लोकेश्वरः, विष्कम्भी, समन्तभद्रः । **खलु रसकुलिशा** इति । शब्दवज्रा, स्पर्शवज्रा, रूपवज्रा, रसवज्रा, गन्धवज्रा, धर्मधातुवज्रा । एता **धर्मकायः स एव** ॥ ९५ ॥

योगिन्यो भोगकायः प्रवररथगताः सूर्यदेवाः प्रसिद्धा
अष्टौ नागाः प्रचण्डाः परिजनसहिता बुद्धनिर्माणकायः ।
एवं भूयो द्विभेदो भवति जिनतनुर्बाह्यतोऽभ्यन्तरे च
गर्भोत्पत्तिर्यथैव प्रभवति नियता मण्डले तद्वदेव ॥९६॥

ततो वाङ्मण्डले **योगिन्यो भोगकायश्**चर्चिकाद्या दलदेवीभिः सार्धमिति । ततः कायमण्डले **प्रवररथगता** [३]मारीच्यादयः **सूर्यदेवाः प्रसिद्धाः** । नैर्ऋत्यादयो [278a] द्वादश । **अष्टौ नागाः** कर्कोटकादयः । **प्रचण्डाः** श्वानास्यादयः । एते देवादयः **परिजनसहिताः** । पद्मदले देवताभिः सह **बुद्धनिर्माणकायः** । **एवं भूयो द्विभेदो भवति जिनतनुर्बाह्यतोऽभ्यन्तरे च । गर्भोत्पत्तिर्यथैव प्रभवति नियता मण्डले तद्वदेवेति** ॥ ९६ ॥

शास्ता दिव्यादिकुम्भाः सहजजिनतनुर्मण्डले गर्भमध्ये
बुद्धाद्या धर्मकायः खलु रसकुलिशाद्याश्च संभोगकायः ।
क्रोधा निर्माणकायो भवति कुलवशान्मण्डले गर्भसंस्था-
श्चामुण्डाद्यष्टदेव्यः परिजनसहिताः शुद्धकायो हि बाह्ये ॥९७॥

इह गर्भे यथा बालस्य विज्ञानं ज्ञानं शुक्ररजोगर्भे शुद्धकायः, तथा **शास्ता** भगवान् । **दिव्या** [४]धूमादयः, **आदि**शब्देन धर्मशङ्खादयोऽष्ट**कुम्भा** एते **मण्डलगर्भे सहज**काय इति । ततो यथा बालस्य स्कन्धधातूद्भवो धर्मकायस्तथा मण्डले **बुद्धाद्या** इति । ततो यथा बालस्यायतनोद्भवः **संभोगकाय**स्तथा मण्डलेऽपि । **खलु** शब्दवज्रादय इति । ततो यथा बालस्य हस्तपादादिकेशादिसंभवः प्रसवनसमयश्च **निर्माणकायः**, तथा यमान्तकादयश्चतुः**क्रोधा** इति **कुलवशान्मण्डले गर्भे**[५]**संस्था** इति चित्तमण्डले चित्तकुलवशादिति गर्भे चतुर्धा नियमः । इदानीं बाह्ये चतुर्धा प्राणनिर्गमः उच्यते—चामुण्डेत्यादि । इह यथोत्पन्नस्य बालस्य [६]नाभिचक्रात् सहजकायस्तथा बाह्ये वाङ्मण्डले **चामुण्डाद्यष्टदेव्यः परिजनसहिता**श्चतुःषष्टि-[७]योगिनीभिः सहिता इति ॥ ९७ ॥

१. च. 'इति' नास्ति । २. ग. अष्टाविंशतीति । ३. ग. च. मारे । ४. क. ख. ग. च. धूपा । ५. ग. संस्थाने । ६. भो. lTe Ba Nas (नाभितः) । ७. भो. Lha Mo (देवीभिः) ।

देवाद्या धर्मकायः सकलफणिकुलं चात्र संभोगकाय-
श्चण्डा निर्माणकायो भवति नरपते सर्वसत्त्वार्थहेतोः।
युग्मं स्यात् कायवज्रं सहजजिनतनुर्बिम्बनिष्पत्तिहेतो-
र्वाग्वज्रं धर्मकायो भवति च युगलं धर्मतादेशनार्थम् ॥९८॥
[278b]

इह यथा बालस्य हस्तपादादिसंकुचनमस्फुटवचनं धर्मकायस्तथा **देवा** द्वादश। **आदि**शब्देन रथस्थाः षड् देव्य इति। इह यथा बालस्य दन्तोत्थाने स्फुटवचने सति [1]**संभोगकाय**स्तथा मण्डले **सकलफणिकुलमि**ति। इह यथा बालस्य दन्तपातात् पुनरुत्थानादामरणावधौ निर्माणकायस्तथा मण्डले **चण्डा** श्वानास्यादयः परिजन-सहिताः सार्धत्रिकोटिभूतैः सहिता **निर्माणकायो भवति, नरपते सर्वसत्त्वार्थहेतो**रिति [2]बाह्ये चतुःकायविशुद्धिनियमः। इदानीं चतुःकायचतुर्वज्राणां परस्परं योग उच्यते—**युग्ममि**त्यादि। इह बालस्य **बिम्बनिष्पत्तिहेतोः सहज**कायश्चतुर्भूतात्मकं **कायवज्रं** युग्मं स्याद् यथा, तथा मण्डलेऽपि ॥ ९८ ॥

चित्तं संभोगकायो युगलमपि भवेत् सर्वसत्त्वार्थकर्ता
ज्ञानं निर्माणकायो भवति हि युगलं प्राणिनां मोक्षदं वै।
प्रज्ञोपायाङ्गभावैः समविषमकुलैर्योगिना वेदितव्यं
चन्द्रादित्यादिकाद्यैस्त्रिविधभवगतैर्ज्ञानविज्ञानभेदैः ॥९९॥

एवं वाग्वज्रं धर्मकायो बालस्य **युगलमपि** जल्पनार्थं यथा तथा धर्मदेशनार्थं मण्डलेऽपि। [3]इह बालस्य बोधिचित्तं **संभोगकायः सर्वसत्त्वार्थ**[4]**कर्ता युगलम्,** [5]तथा मण्डलेऽपि। इह यथा बालस्य च्यवनकाले **ज्ञानमि**ति सुखं **निर्माणकाय** इति परिपूर्ण-धातुत्वं षोडशवर्षावधे**र्भवति हि युगलं प्राणिनां मोक्षदं वै**। मोक्षोऽत्र बोधिचित्तबिन्दूनां च्युतिक्षणः। तद् ददातीति मोक्षदं युगलं ज्ञानं निर्माणकायलक्षणं प्राणिनाम्। तथा [6]तद्वैधर्म्येण [7]मण्डले मोक्षदं द्वादशाङ्गहेतुफल[8]निरोधत इति बुद्धनियमः। पुनरेषां चतुःकायचतुर्वज्राणां **प्रज्ञोपायाङ्गभावैः समविषमकुलै**रिति। समकुलै रजउद्भवधातु-कुलैः, विषमकुलैः शुक्रोद्भूतधातुकुलैः। **चन्द्रादित्यादिकाद्यैस्त्रिविधभवगतैर्ज्ञानभेदै**-रानन्दाद्यै**र्विज्ञानभेदै**र्द्वादशायतनभेदै**र्यो**[279a]**गिना वेदितव्यं** समस्तं यथा बालस्याध्या-त्मपटले तथा देवतासाधने उत्पत्तिक्रम इति। एवं देवताबिम्बनिष्पत्तिः ॥ ९९ ॥

---

१. क. ख. ग. छ. भोग। २. ख. ग. बाह्य। ३. च. इह च। ४. ग. 'कर्ता' नास्ति। ५. क. ख. छ. 'तथा' नास्ति ६. च. भो 'तद्' नास्ति। ७. भो. 'मण्डले' नास्ति। ८. ग. च. निरोध।

इदानीं कायवाक्चित्ताधिष्ठानमुच्यते—

वज्रैः स्वाहानुयुक्तैः शिरसि गलहृदोर्नाभिगुह्ये च मूर्ध्नि
एतैश्चाधिष्ठिताङ्गं परमजिनपतिं स्नापयेद् देवतीभिः।
शून्ये वै धर्मधातौ त्रिकुलिशसमये ज्ञानपूजानुरागे
वक्तव्यं साधकेन त्रिशरणगमनात् तत्स्वभावात्मकोऽहम् ॥१००॥

वज्रैरित्यादि। [1]यथोत्पन्नस्य बालस्य कायवाक्चित्ताधिष्ठानं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त-लक्षणं भवति, ललाटे कण्ठे हृदये नाभौ गुह्ये उष्णीषे ॐ आः [2]हूं हो स्वा हा। **एतैश्चा-धिष्ठिताङ्गं** बालं यथा स्नापयन्ति मातरः, तथा **परमजिनपतिं स्नापयेद् देवतीभि**-र्योगिनीभिः। अत्राधिष्ठाने ललाटे अकारपरिणतं चन्द्रमण्डलम्, तदुपरि ओङ्कार-परिणतमष्टारचक्रम्, तत्परिणतं कायवज्रं शुक्लवर्णं त्रिमुखं मूलं शुक्लं वामं रक्तं दक्षिणं कृष्णं षड्भुजं दक्षिणे चक्रवज्रपद्मधरं वामे खड्गघण्टामणिधरं, सप्रज्ञं निष्पाद्य ततो ललाटान्निश्चार्य तेनाकाशधातुं समन्तात् परिपूर्णं विभाव्य कायवज्रवैनेयानां सत्त्वानां धर्मदेशनां कृत्वा पुनरागत्यात्मनः पुरतः संस्थाप्याभिषेकमनुनाथयेत्। अभिषिञ्चन्तु मां कायवज्रधरा इति। ततोऽमृतकलशैः कायकुलदेव्योऽभिषिञ्चयन्ति[3]। ततोऽभिषेके सति अधिष्ठानं कारयेत्, [4]स्वललाटे चन्द्रमण्डले कायवज्रं प्रवेश्येदमुदीरयेत्—

कायवज्रधरः श्रीमान् त्रिवज्राभेद्यभावितः।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य करोतु कायवज्रिणः॥
दशदिक्संस्थिता बुद्धास्त्रिवज्राभेद्यभाविताः।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य कुर्वन्तु कायवज्रिणः॥

इति कायाधिष्ठानम्। [279b]

एवं कण्ठे रेफपरिणतं सूर्यमण्डलम्, तदुपरि आःकारपरिणतं रक्तपद्ममष्टदलं तत्परिणतं वाग्वज्रं सप्रज्ञं रक्तं रक्तसितकृष्णवदनं, दक्षिणे पद्मवज्रचक्रधरं, वामे मणिघण्टाखड्गधरं निश्चार्याकाशधातुं तेन परिपूर्णं विभाव्य वाग्वज्रवैनेयानां सत्त्वानां धर्मदेशनां कृत्वा पुनरात्मनोऽग्रतः संस्थाप्याऽभिषेकमनुनाथयेत्- अभिषिञ्चन्तु मां वाग्वज्रिणः। ततो वाक्कुल[5]देवीभिरमृतघटैरभि[6]षिञ्च्यमानमात्मानं विभाव्य ततो वागधिष्ठानं कुर्यात्, वाग्वज्रं सूर्यमण्डले विनिवेश्य इदमुदीरयेत्—

वाग्वज्रधरः श्रीमान् त्रिवज्राभेद्यभावितः।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य करोतु वाग्वज्रिणः॥
दशदिक्संस्थिता बुद्धास्त्रिवज्राभेद्यभाविताः।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य कुर्वन्तु वाग्वज्रिणः॥

---

१. ख. ग. च. भो इह यथो। २. भो. हुं। ३. भो. अतः परं bsGom Par Byaḥo (विभाव्य) इत्यधिकम्। ४. ख. ग. च. भो. छ. 'स्व' नास्ति। ५. च. देवती। ६. च. षिच्य।

इति वागधिष्ठानम् ।

चित्ताधिष्ठाने हृदये राहुमण्डलं नीलवर्णं विभाव्य बिन्दुपरिणतं तदुपरि हूँकार-परिणतं वज्रं पञ्चशूकं तत्परिणतं चित्तवज्रं सप्रज्ञं कृष्णं कृष्ण[1]सितरक्तवदनं, दक्षिणे वज्रचक्रपद्मधरं, वामे घण्टा[2]मणिखड्गधरं निश्चार्याकाशधातुं तेन परिपूर्णं विभाव्य चित्तवज्रवैनेयानां [3]सत्त्वानां धर्मदेशनां कृत्वा पुनरात्मनोऽग्रतः संस्थाप्याभिषेक-मनुनाथयेत् । अभिषिञ्चन्तु मां सर्वे चित्तवज्रिण [4]इति । ततश्चित्तवज्रकुलदेवीभिरभि-[5]षिञ्च्यमानमात्मानं विभाव्याधिष्ठानं कारयेत्, चित्तवज्रं राहुमण्डले निवेश्य इदमुदीरयेत्—

चित्तवज्रधरः श्रीमान् त्रिवज्राभेद्यभावितः ।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य करोतु चित्तवज्रिणः ॥
दशदिक्संस्थिता बुद्धास्त्रिवज्राभेद्यभाविताः ।
अधिष्ठानपदं मेऽद्य कुर्वन्तु चित्तवज्रिणः ॥ इति ।

एवं चित्ताधिष्ठानं कृत्वा [6]तत एकत्वेन ॐ सर्वतथागतकायवाक्चित्तस्वभावा-त्मकोऽहमित्यहङ्कारमुद्वहेद् योगीति नियमः । एवं प्रज्ञाया नाभौ होकारेण, गुह्ये स्वाकारेण, उष्णीषस्थाने हाकारेण, त्रिकुल उपायः शुक्रधर्मतः । षट् कुला प्रज्ञारजः-शुक्रधर्मत इति । अपरमनुनाथन[7]मभिषेक[280a]पटलोक्तविधिना कर्तव्यम् । तत्रैव यदनुक्तं तदनेन विधिना सर्वं कर्तव्यमिति नियमः ।

इदानीं शून्याद्यहङ्कारस्थानान्युच्यन्ते—शून्य इत्यादिना । इह यथा सर्वसत्त्वानां मरणान्ते मारणान्तिकस्कन्धाः शून्या भवन्ति, तथा योगिनां[8] मनुष्यस्कन्धाहङ्कार-[9]स्थानान्युच्यन्ते, परित्यागार्थं देवतास्कन्धनिष्पादनार्थम् । ॐ शून्यताज्ञानवज्र-स्वभावात्मकोऽहमिति नियमः । [10]इदानीं यथोपपत्त्यं[11]शिकपञ्चस्कन्धैर्गर्भबालस्य काय-निष्पत्तिः, तथा मण्डल आदर्शादिपञ्चा[12]कारैर्देवतायाः कायनिष्पत्तिः । तत्राहङ्कारः ॐ [13]विशुद्धधर्मधातुस्वभावात्मकोऽहमिति नियमः । एवं **शून्ये वै धर्मधातु**काले [14]**त्रिकुलिश-समये** । एवं वक्ष्यमाणे **ज्ञानपूजानुरागे** । इह यथा बालस्य कर्णवेधादिकम्, विवाहे पाणिग्रहणम्, षोडशवर्षावधेर्ज्ञानपूजानुरागणम्, एवं तत्र काले तत्स्वभावात्मकोऽहमिति **वक्तव्यम**त्रोत्पत्तिक्रमे [इति] भगवतो नियमः ॥ १०० ॥

इदानीं देवताविशुद्ध्या सर्वचक्रनाडिका उच्यन्ते—

कुम्भैर्धूमादिभिश्च प्रभवति हृदये चाष्टभिर्धर्मचक्रं
विद्याभिश्चैव बुद्धैः शिरसि च सहजं षोडशारं प्रसिद्धम् ।

१. ग. च. छ. भो. रक्तसित । २. भो. खड्गमणि । ३. ग. च. 'सत्त्वानां' नास्ति । ४. च 'इति' नास्ति । ५. च. षिच्य । ६. च. तत्र । ७. ग. नाभिषेक । ८. ख. नामनुस्कन्धा । ९. ग. च. छ. भो. 'स्थानान्युच्यन्ते' नास्ति । १०. च. भो. इह । ११. ग. च. छ. त्र्यङ्गिक । १२. ग. क्षरै । १३. भो. सुविशुद्ध । १४. ग. कुलसमये ।

कण्ठे संभोगचक्रं द्विगुणनृपतिभिर्बोधिसत्त्वादिभिः स्या-
न्नाभौ निर्माणचक्रं वसुफणिगुणिताभिश्च भीमादिभिश्च ॥१०१॥

कुम्भैरित्यादि । इह **कुम्भैरष्टभिर्धूमादिभिः** [1]सार्धमष्टारं[2] हृच्चक्रं शुद्धं तदेव **धर्मचक्रम्** । **विद्याभि**र्लोचनादिभिश्चतसृभिर्**बुद्धै**र्वैरोचनादिभिश्चतुर्भिरेभिरष्टभिः कायभावभेदेन षोडशैः **शिरसि षोडशारं** चक्रं शुद्धं तदेव **सहजं सिद्धमिति**, अनुक्त-त्वात् । धर्मशङ्खचिन्तामणिधर्मगण्डीकल्पवृक्षैश्चतुर्भिरुष्णीषचक्रं शुद्धम् । **कण्ठे संभोगचक्रं** द्वात्रिंशदरं [3]**द्विगुणनृपतिभि**र्द्वात्रिंशद्भि**र्बोधिसत्त्वाद्यै**रिति । द्वादशायतने-श्चतुःक्रोधैः षोडशभिः प्रज्ञोपायभेदेन द्वात्रिंशद्भिः शुद्धम् । **नाभौ निर्माणचक्रं** चतुः-षष्ट्यरं **वसुफणिगुणितै**श्चतुःषष्टिभि[280b]**र्भीमादिभिः** शुद्धमिति । तथा चामुण्डाद्यष्टभिः, [4]लास्याद्यष्टभिश्च गुह्यचक्रं शुद्धम् ॥ १०१ ॥

बाहोः पादस्य सन्धौ नवतियुगहतैः कर्मचक्रं सुरैश्च
चुन्दानागैः क्रियाख्यं भवति नृपतिभिश्चाङ्गुलीपर्वसन्धौ ।
श्रीवज्री कालशुद्ध्या भवति नरपते वर्षमासादिभेदै-
श्चित्ताकारो न चार्कः प्रतिदिवसवशाद् विश्वमाता विशुद्धा ॥१०२॥

बाहुपादसन्धिषु द्वादशसु **कर्मचक्रं सुरैः** षष्ट्युत्तरत्रिशतैः शुद्धम् । **नागै**[5]**श्चुन्दा-भिरेभिः** षोडशभिः काय[6]भागभेदेनाङ्गुलीपर्व[7]**सन्धिषु क्रियाख्यं** चक्रं शुद्धमिति चक्र-शुद्धिनियमः । इदानीं[8]नायकादीनामपरविशुद्धिरुच्यते—**श्रीवज्री**त्यादि । इह [9]कालो बाह्योऽध्यात्मनि द्वादशाङ्गात्मकं मकरादिराशिचक्रं [10]हेतुफलात्मकम् । तत्र पञ्च हेतु-धर्माः, सप्त फलहेतुधर्माः क्लेश[11]धर्मात्मकाः । फलधर्मा दुःखात्मका लोकधातुपटलोक्ताः । तेषां हेतुफलधर्माणां शुद्ध्या **कालशुद्ध्या** हेतुफल[12]निरोधेन शुद्ध्या वज्री मण्डलेशः कालचक्रविशुद्धः । **वर्ष**[13]**मासादिभेदै**रिति वक्ष्यमाणे वक्तव्यम् । **चित्ताकारो** विशुद्धचित्तो **न चार्कः** संसारचित्तलक्षणः प्राणारूढो विज्ञानस्कन्ध इति । [14]**प्रतिदिवसवशाद् विश्व-माता**[15] **विशुद्धे**ति । इह यथा वर्षे द्वादशलग्नानि मासभेदेन तथा प्रतिदिने उदयभेदेन द्वादशलग्नानि । एवं प्रज्ञाऽपि द्वादशाङ्गनिरोधेन शुद्धा । [16]अत्र यानत्रयस्य[17] ये धर्मा मुद्रणं चतुरशीतिसहस्रधर्मस्कन्धानां देवतानां च बुद्धमुद्रणम् । चतुर्विधस्य संघस्य

१. ग. सोपध । २. ग. द्यक्षरं । ३. ग. त्रिगुण । ४. क. 'लास्याद्यष्टभिश्च' नास्ति । ५. ख. श्चन्दा, ग. च. भो. श्चण्डा । ६. ग. च. भो. भाव । ७. क. ख. छ. 'सन्धिषु ....चक्रं' नास्ति । ८. क. ख. छ. कायका । ९. क. ख. छ. काला १०. क. ख. छ. 'हेतु....सप्त फल' नास्ति । ११. च. भो. कर्मा । १२. क. ख. छ. 'निरोधेन.... चक्रवि' नास्ति । १३. ग. च. मासभेदैः । १४. क. ख. छ. 'प्रतिदिवस.. विशुद्धेति' नास्ति । १५. ग. भो. प्रज्ञा शुद्धेति, च. शुद्धा भवति । १६. क. ख. छ, अत्र या तत्र, ग. अतो यानत्रयं, च. अत्र यानत्रये । १७. क. ख. छ. 'स्य .. स्कन्धानां' नास्ति ।

भिक्षुमुद्रणम्, एवं भिक्षुपूर्वंगमः संघः। ये धर्माः पूर्वंगमो धर्मः। बुद्धपूर्वंगमो[1] बोधिसत्त्व-[2]क्रोधदेवतागणः। एवं मण्डले नायको[3]ऽचिन्त्यचित्तवज्रः, नायकी शून्यताज्ञानधर्मिणी विश्वमाता[4] इति न्यायः ॥ १०२ ॥ [281a]

इदानीं धूमादीनां विशुद्धिरुच्यते—

धूमाद्या वायुशुद्धाः स्वहृदयकमले नाभिचक्रे स्थिताश्च
रुद्रः क्लेशैः सभार्यो विभुचरणतले मारवृन्दैश्च मारः।
शङ्खो गण्डी मणिश्च द्रुम इति च तथा कायवज्रादिभिश्च
कुम्भाश्चाष्टामृताङ्गैर्जयविजयघटौ बोधिचित्तादिना च ॥१०३॥

धूमेत्यादि। इह **हृदयकमले** समानादिवायूनां आधारभूता अष्टनाड्यस्ताभिः **धूमादिदिव्याः** [5]कृष्णदीप्तान्ताः शुद्धाः। अवधूतीशङ्खिनीभ्यां कलाबिन्दुरूपिण्यौ शुद्धे दशवायुनिरोधेनेति। **रुद्रो** वामपादतले [6]चतुःक्लेशक्षयेण शुद्धः। सव्यपादतले **मारो मारवृन्दक्षयेण** शुद्धः। **शङ्खः** कायावरणक्षयेण शुद्धः। **गण्डी** वागावरणक्षयेण शुद्धा। **मणिश्चित्तावरणक्षयेण** शुद्धः। **कल्पद्रुमो** ज्ञानावरणक्षयेण शुद्ध इति। **कायवज्रादिभिश्च** [7]**कुम्भाश्चाष्टामृताङ्गैरिति**। इह मज्जानिरोधेन कुम्भद्वयं वामदक्षिणभेदेन विशुद्धम्। एवं सर्वत्र वामदक्षिणभेदेन वेदितव्यम्। तथा रक्तनिरोधेन कुम्भद्वयम्। एवं मूत्रास्रावेण कुम्भद्वयम्। [8]तथा विष्ठास्रावेण कुम्भद्वयम्। एवं **जयघटः** शुक्रास्रावेण। **विजयघटो** रजआस्रावेण। इत्यष्टौ घटाः शुद्धाः कपालानि वा ॥ १०३ ॥

इदानीं बुद्धानां शुद्धिरुच्यते—

संस्कारोऽमोघसिद्धिर्विमलमणिकरो वेदना चामिताभः
संज्ञा रूपं हि चक्री शशिबलरुधिरैर्मूत्रविड्भ्यां विशुद्धाः।
षड् देव्यो धातुभिर्वै विषयविषयिभिर्बोधिसत्त्वाः समुद्राः
पञ्च क्रोधा बलैर्वै खलु पुनरपराश्चेन्द्रियैः पञ्च चान्यैः ॥१०४॥

इह संवृतिधर्मे निरुद्धे सत्यन्ये ते संस्कारादयः। तेन विशुद्ध**संस्कारोऽमोघसिद्धिः**। संस्कारावरणक्षयेण **विमलमणिकरो** रत्नसंभवो **वेदना**। चकारः समुच्चयार्थः। एव**ममिताभः संज्ञा** रूपस्कन्धः। **चक्रीति** वैरोचनः। एते पुनरक्षोभ्यादयः। **शशीति** शुक्रम्, [9]**बलेति** मांसं **रुधिरं मूत्रं विडि**[10]त्येभिर्विशुद्धैर्निरावरणैः पञ्च स्कन्धा विज्ञानादयो विशुद्धा भवन्तीति। एवं **षड् देव्यो** विश्वमाता-वज्रधात्वीश्वरी-तारा-

---

१. क. ख. छ. 'मो'''एवं' नास्ति। २. ग. च. क्रोधादि। ३. क. ख ग. च. छ. अचित्त। ४. क ख. छ. मात्रा। ५. क. कृष्णदीप्तान्धाः। ६. क. ख. चन्द्रः। ७. ग. च. 'च' नास्ति। ८. ग. 'तथा''''द्वयम्' नास्ति। ९. क. ख. ग. च. छ. पललं। १०. च. त्येतै।

पाण्डरा-मामकी-लोचनेति। **धातुभिरिति**। ज्ञानाकाशवायुतेज-उदकपृथ्वीधातुभिर्निरुद्धैरन्ये धातवो विशुद्धा भवन्तीति। **विषयविषयिभिरिति**। रूपादिषड्विषयैश्चक्षुरादि[281b]भिर्विषयिभिर्विशुद्धैरन्ये ते रूपादयोऽन्ये ते चक्षुरादयो विशुद्धा रूपवज्रादिभिः सार्धं क्षितिगर्भादयो **बोधिसत्त्वाः** [1]**समुद्राः** शुद्धाः। **पञ्चक्रोधा बलैरिति** श्रद्धाबलं वीर्यबलं स्मृतिबलं समाधिबलं प्रज्ञाबलम्। अश्रद्धा-अवीर्य-अस्मृति-असमाधि-अप्रज्ञानामावरणक्षयेण श्रद्धादीनि बलानि भवन्ति, तैर्बलैर्विशुद्धाः। उष्णीष-विघ्नान्तक-[2]प्रज्ञान्तक-पद्मान्तक-यमान्तक-क्रोधराजानः शुद्धा इति। **खलु पुनरपराः** सुम्भराज-नीलदण्ड-टक्कि-अचल-महाबलाः। **पञ्चकर्मेन्द्रियै**र्भगवाक्पाणिपादपायुभिः कर्मेन्द्रियक्रियाभिः। रौद्राक्ष्यादिभिः सार्धं परिशुद्धा इति ॥ १०४ ॥

चामुण्डाद्यष्टयामैः कमलदलगताः सूर्यलग्नैर्घटीभि-
र्दैत्याद्याः सूर्यमासैः कमलदलगता नाडिकाश्वाससंख्यैः।
नागाश्चण्डाश्च गुह्ये द्विगुणनृपतिभिर्नाडिकाभिर्विशुद्धा
एवं चेच्छादयस्ताः प्रकृतिगुणवशात् कायकृत्यैर्विशुद्धाः ॥१०५॥

चामुण्डाद्या अष्टयामैः कमलदलगताः सूर्यलग्नैर्घटीभिः षष्टिभिर्भीमादयश्चतस्रः शून्यपत्रविशुद्धया निर्माणचक्रावरणक्षयेणान्यास्ताश्चर्चिकादयो भीमादयश्चेति शुद्धाः। **दैत्याद्या** इति। नैर्ऋत्यवाय्वग्निषण्मुखसमुद्रगणेन्द्रशक्रब्रह्मरुद्रयक्षविष्णुयमा इति द्वादश चैत्रवैशाखज्येष्ठाषाढश्रावण[3]भाद्राश्विनकार्तिकमार्गशिरपौषमाघफाल्गुन[4]नामावरणक्षयेण शुद्धाः। तेषां **कमलदलगताः** षष्ट्युत्तरत्रिशतं लास्यादियुक्तं **नाडिकाश्वाससंख्यैर्दिनैः** षष्ट्युत्तरत्रिशतदिनावरणक्षयेण शुद्धाः। अन्ये ते देवा अन्यास्ताः पत्रदेव्य इति शुद्धाः। **नागाश्चण्डाश्च गुह्ये द्विगुणनृपतिभिर्नाडिकाभिर्विशुद्धाः**[5] प्रज्ञोपायभेदेन द्विगुणत्वम्। **एवं चेच्छादय** इति। इह—इच्छा षट्त्रिंशत्, प्रतीच्छा षट्त्रिंशत् पूर्वोक्ताः **प्रकृतिगुणवशात् कायकृत्यैर्विशुद्धाः**। कायकृत्यावरणक्षयेण [282a] इत्यन्यास्ता इच्छादयः शुद्धाः ॥ १०५ ॥

केशैः सिद्धाः समस्ताश्चितिभुवनगतं लोमभिर्भूतवृन्दं
तत्त्वैरस्त्राणि भर्तुः प्रकृतिगुणवशाद् धातुभिर्बाह्यमुद्राः।
वज्रैरध्यात्ममुद्राः पविधरहृदये संस्थिताश्चन्द्रमूर्ध्नि
श्रीवज्री विश्वमाता त्रिविधभवगता चाक्षरज्ञानयोगात् ॥१०६॥

---

१. क. सभार्या, ग. सविद्या। २. ग. 'प्रज्ञान्तकपद्मान्तक' नास्ति। ३. ग. च. भाद्रपदा। ४. ग. च. मासा। ५. भो. Ces Pa (इति) इत्यधिकम्।

केशैः सिद्धाः समस्ता [1]निरावरण**लोमभिः** सार्धत्रिकोटिभिः श्मशाने **भूतवृन्दं** विशुद्धमेवमन्ये ते सिद्धाः। अन्ये भूता इति शुद्धाः। **तत्त्वैश्चतुर्विंशतिभिर्निरावरणे**र्वज्रादीन्यस्त्राणि **भर्तुः** शुद्धानि चतुर्विंशतिविधप्रकृते[2]रभावादिति। **प्रकृतिगुणवशादिति।** प्रकृतिः पृथिव्यादिधातुसमूहस्तेषां गुणाः षड् विषयास्तेषामावरणक्षयात्। **अन्यै**र्गन्धादिधातुभिः **षड्भिः षड्** [3]**बाह्यमुद्रा** विशुद्धा इति। **वज्रैरिति** कायवाक्चित्तज्ञानवज्रैर्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुर्यालक्षणैर्विशुद्धैर्निरावरणाद**ध्यात्ममुद्राः** शुद्धाः। अन्यास्ताः कायमुद्रादयश्चत[4]स्रो विशुद्धा इति। **पविधरहृदय** इति। मण्डलनायकहृदये **संस्थिता**[5]**श्चन्द्रमूर्ध्नि**। **श्रीवज्री** सहजानन्दः परमाक्षरः। **विश्वमाता** सर्वाकारशून्यताज्ञानं त्र्यध्वदर्शनम्। च्यवनसुखकल्पनावरणक्षयादिति शुद्धम्। **त्रिविधभवगताः।** सर्वे सर्वतः सर्वदा स्कन्धादयो विशुद्धाः सर्वावरणक्षयादिति भगवतो नियमः। एवं भवस्य परिज्ञानं निर्वाणमिति कथ्यते। इहातीतानागतवर्तमाने त्र्यध्वनि त्रिभवस्य यथाभूतदर्शनं परिज्ञानं तदेव त्रिभवावरणक्षयेण हेतुफलनिरोधेन संबुद्धानां यौगपद्येन भवति सर्वज्ञता-सर्वाकारज्ञता-मार्गज्ञता-मार्गाकारज्ञताबलेन। न श्रावकप्रत्येकबुद्धानां [6]बोधिसत्त्वानां च यौगपद्येन त्र्यध्वनि यथाभूतं त्रिभवस्य परिज्ञानं भवति सोपधिनिर्वाणधातुत इति। [7]यथा बोधिसत्त्वानां लवमात्रावरणतः, एवं क्रोधेन्द्राणामपि सिद्धं दशभूमीश्वरत्वम् ॥ १०६ ॥

इदानीं शुद्धधर्मकायाद्युत्पत्तिरुच्यते—

श्रीशुद्धाद्धर्मकायो भवति खलु सुसंभोगकायो हि धर्माद्
भोगान्निर्माणकायो भवति जिनपतेः सर्वसत्त्वार्थकर्तुः। [282b]
तुर्यावस्था सुषुप्ता खलु पुनरपरा कायभेदात्तु जाग्रा
एवं कायप्रभेदैर्विहरति च मनः प्राणिनोऽङ्गे चतुर्धा ॥१०७॥

श्रीशुद्धादित्यादि। इह संवृतिसत्ये प्रतीत्योत्पन्नधर्माः क्षणिका उत्पादव्ययलक्षणाः, भवस्यापरिज्ञानात्। अविद्यावासनातस्तुर्यादयोऽवस्थाश्चतस्रः संसारिणां भवन्ति। तेषु कायप्रभेदैर्मनश्चतुर्धा विहरति[8]। **प्राणिनोऽङ्गे चतुर्धा।** इहाधानकाले गर्भावक्रमणे शुक्रच्यवनावस्था तुर्या, सा च संवृत्या महासुखमित्युक्तम्। तदेव श्रीकारादद्वयं ज्ञानं संवृत्या शुद्धकायः, सहजकाय इत्यर्थः। तस्माद् **धर्मकायः** सुषुप्तावस्थालक्षणः। तस्मात् **संभोगकायः** स्वप्नलक्षणः। तस्मा**न्निर्माणकायो** जाग्रल्लक्षणः। कायनिष्पत्तेः प्राणनिर्गमकालाद्बाह्ये पुनरुक्तश्चतुर्धा। एवं मण्डले कायभेदो भवति। **जिनपतेः सर्वसत्त्वार्थकर्तुः** संवृत्यावरणक्षयादिति। त्रैधातुके परचित्तज्ञाने **मनो विहरति।** [9]पूर्वनिवासानुस्मृतौ च भवपरिज्ञानत इति ॥ १०७ ॥

---

१. क. च. निवारण। २. ग. भाव, च. भावत। ३. ग. बाह्यविशुद्धा मुद्रा। ४. ग. च. स्रो मुद्रा, ग. 'विशुद्धा' नास्ति। ५. ग. च. श्चतुर्मू। ६. ग. भूतबोधि। ७. ग. च. भो. तथा। ८. च. विहरतीति। ९. ग. पूर्ववासा।

इदानीं चतुष्कायकृत्यमुच्यते—

निर्माणे भोगकर्तृ प्रभवति हि मनः कायवागिन्द्रियैश्च
संभोगेऽदृष्टचिन्तां व्रजति गुणवशाद् धर्मकाये च निद्राम्।
शुद्धे सौख्यं प्रयात्यत्र दिननिशिसमये बिन्दुमोक्षत्रयान्ते
तस्मात् तद्भावनीयं प्रतिदिनसमये योगिना चाक्षरार्थम् ॥१०८॥

निर्माण इत्यादि। इह संसारिणां **निर्माणे** जाग्रदवस्थायां **भोगकर्तृ प्रभवति मनः कायवागिन्द्रियैः** करणभूतैर्विषयेषु। **संभोगे** स्वप्नावस्थाया**मदृष्ट**विषयेष्वजडेषु [1]**चिन्तां व्रजति गुणवशादिति** विषयवासनावशात्। **धर्मकाये** सुषुप्तावस्थायां **निद्रां च** [2]याति निरिन्द्रियं मनो भवतीत्यर्थः। **शुद्धे** तुर्यावस्थायां **सौख्यं प्रयाति।** **अत्र दिनसमये निशि समये** वा। समय इति कालः, तस्मिन् काले मैथुने कृते एकस्मिन् समये **बिन्दुमोक्षत्रयान्ते** सहजक्षणे महासुखं प्रयातीति। [283a] संवृत्या तत्त्वं यस्मात् **तस्मात् तद्भावनीय**महर्निशिकाले **योगिना चाक्षरार्थ**मित्यच्युतक्षणार्थं वक्ष्यमाणेन षडङ्गेनेति नियमः। एवं सावरणधर्मे निरुद्धे निरावरणधर्मो भवत्युत्पादव्ययरहित इति न्यायः ॥ १०८ ॥

इदानीं प्रत्यालीढपदादिविशुद्धिरुच्यते—

वामे प्राणप्रचारः प्रभवति च तथाऽऽकुञ्चनं दक्षिणे यत्
प्रत्यालीढं पदं तत्समपदमपरालीढमग्न्यर्कचारात्।
वैशाखं मण्डलं वै वरललितपदं पद्मवज्रासनं च
व्योमादौ च प्रचारः समविषमगतौ पञ्चधा प्राणवायोः ॥१०९॥

वामेत्यादि। इह संसारिणां [3]यदा वामनाड्यां प्राणस्य प्रचारो भवति, तदा दक्षिणे [4]संकोचो भवति। प्राणोऽपि मन्त्रदेवता। तेन वामप्रसारेण दक्षिणसंकोचनेन **वामे प्राणसंचारो** [5]यत्तद् **भवति। तथाऽऽकुञ्चनं दक्षिणे यत् प्रत्यालीढं पदं** तदुच्यते मन्त्रदेवतायाः। **समपदमपरमालीढपदं** यथासंख्य**मग्नि**चारादिति मध्यमाचारात्। यौगपद्येन नाडीद्वये समपदं [6]भवेत्। **अर्कचारादिति** दक्षिण[7]चाराद् वामसं[8]कोचनादालीढं पदं भवति। एवं **वैशा**[9]**खपदं मण्डलं** च **ललितपदं** च **पद्मासनं** च [10]**वज्रासनं च** यत्तद् यथाक्रमेण वामनाड्यां दक्षिणनाड्यां वा, **व्योमादौ** चेत्याकाशमण्डले

---

१. ग. चित्तं। २. च. प्रयाति। ३. क. यथा। ४. च. संकोचनं। ५. च. यद्भवति। ६. च. भवति। ७. च. प्रचारात्। ८. ग. च. कोचा। ९. ग. खपदं तन्मण्डलं। १०. ख. 'वज्रासनं च' नास्ति।

प्राण[1]सञ्चारो वैशाखपदम्। वायुमण्डले प्रचारो मण्डलपदम्। अग्निमण्डले प्रचारो ललितपदम्। उदकमण्डले प्रचारः पद्मासनम्। पृथिवीमण्डले प्रचारो वज्रासनमिति। एवं **समविषमगतौ पञ्चधा प्राणवायोः** प्रचारो यस्तेन विशुद्धेन देवतानां पदासनविशुद्धिः प्रकम्पाभावतो [2]भवतीति नियमः। एवं जातकस्य वाङ्निष्पत्ति-
5 द्वितीया॥ १०९॥

इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां साधनापटले
प्राणदेवतोत्पादमहोद्देशस्तृतीयः॥

४. उत्पन्नक्रमसाधनमहोद्देशः

10 प्रणिपत्याच्युतं सौख्यं षोडशार्धार्धबिन्दुधृक्।
यत्तस्योपायः सम्यग् बिन्दुयोगः प्रकथ्यते॥

चण्डाली नाभिचक्रे नवहतभुजगे चर्चिकाद्याधिदैवे
होकारज्ञानगर्भे तडिदनलनिभा ज्ञानतेजःप्रबुद्धा।
नाभौ वैरोचनादीन् दहति नरपते लोचना चक्षुरादीन्
15 सर्वान् दग्ध्वा सुचन्द्रात्स्रवति शिरसि यो बिन्दुरूपं स वज्री॥११०॥

[283b]

चण्डालीत्यादिना। इह सर्वोत्पत्तिक्रमे कायनिष्पत्तिर्मण्डलराजाग्री। वाङ्-निष्पत्तिः कर्मराजाग्री, कर्मेन्द्रियक्रियाप्रवर्तनात्। बोधिचित्तबिन्दुनिष्पत्तिर्बिन्दुयोगः। शुक्रच्यवनात् सुखोपलब्धिः सूक्ष्मयोगः। स च नराणां षोडशवर्षान्ते भवति। तेन
20 तस्योप[3]भोगाय विवाहपाणिग्रहणादिकं कार्यम्। शिष्याय प्रज्ञासमर्पणं करोत्याचार्यः। तया तस्य सुखस्य साधनं कर्ममुद्रयोक्तं बालजनानाम्, ज्ञानमुद्रया मध्यमानाम्, महामुद्रयोत्तमयोगिनामिति। तेन **मूलतन्त्रे** भगवान् [4]आह—

षोडशाब्दां कुलीनां वा रूपयौवनमण्डिताम्।
आदौ सुशिक्षितां कृत्वा सिक्त्वा साधनमारभेत्॥
25 कायवाक्चित्तरागांश्च ललाटादिषु विन्यसेत्।
स्वाहा गुह्ये महोष्णीषे ततः पद्मं विशोधयेत्॥
आःकारेणाष्टदलं पद्मं हूँकारकुलिशान्वितम्।
एवं सकुलिशं कमलं प्रज्ञायाः स्पन्दहेतुतः॥

---

१. ग. च. प्रचारो। २. इतः परं ग-पुस्तके ३११ पत्राभावात् 'भवतीति ...... द्वादश-राशिनाड्यात्मकं' इति यावत् पाठो नास्ति। ३. च. योगाय। ४. क. ख. ग. ङ. 'आह' नास्ति।

हूँकारेण स्वकं वज्रं पञ्चशूकं विभावयेत्।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं आःकारेण प्रकल्पयेत्॥
एवं सकमलं कुलिशं कृत्वा पद्मे निवेशयेत्।
हूँ फट् कुर्वंस्ततो योगी गर्वं वज्रधरं वहन्॥
भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत्। 5
भावयेद् बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः॥
चण्डाली ज्वलिता नाभौ दहति पञ्च तथागतान्।
लोचना चक्षुरादींश्च दग्धे हं स्रवते शशी॥
स्रवते बिन्दुरूपेण अमृतं शुक्ररूपिणम्।
बिन्दुयोग इति ख्यातः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक्॥ 10
अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक्।
सूक्ष्मयोग इति ख्यातो [1]निःस्पन्दादिगतोर्ध्वतः॥
शङ्खिनीयं महामुद्रा चण्डाली सा प्रगीयते।
[2]नाभ्यूर्ध्वं डोम्बिनी या तु अवधूती नरनासिका॥
पञ्चरश्मिमयः प्राणः पञ्चमण्डलवाहकः। 15
नासाग्रे सर्षपः ख्यातः प्राणायामः स च स्मृतः॥
त्रि[284a]भवस्य परिज्ञानं त्रैधातुकमशेषतः।
प्राणे निबोधिते तच्च सर्षपे सचराचरम्॥
प्रत्याहारे महामुद्रा आकाशे शून्यलक्षणम्।
नासिका तत्प्रदेशे च यत्रैवारोपितं मनः॥ 20
निमित्तान्ते[3] तु या रेखा तस्यां [4]बिम्बं चराचरम्।
भावयेदखिलं तस्यां योगी ध्यानादिकं च तत्॥

इति **मूलतन्त्रे** नियमः। अस्मिन् पुनः संक्षेपत उक्तः। तेन मूलतन्त्रानुसारेणा-वगन्तव्य इति भगवतो मञ्जुश्रियो नियमः। **चण्डाली नाभिचक्रे नवहतभुजग** इति। इह नाभौ नाडीचक्रं नवहतभुजगं द्वासप्ततिनाडिकात्मकं द्वादशराशिनाड्यात्मकम्, 25 षष्टिमण्डलनाड्यात्मकम्। तस्मिन् नवहतभुजगे **चर्चिकाद्याधिदैवे** [5]**होकार-ज्ञानगर्भे** ज्ञानवज्राधिष्ठिते **तडिद**[6]**नलनिभा** चण्डाली **ज्ञानतेजःप्रबुद्धे**ति। संवृत्या ज्ञानं कामस्तस्य तेजः कामाग्निस्तेन कामाग्निना प्रबुद्धा सती **नाभौ** निर्माणचक्रे **दहति वैरोचनादीन्** पञ्चमण्डलगतान् [7]वामे, दक्षिणे **लोचना चक्षुरादीन्** दहति, चक्षुरादीन्द्रि-याणि रूपादीन् विषयानपि, मनसो धर्मधातुग्रहणात् सर्वेषामप्रवृत्तिरिति दहनम्। 30

---

१. भो. rGyu mThun (निष्यन्द)। २. क. ख. नात्यूर्ध्वं। ३. च. तान्त्ये। ४. च. भो. विश्वं। ५. च. होः। ६. ग. च. भो. दमल। ७. . क. ख. ग. ङ. वाम।

एवं **सर्वान् दग्ध्वा सुचन्द्रादिति** जन्मबोधिबीजाच्छिरसि **स्रवति यो** हंकारो **बिन्दुरूपं** शुक्रमागन्तुकं **स वज्री** बोधिचित्तमित्यर्थः। शिरसः कण्ठे, कण्ठाद् हृदये, हृदयान्नाभौ, नाभेर्गुह्यकमले ॥ ११० ॥

प्रज्ञाधर्मोदयस्थं पुनरपि सकलं स्फारितं बिन्दुना वै
नानालङ्कारयुक्तादरशगतमिव ज्ञानचक्रं स्वयम्भूः ।
कामं रूपं ह्यरूपं त्रिविधमपि भवं शोधयित्वा क्रमेण
पश्चाज्ज्ञानार्चिषा वै त्रिभुवनसकलं ह्येकदाकर्षणीयम् ॥११११॥

तदेव कमलं प्रज्ञाधर्मोदय उच्यते। एवं नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमलानि प्रज्ञाधर्मोदय उच्यते। एवं [1]द्रुतः सन् गुह्ये कायबिन्दुः, नाभौ वाग्बिन्दुः, हृदये चित्तबिन्दुः, [2]कण्ठे ज्ञानबिन्दुः। एवं **प्रज्ञाधर्मोदयस्थं** बोधिचित्तं **पुनरपी**ति यथागतं तथागतं **स्फारित**मित्युच्यते। यथा ललाटादानन्दादिभेदेनागतं विचित्रादिभेदेन वा पञ्चदश-[284b]चन्द्रकलापरिपूर्णम्, तथा [3]निःस्पन्दादिभेदेनोर्ध्वे ललाटे गतं वैमल्यं स्फारितं भवति। तेन **बिन्दुना** वैमल्येन **नानालङ्कारयुक्तमादर्शगतमिव** प्रतिसेनासमं त्र्यध्वगतं **ज्ञानचक्रं स्वयम्भू**रिति बिन्दुयोगात् सूक्ष्मयोगोऽभूत्। एवं **कामं रूपं ह्यरूपं त्रिविधमपि भवं शोधयित्वा क्रमेणे**ति कायवाक्चित्तबिन्दूत्पत्तिक्रमेण। **पश्चाज्ज्ञानार्चिषा वै** इति। अच्युतसुखरश्मिभिः। **त्रिभुवनसकल**मिति। त्रैधातुक**मेकदाकर्षणीय**मिति यौगपद्येन त्रैकाल्यज्ञानम्। देवतायोगे [4]देवतामण्डलचक्राकारस्फरणम्, संसारिणां पुत्रदुहितृस्फरणं बोधिचित्तत इति। एवं षोडशवर्षात्रधेर्गर्भजानां कायवाक्चित्तज्ञाननिष्पत्तिः, देवतानां भावनाबलेन, बुद्धानां चतुर्विमोक्षबलेनेति संवृतिपरमार्थसत्यतः ॥ १११ ॥

इदानीमध्यात्मनि मन्त्रजापादिकमुच्यते—

चन्द्रादित्यादिकाद्यैस्त्रिविधगतिगतः कायवज्रादिजापः
प्रत्याहारादिषड्भिः सुकनककमले कायवाक्चित्तयोगः ।
आनन्दाद्यैस्तु वज्राब्जसमरसगतैर्भावनेयं त्रिवज्रा
प्रज्ञाब्जे चित्तबिन्दौ सहजसुखवशाद् भावनाऽनाहता स्यात् ॥११२॥

चन्द्रेत्यादिना। इह शरीरे **चन्द्र** इति वामनाडी, [5]**आदित्य** इति दक्षिणनाडी। **आदी**ति अकारादिस्वरसमूहो वामे प्राणसंचारः। **कादी**ति व्यञ्जनसमूहो दक्षिणे

[1]. भो. Šu Ba (द्रवः)। २. क. ख. 'कण्ठे ज्ञानबिन्दुः' नास्ति। ३. भो. rGyu mThun Pa (निष्यन्द)। ४. भो. 'देवता' नास्ति। ५. ग. 'आदित्य''''नाडी' नास्ति।

प्राणसंचारः। **त्रिविधगतिगत** इति। [1]वामे गतिगतः प्राणः **कायवज्रजाप** इत्युच्यते। [2]दक्षिणे गतिगतः प्राणो वाग्जाप इत्युच्यते। मध्यमागतिगतः प्राणश्चित्तजाप इत्युच्यते। एषां निरोधाद् अनाहता सर्वज्ञभाषा भवति। तेनायं षडङ्गयोगो भावनीयः **प्रत्याहारादिषड्भि**रिति।

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामश्च धारणा।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग इष्यते ॥ इति।
(गु० त० १८.१४०)

एभिरभ्यस्यमानैर्वक्ष्यमाणैः [3]**सुकनककमल** इति नाभिकमले **कायवाक्चित्तयोग** इति त्रिविधगतिगतस्य प्राणस्य निरोध इत्यर्थः। ततो निरोधा**दानन्दाद्यै**रित्यानन्दपरमविरम[4]सह[285a]जै**र्वज्राब्जैः समरसगतै**रच्युतत्वाद् **भावनेयं त्रिवज्रा** शुक्रविण्मूत्रनिरोध इत्यर्थः। तथा **मूलतन्त्रे**—

मध्यमोत्तमश्वासेन गन्धोदक[5]युतेन च।
कुलिकां पूजयेन्नित्यं कालविशेषेण दूतिकाः ॥

इति [6]नियमः। ततः **प्रज्ञाब्जे** गुह्यकमले **चित्तबिन्दौ** स्थिते सति **सहजसुखवशा**दित्यक्षरसुखवशाद् **भावनाऽनाहता स्याद्** ऊर्ध्व[7]रेतस इति ॥ ११२ ॥

इदानीं सेवादिकमुच्यते—

सेवा पञ्चामृताद्यैर्जलनिधिकुलिशैर्मन्त्रजापादिभिश्च
प्रत्याहारादिभिः स्यात् कुलिशकमलजेनामृतेनोपसिद्धिः ।
आनन्दाद्यैस्त्रिवज्राब्जसमरसगता भावना साधनं स्यात्
प्रज्ञासङ्गेऽच्युतं संभवति खलु महासाधनं सूक्ष्मयोगात् ॥११३॥

सेवेत्यादि। इहादिकर्मिकेण प्रथमं सेवा कर्तव्या [8]साधनविधिना। **सेवा पञ्चामृताद्यै**रिति। बाह्ये पञ्चामृतं विडादिकम्। आदिशब्देन गोक्त्रादिकम्, तैर्भक्षितैः सेवा देवतातोषणार्थम्। अध्यात्मनि पञ्चामृतानि पञ्चस्कन्धाः। आदिशब्देन पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चप्रदीपाः। तेषां निरपेक्षता सेवा शरीरद्रव्यतृष्णापरित्यागः। तया सेवया देवता वरदा भवन्ति, न गूथादिभक्षितेनेति। **जलनिधिकुलिशै**रिति कायभोगनिरपेक्षता, वाग्भोगनिरपेक्षता, चित्तभोगनिरपेक्षता, च्यवन[9]सुखनिरपेक्षता [10]सेवा, कायवाक्चित्तब्रह्मचर्यसंयम इत्यर्थः। अनया देवता वरदा भवन्ति, न भवभोगस्पृहयेति।

१. ख. ग. च. वाम। २. ग. च. दक्षिण। ३. ग. स्वकनक। ४. ग. सहजवज्राब्जैः। ५. क. पुटेन। ६. भो. 'नियमः' नास्ति। ७. क. तेजसः। ८. क. ख. छ. साधना। ९. ग. 'सुख' नास्ति। १०. ग. भो. सेवा इति।

मन्त्रजापादिभिश्चेति। इह मन्त्रजापो नाम प्राणसंयमः। आदिशब्देन रेचकपूरककुम्भकयोगः सदा सेवा, तया देवता वरदा भवन्ति, न प्राणेनायन्त्रितेन वाग्जल्पितेनेति नीतार्थः। नेयार्थेन पुनरक्षसूत्रादिना जापादिकं कर्तव्यं सामान्यसिद्ध्यर्थम्।

इदानीमुपसाधनमुच्यते—प्रत्येत्यादि। इह **प्रत्याहार** इति। इह संसारिणामाहार[1]श्चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणम्, [2]तत्परित्यागः प्रत्याहार इत्युच्यते। शू[285b]न्यताबिम्बेऽन्यैश्चक्षुरादिभिर्मासाद्यै रन्यरूपादिविषयग्रहणमुपसाधनम्। तथा ध्यानं प्राणायामश्च [3]धारणा। **कुलिशकमलजेनामृतेनाच्युतेनोपसाधनं** नीतार्थेन, [4]बाह्ये देवतोत्सर्जनेन नेयार्थेनेत्युपसाधनसिद्धिः।

इदानीं साधनमुच्यते—**आनन्देत्यादि**। [5]इहानन्दे **त्रिवज्राः** कायवाक्चित्तबिन्दवोऽ**क्षसमरसगता भावना साधनं स्यात्**। हृन्नाभिगुह्ये बिन्दूनां स्थितिरित्यर्थः। एवं साधनम्। ततो महासाधनं **प्रज्ञासङ्गेऽच्युतं** सुखं [6]**सम्भवति** यदा, तदा **खलु महासाधनं सूक्ष्मयोगादिति**। सुषुम्नानाडि[7]कोर्ध्वं शुक्रसंयोगान्महासाधनमित्युच्यते नीतार्थेन। नेयार्थेन पुनः प्रज्ञाधर्मोदयनासिकाग्रे सर्षपादिकमिति नियमः। एवं महासाधनं भवति॥ ११३॥

इदानीं [8]मृद्वादिमात्राभेदेन सेवादिकमुच्यते—

आदौ वै शून्यताबोधिरपि खलु ततः संग्रहश्चन्द्रबिन्दो-
बिम्बोत्पत्तिश्च तस्मात् प्रवररसकुलैरक्षरन्यास एव।
एषा सामान्यसेवा जलनिधिकुलिशैः साधनं मध्यमं च
अत्रोपायश्चतुर्धा भवति मृदुदृढः साधनाङ्गे तथैव ॥११४॥

आदावित्यादि। इहोत्पत्तिक्रमे प्रथमं **शून्यताबोधिरिति** प्राणिनां मरणान्ते स्कन्धपरित्यागादुपपत्त्यंशिकस्कन्धग्रहणाद्यदन्तरालं शून्यताक्षणमेकं त्रिभवदर्शनं शून्यमित्युच्यते। **खलु** निश्चितम्। [9]**ततः** क्षणात् पश्चात् **संग्रहश्चन्द्रबिन्दोरिति**। इहा[10]लयविज्ञानस्य मातृगर्भे शुक्रबिन्दूनां ग्रहणं नाम संग्रहः। ततः शुक्रादिग्रहणात् **तस्माद् बिम्बोत्पत्तिर्नाम** सप्तमासैर्गर्भनिष्पत्तिः, [11]कायनिष्पत्तिरित्यर्थः। ततः **प्रवररसकुलैरिति** षट्स्कन्धैश्चक्षुरादीना**मक्षरन्यासो** रूपादिविषयप्रवृत्तिरिति। एवं देवतासाधनेऽपि कल्पनात्मकं भावयेदादिकर्मिकः। **एषा सामान्यसेवा जलनिधिकुलिशैरिति**। कायवाक्चित्तज्ञानवज्रनिष्पन्नैः **साधनं मध्यमं च** प्रा[236a]णनिष्पत्तिः। **अत्रोपाय-**

---

१. च. रश्च च। २. क. ख. छ. ततः। ३. ग. धारणया, च. धारणात्। ४. ग. बाह्य। ५. भो. ḥDir dGaḥ Ba La Sogs rNams Kyis (इहानन्दाद्यैः)। ६. ग. भवति। ७. च. कोर्ध्वे। ८. भो. मृद्वधिमात्र। ९. क. च. छ. तत्। १०. ग. लयन। ११. ग. 'कायनिष्पत्तिः' नास्ति।

श्चतुर्धा भवतीति सेवाङ्गे। उपसाधनाङ्गे [1]**मृदुर्दृढः। साधनाङ्गे तथैव** षोडशवर्षावधेरिति नियमः। अत्र मृदुर्जातबालः। दन्तोत्थानान्मध्यमबालः। दन्तपातात् कुमारः। पुनर्दन्तोत्थानात् षोडशवर्षोर्ध्वं प्रौढः, पुत्रदुहितृजनकत्वादिति। एवं सर्वदेवतानां चतुर्विधमङ्गं योगिना भावनीयमिति लौकिकसत्यनियमः।

इदानीं परमार्थसत्येन बुद्धबिम्बनिष्पत्तिरुच्यते—इह प्रथमं **शून्यताबोधिरिति**, अन्धकारे न किञ्चिदपि चिन्तनीयम्। ततः **संग्रहश्चन्द्रबिन्दोरिति** बिन्दुपर्यन्तं धूमादिनिमित्तग्रहणम्। **बिम्बोत्पत्तिश्च तस्मादिति** तस्माद्बिन्दोर्विश्वदर्शनं बिम्बोत्पत्तिः। **प्रवररसकुलैरिति** निरावरणैः षट्स्कन्धैः। **अक्षरन्यास** इति प्रादेशिकस्कन्धधात्वायतनादीनां निरोधः। अतो मृद्वादिभेदो भूमिलाभेन भवति, यावन्न द्वादशभूमीश्वरो भवति। ततः—

द्वादशाकारसत्यार्थः षोडशाकारतत्त्ववित्।
विंशत्याकारसंबोधिर्विबुद्धः सर्ववित् परः॥
(ना. सं. ९.१५)

इति नियमः॥ ११४॥

इदानीं षडङ्गयोग उच्यते—

प्रत्याहारो जिनेन्द्रो भवति दशविधो ध्यानमक्षोभ्य एव
प्राणायामश्च खड्गी पुनरपि दशधा धारणा रत्नपाणिः।
डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधरः श्रीसमाधिश्च चक्री
एकैकः पञ्चभेदैः पुनरपि च यतो भिद्यते ह्यादिकाद्यैः ॥११५॥

प्रत्याहार [2]इत्यादिना। इह **प्रत्याहार** आदिकर्मणि **जिनेन्द्र** इति ज्ञानस्कन्धः। स च निमित्तभेदेन **दशविधो** धूममरीचिखद्योतदीपज्वालाचन्द्रादित्यराहुकलाबिन्दुदर्शनभेदेनाकल्पितो ज्ञानस्कन्धः। **ध्यानमक्षोभ्य एव** [3]दशविधो विज्ञानस्कन्धो विषयविषयिणां दशानामेकत्वं विश्वबिम्बे ध्यानमिति। **प्राणायामश्च** दशविधः। **खड्गीति** संस्कारस्कन्धः, वाम[4]दक्षिणदशमण्डलैकलोलीभूतत्वादिति। **पुनरपि दशधा धारणा** [286b]**रत्नपाणिरिति** वेदनास्कन्धः। प्राणस्य धारणा नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमले गतागतभेदेन दशविध इति। **डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधर** इति संज्ञास्कन्धो दशविधः। स चानुस्मृतिर्डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामावस्थाभेदत इति। **श्रीसमाधिश्च चक्रीति** वैरोचनो दशविधः। समाधिर्दशवायूनां निरोधत इति। एवं भगवान-

---

१. क. छ. 'मृदुर्दृढः। साधनाङ्गे' नास्ति। २. ग. च. इत्यादि। ३. ग. दशदिशो। ४. ग. दक्षिणेन।

२७

प्रतिष्ठितनिर्वाणोऽवाते वायुना नीयत इत्यर्थः। [1]**एकैकः पञ्चभेदैरिति**। अत्र एकैकयोगः पञ्चमण्डलवाहकः। **आदिकाद्यैरिति** स्वरव्यञ्जनैः वामदक्षिणप्राणसञ्चारनिरोधैः॥ ११५ ॥

इदानीं प्रत्याहारादिलक्षणमुच्यते—

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे
प्रज्ञा तर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम् ।
प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशो
बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम् ॥११६॥

प्रत्येत्यादि। इह **प्रत्याहारो** नाम शरीरे **विषयविषयिणां दशानां** सम्बन्धेना**प्रवृत्तिर्**विज्ञानस्य शून्यबिम्बे, विषयेषु प्रवृत्तिरन्यैश्चक्षुरादिभिः पञ्चविधैरिति। तथा तस्मिन्नेव बिम्बे **प्रज्ञे**त्यालोकनम्। **तर्क** इति भावग्रहणम्। **विचार** इति तस्य निश्चयार्थः। **रतिरिति** बिम्बासक्तिः। **अचलसुखमिति** बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणम्। एवं ग्राह्यग्राहकभेदेन **ध्यानं** दशविधम्। इह **प्राणायामो** नाम **द्विमार्ग** इति वामदक्षिणमार्गः। **स्खलनम्** निरोधो **मध्यमे** मार्गे प्रवेशः, स च दशविधो दशमण्डलरोधतः। इह **बिन्दाविति** ललाटे **प्राणप्रवेशः**। **उभयगतिहत** इति गमनागमनरहितः। **धारणा** प्राणस्य ललाटे **एकचित्तं** नाम ॥ ११६ ॥

चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात्
प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरणसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः ।
एतन्मुद्रादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तु-
स्तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशात् कर्मसङ्कल्पदिव्याः ॥११७॥
[287a]

चण्डाल्यालोकनं यत् त्रिभवस्याम्बरे **साऽनुस्मृतिर्**दशविधा [2]प्रोक्ता। **प्रज्ञोपायात्मकेनेति** ज्ञेयज्ञानैकलोलीभूतेन। **अक्षरणसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिश्चेति**। सापि दशविधा प्राणादीनामभावत इति। एवं षडङ्गयोगसाधनम्। **एतन्मुद्रादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तुः** कालचक्रस्य। **तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रा** इति। **त्रिविधगतिवशादिति**। इह बोधिचित्तस्य अक्षरगतिर्मृदुमात्रा, स्पन्दगतिर्मध्यमात्रा,

१. 'एकैकः ''' निरोधैः' गृहीतोऽयं पाठो भोटानुसारी, संस्कृतहस्तलेखेषु नास्ति-Re Re dBye Ba lŇa rNams Kyis Te Šes Pa Ni ḥDir sByor Ba Re Re Ni dKyil ḥKhor lŇa ḥBab Paḥo. A Sogs Ka Sogs rNam Kyi Šes Pa Ni dByaṅs Daṅ gSal Byed gYon Daṅ gYas Kyi Srog Yaṅ Dag Par rGyu Ba ḥGog Pas So. २. च. भो. पूर्वोक्ता।

निःस्पन्दगतिरधिमात्रेति। [1]एवं कर्ममुद्राक्षरसुखदायिनी, ज्ञानमुद्रा स्पन्दसुखदायिनी, महामुद्रा निःस्पन्दसुखदायिनी। एवं त्रिमुद्राभावना षडङ्गयोगे भगवतोक्ता। इति षडङ्गयोगो भावनीयो योगिना बुद्धत्वायेति ॥११७॥

इदानीं प्रत्याहारादिफलमुच्यते—

प्रत्याहारेण योगी विषयविरहितोऽधिष्ठ्यते सर्वमन्त्रैः
पञ्चाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्धः ।
प्राणायामेन शुद्धः शशिरविरहितः पूज्यते बोधिसत्त्वै-
र्मारक्लेशादिनाशं विशति दशबलं धारणाया बलेन ॥११८॥

प्रत्येत्यादि। इह **प्रत्याहारेण योगी**[2] यदा विशुद्धो भवति बिम्बेन स्थिरीभूतेन, तदा **सर्वमन्त्रैरधिष्ठ्यते**, वचसा वरदानादिकं ददाति। **पञ्चाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्ध** इति। इह यदाऽनि[3]मिषितचक्षुर्भवति तदा दिव्यचक्षुर्भवति। एवं दिव्यश्रोत्रो ध्यानेन शुद्धो भवति। **प्राणायामेन शुद्ध** इति। इह यदा **रविशशिमार्गरहितो** योगी भवति सदा मध्यमावाहकः, तदा प्राणायामेन शुद्धः सन् **पूज्यते बोधिसत्त्वैः**, प्रशंस्यत इत्यर्थः। **मारक्लेशादिनाशं विशति दशबलमिति** शून्यताबिम्बम् [4]इह ग्राह्यग्राहकचित्तं विशति **धारणाया बलेनेति** प्राणस्य गतागतक्षयेण एकलोलीभवति ॥११८॥ [287b]

संशुद्धोऽनुस्मृतेः स्याद् विमलमपि प्रभामण्डलं ज्ञानबिम्बात्
तस्माच्छुद्धः समाधौ कतिपयदिवसैः सिद्ध्यते ज्ञानदेहः ।
प्रत्याहारादिभिर्वै यदि भवति न सा मन्त्रिणामिष्टसिद्धि-
र्नादाभ्यासाद्धठेनाब्जगकुलिशमणौ साधयेद् बिन्दुरोधात् ॥११९॥

संशुद्धोऽनुस्मृतेररिति। इहानुस्मृतिर्बिम्बालिङ्गनं चित्तस्य सर्वविकल्परहितत्वम्, तस्माच्छुद्धो यदा तदा **विमलं प्रभामण्डलं** भवति। **अपि च** शब्दाद् रोमकूपात् स्फरन्ति पञ्चरश्मयो निश्चरन्ति **ज्ञानबिम्बाच्छू**न्यबिम्बादिति। **तस्माच्छुद्धः समाधाविति**। इह ग्राह्यग्राहकचित्तयोरेकत्वेन यदक्षरसुखं भवति, तत्सुखं समाधिरुच्यते। तस्मात् समाधिशुद्धो वैमल्यं गतः **कतिपयदिवसै**स्त्रिवर्षत्रिपक्ष[5]**दिवसैः सिद्ध्यते ज्ञानदेह** इति। दशवशितादिकं प्राप्तो बोधिसत्त्वो भवतीति प्रत्याहारादिनियमः।

१. ख. ग. छ. भो. एषां। २. च. यदा योगी। ३. ग. च. भो. मिषच। ४. च. भो. 'इह' नास्ति। ५ छ. दिनैः।

इदानीं हठयोग उच्यते। इह यदा **प्रत्याहारादिभिर्बिम्बे** दृष्टे सत्यक्षरक्षणं[1] नोत्पद्यते, अयन्त्रितप्राणतया, तदा **नादाभ्यासाद्** वक्ष्यमाणाद् **हठेन** [2]प्राणं मध्यमायां वाहयित्वा प्रज्ञा**ब्जगतकुलिशमणौ** बोधिचित्त**बिन्दु**[3]**निरोधा**दक्षरक्षणं **साधयेन्नि**स्पन्देनेति हठयोगः॥ ११९॥

इदानीं शून्यताबिम्बसाधनाय दृष्टिरुच्यते—

सेवायामादियोगो नभसि दशविधश्चक्रिणः क्रोधदृष्ट्या
दृष्ट्या विघ्नान्तकस्यामृतपथगतया चोपसाध्ये षडङ्गः।
प्रज्ञासृष्टेन्दुबिन्दोरपि कुलिशमणौ त्र्यक्षरः साधने स्यात्
सौख्याऽनष्टैकशान्तः सहज इह महासाधने ज्ञानयोगः ॥१२०॥

[288a]

सेवेत्यादि। इह सेवेत्यादिधूमादिनिमित्तभावना, तस्यां **सेवायामादियोगो** धूमादिनिमित्तग्रहणं चित्तस्येति। स च **दशविधो** धूमादिना सार्धं प्रत्ययो भवति। तेन दशविधः। स च **चक्रिण** इत्युष्णीषस्य। **क्रोधदृष्ट्या** इति ऊर्ध्वदृष्ट्याऽनिमिषया निमित्तं भवति रात्रियोगेन चतुर्विधम्, दिवायोगेन षड्विधम्। ततो[4] बिम्बपर्यन्तं सेवाङ्गं भवति प्रत्याहारेण ध्यानेनेति। [5]दृष्ट्या विघ्नान्तकस्येति विघ्नान्तकोऽमृतकुण्डली, तस्य दृष्टिरमृतस्थानगता ललाटगता, तया **दृष्ट्या विघ्नान्तकस्यामृतपथगतया चोपसाधने षडङ्गः**। चकारात् प्राणायामो धारणा कर्तव्या। प्राणस्य बिम्बे दृष्टे सति उपसाधनम्। **प्रज्ञासृष्टेन्दुबिन्दोरि**ति। इह प्रज्ञारागेण सृष्टश्चासाविन्दुबिन्दुः सृष्टेन्दुबिन्दुः, तस्य प्रज्ञासृष्टबोधिचित्तबिन्दोरपि **कुलिशमणौ** गतस्य यस्त्र्य**क्षरो** [6]योगो भवति गुह्ये नाभौ हृदये, स **साधने स्यादि**ति साधनाङ्गे तृतीये भवति। एवं साधनाङ्गं कर्तव्यम्। **सौख्याऽनष्टैकशान्त** इति। इह सौख्येनानष्टेन बोधिचित्तस्य य एकक्षणः, स शान्त इत्युच्यते। **सहज इह महासाधने ज्ञानयोग** इति चित्तस्याक्षरसुखेन सहैकत्वमिति महासाधनाङ्गं चतुर्थम्। एवं ज्ञानसाधने[7] चतुरङ्गम्। देवतासाधन उत्पत्तिक्रमेण पूर्वोक्तं लौकिकम्, लोकोत्तरतत्त्वसाधनमुत्पन्नक्रमेण। तथा[8] हि—

सत्यद्वयं समाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्येन सत्येन परमार्थतः॥ (म. शा. २४.८)

इति भगवतो नियमः। [9]पुनः—

क्रमद्वयं समाश्रित्य देशना वज्रिणो मम।
उत्पत्तिक्रमेणैका उत्पन्नक्रमतोऽपरा॥ इति। (गु. त. १८.३३)

---

१. क. ख. ग. छ. क्षणो। २. भो. 'प्राणं' नास्ति। ३. ग. निरोधक्षणरक्षणं। ४. क. ख. ग. भो. इतः परं 'बिम्बमेवम्' इत्यधिकः पाठः। ५. ग. 'दृष्ट्या''''कस्येति' नास्ति। ६. भो. 'योगो' नास्ति। ७. च. नाङ्गे। ८. भो. De bŠin Du gSuṅs Pa (तथाह)। ९. ग. 'पुनः' नास्ति।

एवं देवतासाधने विकल्पभावना, तत्त्वसाधने विकल्परहितैश्चतुरङ्गैरिति न्यायः॥ १२०॥

इदानीं प्राणायामलक्षणमुच्यते—

प्राणायामः समन्तात् समसुखफलदो मस्तके यावदिष्टः
तस्मादूर्ध्वं ह्यनिष्टो मरणभयकरः स्कन्धनिर्नाशहेतुः।
उष्णीषं भेदयित्वा परमसुखपदे योजनीयो व्रजन् वै
स्कन्धाऽभावेऽपि योगी व्रजति समसुखं किन्तु लोकेऽप्रसिद्धिः ॥१२१॥

प्राणेत्यादि। इह शून्यताबिम्बे दृष्टे सति यः **प्राणायामो** योगिना कर्तव्यः, स **यावन्मस्तके** इति शिरोव्यथां न करोति। स च **स**[288b]**मसुखफलदो** भवति। **तस्मादूर्ध्वमि**ति शिरोव्यथान्ता**दनिष्टो मरणभयकरो** भवति, **स्कन्धनिर्नाशहेतु**भूतो भवति। अथ योगबले**नोष्णीषं भेदयित्वा** प्राणो **व्रजन्** योगिना **परमसुखपदे** शून्यताबिम्बे **योजनीयो वै** एकान्तम्। एवं **स्कन्धाऽभावेऽपि योगी व्रजति समसुखं** बुद्धबिम्बमिति योगीति योगचित्तं व्रजति। **किन्तु लोकेऽप्रसिद्धि**रिति योगी मृतोऽयमिति प्राणायामनियमः॥ १२१॥

मध्ये प्राणप्रवेशो विषयविरहितालिङ्गनं विश्वमातुः
पद्माविष्टं स्ववज्रस्फरणमपि तथेन्द्वर्कमध्ये प्रवेशः।
सौख्यं बीजाप्रपाते सुरतरतिगतं योगिनां योगमेत-
न्मुद्रासिद्ध्यर्थहेतोः परममपि विभोः श्रीरहस्याद् रहस्यम् ॥१२२॥

अपरं वृत्तं सुबोधम्॥ १२२॥

इदानीं देवताविसर्जनमुच्यते—

उष्णीषे पञ्चशूकं भवति हि कुलिशं बाह्यशूकं द्विगुण्यं
वज्रं स्याद् धर्मचक्रे द्विगुणितमपरं तस्य चान्यद् द्विगुण्यम्।
तस्याप्यन्यद् द्विगुण्यं भवति सहजसंभोगनिर्माणचक्रे
तद्गर्भेऽप्येकशूकं समसुखफलदं गुह्यपद्मोदरस्थम् ॥१२३॥

[1]उष्णीष इत्यादि। इह मण्डलराजाग्रीं कर्मराजाग्रीं बिन्दुयोगं सूक्ष्मयोगं भावयित्वा पूजां स्तुतिं कृत्वा "नमस्ते वरदवज्राग्र" (ना. सं. ११.१) इत्यादिना,

---

१. ग. 'उष्णीष इत्यादि' नास्ति।

ततो मण्डलदेवतानां विसर्जनाय**ोष्णीषे पञ्चशूकं** वज्रं भावयेत् । तस्य वरटके महासुख-चक्रं विसर्जयेत् । तस्य **बाह्यशूकं**[1]**द्विगुण्यमष्ट**शूकं मध्यशूकेन सार्धं नवशूकं **वज्रं स्याद्धर्मचक्रे** हृदये । तस्य वरटके धूमादिकान् विसर्जयेत् । **द्विगुणितमपरं** षोडशशूकं मध्यशूकेन सार्धं सप्तदशशूकं **सहजे** ललाटे । तस्य वरटके स्कन्धधातुदेवता विसर्जयेत् । तस्य **चान्यद् द्विगुण्यमिति** द्वात्रिंशच्छूकं [2]मध्यशूकेन सार्धं त्रयस्त्रिंशच्छूकं **संभोगे** कण्ठे । तस्य वरटके द्वादशायतनचतुःक्रोधदेवता विसर्जयेत् । **तस्याप्यन्यद् द्विगुण्यमिति** चतुःषष्टिशूकं मध्यशूकेन सार्धं पञ्चषष्टिशूकं वज्रं **निर्माणे** नाभिचक्रे । तस्य वरटके चर्चिकादयो भीमादयश्चतुः[3]षष्टिमण्डलवाहिन्यश्चतस्रः शून्यकुलिकाः । एवं द्वासप्तति विसर्जयेत्ता इति । [289a]**तद्गर्भेऽप्येकशूकमिति** । तेषां गर्भे प्रागुक्तमेकशूकं **समसुख-फलदं गुह्यपद्मोदरस्थम्** । तत्रापि द्वात्रिंशच्छूकं दलसंख्यम् । तस्य वरटके मारीच्यादयो यास्ता विसर्जयेत् । एवं द्वादशदेवाः सपरिवाराः कर्मचक्राणि वज्राणि[4] कृत्वा तेषां वरटकेषु विसर्जयेत् तानिति । नागाश्च श्वानास्यादयः क्रियाचक्रेषु । एवं विसर्जनं कृत्वा ततो बलिं दद्यात् त्रिसन्ध्यं प्रागुक्तविधिना । पञ्चामृतं पूर्वविधिना शोधयित्वा तेनात्मानं प्रीणयेत् । एवं साधनं कालचक्रस्योत्पत्तिक्रमेणोत्पन्नक्रमेणोक्तं भगवता मञ्जुश्रियेति ॥ १२३ ॥

इदानीं योगचर्योच्यते—

योगी प्राणातिपातं दिननिशि कुरुते प्राणनाशः स उक्तो
यः शब्दो वक्त्रहीनः प्रभवति हृदयेऽसौ मृषावाद एव ।
सर्वज्ञज्ञानभूमेर्ग्रहणमपि च यद् योगिनः स्तेयमुक्तं
सौख्यं बिन्द्वप्रपाते भवति च परदारस्य सेवाऽविरागात् ॥१२४॥

योगीत्यादि । इह योगिनां योगचर्या द्विधा—एका बाह्या, द्वितीयाऽध्यात्मिकी । तत्र या बाह्या सा लौकिकफलहेतोः । या चाध्यात्मिकी सा लोकोत्तरफलहेतोर्योगिना कर्तव्येति । इह **योगी** यत् **प्राणातिपातं दिननिशि कुरुते** तत् स्वदेहे **प्राणनाश उक्तः** । सर्वज्ञपदलाभाय न[5] बाह्ये प्राणातिपातः । इह बाह्ये यः प्राणातिपात उक्तो दुर्दान्त-दमनाय स तेषां प्राणो योगबलेनाकृष्टः पुनस्तस्मिन्नेव काये प्रवेशनीयो योगिनेति । एवं दुर्दान्तदमको भवति । न दुर्दान्तान्तको [6]भवतीति सिद्धः । **यः शब्दो वक्त्रहीन** इति । इह सर्वज्ञस्य[7] वचनं सर्वरुतं यत् सर्वसत्त्वानां **हृदये भवति** स्वस्वभाषान्तरेण, तदेवा-प्रतिष्ठितं सर्वसत्त्वरुतत्वादप्रतिष्ठितत्वान्मृषावाद इत्युक्तः । बाह्ये पुनः सत्त्वार्थं प्रति "महामाया महारौद्रा भूतसंहारकारिणी (म. त १.५) इत्यादिवचनं सत्त्व-वैनेयार्थम् । तथा—

१. ग. 'द्विगुण्यमष्टशूकं' नास्ति । २. क. 'मध्य ...... त्रिंशत्शूकं' नास्ति । ३. भो. चतुः' नास्ति । ४. ग. 'कृत्वा' नास्ति । ५. ग. 'न' नास्ति । ६. च. योगीति । ७. ग. 'सर्वज्ञस्य' नास्ति ।

सुखं द्वीन्द्रियजं तत्त्वं बुद्धत्वफलदायकम् ।
नरा वज्रधराकारा योषितो वज्रयोषितः ॥

इत्यादिवचनं मृषावादः, न पुनः सत्त्वानां व[289b]ञ्चनाय विसंवादकं वचनं बौद्धयोगिनामिति सिद्धये । इह शरीरे निरावरणे जाते सति **सर्वज्ञस्य** द्वादश**भूमीनां** यद् **ग्रहणं योगिनस्तत् स्तेयग्रहणमुक्तम्** । बाह्ये पुनः सत्त्वोपकारतो निधानादिक-मुत्पाटनीयं निधिरक्षकाणां दुर्गतिमोचनार्थमिति । **सौख्यं** यत् शुक्र**बिन्दोर-प्रपाताद् भवति** सा **परदारस्य सेवा** । परदारा प्रज्ञापारमिता संसारपारं गता, परो वज्रसत्त्वः संसारपारं गतः, तस्य दारा परदारेति, तस्याः सेवाऽविरागतोऽक्षरसुखतो योगिनाम् । बाह्ये पुनः सेकादिकाले दात्रा स्वभार्यादिका दत्ता या, तस्याः सेवा परदारस्य सेवाऽ**विरागादिति** । यथात्मसमयिनां विरागो न भवति समयभेद इत्यर्थः ॥ १२४ ॥

प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिनः पानकं मद्यपानं
उष्णीषेऽङ्गुष्ठपर्वाद् व्रजति तिथिवशात् पूर्णिमान्ते स्वचित्तम् ।
उष्णीषादङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं कृष्णपक्षावसानं
सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये त्विष्टसिद्धिप्रदा या ॥१२५॥

प्राणायामानलेनेति । इह प्राणनिरोधेन या चण्डाली ज्वलिता, सा प्राणायामानल इत्युच्यते, तेन **प्राणायामानलेन द्रवमपि शशिन** इति बोधिचित्तस्य द्रुतस्य द्रवं बिन्दुरूपं पानकं कुलिशमुखेनोर्ध्वतो यत्तत् सहजानन्दजनकं **मद्यपानं** योगिनामुक्तमिति । बाह्ये पुनः [1]सेकादिकाले बाह्यदेवतानां बल्यर्थमुक्तमिति । **उष्णीषेऽङ्गुष्ठपर्वादिति** । इह कामशास्त्रे श्रूयते—इह शुक्लपक्षे वामपादाङ्गुष्ठात् प्रतिपदादिवृद्धया चन्द्रकलावृद्धया **पूर्णिमान्ते** उष्णीषे **स्वचित्तमिति** बोधिचित्तं **व्रजति तिथिवशादिति** । पुनरु**ष्णीषाद्** दक्षिणपा**दाङ्गुलीषु व्रजति पुनरिदं** कृष्णपक्षतिथिवशाद् यावत् **कृष्णपक्षावसानम्** अमान्तम् । एवं कृष्णपक्षावसाने बोधिचित्तं पादाङ्गुष्ठे वेदितव्यम्, पुनरपरमासे शुक्लपक्षे वामाङ्गुष्ठे पूर्ववदिति । [290a]तत्राह—प्रथमा तिथिः प्रथमाङ्गुलीपर्वे, द्वितीया द्वितीये, तृतीया तृतीये, चतुर्थी वामपादसन्धौ, पञ्चमी जानुसन्धौ, षष्ठी कट्यूरुसन्धौ, सप्तमी वामकराङ्गुलिप्रथमपर्वसन्धौ, अष्टमी मध्यम[2]सन्धौ, नवमी [3]तृतीयसन्धौ, दशमी करसन्धौ, एकादशी बाहुसन्धौ, द्वादशी स्कन्धबाहुसन्धौ, त्रयोदशी हृदये, चतुर्दशी कण्ठे, पूर्णा ललाटे, पूर्णान्तमुष्णीषे शुक्रस्य भवति । पुनः कृष्णप्रति-पल्ललाटे, द्वितीया कण्ठे, तृतीया हृदये, चतुर्थी दक्षिणस्कन्धबाहुसन्धौ । शेषं वामवद्विलोमेन दक्षिणपादाङ्गुलीनखान्तं यावदमान्तं बोधिचित्तस्य **सा चर्या योगिनो वै प्रतिदिनसमये इष्टसिद्धिप्रदा** येति । इह बोधिचित्तस्य वामदक्षिणनाडीप्रवाहवशेन वामदक्षिणेन गतस्य सर्वकालं मध्यमाप्रवाहेन षट्सु गुह्यादिकमलेष्वधोगमनादूर्ध्व-

१. ग. च. सेवा । २. ग. च. मध्यमा । ३. ग. च. तृतीया ।

गमनं नाम चर्या, सा इष्टसिद्धिर्महामुद्रासिद्धिस्तस्याः प्रकर्षेण [1]दात्रीष्टप्रदेति सिद्धम्। बाह्ये पुनः पञ्चतथागतकुलनारीणां ग्रहणं नारीचर्या, तासु नारीचर्यासु [2]मन्थानं ब्रह्मचर्यम्। तथा[3]नेन योगिना कर्तव्यमिति। तथा [4]कोऽसौ बोधिचित्तस्य नाडीसंचार इत्यूर्ध्वरेतसो गमनं कर्तव्यमिति नियमो मूलतन्त्रे। इति [5]नारीचर्यानियमः ॥ १२५ ॥

चिन्ताकाङ्क्षा ज्वरोऽङ्गे वरमुखकमले शुष्कद्रव्याप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा।
धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्था
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियता को जिनः कः स कामः ॥१२६॥

या बिन्दोः श्वेतधारा पतति दिननिशं मामकी सा सुरा नो
गोक्वाद्यं चक्षुरादेः स्फुरणमनुदिनं नान्यमांसं कदाचित्।
सेवा पञ्चामृतानां स्वकुलभुविगतैर्देवतैः शुद्धिकाये
शून्ये चित्तप्रवेशात् समरसकरणं मैथुनं तत्र योनौ ॥१२७॥

[290b]

दानं त्यागो धनस्याच्युतिरपि मनसः स्त्रीप्रसङ्गाच्च शीलं
क्षान्तिः शब्दाद्यवेशो ह्युभयगतिविनाशोऽनिलस्यैव वीर्यम्।
ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं सहजसुखगतं सर्वगा सर्वभाषा
तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः ॥१२८॥

एकाङ्गे शक्तियुक्ते नवपदसहिते पञ्चविंशात्मकाद्ये
ध्याते मुद्रादयो वै कतिपयदिवसैः सिद्धयः संभवन्ति।
स्तम्भं शान्तिं च वश्यं भुवननिधनतां वक्त्रभेदैः करोति
भूतानां मण्डलस्थो दनुभुजगकुलं साधयेद् भावितोऽसौ ॥१२९॥

इह पञ्चविंशत्यधिकशतवृत्तात् वृत्तचतुष्टयं सुबोधम्। [6]तेनात्र न विस्तारितमिति ॥ १२६-१२९ ॥

---

१. भो. 'इष्टप्रदेति सिद्धम्' नास्ति, ग. च. छ. सिद्धिप्रदेति। २. ग. स्वमास्थानं। ३. भो. Sal (आनन)। ४. ग. कासौ, क. ख. छ. क्रोशो। ५. भो. rTsa Bahi sPyod Pa (डनीचर्या)। ६. भो. 'तेनात्र ··· रितमिति' नास्ति।

इदानीं शान्त्याद्यर्थं देवताभावनोच्यते—

श्वेतः शान्तिं च पुष्टिं स्वमनसि कुरुते रक्त आकृष्टिवश्यं
पीतः स्तम्भं च मोहं कषणघननिभं मारणोच्चाटनं च।
ध्यातं जप्तं तथैव स्वमनसि कुरुते कायवाक्चित्तवज्रं
भूतानां मण्डलस्थं त्रिभुवननिलये साधयेत् कर्मभेदैः ॥१३०॥

श्वेत इत्यादि। इह कालचक्रो भगवानेकवीरो वा प्रज्ञोपायात्मको वा पञ्चा[1]त्मको वा वक्त्रादिभेदैः शान्त्यादिकं भवति। यदा शान्तिं करोति [2]योगी, तदा योगिना कायवक्त्रनायकं [3]कृत्वा शुक्लवर्णो भावनीयश्चन्द्रमण्डले ललाटस्थः। **श्वेतः शान्तिं पुष्टिं च** करोति। **रक्त आकृष्टिं वश्यं** च करोति **वाग्वज्र**[4]नायकः सूर्यमण्डले कण्ठस्थो **मनसि** ध्यातः सन्। **पीतः स्तम्भनं** [5]**मोहनं च** करोति कालाग्निमण्डले नाभिस्थो ध्यातो ज्ञानवज्रनायक इति। कृष्णो **मारणमुच्चाटनं** [6]**च** करोति [7]विद्वेषं च करोति हृदये राहुमण्डले चित्तवज्रनायक इति। एवं भूतानां मण्डलस्थो दनुभुजगकुलं साधयेद् भावितोऽसाविति। दैत्यभुजगानां कुलमष्टविधं तदेव कुलं साधयेद्वक्ष्यमाणं गारुडे नात्र विस्तारितमिति। **ध्यातं जप्तं तथैव स्वमनसि कुरुत** इति। [291a]एकमुखद्विभुजदेवता कायादिवर्णभेदेन भाविता वक्ष्यमाणक्रमेण शान्त्यादिकं करोति। एवं **भूतानां मण्डलस्थमिति** तोयादिमण्डलस्थं वज्रचतुष्टयम्, [8]**साधयेत् त्रिभुवननिलये कर्मभेदैरनेकैरिति** नानाविधानैरित्यर्थः ॥१३०॥

इदानीं दुर्दान्तदमनाय गजचर्मपटार्द्रधृग्भावनोच्यते—

पक्षाधिक्योद्भवाभ्यां मणिकनकनिभाभ्यां च सव्येतराभ्यां
स्कन्धारिष्टेभचर्मोद्धृतमपि सकलं पाटयित्वाङ्घ्रियुग्मात्।
दैत्येन्द्रासृक्कपालप्रवरकरतलो मृत्युमारास्यहस्तः
क्लेशारिष्टाङ्घ्रिपाती द्व्यधिकजिनकरो भावनीयः परार्थम् ॥१३१॥

पक्षेत्यादि। इह कालविशुद्ध्या वर्षस्य चतुर्विंशतिपक्षैश्चतुर्विंशतिकरो वज्रमालाधरः श्रीमानिति सिद्धः। अस्य पुनर्गजचर्मपटार्द्रधारिणोऽधिकमासेन सहितं यद्वर्षं त्रयोदशमासात्मकम्, तस्य पक्षैः षड्विंशतिभिर्भुजविशुद्धिः। अतः **पक्षाधिक्योद्भवौ** भुजद्वयौ, ताभ्यां भुजाभ्यां **मणिकनकनिभाभ्यामिति** [9]कृष्णपीताभ्यां [10]**सव्येतराभ्याम्**।

---

१. क. ख. च. छ. त्मकाद्युक्तो वा। २. भो. 'योगी' नास्ति। ३. छ. 'कृत्वा ······ वाग्वज्र' नास्ति। ४. क. छ. वज्र, ग. चक्र। ५. छ. मोहं च। ६. ग. च. भो. 'च करोति' नास्ति। ७. च. विद्वेषणं च। ८. क. ख. ग. छ. भावयेत्। ९. ग. 'कृष्णपीताभ्यां' नास्ति। १०. च. 'सव्येतराभ्याम्' नास्ति।

स्कन्धारिष्टेभ इति। स्कन्धमार इव इभस्तस्य क्षयाल्लवमात्रता **चर्म**। तदेवोद्धृतं **सकलं पाटयित्वा** स्कन्धमारेभम् **अङ्घ्रियुग्माद** धृतमङ्घ्रियुग्मं लम्बमानं गजचर्मपटमिति धृतम्। सव्येन शिरो वाम[1]भागे चरणम्। **दैत्येन्द्र** इति देवपुत्रमारस्तस्याविद्याप्रवृत्तिरिति। **असृगिति**। तस्य क्षयाल्लवमात्रं कपाले रुधिरं **तदसृक्कपालं** यस्य **प्रवरकरतले** स दैत्येन्द्रासृक्कपालप्रवरकरतल इति। **मृत्युमारास्यहस्त** इति। मृत्युमारक्षयाल्लवमात्रावरणमास्यं हस्ते यस्य स मृत्युमारास्यहस्तः। **क्लेशारिष्टाङ्घ्रिपाती**ति क्लेशमारक्षयाल्लवमात्रं क्लेशावरणं न निर्दग्धं यत्तत् प्रेतम्, तस्याङ्घ्रितले पतितम्, तेन क्लेशारिष्टाङ्घ्रिपाती। एवं लवमात्रावरणै**र्द्व्यधिकजिनकर** इति षड्विंशति[2]करः। शेषभुजे कालचक्रवत् प्रह[291b]रणः, मुण्डकपालमालाधरः, व्याघ्रचर्मनिवसनः, अस्थिमुद्रानागेन्द्र[3]भूषणो भावनीयः। **परार्थ**मिति दुर्दान्तवैनेयार्थमिति नियमः॥ १३१॥

इदानीं तस्य प्रज्ञाया लक्षणमुच्यते—

मातुस्तत्रैकवक्त्रं यमकरकमले कर्तिका श्रीकपालं
सूर्यादिन्दुः स्वचारं चरति गतिवशाद् द्वादशाधिक्यमेकम्।
तस्मात् कायप्रभेदैर्भवति जिनपतिर्विश्वमाता तथैव
प्रज्ञोपायाङ्गभावैः समसुखफलदैश्चन्द्रसूर्यप्रचारैः॥ १३२॥

मातुरित्यादि। इह कायभेदेन सूर्यः प्रज्ञा, चन्द्र उपायः। स च चन्द्रः सूर्यचाराद् द्वादशाधिक्यमेकं चारं यावच्चरति मासं प्रतित्रयोदशराशींश्चरति। सूर्य एकराशिं चरति। तेन सूर्यचारवशेन **मातुस्तत्रैकवक्त्रं** मासशुद्धया। **यमकरकमलं** हस्तद्वयकमलम्। [4]तस्मिन् करकमले सव्येऽवसव्ये **कर्तिका श्री**ति नरकपालम्। **तस्मात् कायप्रभेदै**रिति चन्द्रराशिपक्षभेदैः षड्[5]विंशतिभिः षड्[6]विंशतिभुजो **जिनपति**र्भवति। **विश्वमाता तथैव** कायभेदैः सूर्यस्यैकराशिः। पक्षभेदैर्द्विभुजा विश्वमातेति। नग्ना मुक्तकेशा शेषा भगवानिवाभरण[7]भूषितेति। एवमुक्तैः **प्रज्ञोपायाङ्गभावैः**। **समसुखफलदै**रक्षरसुखफलदैः, **चन्द्रसूर्यप्रचारैः**[8] श्वासनिश्वास[9]रोधैर्भावनीय इति नियमः॥ १३२॥

इदानीं विश्वरूपभावनोच्यते—

एकाद्यानन्तवक्त्रो बहुकरचरणोऽनेकवर्णस्तमोऽन्ते
प्रज्ञोपायात्मको वै ददति समसुखं नाडिकेन्द्वर्करोधात्।

---

१. ग. घ. गेन चरणः। २. च. भुजः। ३. ग. च. भो. विभूषणो। ४. भो. 'तस्मिन्' नास्ति। ५.६. ग. त्रिंश। ७. ख. ग. च. विभूषितेति। ८. च. रैरिति ९. च. निरोधैं।

भूम्यादीनां समन्तादमलमणिनिभो भेदकः शून्य एको
नाद्यो नान्तो न मध्यस्त्वविषयविषयः साधितः कालचक्रः॥१३३॥

[292a]

एकेत्यादि। **इहैकवक्त्रो** वा **आदि**शब्दात् [1]त्रिमुखो वा चतुःपञ्चाद्य**नन्त**मुखो वा **बहुकरचरणो**ऽनेककरचरणोऽनेकास्त्रधरः। **अनेकवर्णो**ऽनेकसंस्थानः "विश्वमायाधरो राजा बुद्धविद्याधरो महान्" (ना० सं० ८.३५) शून्यताक्षरधरो भगवान् **प्रज्ञोपायात्मकः**। **तमोऽन्ते** निशाकाले निशायोगेन दिवाकाले दिवायोगेन यः प्रज्ञापारमितायां योगं पश्यति, स आकाशे पश्यति निशायामभ्यवकाशे पश्यति दिवायाम्। एवं विभावितो बिम्बपर्यन्तम्। ततो **नाडिकेन्द्वर्करोधा**दिति वामदक्षिणप्राण[2]रोधात्, **ददति समसुख**मिति परमाक्षरसुखं ददाति[3]। **भूम्यादीना**मिति पृथिव्यादीनां धातूनाम्। **अमलमणिनिभो भेदक** इति। [4]इहामलमणिर्यथा स्पर्शमात्रेण पाषाणादिकं धातुकं रत्नं करोति न भेदको वेधक इति। तथा **शून्य एको** विमलो भूम्यादीनां शरीरधातूनां समन्ताद् वेधक इति। स शून्यतारूपी **नाद्यो नान्तो न मध्योऽविषयविषय** इति। विषयैर्विना विषयप्रतिभासो मायास्वप्नप्रतिसेनोपमः। **साधितः कालचक्रः** समसुखं ददातीति नियम इति श्रीमदादिबुद्धसाधनमुत्पन्नक्रमेणोक्तम्, अस्य विस्तरो ज्ञानपटले वक्तव्य इति॥ १३३॥

इति श्रीमूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभायां
उत्पन्नक्रमसाधनमहोद्देशश्चतुर्थः।

(५) नानासाधनमहोद्देशः

वज्रवेगं नमस्कृत्य विश्ववज्रधरं प्रभुम्।
नायकं क्रोधराजानां नानासाधनमुच्यते॥

क्रोधेन्द्रं वज्रवेगं द्व्यधिकजिनकरं वेदवक्त्रं द्विपादं
पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशं जिनपतिमुकुटं तीक्ष्णदंष्ट्राकरालम्।
सर्पालं व्याघ्रचर्मप्रवरनिवसनं भर्तृ[1]वच्छस्त्रहस्तं
मूर्ध्नो मालानिबद्धं सकलजिनकुलैः पञ्चवर्णैः कपालैः॥१३४॥

क्रोधेन्द्रमित्यादिना। इह **क्रोधेन्द्रं वज्रवेगं** हूँकारवज्रनिष्पन्नं पूर्वोक्तसाधनविधि[292b]ना। **द्व्यधिकजिनकर**मिति षड्विंशतिभुजं गजचर्मपटधारिणम्। **वेदवक्त्र**मिति चतुर्मुखम् **द्विपादं पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशं जिनपतिमुकुट**मित्यक्षोभ्यमुकुटं **तीक्ष्ण-**

---

१. भो. gÑis (द्वि)। २. च. निरोधात्। ३. ग. च. तीति। ४. भो. 'इह' नास्ति।

दंष्ट्राकरालम्। **सर्पालमिति** सर्पभूषणम्। **व्याघ्रचर्मप्रवरनिवसनम्**। **भर्तृवच्छस्त्रहस्तं** कालचक्रवदिति। **मूर्ध्नो मालानिबद्धं सकलजिनकुलैर्विशुद्धैः**। **पञ्चवर्णैः कपालैः** ॥१३४॥

विश्वाब्जे सूर्यमूर्ध्नि स्फुरदमलकरं मण्डले विश्ववर्णे
पादाभ्यां भूतनाथाक्रमितमतिबलात् संस्थितालीढपादम्।
भूतादींस्त्रासयन्तं ह्यसुरफणिसुरान् ज्ञानसत्त्वैकभूतं
ध्यायन्नेवैकमासं चितिभुवनगतं साधयेद् भूतवृन्दम् ॥१३५॥

इत्थंभूतं **विश्वाब्जे सूर्य**मण्डलोपरि **स्फुरदमलकरं** स्वच्छं **मण्डल**गृहे **विश्ववर्णे** एकवीरम्, मध्ये चतुर्द्वारिषु वज्राङ्कुश[1]वज्रवज्रपाश[2]वज्रवज्रघण्टा यथानुक्रमेण दत्त्वा **पादाभ्यां भूतनाथम**पराजितप्रेत[3]नाथ**माक्रमितमतिबलात्संस्थितालीढपादं भूतादींस्त्रासयन्तं** गजचर्मधृतं करतर्जनीभ्याम् **असुर**[4]**फणिसुरां**स्त्रासयन्तमिति। **ज्ञानसत्त्वैकभूतम्**। एभिर्मन्त्रपदैः, जः हूँ वँ हो **ध्यायन्** योगी, **एवैकमासं चितिभुवनगतं** श्मशानभूमिगतं **साधयेद् भूत**वृन्द**मिति** भूतादीनां यो नायकः, स तया मूर्त्या पादतले पातितः सन् सपरिवारः सिद्धि गच्छति। प्रेतो वा राक्षसादिक इति भूतादिसाधननियमः ॥१३५॥

इदानीं मेघवर्षापणाय नागराजसाधनमुच्यते—

नागानब्जाष्टपत्रेष्वपि जयविजयौ पातयित्वाऽर्कमूर्ध्नि
पादाभ्यां स्तम्भयित्वा फणिपतिमिथुनं पद्मपत्रे स्थितानाम्।
लाङ्गूलाग्रं च सर्वं घनकुलमुदरान् मुञ्चतो वै समन्ताद्
ध्यातः क्रोधेन्द्र एवं कतिपयदिवसैः साधयेन्मेघवृन्दम् ॥ १३६ ॥

[293a]

नागानित्यादि। इह स एव वज्रवेगः **क्रोधेन्द्रो ध्यातः सन् साधयेन्मेघवृन्दम्**। **कतिपयदिवसैरिति** मासदिनैरेवमित्यनेन विधिना। **नागानब्जाष्टपत्रेष्विति**। अब्जपूर्वपत्रे कर्कोटः, अग्नौ पद्मः, दक्षिणे वासुकिः, नैर्ऋत्ये शङ्खपालः, उत्तरे अनन्तः, ईशाने कुलिकः, पश्चिमे तक्षकः, वायव्ये महापद्मः, पूर्वाग्नौ कृष्णौ, दक्षिणे(ण)नैर्ऋत्ये रक्तौ, उत्तरेशाने शुक्लौ, पश्चिमवायव्ये पीतौ, **अपि जयविजयौ** हरितनीलौ नागराजानौ **पातयित्वाऽर्कमूर्ध्नि** अर्कमण्डले वामदक्षिणपादतले [5]नाभ्यूर्ध्वं पुरुषाकारावधः सर्पाकारौ शिर उपरि सप्तफणचक्रवाहौ महामणिभिः स्फुरन्तावुत्तानकौ पातयित्वा, [6]अपरे(र)नागराजान् पातयित्वा तेषां लाङ्गूलाग्रं प्रत्येकं जयोपरि पूर्वोत्तराणाम्, विजयोपरि दक्षिणपश्चिमानाम्। **लाङ्गूलाग्रं च सर्वम्**। एवं **पादाभ्यां स्तम्भयित्वा फणिपतिमिथुनं**

१. २. ख. ग. च. छ. 'वज्र' नास्ति। ३. ग. च. 'नाथ' नास्ति। ४. ग. फणां।
५. क. नाभ्यूर्ध्वं। ६. क. यत्र।

पद्मपत्रे स्थितानां लाङ्गूलाग्रं च सर्वमिति। एवमष्टौ नागराजाः पञ्च फणिनो **घनकुलं** मेघवृन्द**मुदरान्मुञ्चतो वै समन्तात्**। एवं क्रोधेन्द्रो ध्यातः श्मशानभूम्यां मासदिनैर्मेघवृन्दं साधयेत्। ततो यथाभिरुचितकाले वर्षापयति, विसर्जनेन [1]विधारयति। [2]इति नागराजसाधननियमः ॥१३६॥

इदानीं कर्मभेदैर्देवतासाधनमुच्यते—

5 T 359

इत्याद्यं देवतानां भवति नरपते साधनं दैवतीनां
प्रत्येकं मण्डलेऽस्मिन् स्वजिनकुलवशात् कर्मभेदैः समस्तैः।
स्तम्भे शान्तौ च वश्ये परधनहरणे मारणोच्चाटनाद्ये
षट्त्रिंशद्योगिनीनां भवति खलु पुनर्जापहोमं स्वबीजैः ॥१३७॥

इत्याद्यमित्यादि। इह मण्डले उक्ताद्यदपरं **देवतादैवतीनां साधनं भवति नरपते प्रत्येकं मण्डलेऽस्मिन्** ए[293b]कवीरैः **स्वजिनकुलवशाद्** वैरोचनादिकुलवशात्, **कर्मभेदैः समस्तैः** साधनं भवति। [3]**स्तम्भे शान्तौ वश्ये परधनहरणे मारणोच्चाटनाद्ये** वक्ष्यमाणसाधनं **षट्त्रिंशद्योगिनीना**मन्यासां श्मशानपर्यन्तानां **भवति खलु पुनर्जापहोमं**[4] च **स्व-स्व**[5]मन्त्र**बीजैर्**भवति ॥१३७॥

इदानीं शान्त्यादिध्यानमुच्यते—

शान्तौ ध्यानं च शान्तं शशधरधवला देवता शान्तरूपा
रौद्रे ध्यानं च रौद्रं कषणघननिभा देवता रौद्ररूपा।
वश्ये ध्यानं सरागं दिनकरवपुषा देवता रागमूर्तिः
स्तम्भे ध्यानं समूढं वरकनकनिभा देवता स्तब्धरूपा ॥१३८॥

शान्तावित्यादि। इह **शान्तौ ध्यानं च शान्तं शशधरधवला देवता शान्तरूपा** ध्यातव्येति। **रौद्रे** मारणाद्ये **ध्यानं रौद्रं** कृष्णवर्णा **देवता** रौद्रमूर्तिः। **वश्ये ध्यानं सरागं देवता** रक्तवर्णा **रागमूर्तिः**। **स्तम्भने ध्यानं मूढं देवता** पीतवर्णा **स्तब्धरूपेति**। यथा शान्तौ तथा पुष्टौ ज्वरोपशमने विषापहरणे च भवति। यथा मारणे तथोच्चाटने विद्वेषे ज्वरसंक्रामणे चेति। यथा वश्ये तथाकृष्टौ स्तोभने ज्वरोत्पादने च। यथा स्तम्भने [6]तथा मोहने कीलने चेति नियमः ॥१३८॥

इदानीं गणकुलैः शान्त्यादिसिद्धिरुच्यते—

शान्तिः पुष्टिश्च राजन् ससुतजिनकुलैः सिद्ध्यते देवतीभि-
र्विद्वेषोच्चाटनं च प्रकृतिगुणवशात् सिद्ध्यते क्रोधजाभिः।

१. ग. विचार। २. क. ग. छ. भो. इह। ३. ग. च. स्तम्भने। ४. ग. होमश्च।
५. ग. 'मन्त्र' नास्ति। ६. ग. 'तथा ...... कीलने' नास्ति।

वश्याद्यं भूतजाभिः प्रकटदनुकुले कीलनं चासुरीभि-
र्मातृभ्यां सर्वकर्माण्युभयपविकुले मारणं जीवनं च ॥१३९॥

शान्तिरित्यादि। इह **शान्तिः पुष्टिश्च ससुतजिनकुलैरिति**। इह रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कारा एतानि चत्वा[294 a]रि जिनकुलानि ससुतानीति। विष्कम्भि-क्षितिगर्भ-लोकेश्वर-खगर्भ एतानि बोधिसत्त्वकुलानि। एवं लोचना-पाण्डरा-मामकी-तारा जिनकुलानि। गन्धवज्रा-रसवज्रा-रूपवज्रा-स्पर्शवज्रा बोधिसत्त्वकुलानि। एभिः कुलैः शुक्लवर्णैर्भावितैः प्रत्येकैकैश्चन्द्रमण्डले ललाटे पद्मासने उपायैः सितपद्मवरदहस्तैः, प्रज्ञाभिः सितोत्पलाभयहस्ताभिः शान्तिः पुष्टिश्च सिद्ध्यते। **राजन्नित्यामन्त्रणम्**। चकारान्निर्विषत्वं ज्वरोपशमनं चेति। **विद्वेषोच्चाटनं च**कारान्मारणं विषसंक्रामणं च। **प्रकृतिगुणवशादिति** क्रोधप्रकृतिगुणवशात्, **सिद्ध्यते क्रोधजाभिरिति**। क्रोधजा हूँकारवज्रजा दश क्रोधाः, फ्रेंकारकर्तिजा दश क्रोधभार्याः, हृदये राहुमण्डले क्रोधैरालोढपादैर्वज्रपाशहस्तैर्मारणं सिद्ध्यति। खड्गश्रृङ्खलाहस्तैः सतर्जन्यैर्विद्वेषाद्यं[1] कृष्णवर्णैः क्रूरैरिति। देवीभिः कर्तिकपालहस्ताभिः प्रत्यालोढाभिः खड्गपाशहस्ताभिरिति [2]सिद्ध्यति। **वश्याद्यं भूतजाभिरिति**। इह चर्चिकादिभिरष्टदेवीभिः सूर्यमण्डले कण्ठे विशाखपदाभी रक्तवर्णाभिर्धनुर्बाणहस्ताभिर्वश्यं सिद्ध्यति। आकृष्टाद्यं पाशाङ्कुशहस्ताभिः सिद्ध्यतीति। **प्रकटदनुकुले कीलनं चासुरीभिरिति**। इह श्वानास्याद्यष्टदेवीभिः [3]पीतवर्णाभिः, नाभौ कालाग्निमण्डले पीते मण्डलपदाभिश्चक्रपर्वतहस्ताभिः स्तम्भनं सिद्ध्यति। मुद्गरकीलकहस्ताभिः कीलनं सिद्ध्यति। त्रिशूलनागहस्ताभिः मोहनं सिद्ध्यतीति। **मातृभ्यामिति** वज्रधात्वीश्वर्या प्रज्ञापारमितया वा गुह्यकमले **सर्वकर्माणि** सिद्ध्यन्ति। उदकादिमण्डलभेदेन सितादिवर्णेन पूर्वोक्तेन [4]प्रत्येकैकचिह्नेन पदेन [5]च **मारणं जीवनं च** सिद्ध्यति। वज्रासनेन बिन्दुमध्ये सानन्दा [6]देवता जीवनं [7]भवति, योगबलेन प्राणानाकृष्य च्युतेन बिन्दुना विरक्ता मारणं करोति, पुनः प्रत्युज्जीवनं नास्ति साध्यस्य। तेन तत्साधनं बौद्धयोगिना न कर्तव्यम्, यत्र साध्यस्य प्राणे आकृष्टे सति शुक्रनिर्गमो भवतीति नियमः सर्वकर्मसु [294b] ॥ १३९ ॥

इदानीं सर्वकर्मसाधनानामादिकारणमुच्यते—

आदौ श्रीकालचक्रस्त्रिभुवनजननी यत्नतः साधनीयौ
पश्चात् कर्माणि साध्यानि च भुविनिलये शान्तिकादीनि यानि।
मात्रा पित्रा विहीनो नहि भवति सुतः सर्वदा लोकसिद्ध-
स्तस्माद् द्वौ साधनीयौ समसुखफलदौ नान्यथा कर्मसिद्धिः ॥१४०॥

---

१. ग. च. भो. 'सिद्धयति' इत्यधिकम्। २. भो. 'सिद्धयति' नास्ति। ३. भो. 'पीतवर्णाभिः' नास्ति। ४. ग. च. प्रत्येक। ५. च. 'च' नास्ति। ६. भो. Lhamo (देवती) ७. ग. च. करोति।

आदावित्यादि। **इहादौ** योगिना यत्नत इति गुरूपदेशतः साधनीयः **श्रीकालचक्र** इति प्राणवायुर्मध्यमायां प्रवेशितव्यः सदा। **त्रिभुवनजननी**ति शून्यताबिम्बम्। तौ द्वौ बिम्बप्राणौ **यत्नतः साधनीयौ**। **पश्चादु**क्तानि सर्व**कर्माणि साध्यानि** भवन्ति **भुवितलनिलये शान्तिकादीनि यानि**। अत्र दृष्टान्तः—**मात्रा पित्रा विहीनो नहि भवति सुतः सर्वदा लोकसिद्धः**। **तस्माद् द्वौ साधनीयौ** बिम्बप्राणौ **समसुखफलदौ नान्यथा कर्मसिद्धि**रस्ति, बिम्बेन प्राणेनासाधितेनेति नियमः ॥ १४० ॥

इदानीं शान्त्यादिसाधनाय आदिभावनोच्यते—

भर्तुर्हृत्पद्ममध्ये शशिरविशिखिनि स्थापयेन्मूर्ध्नि वज्रं
हूँकारं ज्ञानजातं प्रलयघननिभं पञ्चशूकं सरश्मि।
तन्मध्ये जोऽङ्कुशस्य त्रिभुवनसकलं रश्मिभिः पूरयित्वा
आकृष्य ज्ञानचक्रं त्रिविधभवगतं वज्रमार्गे प्रवेश्य ॥१४१॥

सर्वं चन्द्रद्रवाभं स्वकुलिशवदनादुत्सृजेन्मातृपद्मे
तस्मिन् सूर्ये प्रविष्टं भवति समरसं चादिकादिप्रयुक्तम्।
तन्मध्ये ज्ञानबीजं भवति कुलवशात् कर्मणः शान्तिकादे-
स्तेनोत्पन्ना च देवी भवति हि फलदा योगिनो देवता वा ॥१४२॥

भर्तुरित्यादि। इह यदा योगी बिम्बं विस्पष्टमवधूत्यां प्राणगतं पश्यति, तदा तद्बिम्बं यादृशं विकल्पयेत् तादृशं पश्यति, तद्बिम्बं **भर्तुरिति**। कालचक्रं पूर्वोक्तं निष्पाद्य ततस्तस्य **हृत्पद्ममध्ये** कर्णिकायां **शशिरविशिखिनीति** चन्द्रसूर्यराहुयोगग्रहमण्डलेत्र्यात्मके, अध्यात्मनि ललनारसनाऽवधूत्येकलोलीभूते हृत्कमले। तत्र **स्थापयेद् मूर्ध्नि वज्रं हूँकारपरिणतं पञ्चशूकं प्रलयघननिभं** कृष्णवर्णमि[295a]ति **सरश्मि** पञ्चरश्मि स्फरदिति। **तन्मध्य** इति तस्य वज्रस्य मध्यवरटके जःकारपरिणतं वज्राङ्कुशं भावयेत्। ततस्तस्याङ्कुशस्य **रश्मिभिर्व**ज्राङ्कुशाकारैस्**त्रिभुवनमि**ति त्रिधातुकं **सकलं पूरयित्वा** तैर्वज्राङ्कुशैस्त्रिभवाकारं स्वच्छं **ज्ञानचक्रमाकृष्य त्रिविधभवगतं** व्यापकत्वेन यत् तदवधूतीद्वारेणोष्णीषललाटकण्ठहृदयनाभिगुह्य**मार्गे प्रवेश्य**। **सर्वमिति** सर्वाकारं यत्तच्**चन्द्रद्रवाभमिति** बोधिचित्तलक्षणम्, **स्वकुलिशवदनादुत्सृजेन्मातृपद्म** इति स्ववज्रमुखाद्यथा पुरुषः स्त्रीकमले बोधिचित्तमानन्दितं क्षिपेत्, तथा देवतायोगेन देव्याः पद्मे उत्सृजेत्। मात्रिति वक्ष्यमाणानां जननी यथा गर्भजानां तथैव। **तस्मिन् सूर्ये प्रविष्टमिति**। इह यथा स्त्रीयोनौ रक्ते प्रविष्टं बोधिचित्तं समरसं रक्तेन सह भवति, तथा सूर्यमध्ये प्रविष्टं चन्द्रं **समरसं** मातृपद्मे **भवति**। **आदियुक्तं** चन्द्रद्रवं **कादियुक्तं** सूर्यरजः, प्राणापानयुक्तम्। **तन्मध्ये** प्राणापानमध्ये **ज्ञानबीजमा**लयविज्ञानलक्षणं **भवति**। T 360 सूर्यरजः, प्राणापानयुक्तम्। **तन्मध्ये** इति पूर्ववत्। सत्त्वानां विज्ञानं भवति। एवं **कर्मणः शान्तिकुलवशादिति** पञ्चस्कन्धवासनावशात्। सत्त्वानां विज्ञानं भवति। एवं **कर्मणः शान्तिकादेर्ज्ञा**नबीजं भवति। **तेन** बीजेन **उत्पन्ना** यथा कुमारी वा कुमारो वा, **भवति हि**

फलदो द्वादशवर्षावधेः षोडशवर्षावधेः, तथा **देवी देवता** उपायो **वा** योगिना भावितेति नियमः। अतो द्वादशवर्षैर्देवी वरदा भवति भाविता, देवश्च षोडषवर्षैर्वरदो भवति। ततः सर्वकर्माणि सर्वसिद्धयः सर्वसौख्यानि **योगिनः** सिद्ध्यन्ति। अन्यथा क्लेशः केवल एवेति सर्वतन्त्रान्तरे कालनियमो वीर्यवतामहर्निशि भावितात्मनाम्, नान्येषां व[295b]र्षशतावधेरिति सिद्धिनियमः ॥१४१-१४२॥

इदानीं चिह्नोत्पादाय ज्ञानबीजान्युच्यन्ते—

जः हूँ वँ होः क्रमेणाङ्कुश इति कुलिशं वज्रपाशश्च घण्टा
ॐ आः हूँ होस्तथोक्तं शशिरविकुलिशं चाक्षरं तद्वदेव ।
ई ॠ ऊ ॡ तथैव प्रकटयरवला वायुवह्न्यम्बुपृथ्व्यो
हः हुं हं फ्रें तथोक्तं रविरपि कुलिशं चन्द्रमा कर्तिका च ॥ १४३ ॥

[1]ज इत्यादि। इह **जः हूँ वँ होः क्रमेणेति** जःकारेण वज्राङ्कुशो भवति, तेन परिणतेन वज्राङ्कुशहस्ता देवी वा देवो वा भवति। [2]एवं हूँकारेण **वज्रम्**, तेन वज्रहस्ता भवति। वँकारेण **पाशहस्तेन** पाशहस्ता भवति। होःकारेण **घण्टा**, तया घण्टाहस्ता भवति। **ॐ आः हूँ होः तथोक्तमिति**। तथेति क्रमेण पूर्ववत्। ॐकारेण चन्द्रमण्डलं **शशीति**। आःकारेण सूर्यमण्डलं **रवीति**। हूँकारेण राहुमण्डलं **कुलिशमिति**। होःकारेण कालाग्निमण्डल**मक्षरं तद्वदेवेति**। **ई ॠ ऊ ॡ तथैवेति**। यथाक्रमेण ईकारपरिणतः खड्गः, तेन परिनिष्पन्ना देवता खड्गहस्ता देवी वा। एवं ॠकारेण मणिर्बाणो वा, तेन तेजोदेवता मणिहस्ता बाणहस्ता वा [3]देवी। ऊकारेण पद्मम्, तेन तोयदेवता पद्महस्ता उत्पलहस्ता वा देवी[4]। ॡकारेण चक्रम्। चक्रेण पृथिवीदेवता चक्रहस्ता [5]देवी वा। एवं **यरवला** अपि यथाक्रमेण **वाय्वग्नितोयपृथिवी**देवता इति। तथा हः इति **रविमण्डलम्**। हुँ इति रविमूर्ध्नि वज्रं नायकस्य। **हमिति चन्द्रमण्डलम्**। **फ्रें** इति चन्द्रमण्डलोपरि **कर्तिका**। नायिकाचिह्ननियमः। [6]तथोक्तमिति ॥ १४३ ॥

इदानीं देवतायां [7]साधितायां सत्यां शान्त्यादिकर्मकरणाय देवतासमाधिरुच्यते—

ध्यात्वा चन्द्रार्कमध्ये त्वलिकलिसहिते तोयबीजात्मकाब्जं
तेनोत्पन्नैकवक्त्रां यमकरकमलां देवतीं चन्द्रवर्णाम् ।
आरूढां श्वेतनागं सितजलजकरां चाभयां श्वेतवस्त्रां
श्वेतालङ्कारयुक्तां प्रहसितवदनां प्रेषयेत् साध्यवेश्म ॥ १४४ ॥

[296a]

१. ख. 'ज इत्यादि' नास्ति। २. ग. इतः परं पत्र १२४ 'एवं हूँकारेण''' च रक्तम्' नास्ति। ३. च. भो. 'देवी' नास्ति। ४. ५. भो. 'देवी' नास्ति। ६. च. 'तथोक्तमिति' नास्ति। ७. छ. 'साधितायां' नास्ति।

ध्यात्वेत्यादि। इह पूर्वोक्तमातृगुह्यपद्मे **चन्द्रार्कमध्ये आलिकालिसहिते तोयबीजात्मकाब्ज**[1]मिति वकारपरिणतं शुक्लं पद्मम्, **तेनोत्पन्नैकवक्त्रा** द्विभुजा [2]देवता **चन्द्रवर्णा। आरूढा श्वेतनागमिति** ऐरावतमारूढा। **सितजलजकरेति** श्वेतपद्महस्ता देवता देवी श्वेतोत्पलहस्ता। **अभया** दक्षिणेऽभयहस्ता। **श्वेतवस्त्रा श्वेतालङ्कारयुक्ता** मुक्ताफलाभरणा **प्रहसितवदना** भाव्या। तां च प्रेषयेत् **साध्य**[3]**वेश्मनि** ॥ १४४ ॥

तस्मात् साध्यं गृहीत्वा पुनरपि च विभोर्मण्डले संप्रविष्टां
भर्तुश्चाज्ञां प्रलब्ध्वा पुनरमृतघटैर्लोचनाद्याः प्रहृष्टाः ।
तं साध्यं स्नापयन्ति प्रवरदशविधाः शक्तयः पूजयन्ति
रूपाद्याः पोषयन्ति प्रकटदशभिर्लास्यादयस्तोषयन्ति ॥ १४५ ॥

भूताख्याश्चाभयन्ते प्रवरदशविधाः क्रोधजाः पालयन्ति
नागिन्यश्चुम्बयन्ति त्वमरयुवतयो द्वादशालिङ्गयन्ति ।
चण्डाः कुर्वन्ति रक्षां सकलभुवितले शान्तिपुष्ट्यर्थहेतो-
रेवं साध्यस्य सर्वं परमसुखकरं योगिना भावनीयम् ॥ १४६ ॥

अपरवृत्तद्वयेनोक्तं सुबोधम्। **तस्मादित्यादिना, एवं साध्यस्य सर्वं परमसुखकरं योगिना भावनीयमिति** पर्यन्तम् ॥ १४५-१४६ ॥

ह्रीं चन्द्रादित्यगर्भे कुवलयकलिकाबाणमेवेक्षुचापं
तेनोत्पन्नार्कभासोभयकरधनुषा पूरिताकर्णबाणा ।
प्रत्यालीढं च रूढा कमलशशधरा प्रेषयेत् साध्यवेश्म
साध्यं हृन्नाभिगुह्ये शिरसि च वदने ताडयित्वा शरेण ॥ १४७ ॥

[296b]

कण्ठे पाशेन बद्ध्वा क्षुभितमपि तया मण्डले नीयमानं
चण्डाभिर्वस्त्रहीनं कृतमपि नियतं वेष्टितं नागिनीभिः ।
देवीभिर्भर्त्स्यमानं सलगुडमुषलैस्ताडितं क्रोधजाभि-
र्भूताभिर्भीष्यमानं खरनखनिहितं चैव लास्यादिभिश्च ॥ १४८ ॥

वज्राभिर्नष्टबुद्धिं क्षितिजलहुतभुग्वातजाभिश्च बद्धं
भर्तुः पादे विवस्त्रं सकलमदहतं पातितं शक्तिभिश्च ।

१. क. ज्ञमिति। २. भो. Lhamo (देवती)। ३. छ. वेश्मेति।

एवं कृत्वा तु वश्यं पुनरपि च विभुस्तोषयेत् तत्र साध्यं
तद्वत् पाशाङ्कुशाभ्यां भवति बहुविधाकृष्टिकर्म त्रिधातौ ॥ १४९ ॥

तथा ह्लीं **चन्द्रादित्यगर्भे** इत्यादिना तद्वत् **पाशाङ्कुशाभ्यां भवति बहुविधा-कृष्टिकर्मं त्रिधातौ** इति पर्यन्तं वश्याकृष्टौ वृत्तत्रयं सुबोधम् ॥ १४७–१४९ ॥

ध्यात्वा सूर्येन्दुमध्ये कषणघननिभं दीर्घहूँकारजासिं
तेनोत्पन्ना विवर्णा त्वसिकरकमला तर्जनीपाशहस्ता ।
प्रत्यालीढोष्ट्रमूर्ध्नि प्रकुपितवदना प्रेरिता साध्यवेश्म
साध्यं पाशेन बद्ध्वा कुपितवदनया मण्डलद्वारनीतम् ॥ १५० ॥

उष्ट्रे यःकारजाते वरपवनगतौ भर्तृवाक्येन साध्यं
तत्रारूढं प्रकृत्या शिखिचलवलयं प्रेरयेद् यावदेव ।
एवमुच्चाटनं वै भवति सुरपतेः किं पुनर्मानुषस्य
विद्वेषेऽप्युष्ट्रहीनौ बहुकृतकलहौ सव्यवामे च नेयौ ॥ १५१ ॥

तथा विद्वेषोच्चाटने **ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे कषणघननिभं दीर्घहूँकारजासिम्** इत्यादिना वृत्तद्वयं सुबोधम् ॥ १५०–१५१ ॥

ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे ल इति परिणतं पीतवर्णं सुचक्रं
तेनोत्पन्नैकवक्त्रा वरकनकनिभा शृङ्खलाचक्रहस्ता ।
कूर्मे[297a] दैत्यासनस्था त्वतिमृदुगमना प्रेरिता साध्यवेश्म
साध्यं चक्रेण भेष्यं प्रपतितमवनौ शृङ्खलाबद्धपादम् ॥१५२॥

आनीतं मण्डले वै जिनपतिवचसा पातयित्वा धरण्यां
मेरुस्तन्मूर्ध्नि देयो वरकनकमयः स्तम्भने साध्यकाये ।
षट्सन्धौ कीलनार्थं त्वपि कुलिशमयैः कीलकैः कीलनीयः
सर्पैः सन्दंश्यमानः पतित इह महौ मोहने भावनीयः ॥१५३॥

ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे ल इति परिणतं पीतवर्णं सुचक्रम् इत्यादि स्तम्भन-कीलन-मोहने वृत्तद्वयं सुबोधम् ॥ १५२–१५३ ॥

ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे तडिदनलनिभां कर्तिकां फ्रेंस्वभावां
तेनोत्पन्ना प्रचण्डा प्रलयघननिभा कर्तिका शुक्तिहस्ता ।

प्रत्यालीढा विवस्त्रा ह्युपरि हरिरिपोः प्रेरिता साध्यवेश्म
साध्यं केशेषु शीघ्रं धृतमपि च तया मण्डले वस्त्रहीनम् ॥१५४॥

आनीतं श्रीश्मशाने जिनपतिवचसा गृध्रकाकैः शृगालैः
सर्वाङ्गात् पीतरक्तं पललमपि तथा भक्षितं सर्वधातुम् ।
साध्यस्यैवं समस्तं प्रवरभुवितले मारणे भावनीयं
ध्यानेनानेन शक्रो व्रजति यमपुरं किं पुनर्गर्भजातः ॥१५५॥

पुनर्ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे तडिदनलनिभां कर्तिका फ्रेंस्वभावाम् इत्यादि मारणे वृत्तद्वयं सुबोधम्। एवं वश्यादिनववृत्तानि सुबोधानि तेन न लिखि(व्याख्या)तानीति ॥ १५४–१५५ ॥

इदानीं शान्तावपरं ध्यानमुच्यते—

शान्तौ पुष्टौ च शुक्लं भवति कुलवशाद् ध्यानमप्यम्बुबीजाद्
वश्याकृष्टौ च रक्तं त्वपि तनुदहनं वह्निबीजात्मकं च ।
विद्वेषोच्चाटने च प्रलयघननिभं वायुबीजस्वभावं
संस्तम्भे कीलनाद्ये वरकनकनिभं भूमिबीजात्मकं च ॥१५६॥

[297 b]

शान्तावित्यादि। इह प्रथमं तावदेकवीरमात्मानं कालचक्रं भावयेच्चतुर्विंशतिभुजं शान्त्यादिवश्यादिकर्मणि, मारणादिस्तम्भनादिकर्मणि षड्विंशतिभुजम्। ततो झटित्याकारेण **शान्तौ पुष्टाविति**। इह कालचक्रस्य हृदये तोयमण्डले तोयबीजेनोत्पन्ना देवता तोयात्मिका **शुक्ला**। **कुलवशादु**कारकुलवशात्। तस्या **ध्यानं** शुक्लध्यानम**प्यम्बुबीजात्** शान्तौ पुष्टौ च भवति। तथा **वश्याकृष्टौ च रक्तम्**। **अपि तनुदहनं वह्निबीजात्मकं** कण्ठे वह्निमण्डले ऋकारकुलवशादिति। **विद्वेषोच्चाटने** च कृष्णं **वायुबीजस्वभावं** ललाटे वायुमण्डले प्राणस्य इकारकुलवशात्। **स्तम्भने कीलनाद्ये** पीतं **भूमिबीजात्मकं** नाभौ पृथिवीमण्डले ऌकारकुलवशादिति ॥ १५६ ॥

नीलाभं शून्यबीजाद् भवति हि हरितं मारणे जीवने च
पृथ्वीकृत्स्नं समन्ताज्जलनिधिगमने वायुकृत्स्नं च वृष्टेः ।
नाशार्थं वह्निकृत्स्नं त्वपि महिवलयं द्रावणार्थं च वह्ने-
र्नाशार्थं तोयकृत्स्नं भवति खगमने शून्यकृत्स्नं त्वदृश्ये ॥१५७॥

[1]**नीलाभं शून्यबीजाद्** गुह्ये ज्ञानमण्डले अंकारकुलवशान्**मारणे**। उष्णीषे शून्यमण्डले **हरित**मकारकुलवशाज्**जीवने च**। एवं षट्स्थानेषु षट्कुलवशात् प्राण[2]संयमात् कर्मसिद्धिर्भगवतोक्ता। इदानीं पृथिव्यादिकृत्स्नभावनोच्यते पृथ्वीत्यादि। इह यदा योगिनां देवता सिद्धा भवति, तदा नाभौ पृथिवीमण्डलात् **पृथ्वीकृत्स्नं** समुद्रोपरि सेतुबन्धवन्निश्चार्य भावयेत्। **जलनिधिगमने** समुद्रोपरि गच्छति, यथा स्थले तथा जले पृथ्वीकृत्स्नध्यानेनेति। एवं **वायुकृत्स्नं** चाति**वृष्टेर्विनाशार्थमि**ति। ललाटे वायुमण्डलान्निश्चार्य वायुकृत्स्नं मेघोपरि भावयेत्तेन मेघवृष्टिं विनाशयति। अथ पञ्चधात्वात्मकं कूटागार[298a]मात्मन उपरि भावयेत्। तेन ध्यानेन योगी जलेन न स्पृश्यते कूटसोमापर्यन्तम्। न मेघवृष्टिः प्रविशति वर्षमाणापीति **मूलतन्त्रे** प्रोक्तम्। एवं वायुकृत्स्नं[3] निश्चार्याग्निमूर्ध्नि [4]वृष्टेर्विनाशार्थमिति **वह्निकृत्स्नमि**ति। इह कण्ठे वह्निमण्डला[5]दग्निबीजपरिणता[6] ज्वाला पृथिव्युपरि भावयेत्। निश्चार्य ताभिज्वालाभि**र्महिवलयं** द्रवति द्रुतकनकवत्। एवं भूमि**द्रावणार्थं** वह्निकृत्स्नं भावनीयम्। एवं **वह्नेर्नाशार्थं तोयकृत्स्नमि**ति। इह देवताहृदये तोयमण्डलात् तोयबीजजनितं तोयकृत्स्नं निश्चार्याग्निमूर्ध्नि भावयेत्। तेनाग्निः शीतलो भवति, न दहनक्षम इति। **भवति खगमने शून्यकृत्स्नमि**ति। उष्णीषे आकाशमण्डले आकाशकृत्स्नं द्रव्यरहितं भावयेत्, तेनाकाशगमनं भवतीति। तथा चौराद्युपद्रवे**ऽदृश्यो** भवति तेनैव ध्यानेनेति नियमः ॥१५७॥

इदानीं तिर्यगुपद्रवशमनाय ध्यानमुच्यते—

ध्यानं पञ्चाननं वै भवति गजपतेर्भङ्ग एवाग्निबीजात्
तार्क्ष्यं नागेन्द्रभङ्गे भवति हि धवलं तोयबीजात्मकं च।
अष्टाङ्घ्रि खड्गिसिंहे प्रलयघननिभं वायुबीजात्मकं स्यात्
खड्गाख्यं वाजिशत्रोरवनिकुलवशात् क्रोधजं दैत्यभङ्गे ॥१५८॥

ध्यानमित्यादि। इह यदा गजपतेर्भयं भवति, तदा कण्ठे **अग्निबीजादि**ति रेफादुत्पन्नं पञ्चाननं भावयेत्। तत् **पञ्चाननध्यानं भवति गजपतेर्भङ्ग**विषये। एवं **तार्क्ष्यं नागेन्द्रभङ्गे** हृदये तोयमण्डले **तोयबीजात्मकं** तद्वद् **धवलं भवति**। **अष्टाङ्घ्रिमि**ति अष्टपदम्। **खड्गि**भये **सिंह**भये [7]कृत्स्नं ललाटे वायुमण्डले **वायुबीजात्मकं** चेति। **खड्गाख्यं वाजिशत्रो**रिति महिषभये। **अवनिकुलवशादि**ति पीतं नाभौ पृथिवीमण्डले लकारबीजादिति। **क्रोधजं दैत्यभङ्गे** उष्णीषे शून्यमण्डले श्यामे। नीले गुह्ये ज्ञानमण्डले वा हूंकारबीजात्मकं [8]क्षुंकारबीजात्मकं दैत्यादीनां भङ्गविषये क्रोधजं सुखकरं योगिनां भवतीति ध्याननियमस्तिर्यग्भङ्गाय ॥ १५८ ॥ [298b]

---

१. च. शून्यं शून्यबीजाद्। २. च. संयमनात्। ३. क.ख.च.छ.भो. 'निश्चार्याग्निमूर्ध्नि' नास्ति। ४. ग. 'वृष्टेर्विनाशार्थमिति' नास्ति। ५. ग. च. द्वह्निबीज। ६. ग. तात्। ७. ग. च. भो. कृष्णं। ८. च. क्षः, छ. क्षूं।

इदानीं कर्मसाधनायादिनियम उच्यते—

श्रीमन्त्रं बुद्धबिम्बं प्रथममपि विभोर्योगिना साधनीयं
पश्चात् सिद्ध्यन्ति कर्माण्यपरिमितगुणान्यर्कभेदैः स्थितानि।
मन्त्रे बिम्बे त्वसिद्धे त्रिभुवननिलये सिद्ध्यते नैव किञ्चित्
तस्माद् राजन् स्वचित्ते व्यपगतकलुषे साधयेन्मन्त्रबिम्बम् ॥१५९॥

श्रीमन्त्रमित्यादि। इह योगिनां कर्मसिद्धये प्रथमं साधनीयं श्रीमन्त्रमिति। ॐ आः हूँ इति साधनीयं वक्ष्यमाणजापहोमविधिनाऽपरमन्त्रसिद्धये। एवं बुद्धबिम्बमिति शून्यताबिम्बं प्रत्यक्षं करणीयमपरध्यानसिद्धये। एवं **श्रीमन्त्रं बुद्धबिम्बं प्रथममपि विभोर्योगिना साधनीयं पश्चात् सिद्ध्यन्ति कर्माणि, अपरिमितगुणान्यर्कभेदै**रिति द्वादशभेदैः **स्थितानि। मन्त्रे बिम्बे त्वसिद्धे त्रिभुवननिलये सिद्ध्यते नैव किञ्चित्, तस्माद् राजन् स्वचित्ते व्यपगतकलुषे साधयेन्मन्त्रबिम्बमा**दौ विभोरिति नियमः ॥ १५९ ॥

इदानीं खड्गादिसिद्ध्यर्थमसुरेन्द्रसाधनमुच्यते—

शूरः संग्रामभूमौ पतित इति तथा लम्बितस्तस्करो वा
अष्टम्यां भूतरात्रौ नृप चितिभुवने स्नापयेदष्टकुम्भैः।
गन्धैर्धूपैः प्रदीपैर्बहुविधचरुकै रक्तपुष्पैः प्रपूज्य
वज्रन्यासं प्रकृत्या शिरसि च हृदये मूर्ध्नि नाभौ च कण्ठे ॥१६०॥

शूर इत्यादिना। इह **संग्रामभूमौ शूरो** राजपुत्र एकनाराचप्रहारेण **पतितो**ऽन्यो वा योधः, तथा [1]वृक्षे **लम्बितस्तस्करो** वा शूरः। **अष्टम्यां** वा **भूतरात्रौ** चतुर्दश्यां वा कृष्णपक्षे। **नृपे**त्यामन्त्रणम्। **चितिभुवने** श्मशाने **स्नापयेत्** तं शवम्। **अष्टकुम्भै**र्वंश्यकर्मण्युक्तैर्जयविजयाभ्यां च। ततो **गन्धैर्धूपैः प्रदीपैर्बहुविधचरुकै रक्तपुष्पैः प्रपूज्य** रक्तवस्त्रेण परिधानं कृत्वा। **वज्रन्यासं प्रकृत्या शिरसि च हृदये मूर्ध्नि** [2]**नाभौ च कण्ठे** [299a] इति। ललाटे [3]ॐ, हृदये हूं, उष्णीषे हं, नाभौ [4]हो, कण्ठे आः, गुह्ये क्षः। एवं पूर्वोक्तं हृदयं शिरः शिखा कवचं नेत्रमस्त्रं चेति षडङ्गन्यासं कृत्वा शवस्यात्मशरीरस्यापि रक्षां कृत्वा देवतायोगेन ॥ १६० ॥

कृत्वा कुण्डे त्रिकोणे यदरुणरजसा गर्भपद्मं सचिह्नं
पत्रे चिह्नं जिनानां दिशि विदिशि तथा देवतीनां स्वचिह्नम्।

---

१. क. ख. छ. वृक्षे वाऽवलम्बितः। २. क. ख. च.छ. नाभ्यादिके च। ३. छ. व। ४. च. भो. होः।

बाह्ये रेखात्रये वै दशदिशि वलये क्रोधचिह्नानि तद्वत्
प्रेतं तस्यावसव्ये त्वसिकरकमलं मण्डलात् सव्यपादम् ॥१६१॥

ततस्त्रिकोणे कुण्डे पूर्वोक्ते [1]**यदरुणरजसा गर्भपद्मं** रक्तं तत् **सचिह्नमिति** बाणचिह्नं कर्णिकायाम्, अथवा "सर्वकर्मणि वज्रम्" इति वचनात् रक्तवज्रम्। **पत्रे चिह्नं जिनानामिति**। [2]पूर्वे पत्रे खङ्गः, दक्षिणे [3]रत्नम्, उत्तरे पद्मम्, पश्चिमे चक्रमिति। **दिशि विदिशि तथेति**। **देवतीनां स्वचिह्नमिति**। [4]पूर्वोक्ते मातृदोषे यथाग्नौ कर्तिका, दैत्यपत्रे वज्राङ्कुशः, वायव्ये वज्रपाशः, [5]ईशे त्रिशूलम्। **बाह्ये रेखात्रये वै दशदिशि वलये क्रोधचिह्नानि तद्वदिति**। यथा तथागतानां तथा दिक्षु, यथा देवीनां तथा विदिक्षु ऊर्ध्वे उष्णीषस्य वज्रम्, अधः सुम्भराजस्य पर्शुरिति, त्रिप्राकाराणां रक्षणायेति। एवं रजोमण्डले पूर्वोक्तविधिना चिह्नानि दत्त्वा श्मशानभूम्यां मण्डले कलशादिकं [6]संस्थाप्य प्रतिष्ठां कृत्वा गन्धादिभिरिष्टदेवतानां पूजां कृत्वा क्षेत्रपालादीनां बलिं दत्त्वा ततस्तं **प्रेतं तस्यावसव्य** इति कुण्डस्योत्तरे रजोमण्डलस्य दक्षिणद्वारस्य दक्षिणे। एवं मण्डलकुण्डयोर्मध्ये प्रेतं **सव्यपादमिति** दक्षिणपादमुत्तरशिरः। **असिकरकमलमिति** खड्गहस्तमुत्तानकं त्रिरेखापरिवेष्टितम् ॥ १६१ ॥[299b]

पूर्वोक्तान्मातृदोषाज्जिनपतिकुलिशैरात्मरक्षां प्रकृत्य
मन्त्री कुण्डस्य सव्ये सरुधिरपललैर्होममेवं प्रकुर्वन्।
ॐ ह्रीं फ्रें हूँ फडन्तं दशगुणितशतं होमयेत् तस्य मन्त्रं
बद्ध्वा वज्रासनं वै त्वमरगिरिरिवाकम्प एवार्धरात्रम् ॥१६२॥

एवं **पूर्वोक्ताद् मातृदोषाद्** मण्डले **जिनपतिकुलिशैः** पूर्वोक्तै**रात्मरक्षां प्रकृत्य मन्त्री कुण्डस्य सव्ये सरुधिरपललैर्होममेवं प्रकुर्वन्निति**। अत्र कुण्डे क्षत्रियगृहाग्निं खदिरकाष्ठैः प्रज्वाल्य ततः पूर्वोक्तविधिना पावकावाहनादिकं कृत्वा देवतायोगेनास्य मन्त्रेण महामांसं सरुधिरं **दशशतगुणितमिति** सहस्रमेकं **होमयेत् तस्य मन्त्रमिति**। ॐ **ह्रीं फ्रें हूं फट्**, इत्ययं तस्य मन्त्रः। अनेनापि तस्य न्यासः कार्यः। ललाटे ॐ, कण्ठे ह्रीं, हृदये फ्रें, नाभौ हूं, गुह्ये फडिति न्यासः। **बद्ध्वा वज्रासनं वै अमरगिरिरिवाकम्प एवार्धरात्रं** यावत् प्रहरमेकं होमयेदिति ॥ १६२ ॥

पूर्णे होमे ज्वलन् वै ललदसिरसनस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्त्रिनेत्रो
गर्जन् विस्फोटयन् यः क्षितिमपि चरणैः साधकं भीषयन् सः।
स्थित्वा कुण्डान्तराले हसति कहकहं नृत्यते भीमकाय-
स्तं दृष्ट्वा भीतमन्त्री व्रजति यमपुरं नष्टचित्तः क्षणेन ॥१६३॥

---

[1] च. 'यदरुण' नास्ति। [2] ख. ग. च. छ. भो. पूर्वं। [3] ग. रक्त। [4] ग. पूर्वोक्त। [5] ख. ईश, च. ईशाने। [6] क. ख. ग. छ. स्थाप्य।

ततः सहस्रे होमे पूर्णे सति **ज्वलन् वै ललदसिरसनस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्त्रिनेत्रो गर्जन् विस्फोटयन् यः क्षितिमपि चरणैः साधकं भीषयन्, सः** प्रेतकाये प्रविष्टोऽसुरेन्द्र इत्थंभूतः **स्थित्वा कुण्डान्तराले हसति कहकहं नृत्यते भीमकायः। तं दृष्ट्वा भीतमन्त्री व्रजति यमपुरं नष्टचित्तः क्षणेन** ॥ १६३ ॥ T 362

भेतव्यं नासुरेन्द्रादपि चितिभुवने मन्त्रिणा सिद्धिहेतो-
र्दृष्ट्वा निष्कम्पचित्तं वदति पुनरिदं साधितो भूतनाथः।
सिद्धोऽहं ते[300a] सुवीर वद सकलमहं साम्प्रतं किं करोमि
इत्युक्ते साधकेन स्वमनसि रुचितं प्रार्थनीयं परार्थम् ॥१६४॥

स्पर्शं खड्गं रसेन्द्रामृतफलगुटिका रोचनं चाञ्जनं च
यल्लेपं पादुकां चाददतु मम भवान् लौकिकीमष्टसिद्धिम्।
विद्वेषोच्चाटनं वै भुवननिधनतां स्तम्भनाकृष्टिवश्यं
सर्वं मे यातु सिद्धिं स च वदति पुनः सर्वमेतत् करोमि ॥१६५॥

भूतेन्द्रं साधयित्वा व्रजति नरपते साधको यत्र तत्र
पाताले चान्तरीक्षे सुरवरभवने मेरुशृङ्गेऽब्धिपारे।
तत्रारूढोऽसिहस्तः क्षितितलनिलये लोककार्यं करोति
तस्मात् सत्त्वार्थहेतोः परमकरुणया साधनीयोऽसुरेन्द्रः ॥१६६॥

अत ऊर्ध्वं वृत्तत्रयं सुबोधम्, भेतव्यं नासुरेन्द्राद् इत्यारभ्य साधनीयोऽसुरेन्द्र इति पर्यन्तम्। एवमसुरेन्द्रसाधननियमः ॥ १६४-१६६ ॥

इदानीं मन्त्रलक्षणमुच्यते—

नामाद्यं चित्तवज्रं भवति नरपते देवतादेवतीनां
वाग्वज्रं सर्वनामाक्षरमपि च ततश्चाधिकं कायवज्रम्।
तस्मात् प्रत्यङ्गमन्त्रो भवति बहुविधः पाठसिद्धः कदाचिद्
भाव्यो याज्यश्च जाप्यः स्वजिनकुलवशाच्चित्तवाक्कायभेदैः ॥१६७॥

नामाद्यमित्यादि। इह त्रैधातुके स्थिरचलधर्माणां यद्यस्य नाम, तस्य नामस्याद्य-क्षरं **नामाद्यं** तदेव **चित्तवज्रं भवति नरपते देवतादेवतीनां वाग्वज्रं सर्वनामेति**। इह यथा तारा पाण्डरा मामकी लोचना नाम, तदेव वाग्वज्रम्। एवं सर्वेषां भावानामिति। **एवं सर्वनामाक्षरमपि ततश्चाधिकं कायवज्रमिति**। इह यथा—ॐ तारे तुतारे तुरे स्वाहा, ॐ पाण्डरवासिनि वरदे स्वाहा, ॐ मामकि [300b] किरि किरि स्वाहा, ॐ

लोचने वसुदे स्वाहा—इत्यादीनि नामस्याधिकाक्षराणि चित्तवागक्षरसहितानि काय-वज्राणि, **तस्मात्** कायवज्रात् परतो यो मालामन्त्रः स **प्रत्यङ्गमन्त्रमित्युच्यते**। यथा हस्तपादादयः कायावयवास्तथा नामावयवा मन्त्रनामस्येति। स च **बहुविधो भवति**। **पाठसिद्धः** [1]**कदाचित्**। इह यथाभिषेकपटले प्रत्यङ्गमन्त्रस्तद्यथा—ॐ आः हूँ [2]हो हं क्षः ह् क्ष् म् ल् व् र् य कालचक्र दुर्दान्तिदमक १ जातिजरामरणान्तक २ त्रैलोक्य-विजय ३ महावीरेश्वर ४ [3]वज्रकाय ५ वज्रगात्र ६ वज्रनेत्र ७ इत्यादि प्रत्यङ्गमन्त्रः कदाचित् पाठसिद्धः पूर्वजन्मसाधित इह जन्मनि पुनः साधितः सिद्धो भवति। ततः कर्म करोति। इह चित्तादिना मन्त्रो **भाव्यो** नामाद्यः, **याज्यो** नाममन्त्रः, **जाप्यो** नामाधिकः। **स्वजिनकुलवशादिति**। अक्षसूत्रादिभेदैः। **चित्तभेदेन** भाव्यः, **वाग्भेदेन** याज्यः, **कायभेदेन** जाप्य इति नियमः। अत्र नामाद्यम् ॐकारं विना देवताकारं ध्यायात्। सर्वनाम्नि ॐकारमादौ यजेत् कायवज्रेण। एवं प्रत्यङ्गम् आदिकाय-वज्रे[4]मन्त्रे चित्तवज्रं हूँ फडिति दत्त्वा जपेत्। एवं सर्वसत्त्वानां कायवाक्-चित्तभेदः ॥ १६७ ॥

इदानीं सामान्यमन्त्रसाधने [5]जापसंख्योच्यते—

प्रत्येकं मन्त्रजातेः प्रभवति नियतः कोटिजापः प्रसिद्धो
होमस्तस्माद् दशांशः प्रकृतिगुणवशात् सिद्धयते यावदेव।
पश्चाच्छान्त्यादिकेषु प्रभवति फलदो नान्यथा सिद्धिमेति
सध्यानैर्जापहोमैर्व्रतनियमयुतैर्मन्त्रयोनिश्च साध्या ॥१६८॥

प्रत्येकमित्यादि। इह **प्रत्येकं मन्त्रजातेः** कायवज्रस्य **कोटिजापो भवति प्रसिद्धः। होमस्तस्मात्** कोटिजापाद् **दशांश** इति दशलक्षहोमो भवति। वाग्वज्रस्य **प्रकृतिगुणवशादित्यभिषेकपटलोक्तद्रव्यैः** शान्त्यादिगुणवशात् कु[301a]ण्डा-सनादिविधिना **सिद्धयते यावदेव। पश्चाच्छान्त्यादिकेषु प्रभवति फलदो नान्यथा सिद्धिमेति**। एवमुक्तैः **सध्यानैर्जापहोमैर्व्रतनियमयुतैर्मन्त्रयोनिश्च साध्या** इति।

इह यासां देवतानां यो यः समयः, सा देवता तेन समयेन तेन [6]व्रतनियमेन साध्या भवति, अन्यथा न सिद्धयति। तथा नामाक्षरं साध्यस्य यदि साधकनामाद्य-क्षरस्य शत्रुर्भवति, तदा साधकस्य मरणं भवति। [7]अथोदास्यं भवति, तदा क्लेशो भवति। अथ मित्रं भवति, तदा सिद्धो भवति देवता। स्वरेण शत्रुणा [8]मरणम्। व्यञ्जनशत्रुणा रोग इति। अपरे शत्रवः सर्वे वाय्वक्षरास्तोयाक्षराणाम् स्वराणां

१. च. क्वचित्। २. च. भो. होः। ३. भो. 'वज्रभैरव' इत्यधिकः। ४. भो. 'मन्त्रे' नास्ति। ५. च. जप। ६. च. व्रतेन तेन नियमेन। ७. ग. 'अथो भवति' नास्ति। ८. ग. 'मरणम्' 'शत्रुणा' नास्ति।

स्वराः, व्यञ्जनानां व्यञ्जनानीति। एवं तोयाक्षराण्यग्न्यक्षराणाम्, अग्न्यक्षराणि भूम्यक्षराणाम्, भूम्यक्षराणि वाय्वक्षराणाम्, आकाशाक्षराणि सर्वेषां मित्राणि, सर्वेषामक्षराणि आकाशस्य मित्राणीति। तथा भूमेस्तोयं मित्रम्, वह्नेर्वायुर्मित्रम्, वायोर्वह्निः, तोयस्य भूमिः, एवं मित्रवर्गः। वायोस्तोयमुदास्यम्, वह्नेः पृथिव्युदास्या, तोयस्य अग्निरुदास्यः, पृथिव्या वायुरुदास्यः। एवं सर्वं ज्ञात्वा ततो मन्त्रदेवतां साधयेत्, इति मूलतन्त्रे नियमः। तथा **मूलतन्त्रे** भगवानाह—

अकुह‿कश्च ये कण्ठ्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः।
शून्यं वाय्वादिधातूनां मित्रत्वेन सदा स्थिताः॥

इचुयशाश्च तालव्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः।
वायुधातुसमुद्भूताः शत्रवस्तोयजन्मिनाम्॥

ऋटुरषाश्च मूर्द्धन्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः।
तेजोधातुसमुद्भूताः शत्रवो भूमिजन्मिनाम्॥

उपुव‿पाश्च ये चौष्ठ्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः।
तोयधातुसमुद्भूताः शत्रवो वह्निजन्मिनाम्॥

लृतुलसाश्च ये दन्त्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः।
पृथ्वीधातुसमुद्भूताः शत्रवो वायुजन्मिनाम्॥

[1]वायोर्मित्रं सदा शून्यम् उदास्यं वायुशक्तितः।
तोयस्य मेदिनी मित्रमुदास्योऽग्निरशक्तितः॥

पृथिव्या उदकं मित्रम् उदास्यो वायुरेव च।
प्रणवं वर्जयित्वा तु मन्त्रस्याद्यक्षरं कुलम्॥

चित्तं तदेव मन्त्राणां बिम्बनिष्पत्तिकारणम्।
अन्यव्यञ्जनसंयुक्तं मन्त्रस्याद्यक्षरं यदा॥

तदा पूर्वं तयोर्ग्राह्यं प्रथमोच्चारहेतुतः। [301b]
स्वरव्यञ्जनभेदेन तदेव द्विविधं भवेत्॥

प्राणस्य शत्रुर्मित्रं च कायस्यापि निगद्यते।
प्राणस्य शत्रवो मित्रा उदास्या वा स्वराः स्मृताः॥

कायस्य शत्रवो मित्रा उदास्या व्यञ्जनात्मकाः।
स्वरः शत्रुर्हरेत् प्राणं साधकस्य न संशयः॥

१. भो. rTag Tu rLuṅ Gi Grogs Po Me. Tha Mal Pa Chu Nus Med Phyir. Me Yi Grogs Po rLuṅ Yin Te. Tha Mal Pa Sa Nus Med Phyir.
(वायोर्मित्रं सदा वह्निरुदास्यं तोयमशक्तितः।
वह्नेर्मित्रं च वायुः स्याद् उदास्या पृथ्वी अशक्तितः॥)

रोगाद्यं कुरुते काये शत्रुर्व्यञ्जनलक्षणः।
एकवर्गेऽपि ये पञ्च काद्या व्यञ्जनधर्मिणः॥
पृथिव्यादिकुलं तेषां ज्ञातव्यं मन्त्रसाधने।
ङञणमननित्येते मित्रा वाय्वादिजन्मिनाम्॥
घझढभधघित्येते शत्रवस्तोयजन्मिनाम्।
गजडबददित्येते शत्रवो भूमिजन्मिनाम्॥
खछठफथथित्येते शत्रवो वह्निजन्मिनाम्।
कचटपततित्येते शत्रवो वायुजन्मिनाम्॥
मन्त्रादौ संस्थितो वर्णः स्ववर्गेऽपि परेऽपि वा।
साधकानां द्विधा वर्णो जन्मजो नामजो भवेत्॥

इत्यादि **मूलतन्त्रे** भगवतो नियमः।

पुनस्तत्रैव षड्विधं कर्म प्रथमाक्षरस्योक्तम्। तद्यथा—

मन्त्रादिव्यञ्जनानां वा स्वराणां साधनाय च।
कर्मास्य षड्विधं प्रोक्तं सेवाजापं प्रकुर्वताम्॥
प्रथमं ताडनं कुर्यादावेशं दाहनं ततः।
आप्यायनं ततो मन्त्री पोषणं तोषणं ततः[1]॥
सविसर्गेण शून्येनाक्रान्तो मन्त्रपूर्वकः।
मूर्छावस्थामवाप्नोति अस्त्रराजेन ताडितः॥
लक्षजापेन चित्तस्य मूर्च्छिता मन्त्रदेवता।
अहङ्कारपरित्यक्ता साधकस्य [2]वशा भवेत्॥
एवं सा वायुनाक्रान्ता आवेशं याति योगिनः।
दह्यते वह्निनाक्रान्ता तोयेनाप्यायते तथा॥
पृथ्वी मूर्ध्नि स्थिता पुष्टिं जप्ता [3]गच्छति देवता।
मूर्ध्नि बिन्दुकलाक्रान्ता तोषिता वरदा भवेत्॥
एवं षड्लक्षजापेन पूर्वसेवा निगद्यते।
आदिबुद्धे महातन्त्रे सुगतेनेष्टसिद्धये॥
फट्कार हूँ तथा वौषट् नमः स्वाहा वषट् तथा।
षट्कर्माणि यथासंख्यं मन्त्रान्ते कारयेद् व्रती॥
आदौ वैरोचनं दत्त्वा पुनर्जापं समारभेत्।
कोटिजापं ततः कृत्वा होमं [4]कुर्याद्दशांशिकम्॥

---

१. ग. 'ततः'''''विसर्गेण' नास्ति। २. ग. च. भो. वशी। ३. ग. 'गच्छति'''''क्रान्ता' नास्ति। ४. ग. कृत्वा दशां।

तन्त्रोक्तविधिना सर्वं ततः सिद्ध्यति देवता।
वरं ददाति सा सिद्धा मन्त्रिणां प्रार्थितं च यत्॥
अन्या जातिः क्रिया चान्या कालो मन्त्रः कुलं तथा।
अन्यस्थानं दिगाधारं निष्फलं सर्वकर्मसु॥
पुस्तकात् पठितैर्मन्त्रैः [1]संप्रदायविवर्जितैः।
साधनं ये प्रकुर्वन्ति ते क्लिश्यन्ति नरा भुवि॥
किंनाम संप्रदा[302a]यं तत् पुस्तकाद्यदि लभ्यते।
तथा लिखितपाठेन नेयार्थेन प्रकाशितम्॥
आकाशं भोक्तुमिच्छन्ति मन्त्रसद्भाववर्जिताः।
पुस्तकात् पठितैर्मन्त्रैर्देवादीनां च साधकाः॥
स्वचित्तदृढवीर्येण मन्त्रजापेन वा भवेत्।
ईप्सिता लौकिकी सिद्धिः साधकानां परार्थिनाम्॥
मन्त्रजापैस्तथा होमैश्चैत्यपूजाविधिक्रमैः।
[2]क्रियाहीना न सिद्ध्यन्ति यथाभूतमिदं वचः॥
शास्तॄणां बोधिसत्त्वानां देवानां साधनं प्रति।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तदेव गृह्यते बुधैः॥

इत्येवं चित्ताक्षरं साधयेत् पूर्वसेवां कृत्वा। अत्र मन्त्रताडनादिकम्। तद्यथा—प्रथमं तावत् तारामन्त्रं प्रदर्श्यते। तेन विधिनाऽपरेऽपि ज्ञेयाः। ॐ ह्ताः फडिति ताडनमन्त्रस्य लक्षजापः, ओं य्ताः हूँ इत्यावेशनम्, र्ताः वौषडिति दहनम्, ॐ व्ताः नम आप्यायनम्, ॐ ल्ताः स्वाहा पोषणम्, ॐ तां वषट् तोषणम्, षट्लक्षजापः। षडयुतं होमयित्वा ततः—ॐ तारे स्वाहेति वाग्वज्रस्य जापो दशलक्षाणि। दशांशहोमः। ततः ॐ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा। इति काय-वज्रजापः। कोटिपर्यन्तं दशलक्षं होमयेदेवं मन्त्रदेवता वरदा भवति। नान्यथा योगिनामिति। चित्तवाक्कायभेदैर्भाव्यो याज्यो जाप्यश्च प्रत्येको मन्त्रः षट्लक्षं दशलक्षं शतलक्षमिति नियमो **मूलतन्त्रे** भगवतः॥ १६८॥

इदानीं गुलिका साधनमुच्यते—

सिद्धा बद्धा त्रिलोहैः खगपललगुटी खेचरत्वं ददाति
श्वाऽश्वादीनां प्रदीपैरपहरति तनौ क्षुत्पिपासादिरोगान्।
नेत्रैः पित्तैश्च तेषां भवति वरनृणामञ्जनं भूप्रभेदं
अन्तर्धाने च वश्ये युवतिमनहरं साधितं श्रीश्मशाने॥१६९॥

---

1. भो. Man Ṅag (उपदेश)। २. भो. brTse Ba (कृपा)।

सिद्धेत्यादि। इह प्रथमं गुलिकासाधनमन्त्रं पूर्वोक्तविधिना साधयित्वा ॐ कालचक्र आज्ञासिद्ध गुलिकां साधय स्वाहा। ततो देवताप्रत्यादेशो भवति गुलिका-साधनाय।

[1]तत्रायं विधिः—**सिद्धा** इत्यभिषेकपटलोक्तानां षट्त्रिंशत्खेचरीणां पञ्चषट्दशाष्टाष्टवर्गाः, तेषामेक[302b]वर्गस्य पललं साधयित्वा छायाशुष्कचूर्णं कृत्वा पञ्चामृतसहितम्, ततोऽक्षोभ्येण पीषयित्वा चणकप्रमाणां गुलिकां कृत्वा एवं सिद्धेति। **बद्धा त्रिलोहैरितीह** कायवाक्चित्तशुद्ध्या चन्द्रार्कराहुभेदेन तारं ताम्रं कान्तलोहं द्विलोहम्। प्रत्येकबद्धा त्रिलोहैर्बद्धेति। **खगपललगुटी खेचरत्वं ददाति** वक्ष्यमाणक्रमेण साधितेति। तथा **श्वाऽश्वादीनां** भूचरजलचराणाम् अङ्गस्य पललैर्गुलिका सिद्धा बद्धा त्रिलोहै**रपहरति तनौ क्षुत्पिपासादिरोगा**निति गुलिकासाधननियमः।

इदानीमञ्जनसाधनमुच्यते—**नेत्रैरि**त्यादि। इहाञ्जनसाधनमन्त्रं पूर्ववत् साधयित्वा ततोऽञ्जनं साधयेदिति। ॐ कालचक्राज्ञासिद्धाञ्जनं साधय स्वाहा। ततः खगानां नेत्राणि गृहीत्वा सूक्ष्मचूर्णं कृत्वा बोधिचित्तेन भावयेत्। तदेवाञ्जनं निधानसिद्धये **भूप्रभेदं भवति**। **पित्तैश्चे**ति श्वाऽश्वादीनां पित्तैरञ्जनं कृत्वा स्त्रीपुष्पेण भावयेत्। तदेवाञ्जनमन्तर्धानं करोति, **अन्तर्धानविषये वश्यविषये युवतिमनोहरं** भवति **साधितं श्रीश्मशाने** ॥ १६९ ॥

कृष्णाष्टम्यां निशायामथ मनुदिवसे मण्डलं वर्तयित्वा
रक्षां कृत्वा समन्ताच्च पललगुलिकां वाञ्जनं तस्य मध्ये।
कृत्वा संपूजयित्वा सुसुरभिकुसुमैर्मन्त्रजापं प्रकुर्याद्
रश्मीन् मुञ्चन्ति यावन्नभसि रविरिव ग्राह्यमुद्धृत्य तस्मात् ॥१७०॥

तत्रायं विधिः—**कृष्णाष्टम्यां निशायाम् अथ मनुदिवस** इति कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ **मण्डलं वर्तयित्वा** पूर्वोक्तदैत्येन्द्रसाधने यद् **रक्षां कृत्वा समन्तात्** पूर्वोक्तां **च**। ततो मण्डलकर्णिकायां **गुलिकां वाञ्जनं** वा कपालस्थम्, **तस्य मध्ये** स्थापयेदिति। एवं पललं गुलिकां वाञ्जनं तस्य मध्ये **कृत्वा संपूज्य सुसुरभिकुसुमैस्त**था पूर्वोक्तं बल्यादिकं दत्त्वा ततो **मन्त्रजापं प्रकुर्यात्**। पूर्वोक्तमनेन विधिना कालचक्राज्ञया **रश्मीन् मुञ्चन्ति यावद्** गुलिकाम् अञ्जनानि वा तावन्मन्त्रं[303a] जपेत्। ततो **ग्राह्यमुद्धृत्य तस्माद्** अवधेः, यदि रश्मीन्न मुञ्चन्ति, तदा पुनर्मन्त्रसाधनं कुर्यात्, यावद्देवताप्रत्यादेशो भवति। ततो गुलिकासंख्यया नरान् गृहीत्वा गुलिकाविद्याधरो भवति। एवमञ्जनविद्याधरः। खड्गेन खड्गविद्याधरः। एवं रत्नादिनापि। तत्र मन्त्रः—ॐकालचक्र आज्ञासिद्ध खड्गं साधय स्वाहा। एवं रत्नादिष्वादौ कालचक्रमिति नियमः। तत्रायसं खड्गं कृत्वा देवतानियमेन साधयेत्। स्फाटिकं रत्नं कृत्वा रौप्यं कमलं सौवर्णं चक्रं

[1] ग. 'तत्रायं'' गारुडवृत्ता' नास्ति।

सर्वलोहमयं वज्रं घण्टाऽप्येवं कर्तिकाऽप्यायसेति चिह्नसाधननियमः। एवं त्रिशूलपर्श्वादिकानि सर्वास्त्राणि साधयेत्। यद्यदस्त्रं साधयेत् स तेन चिह्नेन तत्तत्कुलविद्याधरो भवति कालचक्राज्ञयेति। अथ देवतानियमेन सिद्धरसवत् सप्तावर्तं मिलति, तदा साधनं विना खेचराः सिद्धयो भवन्ति, इति **मूलतन्त्रे** नियमः। इति गुलिकादिसाधनविधिः ॥ १७० ॥

जीवे दूते सजीवे गगनदिशि गते मृत्युमाप्नोति दष्टो
दूतः प्रश्नोऽसमो यो बहुसुखफलदो मृत्युदोक्तः समो यः।
दूतः सर्पादिनाम प्रवदति हि ततो मृत्युमाप्नोति दष्टः
पृच्छा प्राणप्रवेशे यदि भवति शुभा निर्गमे साऽशुभा स्यात् ॥१७१॥

दूतो वामाग्रपादः कथयति युवतीं दक्षिणाग्रो नरं च
स्वाङ्गं हस्तेन यत्र स्पृशति स मनुजो दष्टमत्र प्रदेशे।
प्रोत्फुल्लं नेत्रवक्त्रं कथयति मरणं कर्णमूले च कृष्णः
शब्दो हृत्पुण्डरीके यदि भवति मनाक् संग्रहं तत्र कुर्यात् ॥१७२॥

आदौ रक्षाविधानं भवति सुखकरं दष्टकस्यात्मनश्च
पृथ्वीतोयाऽग्निवाता गगनमपि तथाऽङ्गुष्ठकादौ नियोज्य।
लाद्या हान्ताः क्रमेणोरुजठरहृदये वक्त्रमध्ये ललाटे
हूँक्षूँह्यह्यादिनागा दशविषमसमा ह्रस्वदीर्घप्रभेदैः ॥१७३॥
[303b]

वामाङ्गे ह्रस्वबीजं श्रवणगलगतं कक्षकुक्षोरुदेशे
सव्याङ्गे दीर्घमेव प्रभवति फणिनां सृष्टिसंहारयोगैः।
रक्षां कृत्वा जिनाख्यां गुळसुसमशरेणाहिबीजान्वितेन
हुंक्षूंयुक्तेन शीघ्रं सुनिहतहृदयः स्तोभमायाति दष्टः ॥१७४॥

पृथ्वीबीजे ललाटे चरणगतखजे स्तम्भमायाति शीघ्रं
तोये मूर्ध्नि प्रविष्टे शिखिनि च जठरे निर्विषत्वं प्रयाति।
वायोर्बीजे ललाटे शिखिनि च हृदये संक्रमो वै विषस्य
शून्ये मूर्ध्नि प्रविष्टे चरणगतमहो छेदनं वै विषस्य ॥१७५॥

श्वेतो बिन्दुर्ललाटे त्रिविधमपि विषं निर्विषं वै करोति
रक्तः स्तोभं प्रवेशं कषणघननिभः स्तम्भनं पीतवर्णः।

वर्ति प्राणप्रवाहे त्रिकटुकलुलितां योजयेन्निर्विषत्वे
अङ्गुल्या लम्बिकायां विकसितवदने टङ्कणं योजयेद् वा ॥१७६॥

वज्री जातिः कुमारी त्रिकटुकलवणं लाङ्गली देवदाली
ब्राह्मी क्षारोऽश्वगन्धा दिनकरसहिता वन्ध्यकर्कोटकी च ।
विण्मांसं शुक्ररक्तं सममपि गुलिका कारिताऽक्षोभ्यपिष्टा
भूतं भूतज्वरं वा स्थिरमुरगविषं घ्राणदत्ता निहन्ति ॥१७७॥

सूर्यादौ सप्तवारे दिननिशिसमये सप्तभागावसाने
शून्या मन्दार्कमध्ये प्रवहति कुलिका मृत्युरूपाऽर्धनाडी ।
नागक्रीडां न कुर्यात् त्रिविधमपि विषं भक्षणीयं न तत्र
तस्यामेवाहिदष्टो व्रजति यमपुरं भूतलब्धोऽस्त्रभिन्नः ॥१७८॥

मध्याह्ने चार्धरात्रे दिननिशिसमये नित्यवारप्रभेदात्
शून्याब्धौ सन्धिमध्ये प्रवहति कुलिका कालदष्टैकनाडी ।
प्रत्यूषेऽस्तङ्गतेऽर्के पुनरपि च तथा कालनाडी च मृत्यो-
रेतान्यास्यानि राहोः प्रतिदिनसमये वेदितव्यानि सम्यक् ॥१७९॥
[304a]

आदित्येऽनन्तभोगो दिननिशिसमये चादिभागे दिनस्य
पश्चाच्छेषोरगाणामुदय इह भवेत् सप्तवारप्रभेदात् ।
खर्तुः खच्छिद्रखेषुः खयुगखवसवः खाद्रिखाग्निश्च नाड्यो
भोगाःसूर्यादिवारादपि वसुफणिनां भुक्तिभेदाद् विषं स्यात् ॥१८०॥

विप्रोऽनन्तो हिमाभः कुलिक इति नृपो वासुकिः शङ्खपालो
रक्तो वैश्यो महाब्जो वरकनकनिभस्तक्षकस्तद्वदेव ।
शूद्रः कर्कोटकोऽब्जः कषणघननिभश्चान्त्यजौ विश्ववर्णौ
जन्मस्थानं च तेषां जलशिखिधरणीमारुताकाशधातुः ॥१८१॥

पादात् कट्यन्तपीतो गरुड इति तथा नाभिसीम्नो हिमाभ
आकण्ठाद् रक्तवर्णः कषणघननिभो भ्रूलतां यावदेव ।
तस्माद्वै विश्ववर्णः फणिकुलसहितो मुद्रितः पञ्चतत्त्वै-
र्ध्यातस्तन्मुद्रया वै हरति फणिविषं भूतरोगादिकं च ॥१८२॥

क्षेंकारं पक्षिनाथं स्वहृदयकमले भावयेत् सूर्यमूर्ध्नि
नागालङ्कारयुक्तं सकलकुलवशात् पञ्चवर्णं स्फुरन्तम् ।
पक्षिस्वाहान्तमादि प्रणवमपि ततः पक्षिनाथस्य मन्त्रं
जप्त्वा तं कोटिमेकं फणिकुलसहितं साधयेत् पक्षिनाथम् ॥१८३॥

तार्क्ष्ये सिद्धे फणीन्द्राः फणिपतितनयाः किङ्करत्वं प्रयान्ति
भूता यक्षा ग्रहाश्च प्रवरभुवितले डाकिनीमातरश्च ।
मन्त्राकृष्टिं प्रयान्ति ग्रहगणसकलं जल्पते कालदष्टः
तस्मात् सत्त्वार्थहेतोः प्रथममपि नरैः साधनीयः खगेन्द्रः ॥१८४॥

तत एकसप्तत्यधिकशतवृत्ताद्[1] गारुडवृत्तानि सुबोधानि। तेनात्र न लिखि-(व्याख्या)तानीति॥ १७१-१८४ ॥

इदानीं शान्त्यादौ यन्त्राण्युच्यन्ते—

वेदेष्वष्टौ दलेष्वेव नृपतिषु रदेष्वब्धिषट्सु द्विजेषु
गर्भे साध्यः स्वदिक्षु प्रथममपि युगं यादयोऽष्टौ दलेषु ।
एयाद्याः षो[304b]डशेषु त्रिगुणितदशकाः कादिहक्षा द्विजेषु
सन्ध्यापत्रेषु साध्यस्तिथिगुणितयुगेष्वेव लान्ताः समात्राः ॥१८५॥

वेदेष्वित्यादि । इहाभिषेकपटलोक्तन्यग्रोधपत्रादिके श्रीखण्डादिना शीतादिलेखन्या यन्त्राणि लेख्यानि शान्त्यादीनि । तत्रायं क्रमः—प्रथमपरिमण्डले चतुर्दलानि, द्वितीयेऽष्टौ, तृतीये षोडश, चतुर्थे द्वात्रिंशत्, पञ्चमे चतुःषष्टिः, षष्ठे द्वात्रिंशदिति । यथा शरीरे उष्णीषे हृदये ललाटे कण्ठे नाभौ गुह्ये षट्चक्राणि, तथा यन्त्रलिखने षट् परिमण्डलानीति । तत्र चतुर्दलमध्ये साध्यनाम। **वेदेष्विति** चतुर्दलेषु दिक्षु प्रथमम् अ अं युग्ममिति। अ पूर्वे अं उत्तरे।आ पश्चिमे। अः दक्षिणे। इति प्रथमपरिमण्डले। अष्टाब्जपत्रेष्विति **अष्टदलेषु यादयः**। इ ई पूर्वेऽग्नौ। ऋ ॠ याम्ये नैर्ऋत्ये। उ ऊ उत्तरेशाने। ऌ ॡ पश्चिमे वायव्ये। इति द्वितीयपरिमण्डले। एवं **नृपतिष्विति** तृतीयपरिमण्डले **षोडशदलेषु एयाद्या** इति पूर्वादिचतुर्दलेषु ए ऐ य या, दक्षिणदलेषु, अर् आर् र रा उत्तरदलेषु ओ औ व वा, पश्चिमदलेषु अल् आल् ल ला। इति तृतीये परिमण्डले। **रदेष्विति** द्वात्रिंशद्दलेषु **त्रिगुणितदशका** इति त्रिंशत् **कादयो हक्षा** इति, **द्विजेष्विति**। तत्र पूर्वादिपञ्चदलेषु च छ ज झ ञ, दक्षिणपञ्चदलेषु ट ठ ड ढ ण, उत्तरे प फ ब भ म, पश्चिमे त थ द ध न, एवमीशानमारभ्य पूर्वपत्रे मकाराक्षरमारभ्य पत्रत्रये क ख ग

१. भो. bCu bŠi (चतुर्दश) इत्यधिकम्।

इति। [1]आग्नेयादारभ्य दक्षिणे ञकारादारभ्य पत्रत्रये घ ङ छ इति। नैर्ऋत्यादारभ्य पश्चिमे णकारादारभ्य पत्रत्रये स⌒पष इति। वायव्यादारभ्य उत्तरे नकारादारभ्य पत्रत्रये श⌒कह इति। एवं द्वात्रिंशद्दलेष्विति चतुर्थपरिमण्डले। **अब्धिषट्स्विति** चतुःषष्टिदलेष्विति **साध्यः**। पत्रेषु चतुर्षु पूर्वे दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे साध्यनाम यथा, [2]तथा मध्ये। एवं पञ्चस्थानेषु साध्य नाम। **तिथिगुणितयुगेष्विति** षष्टिदलेषु यथासंख्यं **लान्ताः समात्रा** इति। हयरवलाः समात्रा द्वादशमात्रासहिताः [305a]षष्टिः षष्टिदलेषु ततः साध्यनाम पूर्वादौ दक्षिणावर्तेन य या यि यी यृ यॄ यु यू य्लृ य्लॄ यं यः इति द्वादशदलेषु, ततो दक्षिणे साध्यनाम्नो र रा रि री रृ रॄ रु रू र्लृ र्लॄ रं रः इति द्वादशदलेषु, उतरे साध्यनाम्नो व वा वि वी वृ वॄ वु वू व्लृ व्लॄ वं वः इति द्वादशदलेषु, पश्चिमे साध्यनाम्नो ल ला लि ली लृ लॄ लु लू ल्लृ ल्लॄ लं लः इति द्वादशदलेष्विति। ततः पूर्वे साध्यस्य अपरपत्रे ह, पश्चिमे हा, उत्तरे हं, दक्षिणे हः, एवं वामावर्तेन हि ही ईशानान्तम्, हृ हॄ अग्न्यन्तम्, हु हू वायव्यन्तम्, ह्लृ ह्लॄ नैर्ऋत्यान्तमिति। साध्यस्य नामाद्यक्षरमिति कर्णिकायाम् द्वितीयं पूर्वे **सन्ध्यापत्रे**, तृतीयं दक्षिणे, चतुर्थमुत्तरे, पञ्चमं पश्चिमे। ते[3] हूँ आः ॐ हो इति चित्तवाक्कायज्ञानाक्षराणि नामाद्यक्षरसहितानि लेख्यानि॥ १८५॥

आद्यैकैकस्वराभ्यां मकरघटवशाद् दीर्घह्रस्वाश्च पञ्च
द्वात्रिंशद् बाह्यपत्रेष्वपि समहृदया वज्रतीक्ष्णादिवर्णाः।
बाह्ये शान्त्यादिकर्मण्यपि च वयरला मण्डलान्येव तेषां
वर्णा गर्भोत्तमाङ्गाः शिखिचलचरणा वश्य आकर्षणे च॥१८६॥

अथाद्यैकैकस्वराभ्यां मकरघटवशाद दीर्घह्रस्वाश्च पञ्चेति। इह मकरादिलग्नेष्वधिदेवाः का खा गा घा ङा इत्यादयः। पूर्वे साध्यचित्ताक्षरस्य दक्षिणावर्तेन चा छा जा झा ञा मोने, तथा ञ झ ज छ चेति मेषे, एवं दशपत्रेषु। तथा दक्षिणे वाग्वज्रस्य टादयो दश, उत्तरे कायवज्रस्य यादयो दश, पश्चिमे ज्ञानवज्रस्य तादयो दश, शेषदलेषु विंशतिषु पश्चिमे पञ्चदलेषु कादयः पञ्च दीर्घाः, पूर्वे ङादय पञ्च ह्रस्वाः, दक्षिणे सादयः पञ्च दीर्घाः, उत्तरे ⌒कादयः पञ्च ह्रस्वाः, एवं षष्टिवर्णाः पञ्चमे परिमण्डले। **द्वात्रिंशद बाह्यपत्रेष्विति**। इह गुह्यकमले द्वात्रिंशद्दलविशुद्धया द्वात्रिंशत्पत्रे[305b]षु षष्ठे परिमण्डलेऽपि **समहृदया वज्रतीक्ष्णादिवर्णा** इति। तद्यथा 'वज्रतीक्ष्ण दुःखछेद' इति ईशानमारभ्याग्नेयपर्यन्तम्, ततो दक्षिणे 'प्रज्ञाज्ञानमूर्तये' इति, तथा पश्चिमे कायवागीश्वर अ इति। तथा उत्तरे 'अरपचनाय ते नमः' इति वज्रतीक्ष्णादिवर्णाः। एवं षट्चक्रात्मकं यन्त्रं लिखित्वा अभिषेकपटलोक्तविधिना **बाह्ये शान्त्यादिकर्मण्यपि च वयरला मण्डलान्येव तेषामिति**। इदं यन्त्रं शान्तिपुष्टौ ज्वरापहरणे निर्विषीकरणे।

---

१. ग. अग्नौ दक्षिणे। २. च. भो. 'तथा' नास्ति। ३. अन्यत्र 'दे' गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी।

उदकमण्डलेन यन्त्रं वेष्टयेत्, वकारेण वा। ततश्चन्द्रमण्डलमध्ये क्षिपेत्, हस्तिमध्ये वा। एवं मारणाद्ये वायुमण्डलेन, वश्याद्ये तेजोमण्डलेन, स्तम्भनाद्ये पृथिवीमण्डलेन वेष्टयेत्। शेषमभिषेकपटलोक्तं कर्तव्यमिति। इह यन्त्रे **वर्णा गर्भोत्तमाङ्गा** इति गर्भशिरसो लेख्याः। **शिखिचलचरणा** इति दक्षिणचरणाः। सर्वेषां मेरुरुत्तरस्थः। गर्भकर्णिका इति **वश्ये आकर्षणे च**॥ १८६॥

शान्त्यादौ गर्भपादाः शिखिचलशिरसो मन्त्रिणा लेखनीयाः
पूर्वोक्तैः शान्तिपुष्टि भुवननिधनतोच्चाटनाकृष्टिवश्यम्।
सस्तम्भं मोहनं च त्रिभुवननिलये चक्रमेतत् करोति
जापैर्होमैश्च साध्यः प्रथममिह महावज्रतीक्ष्णादिमन्त्रः॥१८७॥

तथा **शान्त्यादौ गर्भपादा** इति उत्तरपादा मेवंभिमुखाः। **शिखिचलशिरस** इति दक्षिणशिरसः। एवं मारणाद्ये पूर्वचरणाः पश्चिमशिरसः, स्तम्भनाद्ये पूर्वशिरसः पश्चिमचरणा इति। प्रत्येक[1]पत्रे **लेखनीया मन्त्रिणा पूर्वोक्तैरित्यादि** सुबोध इति षट्चक्रयन्त्रनियमः॥ १८७॥

इदानीं यमान्तकयन्त्रमुच्यते—

अष्टारे द्वादशारे दिशिविदिशिगतं षोडशारेऽन्तरे च
साध्यः कोणेषु मध्ये प्रभवति यमराजासदोमेरुणाद्यो।
तस्माद् गर्भारमध्याद् भवति दनिरयक्षेच्च तस्मान्निरन्ते
ॐ ह्लोः ष्ट्रीः तस्य बाह्ये भवति च विकृतादाननाद् हूँ द्विधा फट्॥१८८॥
[306a]

अष्टार इत्यादि। इह न्यग्रोध[2]पत्रादौ यन्त्रं लेखनीयम्। प्रथमपरिमण्डल**मष्टारं** द्वितीयं **द्वादशारं** तृतीयं **षोडशारमिति**। तत्राष्टारेषु **दिशिविदिशिगतमिति** दिशि यमाद्यक्षरं गतम्, विदिशि पत्रे साध्यनामाक्षरं गतम्, षोडशारे चान्तरान्तरदलेष्वष्टस्विति। एवं **साध्यः कोणेषु**। प्रथमपरिमण्डले **मध्ये** कर्णिकायां **प्रभवति य** पूर्वे, **म** द्वादशारे पूर्वे **रा**, द्वितीये **जा**, तृतीये **स**, चतुर्थे पत्रे **दो** प्रथमाष्टारे। दक्षिणे **मे**। पुनर्द्वादशारे। पञ्चमे पत्रे **रु** षष्ठे **ण**, सप्तमे **यो** पुनरष्टारे। पश्चिमपत्रे **द**। पुनर्द्वादशारे। अष्टमे **नि**, नवमे **र**, दशमे **य**। पुनरष्टारे उत्तरे **क्षे**। पुनर्द्वादशारे एकादशे **च्च**, द्वादशे **नि**। तथाह—

य म रा जा स दो मे य य मे दो रु ण यो द य।
य द यो नि र य क्षे य य क्षे य च्च नि रा म य॥

---

१. भो. ḥKhrul ḥKhor (यन्त्रे)। २. क. ख. यन्त्रा।

इति **मूलतन्त्रे**। एकाधिपतिना षोडशाक्षराणि षोडशदलेषु। एवं **मध्ये प्रभवति यमराजासदोमेरुणाद्यो तस्माद् गर्भारमध्याद् भवति दनिरयक्षेच्च तस्मान्निरन्त** इति। अष्टारे द्वादशारे नियमः। ततः षोडशारे साध्यनामान्तरान्तरे पत्रे इदं मन्त्रं लिखेत्—ॐ ह्रीः ष्ट्रीः विकृतानन हुँ हुँ फट् इति ॥ १८८ ॥

एवं कक्षान्तराले भवति नरपते साध्यनामैष मन्त्रो
विद्वेषे मृत्युवश्ये प्रभवति य म रा क्षे द मे दो स चाद्याः ।
स्तम्भाकृष्टौ च मोहेऽपि च बलकरणे शान्तिकोच्चाटने च
गर्भात् तस्मिन् यकारो व्रजति गुणवशात् पूर्ववद्बाह्यसर्वम् ॥१८९॥

एवं कक्षान्तराले भवति नरपते साध्यनामैष मन्त्रो विद्वेषे मृत्युवश्ये इति। इह मध्येऽधिदेवो विद्वेषे **य,** मृत्यौ **म,** वश्ये **रा प्रभवति**। तथा **क्षे द मे दो स चाद्या** इति। इह स्तम्भने क्षे, आकृष्टौ द, मोहने मे, बलकरणे दो, शान्तौ स, उच्चाटने च्च, ज्वरकरणे ण, स्तोभने रू, जये जा, सन्तापशमने यो, शत्रुनिवारणे नि इति। **गर्भात् तस्मिन् यकारो व्रजति गुणवशादि**ति। इह कर्मणः स्वभावात् यो वर्णो गर्भेऽधिपतिर्भवति, तस्य स्थाने यकारो लिख्यते। **पूर्ववद्बाह्ये** [306b] **सर्वमि**ति यमान्तकयन्त्रनियमः॥ १८९ ॥

इदानीं मञ्जुश्रीयन्त्रमुच्यते—

वर्णानामुत्तमाङ्गात् प्रभवति पुरतो मः स्वरालिङ्गितश्च
वर्णैर्वर्गान्तवर्णः कुलिशकुलवशात् पञ्चमोऽहं स उक्तः ।
प्रज्ञा बिन्दुद्वयेन स्वरपरमपुटे स्यादियं मेऽप्युकारो
मं मुः हं हुश्च सं सुः कमलवसुदले मञ्जुरेवार्कपत्रे ॥१९०॥

वर्णानामित्यादि। इह **वर्णानामुत्तमाङ्गादि**ति वर्णानां शिरसि बिन्दुः। तस्मादुत्तमाङ्गात् **प्रभवति पुरतो मः स्वरालिङ्गितश्चे**ति। अकारस्वरेणालिङ्गितोऽनुस्वारो मकारो भवति। अन्यच्च **वर्णैः** ककाराद्यैरालिङ्गितो **वर्गान्त** इति ङ ञ ण म न नो भवन्ति। **कुलिशकुलवशात् पञ्चमो**[1]**ऽहं स उक्तः**। अतो बिन्दुरहम्। **प्रज्ञा बिन्दुद्वयेन** विसर्गेण **स्वरपरमपुटे**ऽकारद्वयमध्ये **स्यादियं मेऽप्युकारः**। एवं **मं** इत्युपायो **मु**रिति प्रज्ञा, एवं हं हुः **सं सुः मञ्जु**रित्यष्टाक्षराणि दलेष्वष्टसु। द्वितीये द्वादशारे परिमण्डले **एवार्कपत्र** इति॥ १९० ॥

बाह्ये श्रीवज्रघोषः प्रभवति सयुतो मन्तभद्रोऽपि हूँ फट्
साध्योऽस्मिन् कर्णिकायां अमुकमपि कुरु चोदनं श्रीसमादेः ।

१. भो. हें सं

एवं पूर्वोक्तचक्रेष्वपि भवति सदा लेखनं साध्यनाम्नः
एतत्सर्वं नराणां जिनपतिवचसा सिद्ध्यते मे प्रसादात् ॥१९१॥

बाह्ये प्रथमदले **श्री,** द्वितीये **व,** एवं क्रमेण **ज्र घो ष स म न्त भ द्र हूँ फ**डिति द्वादशाक्षराणि शेषं पूर्ववत्। सर्वमिति। **साध्योऽस्मिन् कर्णिकाया**मिति। साध्यनामाद्यक्षरं कर्णिकायाम्। ततो जापकाले **चोदनं श्रीसमादे**रिति। ॐ श्रीवज्रघोष समन्तभद्र **अमुकस्य** शान्तिं **कुरु कुरु** नमः। एवं पुष्ट्यादिके स्वाहा [1]हूँ फट् वौषट् फडिति अन्ते दातव्यम्, यन्त्रलिखनेऽप्यन्तिमे पत्रे। **एवं पूर्वोक्तचक्रेष्वपि भवति सदा लेखनं साध्य-** [307a] **नाम्नः। एतत्सर्वं नराणां जिनपतिवचसा सिद्ध्यते मे प्रसादा**दिति यन्त्रलिखनविधिः॥ १९१ ॥

यः शब्दो हृत्प्रदेशे भवति वरनृणां श्रूयते श्रोत्ररन्ध्रे-
स्तस्मिश्चित्तं नरस्य व्रजति समरसं योजितं चैकभूतम् ।
यं शब्दं जीवलोके वदति च भवजस्तत्तदेव शृणोति
विज्ञानं चैव दूराच्छ्रवणमपि विभोर्योगिना भावनीयम् ॥१९२॥

कृत्वा पर्यङ्कबन्धं विकसितवदनोऽन्योन्यदन्तं स्पृशेन्न
आकृष्टो बाह्यवातस्तदमृतसहितो नाभिमध्ये प्रविष्टः ।
सन्तापं क्षुत्पिपासां हरति वरतनौ सन्निरुद्धो विषं च
श्वेतो बिन्दुर्ललाटे स्वरपरिकरितो मुञ्चमानोऽमृतं वा ॥१९३॥

घ्राणे रन्ध्रद्वयेन त्वपि पिहितमुखे बाह्यवातः समस्तः
प्राणेनाकृष्य वेगात् तडिदनलनिभो घट्टितोऽपानवायुः ।
कालेनाभ्यासयोगाद् व्रजति समरसं चन्द्रसूर्याग्निमध्ये
अन्नाद्यं क्षुत्पिपासामपहरति तनौ चामरत्वं ददाति ॥१९४॥

स्वच्छायामातपस्थामपरमुखरवे स्तब्धदृष्ट्यावलोक्य
पश्चाद्व्योमाभिवीक्ष्येत् समरसपुरुषो दृश्यते धूम्रवर्णः ।
षण्मासाभ्यासयोगादवनिगतनिधिं दर्शयेद् भूमिछिद्रं
वृक्षच्छायां प्रविश्य त्वथ गगनतले भाविता बिन्दुमाला ॥१९५॥

या शक्तिर्नाभिमध्याद् व्रजति परपदं द्वादशान्तं कलान्तं
सा नाभौ सन्निरुद्धा तडिदनलनिभा दण्डरूपोत्थिता च ।

१. च. 'हूँ···फडिति' नास्ति ।

चक्राच्चक्रान्तरं वै मृदुललितगतिश्चालिता मध्यनाड्यां
यावच्चोष्णीषरन्ध्रं स्पृशति हठतया सूचिवद् बाह्यचर्म ॥१९६॥

आपानं तत्र काले परमहठतया प्रेरयेदूर्ध्वमार्गे
उष्णीषं भेदयित्वा व्रजति वरपुरं वायुयुग्मे निरुद्धे ।
एवं वज्रप्र[307b]भेदान्मनसि सविषयात् खेचरत्वं प्रयाति
पञ्चाभिज्ञास्वभावा भवति पुनरियं योगिनां विश्वमाता ॥१९७॥

मुद्रा मायानुरूपा मनसि च गगने रूपवद्दर्पणे च
त्रैलोक्यं भासयन्ती तडिदनलनिभाऽनेकरश्मीन् स्फुरन्ती ।
बाह्ये देहेष्वभिन्ना विषयविरहिता भासमानाऽम्बरस्था
चित्तं चेतो मयाऽऽलिङ्गयति च जगतोऽनेकरूपस्य सैका ॥१९८॥

त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक् संबोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम् ।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगिगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरां कालचक्रानुविद्धाम् ॥१९९॥

विज्ञानं नाणुरूपं त्रिभव इह तथा नास्ति विज्ञानमेव
बुद्धप्रज्ञा स्थिता न क्वचिदिति वचनं देशयिष्यन्ति बौद्धाः ।
शून्यं यास्यन्ति येनाक्षररहितनराः शून्यतां तां गृहीत्वा
भर्त्रा तेनाच्युतं यत्सहजतनुसुखं देशितं मन्त्रयाने ॥२००॥

गोखङ्गाश्वेभनाथान् व्रज तनुविषयानिन्द्रियं यज्ञकाले
यत्ते शुद्धासि चैतद्विषमविषयिणां ज्ञानयोगे निरोधः ।
यत्पानं दीक्षितानां भवति सरुधिरं गोऽजिने सोमवल्ल्या
मूर्ध्नः सोमामृतं तद् भगरजसि गतं सर्वगानन्दरूपम् ॥२०१॥

ब्रह्मा कायो हरो वाग् हरिरपि च मनः प्राणिनां ते त्रिवेदा(देवा)
ॐकारस्ते त्रिवर्णाः शशिरविहुतभुक् ते त्रिनाड्यो गुणाश्च ।
कौलः काये कुलान्यो विषयगुणगतोऽथर्वणो नादरूपी
तन्मध्येऽनाहतं यद्विषयविरहितं निर्गुणं चाक्षरं तत् ॥२०२॥

वेदान्ते गुह्यमेतत् कथितमपि पुरा ब्रह्मणा योगिनां वै
कालाज्ज्ञानप्रणष्टैर्मुनिभिरिह वधो देशितः प्राणिनां च ।
जाता[308a] तस्मिन् प्रवृत्तिः कुनरकफलदा स्वर्गहेतोर्नराणा-
मङ्गारो नेन्दुवर्णः क्वचिदिह हि भवेत् क्षीरधाराभिषिक्तः ॥२०३॥

निर्योगैर्वेदवाक्यैः समयविरहितैर्वञ्चिता ये नरास्ते
रक्षां कृत्वा स्वनार्या दिननिशिसमये स्वात्मपुत्रार्जनार्थम् ।
दानं पुत्रेण दत्तं भवति किल पितुः प्रेतलोकं गतस्य
तेनेदं कामदानं श(स)मसुखफलदं गोपितं दुष्टविप्रैः ॥२०४॥

जात्यश्वे नान्यपुंसो यदि भवति महाघोटिकायां महाश्वो
लक्ष्मीश्चाश्वप्रभावात् पुनरपि च भवेत् स्वामिनः किन्न लाभः ।
रक्षां कुर्वन्ति येन प्रतिदिनसमये रागिणः स्वस्वनार्याः
कस्त्वं का ते स्वनारी मरणमुपगतेऽहोऽशुभः कर्मबन्धः ॥२०५॥

गोदानं भूमिदानं ह्यपरमपि तथा भोगदं मर्त्यलोके
भैषज्याहारदानं सकलरुजहरं क्षुत्पिपासाहरं च ।
सर्वस्मिन् कामदानं श(स)मसुखफलदं किं पुनश्चक्रकाले
इष्टा भार्या भगिन्यपि सुभगदुहिता गुह्यदाने प्रदेया ॥२०६॥

सद्वेश्या कर्ममुद्रा भवति च समया गुप्तनारी परस्त्री
स्वच्छन्दा धर्ममुद्रा बहुविषयरता ज्ञानमुद्रा स्वभार्या ।
सद्वेश्या द्वादशाब्दा परमसुखरता षोडशाब्दा कुलस्त्री
स्वच्छन्दा विंशदब्दा भवति स्वदुहिता त्रिंशदब्दा स्वभार्या ॥२०७॥

पूर्वं बुद्धैर्धरित्री गजतुरगरथानेकसौवर्णभावा
दत्ता बुद्धत्वहेतोः पुनरपि च शिरो रक्तमांसं प्रदत्तम् ।
एभिर्बुद्धत्वमिष्टं नहि भवति ततः कामदानं प्रदत्तं
बुद्धत्वं तेन जातं जिनजनककुले गुह्यदानेन पुंसाम् ॥२०८॥

हेमं ताम्रेण तुल्यं सुरमुकुटमणिः काचखण्डेन तुल्यः
सद्वेश्या कामदानैरमलकुलवधूश्चर्मखण्डेन नाभिः ।

जात्यश्वो[308b] गर्दभेन प्रवरगजपतिर्लभ्यते यद्यजेन
भार्यादानेन देवो जिनजनककुले तत्र किं नैष लाभः ॥२०९॥

मैत्रीस्थाने न दानं श(स)मसुखफलदं तुल्यसत्त्वप्रभावात्
सूपेक्षास्थान एवं प्रवरजिनकुले मारसत्त्वप्रभावात् ।
हीनत्वादुत्तमत्वात् सकरुणमुदितास्थानयुग्मे प्रदत्तः(त्तौ)
संभारौ द्वौ प्रपूर्याक्षरसुखफलदं सौगतानां परार्थम् ॥२१०॥

वर्णो यस्य प्रमाणं भवति नरपते तस्य वेद[:] प्रमाणं
वेदो यस्य प्रमाणं खलु भुवि निलये तस्य यज्ञ[:] प्रमाणम् ।
यज्ञो यस्य प्रमाणं विविधपशुनृणां तस्य हिंसा प्रमाणं
हिंसा यस्य प्रमाणं नरकभयकरं तस्य पापं प्रमाणम् ॥२११॥

वासग्रासार्थमिष्टां कथयति भगवान् श्रीविहारप्रतिष्ठां
भैषज्याहारदानं किल रुजशमनं तत्र दाता ददाति ।
दानाभावे विहारः क्षितितलनिलये तिर्यगावास एष
ग्रासो यत्रैव संघो भवति नरपते तत्र बुद्धश्च धर्मः ॥२१२॥

बुद्धं धर्मं च संघं शरणमनुगता मानुषा मोक्षहेतो-
र्नायं बुद्धो विहारे स्थित इह लिखितः पुस्तको धर्म एव ।
संघः काषायधारी परमविभुसुखं जन्मलक्षैर्ददाति
आचार्यो बुद्ध एव प्रवरभुवितले देशना तस्य धर्मः ॥२१३॥

संघस्तस्मिन् स्थितो यः प्रमुदितहृदयः सर्वसत्त्वानुकम्पी
सोऽस्मिन्नुक्तश्चतुर्धा द्विविध इह पुनः श्रावकोऽनुत्तरश्च ।
भिक्षुण्यो भिक्षवश्चापि पुनरिह महोपासकोपासिकाश्च
योगिन्यो योगिनो वै सहजसुखरतोपासकोपासिकाश्च ॥२१४॥

पुण्यज्ञानार्थहेतोर्विविधमपि सदा दानमत्यर्थमिष्टं
भोज्याद्यं श्रावकेभ्यः परमसुखकरं योगिनामिष्टदानम् । [309a]
दातारो ये ददन्ति प्रमुदितहृदयाः सर्वदा रक्तचित्ता-
स्ते पुण्यज्ञानपूर्णाः परमसुखपदं जन्मनीह व्रजन्ति ॥२१५॥

आचार्यं निन्दयन्ति प्रकटमपि जिनं श्रावका येऽप्रबुद्धा-
स्तेऽवीचिं यान्ति शीघ्रं परमभयकरं मारिता विघ्ननाथैः ।
स्वाधिष्ठानं करोति प्रवरजिनपतिर्यस्य मन्त्रप्रभावैः
को भिक्षुस्तस्य तुल्यो व्रतनियमपदे ब्रह्मचारी नराणाम् ॥२१६॥

कष्टं कुर्वन्ति सर्वे परमसुखरता भिक्षुको वा परिव्राड्
नग्नो मौण्डी जटी च श्रुतपठनरतः पण्डितो मार्गनष्टः ।
कर्तुश्चात्मग्रहेण स्वपरमिह सदा पुत्रदारग्रहेण
भक्ष्याभक्ष्यग्रहेणाप्यकुलकुलरतापात्रपात्रग्रहेण ॥२१७॥

बुद्धक्षेत्रं समस्तं श(स)मसुखफलदं कायवाक्चित्तरागं
एतत्संहारयित्वा त्वपरमपि विभुं पापबुद्धिः समीक्षेत् ।
क्षेत्रे तीर्थेऽन्यदेशे व्रतनियमशतैर्लङ्घनैः शैलपातैः
संग्रामे ग्रस्तसूर्ये विषयसुखरतोऽनेकशस्त्राग्निघातैः ॥२१८॥

मारैरेतत्समस्तं रचितमपि पुरा रक्तपानस्य हेतोः
स्वर्गस्तीर्थोपवासैर्मरणमुपगतस्याहतस्यैव युद्धे ।
गोभानोर्मोचनार्थे गृहधनविषये विप्रकार्ये मृतस्य
तस्मादेषः स्वकायः समसुखनिलयो रक्षणीयः परस्य ॥२१९॥

श्रुत्वा यस्तन्त्रराजे जिनवरचरितं चाभिषेकं गृहीत्वा
ईर्ष्यां भूयः करोति प्रविशति नरकं सोऽष्टमं यावदेव ।
यस्मिन् सूच्यग्रभूमावशुभफलवशान्नारकाः संचरन्ति
तस्माद् ग्राह्योऽभिषेको नहि भवति नृणां यावदीर्ष्यास्ति चित्ते ॥२२०॥

दानं शीलं प्रपूर्णं जिनजनककुले क्षान्तिवीर्यं च पूर्णं
ध्यानं प्रज्ञाऽभ्युपायः प्रणिधिरपि बलं ज्ञानपूर्णं ह्यनेन ।
भार्या[309b]दानेन शीघ्रं प्रमुदितमनसो योगिनो जन्मनीह
कृत्वाऽस्मिन् रागबन्धं नरकमुपगता मोहिता ये नरास्ते ॥२२१॥

पृथ्वीलक्ष्मीनिमित्तं सुचपलहृदयस्तीक्ष्णखड्गं गृहीत्वा
योधाकीर्णे समन्तात् प्रविशति हि रणे कातरश्चातुरङ्गे ।

दृष्ट्वा मातङ्गवृन्दं पतति करतलात् तस्य भीतस्य खड्ग-
स्तस्मिन् खड्गस्य दोषो नहि भवति यथा मन्त्रजातेस्तथैव ॥२२२॥

मन्त्रैर्वीरक्रमेणाप्यसुरफणिसुरान् साधयेद् रौद्रभूम्यां
स्वाधिष्ठानेन देवीः समयकुलगता ध्यानजापैः सहोमैः।
सेकं शुद्धक्रमेण त्वनवरतमहानन्दचित्तेन मन्त्री
ज्ञानं चिन्तामणिर्यत् प्रभवति च ततश्चैष मार्गो जिनस्य ॥२२३॥

सूतस्याग्ने रिपुत्वं न शिखिविरहितः सूतबन्धः कदाचि-
न्नाबद्धो हेमकर्ता कनकविरहिता वादिनां नैव भोगाः।
एवं स्त्रीसङ्गहीनो नहि भवति सदा योगिनां चित्तबन्धो
नाबद्धः कायवेधी सहजसुखमिहाविद्धकायो ददाति ॥२२४॥

उद्याने पर्वते वा जनमृगरहिते साधयेत् सौम्यमन्त्रान्
रौद्रान् रौद्रश्मशाने सुरवरभवने स्तम्भनं मोहनं च।
वश्याकृष्टिश्च मन्त्री परमविभुसुखं सर्वमुद्राप्रसङ्गे
अन्यस्थानेऽन्ययोनौ नहि भवति नृणां जन्मलक्षैश्च सिद्धिः ॥२२५॥

वेश्मग्रामेऽक्षिसूत्रैर्दिननिशिसमये मन्त्रजापं हि कृत्वा
श्रान्तो मूढो विरक्तो वदति पुनरिदं मन्त्रसिद्धिश्च नास्ति।
स्थानं शून्यं च कालं परमनिशिगतं नैव जानाति सम्यग्
रोगः पादाङ्गुलीषु प्रति शिरसि करोत्यौषधीभिः प्रलेपम् ॥२२६॥

न ध्यानं मन्त्रजापः करणमपि महामण्डलान्यासनानि
होमो मन्त्रप्रतिष्ठा रजसि जिनकुलावाहनं प्रेषणं च।
मुद्रासि[310a]द्धि ददाति प्रवरविभुसुखं सर्वमुद्राप्रसङ्गे
तस्मात् तद्भावनीयं प्रतिदिनसमये योगिना मोक्षहेतोः ॥२२७॥

मूर्च्छा निद्रां प्रविष्टं भवति नरपते निःस्वभावं स्वचित्तं
जाग्रायां सस्वभावं प्रकटयति न तत् प्राणिनां मोक्षमार्गम्।
भावाभावैर्विभिन्नं नहि समसुखदं योगिनां चित्तवज्रं
स्वप्रज्ञालिङ्गितं यत् सहजसुखगतं मोक्षदं तत्स्वचित्तम् ॥२२८॥

ॐ आः हूँ होः क्रमस्थैः प्रथममिह सदा बोधयेच्छोधयित्वा
मद्यं प्रज्वालयित्वा द्रुतशशिनमिवाभावयित्वा क्रमेण।
तत्पात्राद् बिन्दुना वै शशिकरकमलानामिकाग्रेण भूम्यां
कृत्वा बाह्ये त्रिकोणं दिनकरसदृशं वर्तुलं तस्य मध्ये ॥२२९॥

तन्मध्ये ज्ञानचक्रं त्रिभवमपि गतं भावयित्वा स मन्त्री
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां प्रतिदिनसमये तर्पणाद्यं करोति।
देशग्रामाधिपानां प्रथममिह बलिं चादिमध्यान्तनाम्ना
हारीत्याः पिण्डके द्वे पुनरपि च बलिं क्रोधराजाय मन्त्री ॥२३०॥

दूतीनां ग्रासमग्रं क्षितितलनिलये भर्तृवज्रैर्ददाति
भूतानां भुक्तशेषं पठति पुनरिमां दानगाथां शुभार्थम्।
अङ्गन्यासं स्ववज्रैः शिरसि गलहृदोर्नाभिगुह्ये च मूर्ध्नि
निद्राकालेऽङ्गवक्त्रैरुभयकुलगतैरर्चने मैथुने च ॥२३१॥

अतो नवत्यधिकशतवृत्तादूर्ध्वं चत्वारिंशद् वृत्तानि सुबोधानि। "यः शब्दो हृत्प्रदेशे" (४.१९२) इत्यादिना "दूतीनां ग्रासमग्रम्" (४.२३१) इति पर्यन्तं कतिपयवृत्तानि सुबोधानि, कतिपयवृत्तान्यभिषेकपटलेऽध्याहारेणोक्तानि कार्यवशादिति ॥ १९२-२३१ ॥

इदानीं लोकोत्तरलौकिकसिद्धये देवतालम्बनमुच्यते—

प्रत्यक्षं चानुमानं द्विविधमपि भवेद् देवतालम्बनं यत्
प्रत्यक्षं तत्त्वयोगादुडुरिव गगनेऽनेकसम्भोगकायम्।
अप्रत्य[310b]क्षेऽनुमानं मृतकतनुरिवातत्त्वतः कल्पनं य-
च्चित्रादौ दर्शनीयं ह्यपरिणतधियां योगिनां भावनार्थम् ॥२३२॥

प्रत्यक्षमित्यादि। इह सत्त्वानामाशयवशेन **योगिनां प्रत्यक्षं चानुमानं द्विविधमपि भवेद्देवतालम्बनं यत्**। तयोः प्रत्यक्षानुमानयोर्यत् **प्रत्यक्षं तत्त्वयोगाद् गगने उडुरिव** [1]भवेत् ताराचक्रमि**वानेकसंभोगकाय**मिति। मांसादिचक्षुर्ग्राह्यं मायास्वप्नसदृशं त्रिभवं त्र्यध्वनि। अत्र प्रथमं मांसचक्षुषा योगी आदिकर्मिको विश्वं पश्यत्यभिज्ञाभिर्विना। ततो दिव्यचक्षुषा पश्यत्यभिज्ञाविधिवशात्। ततो बुद्धचक्षुषा पश्यति वीतरागावधिवशतः। ततः प्रज्ञाचक्षुषा पश्यति बोधिसत्त्वावधिवशतः। ततो

१. च. भवति।

ज्ञानचक्षुषा पश्यति सम्यक्संबोधावधिचित्तवशात् सर्वोपधिविनिर्मुक्त इति । एवं तथागतस्य पञ्चचक्षूंषि मांसादीनि शून्यतादर्शनं प्रति । अन्ये सत्त्वाः शून्यतादर्शनविषये जात्यन्धा इति । [1]एवं विस्तरो वक्ष्यमाणे परमाक्षरज्ञानसिद्धौ वक्तव्य इति तत्त्वभावना नियमः । अतत्त्वसाधने पुनर**प्रत्यक्षेऽनुमानं मृतकतनुरिवातत्त्वतः कल्पनं यच्चित्रादौ दर्शनीयमिति** । [2]एवं प्रतिमा घटिता [3]चित्रिता बुद्धबोधिसत्त्वानां मण्डलचक्रं वा लिखित्वा नियताकारं दर्शनीयं बालयोगिनां मन्दानां भावनार्थमिति विकल्पभावनानियमः ॥ २३२ ॥

इदानीं विकल्पभावनाया उपाय उच्यते—

रूपं वा मण्डलं वा प्रथममपि पटेऽतत्त्वतो भावनीयं
आकाशे तत्त्वयोगात् सकलमविकलं दृश्यमानं स्वचित्तम् ।
वर्षार्धं वर्षमेकं गुरुनियमवशाद् यावदेव स्थिरं स्या-
न्मुद्रासङ्गेन तस्मात् कतिपयदिवसैरक्षरत्वं प्रयाति ॥२३३॥

रूपमित्यादि । इह बालयोगिनां स्वचित्तशक्त्या **रूपमि**त्येकदेवता पटे लिखिता भावनीया, **मण्डलं वा प्रथ**[311a]**ममपि पटेऽतत्त्वतो भावनीयम् । स्वचित्तमिति** । तत्त्वतः पुनर**राकाशे तत्त्वयोगा**दिति शून्यताकरुणायोगात् । **सकलमविकलं दृश्यमानं स्वचित्तं** सर्वाकारं रूपमण्डलचक्रकल्पनाऽभावादिति । एवं रूपादिकं कल्पितं पटे लिखितं वा, शून्यताबिम्बम[4]विकल्पं वा, **वर्षार्धं वर्षमेकं** वा **गुरुनियमवशाद् यावदेव स्थिरं स्यात्** [5]स्वचित्तम् । **मुद्रासङ्गेन तस्मा**दिति । इह स्वचित्ते प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणाबलेन स्थिरे जाते सति ततो मुद्रासङ्गेन **कतिपयदिवसै**रिति कालचक्रदिनैः पञ्चविंशत्यधिकैकादशशतैरिति नियमः । एभिर्दिनैर्बोधिचित्त**मक्षरत्वं प्रयाति** वैमल्यं भवतीति सम्बन्धः । अत्र [6]पटपुस्तकप्रतिमालिखनाय उपस्थापको धर्मभाणकोऽन्वेषणीयः, तेन पटपुस्तकप्रतिमादिकं कर्तव्यं रौद्रसौम्यक्रियया । पूर्वोक्तमर्था(र्घा)दिकं दत्त्वाऽऽचार्यस्य पूजा कार्या । संघभोज्यं गणचक्रं च दातव्यमर्घदानकाले । यथा प्रतिष्ठाकाले विधिः, तथार्घदानकालेऽपि यथाशक्तितः कार्य इति नियमः ॥ २३३ ॥

इदानीं वज्रपदनियम उच्यते—

सर्वस्मिंस्तन्त्रराजे खलु कुलिशपदं योगिनामेतदुक्तं
बालानां पाचनार्थं परमकरुणया गोपितं विश्वभर्त्रा ।
तस्मात् तं भेदयित्वा प्रतिदिनसमये योगिना भावनीयं
मुद्रासिद्ध्यर्थहेतोर्जिनवरजनकाऽनाहतं कालचक्रम् ॥२३४॥

॥ इति साधनापटलश्चतुर्थः ॥

१. क. एवं बागुरो ग. एषां, च. तेषां । २. ख. ग. च. छ. चित्रं । ३. क. ख. ग. च. छ. निषिक्ता । ४. च. विकल्पितं । ५. ग. 'स्व' नास्ति । ६. च. पटप्रतिमापुस्तक ।

सर्वस्मिन्नित्यादि । इह **सर्वस्मिंस्तन्त्रराजे समाजा**दिके उपायतन्त्रे, **चक्रसंवरा**दिके प्रज्ञातन्त्रे **खलु कुलिशपदं** पूर्वोक्तमक्षरसुखं **योगिनामि**ति । तदुक्तं **भगवता—**

[1]तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसम्भवः ।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः ॥
महाप्राणो ह्यनुत्पादो वागुदाहारवर्जितः ।
सर्वाभिलापहेत्वग्र्यः सर्ववाक्सुप्रभास्वरः ॥ (ना. सं. ५.१-२)

इत्यादि, "ज्ञानकाय नमो नमः" (ना० सं. ११.५) इति पर्यन्तं द्वाषष्ट्यधिकशतवृत्तेनोक्तो ज्ञानकायो **नामसंगीत्याम्** । स एव कुलिशपदमुच्यते । **सर्वस्मिन् तन्त्रराजे** । तदेव **बालानां पाचनार्थं परमकरुणया गोपितं विश्वभ**[311b]**र्त्रा** द्वीन्द्रियसुखं प्रतिपादितं बालानामिति । **तस्मात् तं** कुलिशपदं **भेदयित्वा प्रतिदिनसमये**ऽहर्निशं **योगिने**ति तीक्ष्णेन्द्रियेण पूर्वोक्तचक्षुषा **भावनीयं मुद्रासिद्धि**[2]निमित्तमिति महामुद्रासिद्धये । किं तत् ? **जिनवरजनकाऽनाहतं कालचक्रं** तदिति नियमो भगवतः सर्वतन्त्रान्तरे योगिभिरवगन्तव्यः संबुद्धपदलाभायेति ।

इति [3]श्रीमूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां
विमलप्रभायां द्वादशसाहस्रिकायां
नानासाधनमहोद्देशः पञ्चमः ॥

साधनापटलस्य टीका समाप्ता ।

[[4]तन्मण्डलत्रितयबोधितशे(षे)करत्नराजप्रबोधितभुवः परमाद्भुतार्थाः ।
उक्तस्तु साधयितुमिष्टतमः परार्थं नानार्थसाधनविधिः स षडङ्गयोगः ॥
प्राप्तं मया कुशलमावुकदत्तकेन संलेख्य साधनविधेः पटलं हि तेन ।
लोकोत्तराद्वयसुखाकररत्नमूर्ध्ना ज्ञानैकचक्षुरमलः सकलोऽस्तु लोकः ॥]

•

१. अथ वज्रधरः श्रीमान् इत्याद्यारभ्य इति चेत्साधु ? २. क. ख. छ. नियम इति । ३. क. ख. च. छ. 'श्री' नास्ति । ४. 'तन्मण्डल'''' लोकः' भो. नास्ति । श्लोकद्वयं प्रतिलिपिकर्तुरस्ति न तु टीकाकारस्य ।